भूमिका

पुराणों की कई श्रेणियाँ होती हैं। सामान्यतः सर्ग (सृष्टि क्रम), प्रतिसर्ग ( ), मन्वन्तर और देव ऋषि-राजवंश तथा राजाओं का इतिहास—ये ... पुराणों में बतलाये गए हैं। पर सब पुराणों में इनका समान रूप ... नहीं किया गया है। केवल दो-चार पुराणों में ही, जिनमें मुख्य रूप से ...' का नाम लिया जा सकता है, ये पाँचों विषय यथोचित रूप से ... ये गये हैं। अन्य पुराणों में से कुछ का उद्देश्य तो किसी विशेष देवता अवतार की प्रधानता का प्रतिपादन करना होता है, जैसे 'शिव-पुराण' 'विष्णु-पुराण' 'ब्रह्म वैवर्त' 'देवी भागवत' 'कालिका-पुराण' 'आदि-पुराण' आदि। कुछ पुराणों में तीर्थ और व्रतों का वर्णन ही मुख्य रूप से दिया गया है जैसे स्कन्द पुराण, मत्स्य-पुराण आदि। कुछ पुराणों का उद्देश्य विविध प्रकार की विद्याओं, कलाओं ... विभिन्न विषयों की जानकारी का परिचय देना भी है। एक लेखक ने इनका नामकरण 'विश्वकोषात्मक पुराण' किया है। अग्नि-पुराण, गरुड-पुराण, नारद-पुराण की इनमें गिनती की जा सकती है। एक श्रेणी उन पुराणों की भी प्रथक मानी जा सकती है जिनका उद्देश्य कुछ विशेष उपाख्यानों का वर्णन करना ही होता है। जैसे 'मार्कण्डेय पुराण' में 'हरिश्चन्द्र' और 'मदालसा' का उपाख्यान विस्तारपूर्वक दिया गया और अन्तिम अंश में कई राजाओं की कथाएँ और देवी का उपाख्यान ही विशेष रूप से दिये गये हैं। पुराणों के आरम्भिक दो-तीन विषयों का वहीं सूक्ष्म रूप में उल्लेख कर दिया गया है।

'पद्म-पुराण' को भी हम इसी श्रेणी का मानते हैं। यद्यपि यह एक विशाल पुराण है और समग्र पुराण—साहित्य में श्लोक संख्या की दृष्टि से इसका दर्जा दूसरा है। केवल 'स्कन्द पुराण' ही, जिसकी श्लोक संख्या ८१ हजार है, इससे बड़ा है। इसलिये इसमें सभी विषयों का वर्णन तो स्थान-स्थान

पर आ गया है, पर प्रधानता उपाख्यानों तथा कथानकों की ही है। पर ये उपाख्यान केवल तीर्थ और व्रत सम्बन्धी ही नहीं हैं वरन् पौराणिक पुरुषों राजाओं आदि की तथा अन्य प्रकार की भी ऐसी-ऐसी कथायें इसमें पाई जाती हैं जो अन्य पुराणों से बहुत भिन्न या नये रूप में वर्णित की गई हैं। इसलिये पाठकों का कौतूहल का भाव बहुत बढ़ जाता है। जो लोग सभी पौराणिक वर्णनों को यथातथ्य समझते हैं वे इस चक्कर में पड़ जाते हैं कि दोनों वर्णनों में से सही कौन सा है? उदाहरण के लिए हिरनाकुश और प्रहलाद की कथा को ही देखिये। सामान्यतः यह प्रसिद्ध है कि राम-नाम लेने के कारण हिरनाकुश ने अपने पुत्र प्रहलाद को मारने के लिए बड़े-बड़े अत्याचार किये, पर हर सङ्कट में उनकी सहायता करते रहे और अन्त में उन्होंने खम्भे में से प्रकट होकर हिरनाकुश का पेट फाड़ डाला। पर पद्म-पुराण तथा दो-एक पुराणों में यह वर्णन है कि जब देवताओं ने जाकर भगवान् विष्णु से हिरनाकुश के अन्याय, अत्याचारों की शिकायत की तो वे नरसिंह रूप धारण करके हिरनाकुश के द्वार में चले आये। प्रहलाद उस समय उनको द्वार पर खड़ा हुआ मिला जिसने इस अभिनव रूप को देखकर आश्चर्य भी प्रकट किया। वे सीधे भीतर चले गये और हिरनाकुश को मार दिया। इसी प्रकार की भिन्नता और भी अनेक कथाओं में हैं जिनका वर्णन अन्यत्र किया गया है।

इस प्रकार उपाख्यानों की बहुलता और विविधता 'पद्म-पुराण' की एक बड़ी विशेषता है, जिनमें से अनेक बड़े विस्तार के साथ लिखे गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस कारण उनकी रोचकता बढ़ गई है और पाठकों को नवीनता का भी अनुभव होता है। 'मन्दाधेनु-व्याघ्र-कथा' 'इक्ष्वाकु मुकुन्द युद्ध' 'दधीच द्वारा त्रिपुर वध' 'वेन का जैन-धर्म ग्रहण' 'विद्युन्माली और शत्रुघ्न का संग्राम' 'अर्जुन और नारद का स्त्री बन जाना' 'शनिश्चर पर महाराज दशरथ की चढ़ाई' आदि सभी कथायें ऐसी हैं जो इसके सिवाय और कहीं नहीं मिलती। इसमें साम्प्रदायिक वर्णन भी बहुत कुछ भिन्नता रखने वाले हैं।

'पद्म पुराण' सात खण्डों में विभाजित है—सृष्टिखण्ड, भूमिखण्ड, स्वर्ग-खण्ड, ब्रह्मखण्ड, पातालखण्ड, उत्तरखण्ड, क्रियायोगसार खण्ड। पर 'नारद-

पुराण' में 'पद्म-पुराण' की जो विषय-सूची दी गई है उसमें पाँच ही खण्ड बतलाये गये हैं। 'ब्रह्मखण्ड' और 'क्रियायोगसार' का उसमें उल्लेख नहीं है। उसका अनुसरण करके भारतीय धार्मिक साहित्य का विवेचन करने वाले कई आधुनिक ग्रन्थों में पाँच ही खण्ड बतलाये हैं, जब पाठकों को हमारे इस संस्करण में सातों खण्ड मिलेंगे।

यह एक प्रसिद्ध वैष्णव-पुराण है, और इसके मतानुसार विष्णु की उपासना का प्रतिपादन करने वाले पुराण ही 'सात्त्विक' हैं जिनमें 'विष्णु', 'नारद', 'भागवत', 'गरुड़', 'वराह' और 'पद्म' की गिनती की गई है। 'ब्रह्माण्ड', 'ब्रह्म-वैवर्त', 'मार्कण्डेय', 'भविष्य' तथा 'वामन पुराण' 'राजस' श्रेणी में रखे गये हैं। 'शिव' 'लिंग' 'कूर्म' 'मत्स्य' 'स्कन्द' और 'अग्नि-पुराण' को शिव की प्रधानता प्रतिपादन करने के कारण 'तामस' श्रेणी में रखा है। पर 'पद्म-पुराण' के उपाख्यानों में शिवजी का वर्णन उत्कृष्ट रूप में ही किया गया है, यद्यपि शैव-पुराणों की तरह उनको त्रिदेव में सर्वोच्च नहीं माना गया है।

'नन्दाधेनु-उपाख्यान' में सत्य की महिमा—

प्रभञ्जन नामक राजा को मृगया का बहुत अधिक व्यसन था। एक दिन उसने बच्चे को दूध पिलाती हुई हिरनी को बाण से मार दिया। अपने छोटे बच्चे के मोह से हिरनी को इस प्रकार मरते हुए बड़ा मानसिक सन्ताप हुआ और उसने राजा को सिंह बनकर वन के जीवों को खाते रहने का शाप दे डाला। जब अपना अपराध स्वीकार करके राजा ने बहुत क्षमा प्रार्थना की तो हिरनी ने कहा कि "सौ वर्ष के पश्चात् नन्दा धेनु यहाँ आयेगी उसी के द्वारा तुम फिर मनुष्य योनि को प्राप्त हो जाओगे।"

सौ वर्ष तक वह राजा केवल जङ्गल के जीवों को खाकर अपना घृणित जीवन व्यतीत करता रहा। तब उस जङ्गल में समीर वृद्ध ग्वाले ने अपनी बहुसंख्यक गायों को लेकर पड़ाव डाला और उन्हीं में से 'नन्दा' नाम की गाय वन में भटक जाने से उस व्याघ्र के पास पहुँच गई। जब व्याघ्र उसे मारकर खा जाने को प्रस्तुत हुआ तो नन्दा ने उससे प्रार्थना की कि वह उसे कुछ घण्टे की छुट्टी दे, जिससे वह पड़ाव में जाकर अपने छोटे बच्चे को देख आवे और

उसे पालन-पोषण के लिए अपनी सखियों—अन्य गायों के सिपुर्द कर आवे। सिंह ने कहा कि इस बात का क्या भरोसा कि तू वहाँ जाकर फिर वापस आ जायगी। इस पर गाय ने बहुत प्रकार की शपथ खाते हुए कहा—

"अगर मैं अपने वचन की रक्षार्थ फिर वापस न आऊँ तो मुझे वही पाप हो जो पवित्र ब्राह्मण और माता-पिता का वध करने से होता है। जो पाप महालोभी, म्लेच्छ और विष देने वालों को लगता है वही मुझे लगे अगर मैं फिर वापिस न आऊँ। जो एकबार किसी कन्या का दान करके फिर स्वार्थ-वश उसे किसी दूसरे को देने की इच्छा करता है, उसे जो पाप होता है मैं भी उसी की भागी होऊँ। जो निर्बल बैलों से बलपूर्वक परिश्रम कराता है और पुण्य-कथा मे बाधा डालता है उन्ही का पाप मुझे भी लगे जो मैं प्रतिज्ञा का पालन न करूँ।"

जब व्याघ्र से छुट्टी पाकर नन्दाधेनु अपने 'गोकुल' मे आई और उसने यह दुखद सम्वाद अपनी सखियों को सुनाया तो वे सब शोकमग्न हो गई और नन्दा को सलाह देने लगी कि जब वह व्याघ्र से किसी प्रकार छुटकारा पाकर घर आ गई तो अब फिर उसके पास जाना अनावश्यक है। इसमे झूँठ बोलने का दोष लग सकता है, पर शास्त्रो ने भी यह सम्मति दी है कि जब प्राण-रक्षा की समस्या उत्पन्न हो जाय तो असत्य-भाषण क्षम्य होता है। इसलिए अब तुम अपने छोटे बच्चे के पालन-पोषण के निमित्त 'गोकुल' मे ही ठहरी रहो। यहाँ वह दुष्ट व्याघ्र तुम्हारा किसी प्रकार अहित नही कर सकेगा? -

पर नन्दाधेनु की श्रद्धा 'सत्य' मे सुदृढ थी। वह इस प्रकार के तर्कों से प्रभावित नही हुई और उसने अपनी सखियों के प्रेम के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट करते हुए कहा—"यदि किसी अन्य प्राणी की प्राण रक्षा का प्रश्न होता तो मैं असत्य भाषण को क्षम्य मान सकती थी, पर अपने निजी जीवन को बचाने के लिए मैं सत्य का त्याग कभी नही कर सकती, क्योकि प्रत्येक प्राणी को अपने शुभ-अशुभ कर्मों का प्रतिफल जन्म जन्मान्तर मे स्वयम् ही भोगना पड़ता है। उसने सत्य की महिमा का बखान करते हुये कहा—

"ये समस्त लोक 'सत्य' मे ही प्रतिष्ठित है और धर्म का आधार भी

सत्य ही है। यह विशाल सागर अपने सत्य-वचनों के कारण ही मर्यादा का उल्लंघन नही करता। जब भगवान् विष्णु वामन का रूप धारण करके असुरो के सम्राट बलि को छलने आये तो उसने केवल अपनी सत्य-प्रतिज्ञा की रक्षा के लिये समस्त वैभव सहित तीनों लोको का राज्य त्याग दिया, पर वह असत्य व्यवहार करने के लिये तैयार न हुआ विन्ध्याचल अपनी सैकडो चोटियों को ऊँचा करके आकाश को छूने लगा था, फिर अगस्त्य ऋषि से प्रतिज्ञा कर लेने पर वह नीचे पडा ही रह गया। ये स्वर्ग अपवर्ग और नरक सभी सत्य-वचन से ही तो स्थित हैं। जिसने अपने कहे हुये वचनों का लोपकर दिया उसने मानो सभी कुछ लोप कर दिया। जो अपने आपको 'अन्यथा' बना लेता है वह 'अन्यथा' को ही प्राप्त हुआ करता है।"

नन्दा अपनी प्रतिज्ञानुसार यथा समय व्याघ्र के समीप पहुँच गई। इस सत्य से प्रभावित होकर उस हिंसक जन्तु ने उसको अभयदान ही नहीं दिया वरन् सदा के लिये किसी प्राणी का अनिष्ट न करने का निश्चय कर लिया। एक प्राणी के सत्यव्रत-पालन ने न जाने कितने अन्य लोगो को सत्य-रक्षा की प्रेरणा दी और उसकी परम्परा को आगे बढाया।

राजा बलि का सत्य-पालन—

वामन भगवान् और राजा बलि की कथा भी सत्य-प्रतिज्ञा के पालन का एक उत्कृष्ट उपाख्यान है। यद्यपि परिस्थितियो की विषमता के कारण बलि का सत्यरक्षा के लिये किया गया त्रिलोकी का 'महादान' राजा हरिश्चन्द्र के अयोध्या के राज्यदान के समान विशेष प्रसिद्ध न हो सका, फिर भी पौराणिक लेखको ने उसको कम महत्त्व नही दिया है। हरिश्चन्द्र का उपाख्यान केवल 'मार्कण्डेय पुराण' मे ही विस्तारपूर्वक दिया गया है, अन्यत्र केवल उसके नाम का उल्लेख ही मिलता है या कही कही अत्यन्त संक्षिप्त चर्चा देखने मे आती है। पर बलि-वामन का उपाख्यान 'दशावतार' का एक मुख्य अंश है और प्रत्येक पुराण मे उसका न्यूनाधिक वर्णन अनिवार्य रूप से किया गया है।

'पद्म-पुराण' के अनुसार इन्द्र स्वयं ही वामन-भगवान् को साथ लेकर बलि के पास पहुँचा और उससे कहा कि इस ब्राह्मण ने मुझसे तीन पैड़ भूमि

की याचना की है। पर इस समय मेरे पास तो कुछ भी शेष नही है क्योंकि मेरा समस्त राज्य आप अपनी शक्ति द्वारा विजित कर चुके हैं। इसलिये अगर आप मेरी तरफ से इसे तीन पैंड भूमि दे सकें तो बड़ी कृपा होगी। राजा बलि ने इसे एक बहुत छोटी याचना मानकर तुरन्त स्वीकार कर लिया और तीन पैर भूमि देने की स्वीकृति देदी। जब उसके गुरु शुक्राचार्य को इस बात का पता चला तो उसने बहुत कुछ समझाया कि ये इन्द्र और वामन के रूप में विष्णु तुमको छलने के लिये आये है और ये तुम्हारा सर्वस्व अपहरण करलेंगे। पर बलि ने यही उत्तर दिया कि "जब इतने बड़े लोग याचक बनकर मेरे सामने आये और मैंने भी उनको भूमिदान का वचन दे दिया, तो अब मैं उससे पीछे नही हट सकता। उसने शुक्राचार्य की चेतावनी का उत्तर देते हुये कहा—

"गुरुजी! मैंने धर्मोपार्जन की दृष्टि से इसको दान देने की प्रतिज्ञा कर दी है। जो प्रतिज्ञा की जाय उसका पालन करना सत्पुरुषों का सनातन धर्म है। यदि यह वामन वास्तव म विष्णु ही है, तो भी मैं अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहूँगा, क्योंकि यह तो मेरे लिए और भी अधिक गौरव का विषय है कि साक्षात् भगवान मेरे यहां याचक होकर आये।"

बलि और वामन की कथा मे समाज-कल्याण का एक बड़ा तथ्य निहित है। समाज के सब सदस्यों को पारस्परिक व्यवहार मे सत्य का पालन करना अनिवार्य है। यद्यपि सांसारिक कारणों से विभिन्न लोगों मे मतभेद, विवाद, कलह का होना आश्चर्यजनक नही है, पर इन कारणों से सत्य का त्याग— धोखाधड़ी और झूठ का व्यवहार न तो उचित कहा जा सकता है और न उससे किसी का स्थायी हित साधन हो सकता है। बेईमानी या छल कपट के व्यवहार से मनुष्य चाहे थोड़ी देर के लिए सफलता प्राप्त कर ले—थोड़ा-बहुत धन कमा सके, पर अन्तिम परिणाम पतन और नाश ही होता है। सत्य का पालनकर्ता चाहे विपत्तिग्रस्त हो जाय—उसे आर्थिक हानि उठानी पड़े, पर अन्त मे उसकी विजय ही होती है। राजा बलि को यद्यपि अपने राज्य से हाथ धोना पड़ा, पर पुराण के मतानुसार उसने भगवान को पूर्णतया अपना अनुगत बना लिया और पाताल में आज भी वे बलि के द्वार पर ही स्थित रहते हैं।

तुलाधार का सत्य व्रत—

तुलाधार का चरित्र पौराणिक साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है और अनेक स्थानों पर उसका वर्णन मिलता है। सम्भवतः वह एक पूर्ण काल्पनिक कथा है, जिसका उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने नियमित सांसारिक कर्त्तव्य का पालन करते रहने और उसी को सर्वश्रेष्ठ धर्म मानने की शिक्षा देना है। कहा गया है कि नरोत्तम नाम वाला एक तपस्वी ब्राह्मण युवावस्था में ही अपने घर और माता-पिता को छोड़कर जङ्गल मे कठिन तपस्या करने लगा। कुछ समय पश्चात् उसे विशेष शक्ति प्राप्त हो गई। एक दिन पेड के ऊपर बैठी हुई एक चिड़िया की बीट उसके ऊपर गिर गई। उसने क्रोध करके जो ऊपर की तरफ देखा तो वह चिड़िया मरकर नीचे गिर गई। इस घटना से उस नरोत्तम ब्राह्मण के हृदय में अहङ्कार की भावना उत्पन्न हो गई और उसी धुन मे वह समीप के एक गाँव मे जा पहुँचा। वहाँ जाकर उसने एक गृहस्थी के द्वार पर भिक्षा के लिए आवाज लगाई। घर में रहने वाली स्त्री उस समय अपने पति की सेवा में लगी हुई थी, इसलिये भिक्षा लेकर आने मे उसे कुछ देर लग गई। जब तपस्वी उसकी तरफ क्रोधयुक्त दृष्टि से देखने लगा, तो स्त्री ने कहा—"महाराज! मैं चिड़िया नहीं हूँ जो भस्म हो जाऊँगी।" यह सुनकर तपस्वी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि उस एकान्त स्थान मे होने वाली घटना का पता इस स्त्री को कैसे लग गया? पूछने पर स्त्री ने बतलाया कि मैं पति-सेवा को सबसे बड़ा धर्म समझती हूँ और उसी को पूरी निष्ठा के साथ पालन करती हूँ। उसी का प्रभाव है कि मुझे जङ्गल की घटना का पता लग गया।

जब नरोत्तम ने उससे धर्म-तत्त्व के सम्बन्ध मे कुछ अधिक जानने की जिज्ञासा की तो स्त्री ने उसे काशी नगरी मे तुलाधार वैश्य के पास जाने की सम्मति दी। काशी में जब उसने तुलाधार का पता लगाया तो देखा कि वह एक सामान्य दुकानदार है और अधिकांश समय उसी कार्य मे व्यस्त रहता है। तपस्वी को देखते ही तुलाधार ने कहा कि "क्या आपको अमुक ग्राम की स्त्री ने धर्म-चर्चा करने को यहाँ भेजा है?" उसकी इन चमत्कारी शक्ति को देखकर तपस्वी और अधिक चकित हुआ और ऐसी शक्ति किस प्रकार प्राप्त हो गयी

यह प्रश्न किया। तुलाधार ने बतलाया कि वह किसी प्रकार का साधन या तप नहीं जानता, केवल अपनी दुकान का कार्य पूरी मेहनत और ईमानदारी के साथ करता रहता है। वह सब ग्राहकों से ठीक दाम लेकर उत्तम चीज देता है और तोलने में पूरी सचाई का ध्यान रखता है। उसने जन्म भर कभी कम तोलने का विचार नहीं किया और इसी सत्य व्यवहार के प्रभाव से उसे दूरवर्ती और अज्ञात विषयों को जानने की शक्ति प्राप्त हो गई है।

आगे चलकर इस उपाख्यान में और भी कई प्रसङ्ग धर्म-तत्त्व के सम्बन्ध में वर्णन किये गये हैं और यह निष्कर्ष निकाला है कि धर्म और पुण्य ऐसी वस्तु नहीं हैं जिनके लिए मनुष्य को घरबार और अपने सांसारिक कर्त्तव्यों का त्याग करके एकान्त स्थानों में भजन साधन करना आवश्यक हो। इसके विपरीत प्रत्येक साधारण मनुष्य इन पाँच कर्त्तव्यों का पालन करके ही सर्वोच्च गति और आध्यात्मिक शक्ति को प्राप्त कर सकता है—(१) अपने माता पिता की परम भक्ति-भाव से सेवा। (२) अपने पति की अर्चना। (३) समस्त प्राणियों के साथ आत्मीयता का प्रेम युक्त व्यवहार करना। (४) मित्रों के साथ कभी द्रोह, छल-कपट न करना। (५) भगवान के चरणों में अनन्य निष्काम भक्ति रखना। जो व्यक्ति जैसी सांसारिक स्थिति में हो वह तदनुसार इनमें से किसी एक कर्त्तव्य का पालन करके ही कृतकृत्य हो सकता है और उस सद्‌गति को प्राप्त कर सकता है जो वर्षों तक जङ्गल में तपस्या करने वालों को भी प्राप्त नहीं होती।

कथाकार का आशय यही है कि जिस प्रकार अनेक अनुभवहीन व्यक्तियों का विचार हो जाया करता है कि धर्म-साधन तथा स्वर्ग मोक्ष आदि श्रेष्ठ गति की प्राप्ति के लिये कठिन तपस्या, योग-साधन या बड़े यज्ञ यागादि करना अनिवार्य है और यह सोचकर वे अपने सांसारिक कर्त्तव्यों की अवहेलना करके 'त्यागी-तपस्वी' बनने के उद्देश्य से गृह त्यागी हो जाते हैं, तो यह रास्ता बिलकुल गलत है। पर जो मनुष्य अपने सामान्य उत्तरदायित्वों का अच्छी तरह पालन नहीं कर सकता, वरन् उनसे भागकर एकान्त सेवन द्वारा 'धर्म' को प्राप्त करना चाहता है, उसे अकर्मण्य और भ्रमग्रस्त ही समझना चाहिये। अगर मनुष्य अपने सांसारिक जीवन को ही पूर्ण सत्य व्यवहार द्वारा आदर्श बना सके तो उसे सहज ही

वास्तविक धर्म की प्राप्ति हो सकती है। सत्य की महिमा इतनी अधिक है कि वह पारस-मणि की तरह लोहे को सोना बना सकता है। इस सम्बन्ध मे उपाख्यान मे कहा गया है—

सत्य भावना और लोभ का त्याग करके तथा किसी प्राणी के प्रति मत्सरता रहित होकर जो व्यवहार और उपकार किया जाता है उसका फल इतना अधिक होता है, मानो सौ यज्ञ पूरे कर लिये। सत्य के प्रभाव से ही सूर्य उदित होता है, वायु चलता है, समुद्र मर्यादा मे रहता है और कूर्म भगवान् पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण करते हैं। सत्य की शक्ति से ही सब लोक और पर्वत अपने स्थान पर स्थित रहते है। जो सत्य से भ्रष्ट हो जाता है उसका निश्चित रूप से अधःपतन हो जाता है। जो पुरुष सर्वैव सत्य वचन मे प्रीति रखने वाला है, किसी दशा मे मिथ्या वचन नही बोलता न कभी कोई असत् कार्य करता है, वह इस जन्म मे स्वर्ग जाकर अच्युतता को प्राप्त कर लेता है। सत्य के प्रभाव से ही ऋषि-मुनि भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करते है। सत्य का पालन करने से ही युधिष्ठिर सशरीर स्वर्ग मे जा सके, राजा बलि भगवान् को स्ववश कर सका और राजा हरिश्चन्द्र अपने समस्त प्रजा-जनो के साथ मत्यलोक मे जाकर विराजमान हुआ। इसी सत्य भाषण के प्रभाव से तुलाधार भी बडे-बडे त्यागी तपस्वियो से अधिक उच्च स्थिति को प्राप्त हो सका। जिस समय सत्य को तराजू पर रखकर तोला गया तो वह सहस्र अश्वमेध यज्ञो से भी अधिक भारी और गौरवशाली सिद्ध हुआ। सत्य-पालन मे ऐसी अद्भुत शक्ति है कि उससे सभी कृच्छ साध्य हो जाया करता है। जो लोग सत्य का पालन करते है वे सदा उसके द्वारा सुरक्षित रहते हैं, पर मिथ्या का आचरण नष्ट कर देने वाला होता है। जो लोग तोलने-नापने मे, सस्ता या मँहगा मूल्य बतलाने मे, न्यायालय के सम्मुख साक्षी देने मे सर्वैव सत्य-पालन का ध्यान रखते हैं, वे उसी के बल से अक्षय स्वर्ग के अधिकारी बन जाते हैं।"

इस प्रकार के कितने ही उपाख्यानो द्वारा पुराणकार ने सत्य की महिमा प्रतिपादित की है और उसे अन्य समस्त कर्मकाण्ड और धार्मिक अनुष्ठानो से बढकर बतलाया है। यह ऐसा धर्म है जिसके पालन करने मे किसी अन्य साधन की अपेक्षा नही रहती। सर्वथा अकिञ्चन (निर्धन) व्यक्ति भी इसका पालन

कर सकता है। वास्तव में यह आत्मा का धर्म है और जो लाभ बहुत धन से सम्पन्न होने वाले यज्ञ—यागादि से नहीं हो सकता वह इसके द्वारा उपलब्ध हो जाता है। तुलाधार के प्रकरण में ही कथाकार ने एक ऐसे शूद्र का उदाहरण दिया है जो खेतों से अन्न के दाने बीनकर पेट भरता था और जिसके पास दो फटे-पुराने कपड़ों के सिवाय और कुछ पहिनने को भी न था। भगवान् ने उसकी परीक्षा के लिये दो उत्तम वस्त्र मार्ग में गिरा दिये, पर वह उनको किसी अन्य का समझकर अपने रास्ते चला गया। फिर उन्होंने उसके सम्मुख ऐसे गूलर बिखेर दिये जिनमें सोना भरा था, पर उसने इस प्रकार के धन को हराम का माल समझकर हाथ नहीं लगाया। भगवान् ने संन्यासी का रूप धारण करके उसे वह स्वर्ण लेने के लिये बहुत समझाया पर वह यही कहता रहा कि मुझे परिश्रम से जो दाने मिल जाते हैं वे ही मेरे लिये अमृत स्वरूप हैं। अन्त में वह अपने सत्यव्रत के प्रभाव से बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के लिये दुर्लभ 'सत्यलोक' का अधिकारी बना।

सत्य-व्रत केवल धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, वरन् समाज की प्रगति और कल्याण का बहुत कुछ आधार भी उसी पर है। यदि कोई राष्ट्र भौतिक दृष्टि से उन्नति कर ले और धन-वैभव में दूसरों से आगे बढ़ जाय, तो भी सत्य का आश्रय लिये बिना उसकी वृद्धि स्थायी नहीं हो सकती। यदि वहाँ के निवासियों को एक दूसरे की नीयत पर सन्देह बना रहा और वे परस्पर धोखाधड़ी का व्यवहार करके दूसरों के अधिकारों का अपहरण करना चाहें, तो उसका प्रतिफल अन्त में समस्त समाज के लिये अनिष्टकारी सिद्ध होगा। यह एक ऐसा शाश्वत सिद्धान्त है जिसके सामने अनादि काल से प्रत्येक अन्यायी, अत्याचारी अहङ्कारी को अन्ततः अपना सिर नीचा करना पड़ा है। 'पद्म पुराण' के रचयिता ने विविध उपाख्यानों द्वारा इसी कल्याणकारी तथ्य को पाठकों को हृदयगम कराने का प्रयत्न किया है।

चरित्र का महत्त्व—

सत्य के समान ही चरित्र का शुद्ध और निष्कलंक होना मानव-जीवन की सार्थकता के लिये अनिवार्य है। यदि यह कहा जाय कि आदर्श-जीवन

अगर धर्ममय-जीवन के दो पहिये सत्य और चरित्र हैं तो इसमें कोई अनुपयुक्त बात नहीं है। यद्यपि संसार में आकर इहलोक और परलोक दोनों को सुधारने के लिये और भी अनेक गुणों की आवश्यकता होती है, पर जिन व्यक्तियों को सत्य व्रत पालन और चरित्र रक्षा का ध्यान रहेगा उनमें अन्य गुणों का समावेश अधिकांश में स्वभावतः ही हो जायगा। इन दो गुणों से युक्त मनुष्य अपना समय किसी प्रकार के दूषित कर्मों अथवा व्यसनों में नहीं लगा सकता इसलिये वह सद्प्रवृत्तियों मे ही संलग्न रहेगा और उनके संसर्ग मे गुणों की वृद्धि होती ही रहेगी। जैसे जुआ, चोरी, मद्यपान, व्यभिचार आदि किसी एक दुर्व्यसन के लग जाने पर धीरे-धीरे अन्य दुर्व्यसन भी न्यूनाधिक मात्रा मे आ ही जाते है, उसी प्रकार किसी एक मूल सद्गुण को ग्रहण कर लेने पर अन्य सद्गुणों की ओर प्रवृत्ति स्वयमेव होने लग जाती है। इस तथ्य को दृष्टिगोचर रखकर 'पद्म-पुराण' ने 'सदाचार' पर भी बहुत बल दिया है। यद्यपि सदाचार का संबंध बहुत कुछ आंतरिक मनोभावों से हैं, पर बाह्य आचारों का भी मनुष्य की मनोवृत्ति पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इसलिये 'पद्म-पुराण' मे इस सम्बन्ध मे आचार पर विशेष जोर दिया गया है। उसका मत है कि आचारवान् पुरुष स्वयमेव दुर्व्यसनों से दूर रहेगा और इस प्रकार उसके चरित्र के शुद्ध बने रहने मे बहुत दूर तक सहायता मिलेगी। पुराणकार कहते हैं—

"आचार की बहुत बड़ी महिमा है। आचार से मनुष्य की आयु की वृद्धि होती है, आचार से सुख की प्राप्ति होती है और यदि मनुष्य उस पर दृढ़तापूर्वक अन्त तक आरूढ़ रहे तो वह स्वर्ग और मोक्ष को भी पा सकता है। जो पुरुष आचार से हीन होता है वह लोक मे निन्दित हो जाता है। आचार शून्य पुरुष को सदैव दुःख ही भोगने पड़ते हैं, वह रोगी और अल्प आयु वाला भी हो जाता है। जो व्यक्ति आचार से भ्रष्ट होता है, परलोक मे भी उसकी दुर्गति ही होती है। आचार का सर्व प्रथम अङ्ग शुद्धि और शुचिता है। घर को सदैव मिट्टी, गोमय, जल आदि द्वारा शुद्ध और स्वच्छ रखना चाहिए। प्रतिदिन प्रातः शौच, दन्तधावन, स्नान नियमपूर्वक करना आवश्यक है। मल का त्याग नदियों के तट, समुद्र-तीर, उपयोगी वृक्षों की जड़ के समीप, बगीचे के भीतर, पुष्पवाटिका मे, जल के भीतर, किसी रम्य स्थान और राजपथ (सार्वजनिक सड़क)

पर कभी नही करना चाहिये। किसी भी विद्वान्, देवस्थान, गुरु, राजा, तपस्वी, पागल, अन्धा और स्त्री का धन अपहरण करना घोर असदाचार है। मार्ग मे कोई रोगग्रस्त व्यक्ति, बोझा लादकर ले जाने वाला, गर्भिणी स्त्री और अशक्त दुर्बल पुरुष आ जाय तो पहले उनको गमन करने के लिये रास्ता छोड देना चाहिये। जो स्त्री दुष्ट-प्रवृत्ति, असत् चरित्र, अपवाद (बदनामी) वाली, सदा कलह करने वाली, प्रमादयुक्त, लज्जारहित, वाह्यचारिणी हो, उससे किसी प्रकार सम्पर्क नही रखना चाहिये। क्योंकि ऐसी स्त्री के सम्बन्ध से सदाचार-पालन मे बाधा होती है। इसी प्रकार असत् आचरण वाले पुरुष का सग भी कभी नही करना चाहिये और न उसके साथ कही आना-जाना चाहिये।"

"जो पुरुष स्पर्श योग्य न हो तथा जो पतित एवं कुपित हो उनके साथ कभी बात-चीत न करे। ऐसे पुरुषों से सम्भाषण करने वाला कुपरिणाम का भागी होता है। गुरुजनो के सम्मुख आने उनका पदवी के अनुसार विनयपूर्वक अभिवादन करे। पर कई अवसरो पर उनका अभिवादन न करना भी उचित होता है। जैसे कोई गुरुजन तेल की मालिश कर रहा हो, उच्छिष्ट दशा मे हो, गीले वस्त्र पहिने हुये हो, रोग से ग्रस्त हो, किसी बडी चिन्ता मे उद्विग्न हो, तो ऐसी अवस्थाओ मे नियमानुसार अभिवादन नही करना चाहिये। जब वे शुद्ध अवस्था में हो जायें, तभी अभिवादन करना सदाचार का नियम है। इसी प्रकार जो यज्ञ अथवा ऐसे ही किसी कर्मकाण्ड मे सलग्न हो, स्त्रियो के साथ विनोद कर रहा हो, बच्चो के साथ क्रीडा कर रहा हो, पुष्प या कुशा ला रहा हो तो उसका अभिवादन करना भी उचित नही। इस जीवलोक मे स्वर्गीय-स्वभाव वाले व्यक्तियों मे चार गुण पाये जाते हैं—प्रशस्त दान, मधुर वाणी, देवताओ की भक्ति और विद्वानो का सम्मान। इसी प्रकार नारकीय-स्वभाव वालो के लक्षण ये बतलाये गये हैं—कृपणता का व्यवहार, स्वजनो की निन्दा, बुरे अथवा गन्दे वस्त्र धारण करना, नीच वृत्ति के मनुष्यो का सम्मान करना, अत्यधिक क्रोध, कडवी और कठोर वाणी आदि। जो व्यक्ति धर्मबीज से प्रसूत हुये हैं उनकी वाणी मक्खन के समान कोमल, अत्यन्त प्रिय, करुणा से पूर्ण होती है। पाप-बीज से उत्पन्न व्यक्तियों के लक्षण इससे विपरीत होते हैं।"

यद्यपि सदाचार की मीमांसा प्राचीन धार्मिक भावों के अनुसार की गई है, पर तत्व की दृष्टि से विचार किया जाय तो आज भी ये नियम उसी प्रकार उपयोगी हैं जैसा उनको हजार-दो हजार वर्ष पहले माना गया था। इसमे सबसे प्रथम स्थान शारीरिक शुद्धि को दिया गया है, जो बिल्कुल उचित और बुद्धि-सङ्गत है। जो व्यक्ति अपने शरीर को ठीक अवस्था मे नही रख सकता उससे मानसिक और आत्मिक दशा को ठीक रख सकने की आशा करना निरर्थक है। आत्म-निर्माण का कार्य केवल बातो से पूरा नही हो सकता। उसके लिए व्यवहारिक रूप से एक नियमित कार्यक्रम की पूर्ति करना आवश्यक होता है। उसमे सफलता प्राप्त करने के लिए शम, दम, नियम, सयम आदि दैवी गुणो की आवश्यकता होती है। हमको शारीरिक, मानसिक अथवा आत्मिक कोई भी सुधार करना हो, उसके लिए अपनी प्रवृत्तियो को शुद्ध और पवित्र बनना अनिवार्य है और यह कार्य सबसे पहले अपने शरीर को शुद्ध और पवित्र बनाने से आरम्भ होता है। पुराणकार ने कहा है कि शुद्ध आचार का पहला लाभ यह होता है कि मनुष्य रोग से बचा रहता है और उसकी आयु बढ जाती है। ये दोनों बातें जिस प्रकार भौतिक सफलता की दृष्टि से आवश्यक है उसी प्रकार धर्म-साधन भी इनके बिना नही हो सकता।

शुद्धता और पवित्रता केवल व्यक्तिगत दृष्टि से ही नही की जानी चाहिये वरन् उसमे सामाजिकता को सम्मिलित करना आवश्यक है। हमारे देश की अधिकांश जनता मे सामाजिक हित की भावना का बहुत कम ख्याल है और इस सम्बन्ध मे प्राचीन काल मे जो नियम स्थिर किये गये थे उनको भी लोगो ने अपनी अकर्मण्यता और प्रमाद की भावना से निरर्थक कर दिया है। इसलिये जब हम 'पद्म-पुराण' मे यह आदेश पाते हैं कि "नदी तथा समुद्र के किनारे, बाग-बगीचो मे, श्रमण के उपयुक्त रम्य स्थानो मे तथा सार्वजनिक मार्ग के निकट मल-त्याग नही करना चाहिये" तो हमको उस समय की नागरिकता और सामाजिकता की भावना का एक प्रमाण मिलता है। वर्तमान समय मे सभ्यता की लम्बी-चौडी बातें करने वालो मे से भी अनेक व्यक्ति इसके विपरीत आचरण करते देखे जाते हैं।

इसमे रोगग्रस्त, अशक्त, बोझा ले जाने वाला, गर्भिणी स्त्री आदि के लिए मार्ग छोड देने की जो सूचना दी गई है वह भी सामाजिकता और मनुष्यता की परिचायक है। आज हम सभ्य कहलाते हुए भी मोटर, रेल आदि सवारियो मे चढते समय इस भावना की जरा भी परवाह नही करते और दुर्बलो को ढकेल कर सबसे पहले अपना अधिकार जमाने मे ही कुशलता और चतुराई का प्रमाण मानते हैं। जब अधिक भीडभाड मे ऐसे दृश्य दिखलाई पडते हैं तो हर्गिज यह अनुमान नही होता कि ये किसी सभ्य और सुसस्कृत जाति के लोग हैं। इसके विपरीत इङ्गलैण्ड, अमरीका आदि के भौतिकवादी कहलाने वाले इस विषय मे हमारी अपेक्षा दस गुना श्रेष्ठ व्यवहार करते हैं। हमको केवल पुराणो की पूजा-उपासना की बातो को पढकर ही सन्तुष्ट नही हो जाना चाहिए वरन् इस प्रकार की उपयोगी शिक्षाओ पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

सज्जन और दुर्जन के लक्षण--

सृष्टि के आदि मे प्रकट होने वाले महर्षि कश्यप के दो पत्नियाँ अदिति और दिति बतलाई गई हैं। अदिति से देवताओ (दैवी शक्तियो) की और दिति से दैत्य दानवो (आसुरी शक्तियो) की उत्पत्ति कही गई है। देवता सद्गुण सम्पन्न और धर्म मार्ग के अनुयायी थे और दैत्य दानव पाशविक शक्ति तथा भोग विलास मे जीवन की सफलता मानने वाले थे। इस कारण इन दोनो दलो मे सघर्ष होना स्वाभाविक ही था। चूँकि दैत्यगण मुख्यत' अनियन्त्रित शक्ति मे ही विश्वास रखने वाले थे और युद्ध मे सब प्रकार के छल कपट, दाव पेंच से काम लेते थे, इसलिए वे प्राय देवगण को परास्त करके उनके स्वत्व का अपहरण कर लेते थे। ऐसे अवसर पर देवता भगवान की शरण मे जाते थे और वे कोई न कोई मार्ग ढूँढ कर दैत्यो का विनाश कर डालते थे और देवगण को पुन अपने स्थान पर प्रतिष्ठित कर देते थे।

ऐसे ही एक अवसर पर जब कश्यप पत्नी दिति ने अपने पुत्रो के निमित्त बहुत शोक किया और स्वयम् भी मरने की भावना प्रदर्शित की तो महर्षि कश्यप ने उसको मनुष्य शरीर की क्षणभगुरता का उपदेश दिया और साथ ही यह भी समझाया कि जो कोई अधर्म के मार्ग को ग्रहण करेगा—ससार मे अन्य

प्राणियो के साथ दुर्जनता का व्यवहार करेगा, उसका कल्याण कभी नही हो सकता। यह बात ईश्वरीय न्याय के विरुद्ध है कि कोई भी व्यक्ति अथवा राष्ट्र दूसरो के साथ बुराई—अन्याय का व्यवहार करके स्वय स्थायी और वास्तविक सुख पा सके। ऐसे व्यक्ति यदि अजेय भी बन जायें, तो भी उनके 'कर्म' स्वय उन्ही मे आन्तरिक विग्रह करके उनको नष्ट कर डालते हैं। पुराणो मे वर्णित 'सुन्द उपसुन्द नामक दैत्यो, द्वारिका में यादवकुल तथा मोहिनी'' की कथाएँ इसी भाव की प्रदर्शक हैं। इन तथ्यो का वर्णन करते हुये अन्त मे महर्षि ने समझाया—

"ससार के प्रपचो को त्यागकर आत्म कल्याण की दृष्टि से धर्म का पालन करना ही देवताओ (सज्जनो) का मार्ग है। सदैव धर्म का ही चिन्तन करना चाहिय और धर्म-पालन के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिये। जो इस प्रकार धर्म का पालन करता है, भगवान् विष्णु सदा उसके ऊपर कृपा-युक्त रहते है। 'धर्म' ही भगवान् विष्णु की काया है और 'सत्य' ही उनका हृदय है। जो कोई इन धर्म और सत्य दोनो का पालन करता रहता है उस पर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं। इसके विपरीत जो अधर्म के मार्ग पर चलकर 'धर्म' और 'सत्य' को दूषित करते है उनसे भगवान् घोर रुष्ट होते हैं और उनका नाश कर देते हैं। तप और सत्य म स्थित रहने वाले 'वैष्णव' धर्म का पालन करते हैं इसलिये भगवान् सदा उनकी रक्षा को सन्नद्ध रहते हैं। पर तुम्हारे (दिति के) पुत्र दैत्य, दनु के पुत्र दानव, सिंहिका के पुत्र सिंहिकेय—ये सब पाप-चित्त वाले थे और अधर्म तथा पाप का ही पालन करते थे इसलिये भगवान् वासुदेव ने उनको युद्ध क्षेत्र मे दण्डित किया।"

यद्यपि पौराणिक वर्णनो मे धर्म और अधर्म के स्वरुप को समझाने के लिये तरह-तरह की देव और दैत्य—दानवो की कथाएँ सुनाई गई हैं, जिससे सामान्य जनता भी उनसे कुछ शिक्षा ग्रहण कर सके, पर हमको निश्चित रुप से यह समझ लेना चाहिये कि उनका आशय सज्जनता तथा दुर्जनता का व्यवहार करने वालो से ही है। सभव है कि किसी समय मे 'दानव' और'दैत्य' नामधारी पाशविक शक्ति के अनुयायिओ के बडे-बडे सङ्गठन बन गये हो, और आज जिस प्रकार कितने ही भौतिक शक्ति मे विश्वास रखने वाले राष्ट्र 'एटम बम' (अणु-

अस्त्र) बनाकर संसार को आतंकित कर रहे है, उसी प्रकार प्राचीन युग मे भी किन्ही जातियो ने ऐसा प्रयत्न किया हो, पर वास्तव मे वे सब 'धर्म' 'सत्य' 'न्याय' के विरोधी दुर्जन स्वभाव वाले व्यक्ति ही थे। ऐसे लोग सदा से संसार के लिये कटक स्वरूप होते आये है, और जब निरीह जनता, सज्जन स्वभाव के व्यक्ति उनके स्वार्थयुक्त व्यवहार और अन्यायो मे दुःखित होकर भगवान् का स्मरण करने लगते हैं तो उनके ऊपर दैवी शक्ति का 'चक्र' चलता है और वे किसी न किसी प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। सयोग की बात है कि आज हम अपने नेत्रो से इस "दैत्य—दानव-विनाश" के नाटक की पुनरावृत्ति होते देख रहे हैं। आज भी अन्याय पर आश्रित अनियन्त्रित शक्ति से मदान्ध व्यक्ति गर्जन-तर्जन कर रहे है, और सरल प्रकृति के सज्जन दबे हुये आतंक और निराशा का अनुभव कर रहे हैं। पर दैवी-सत्ता ऐसे विपरीत-प्रकृति विरुद्ध वातावरण को अधिक समय तक स्थिर नही देते रह सकती। सूक्ष्म-जगत् मे भगवान् का चक्र घूमने लग गया है, और शीघ्र ही हम भगवद्-शक्ति के उस चमत्कार को देखने की आशा रख सकते है, जिसकी चर्चा इन पौराणिक कथाओ मे बार-बार की गई है।

"वैष्णव" के लक्षण और महिमा—

सत् और असत् पुरुषो के विवेचन की दृष्टि से पद्म-पुराणान्तर्गत 'ब्रह्म-खण्ड" के आरम्भ मे जो "वैष्णव" जनो के लक्षण और कर्त्तव्यो का वर्णन किया गया है वह भी ध्यान देने योग्य है। आज-कल के बाह्याचार प्रधान समय मे यद्यपि वैष्णव की पहिचान बडे-बडे रामानन्दी तिलक और तुलसी की मोटी माला ही रह गई है, पर यह उसका वास्तविक स्वरूप नही है। 'वैष्णव' अथवा 'विष्णुभक्त' का सबसे पहला लक्षण परोपकार और प्राणीमात्र की सेवा है। उसका मन्तव्य है कि जब विष्णु भगवान् ही समस्त जगत् मे व्याप्त हो रहे हैं और चींटी से हाथी तक मे उन्ही की आत्मशक्ति प्रकट हो रही है, तो किसी को पराया, विरोधी अथवा शत्रु कैसे समझा जा सकता है? सभी प्राणी अपने आत्म-स्वरूप हैं और उनके साथ 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्तानुसार व्यवहार करना ही सच्चा धर्म है। इसकी व्याख्या करते हुये पुराणकार ने 'वैष्णव' के मुख्य लक्षण इस प्रकार बतलाये हैं—

हिंसादम्भ काम क्रोधैर्वर्जितश्चैव ये नराः ।
लोभ मोह परित्यक्ता ज्ञेयास्ते वैष्णवा द्विज ॥
पितृभक्ता दयायुक्ताः सर्वप्राणिः हितेरताः ।
अमत्सरा वैष्णवा ये विज्ञेया सत्यभाषिणः ॥

"जो पुरुष हिंसा, दम्भ, काम और क्रोध से रहित होते है और लोभ तथा मोह को जो त्याग देते हैं, उनको ही वैष्णव समझना चाहिये । जो पिता आदि गुरुजनो के भक्त होते है दयावान् होते हैं, सब प्राणियो के प्रति हित-भावना रखते है, जिनके हृदय म किसी के प्रति ईर्षा-द्वेष के भाव नही होते और सदैव सत्य व्यवहार करते है उनको ही वैष्णव जानना चाहिये ।"

यह भी कहा गया है कि "जिस कुल मे ऐसा कोई एक भी वैष्णव हो जाता है तो उस कुल के सभी व्यक्ति पापो से छुटकारा पाकर सद्गति के अधिकारी हो जाते हैं । जो व्यक्ति ऐसे वैष्णव का चरणोदक अपने मस्तक पर धारण करता है तो फिर उसे किसी अन्य तीर्थ मे स्नान करने की आवश्यक्ता नही होती । ऐसे महात्मा वैष्णव का दो-चार क्षण का सत्सग भी मनुष्य को भवसागर से तार देता है ।"

आगे चलकर पुराणकार ने तुलसी और शालिग्राम की उपासना, एकादशी व्रत, भगवान् कृष्ण और राधा की भक्ति और उपासना आदि बाह्याचार को भी आवश्यक बतलाया है, क्योंकि इनके बिना सामान्य जनो को ऐसे महात्माओं को जानने तथा लाभ उठाने का अन्य कोई उपाय नही होता । पर इसी परिस्थिति मे अनधिकारी अथवा वचक लोगो को दिखावटी वेष बनाकर लोगो को भ्रम मे डालने का अवसर भी मिल जाता है । कुछ भी हो "वैष्णव" का आदर्श बहुत ऊँचा है और जो वास्तव मे उसके अनुसार आचरण का प्रयत्न करते है, वे निस्सन्देह पूजनीय हैं । वर्तमान काल के 'युग-पुरुष' महात्मा गाँधी भी 'वैष्णव-आदर्श' को ही अपना लक्ष्य मानते थे और उसका पालन करके वे भारतवर्ष के ही नही समस्त ससार के मार्ग-दर्शक बन गये । वे अपनी प्रार्थना मे नित्यप्रति एक भजन गाया करते थे जिसका कुछ अश यहाँ दिया जाता है—

वैष्णवजन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाने रे ।
पर दु:खे उपकार करे तोए मन अभिमान न आने रे ।।
सकल लोक मां सहुने वन्दे निन्दा न करे केनी रे ।
वाच-काय-मन निश्चल राखे धन धन जननी तेनी रे ।।
समदृष्टि ने ममता त्यागी पर-स्त्री जेने मात रे ।
जिह्वा थकी असत्य न बोले पर धन नहिं झाले हाथ रे ।।

अर्थात् "वैष्णव कहलाने का अधिकारी तो वही हो सकता है जो दूसरे के दु:ख को समझे, अनुभव करे, उसे दूर करने का प्रयत्न करे, पर मन में किसी प्रकार का अहङ्कार का भाव न लाये । संसार में प्रत्येक प्राणी को भगवत्-स्वरूप मानकर उसकी वन्दना करे, किसी की निन्दा का भाव मन में न लाये, अपनी वाणी, शरीर और मन को शुद्ध, पवित्र और स्थिर रखे । सब को समदृष्टि से देखे, ममता का त्याग कर दे, पराई स्त्री को माता के समान माने, जिह्वा से कभी असत्यभाषण न करे और न दूसरे के धन को हाथ लगाये । यही वैष्णव के लक्षण है और ऐसे व्यक्ति को जो माता उत्पन्न करती है वह भी धन्य है ।

मनुष्य किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय का अनुयायी क्यों न हो, परोपकार, सेवा, सत्यपरायणता आदि सद्गुणो के बिना उसे धार्मिक नही माना जा सकता । वैसे प्रत्येक धर्म ने इन गुणो को महत्व दिया है और किसी न किसी रूप मे अपने धर्म-नियमों मे इनको शामिल भी किया है, पर हम कह सकते हैं कि "वैष्णव-सिद्धान्त" मे इनको जितनी परिपूर्णता तक पहुँचा दिया गया है, उसकी तुलना शायद ही एकाध अन्य सम्प्रदाय या मजहब कर सके । पर इतना ऊँचा आदर्श स्वीकार करके चलने मे एक खतरा अवश्य रहता है कि मनुष्य के व्यवहार और आचार मे दम्भ का प्रवेश न हो जाय । कारण यह होता है कि पहले तो परम्परा या प्रशसा के भाव से मनुष्य इस आदर्श को अगीकार कर लेता है, पर बाद मे उसका यथार्थ रूप मे पालन करना कठिन जान पड़ता है । इस प्रकार अपनी मान-मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिये वह दिखावे के ढङ्ग पर इन नियमो का अनुसरण तो करते रहते हैं, पर उनकी

मानसिक स्थिति और अपरोक्ष कार्य इसके अनुकूल नहीं होते। यह दुरङ्गी स्थिति और भी शोचनीय होती है और मनुष्य न इधर का रहता है, न उधर का। इसलिये सचाई और बुद्धिमानी का मार्ग यही है कि मनुष्य अपने नियमित धर्म-विधान का पालन करते हुए उपरोक्त सद्गुणों के पालन करने का निरन्तर प्रयास करता रहे। वास्तव में इन गुणों को 'वैष्णव' या 'शैव' सम्प्रदाय के नियम समझ लेना गलत है, ये तो मानवता के लक्षण हैं। इसलिये जब कभी और जिस प्रकार से इनका ज्ञान हो जाय तभी से उनको अपनी शक्ति के अनुसार ग्रहण करता चला जाय।

ब्राह्मण गुणों से ही पूज्य होता है—

पुराणों में ब्राह्मणों की मान्यता पर बहुत जोर दिया गया है। उनको चारों वर्णों में सर्वश्रेष्ठ और समाज का अगुआ बतलाया गया है, और घोषित किया गया है कि अपराध करने पर भी ब्राह्मण को अन्य वर्ण वालों की अपेक्षा अल्प दण्ड दिया जाय। यह विधान पक्षपातपूर्ण तथा न्याय के विपरीत जान पड़ता है, पर जैसे वर्तमान समय में भी अनेक व्यक्तियों को किसी बड़ी सार्वजनिक सेवा अथवा आत्म-त्याग के लिए विशेष सम्मान और विशेष अधिकारों से पुरस्कृत किया जाता है उसी प्रकार उस युग में उन ब्राह्मणों को ये विशेषाधिकार दिये गये थे,जो अपनी बहुमूल्य विद्या बुद्धि को निस्स्वार्थ भाव से जनता-जनार्दन के हित के लिये अर्पण कर देते थे। कुछ लोगों का ख्याल है कि ब्राह्मणों ने ये लाभदायक अधिकार स्वयम् ही अपने लिए लिख डाले हैं। पर जब हम 'पद्म-पुराण' में वर्णित ब्राह्मणों के लक्षण और उनके कर्त्तव्यों का विवरण पढ़ते हैं तो हमको यही प्रतीत होता है कि 'ब्राह्मण' की पदवी को गुणों के आधार पर प्राप्त करना सहज न था। पहले तो उन शर्तों पर ध्यान देना चाहिये जिनका पालन करने से ब्राह्मण श्रेष्ठता का दर्जा पा सकता था—

"जन्म से अर्थात् ब्राह्मण के घर में उत्पन्न होने से तो कोई व्यक्ति 'ब्राह्मण' मात्र कहा जा सकता है। वह 'द्विज' तभी होता है जब उसके समुचित संस्कार किये जाते हैं। जब वह सम्पूर्ण विद्या प्राप्त कर लेता है तब वह 'विप्र' बनता है और श्रोत्रिय (वेदज्ञ) की पदवी का अधिकारी हो सकता है—

वैष्णवजन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाने रे।
पर दुखे उपकार करे तोए मन अभिमान न आने रे॥
सकल लोक मां सहुने वन्दे निन्दा न करे केनी रे।
वाच-काय-मन निश्चल राखे धन धन जननी तेनी रे॥
समदृष्टि ने ममता त्यागी पर-स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले पर धन नहि झाले हाथ रे॥

अर्थात् "वैष्णव कहलाने का अधिकारी तो वही हो सकता है जो दूसरे के दुख को समझे, अनुभव करे, उसे दूर करने का प्रयत्न करे, पर मन में किसी प्रकार का अहङ्कार का भाव न लाये। संसार में प्रत्येक प्राणी को भगवत्-स्वरूप मानकर उसकी वन्दना करे, किसी की निन्दा का भाव मन में न लाये, अपनी वाणी, शरीर और मन को शुद्ध, पवित्र और स्थिर रखे। सब को समदृष्टि से देखे, ममता का त्याग कर दे, पराई स्त्री को माता के समान माने, जिह्वा से कभी असत्यभाषण न करे और न दूसरे के धन को हाथ लगाये। यही वैष्णव के लक्षण हैं और ऐसे व्यक्ति को जो माता उत्पन्न करती है वह भी धन्य है।

मनुष्य किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय का अनुयायी क्यों न हो, परोपकार, सेवा, सत्यपरायणता आदि सद्गुणों के बिना उसे धार्मिक नहीं माना जा सकता। वैसे प्रत्येक धर्म ने इन गुणों को महत्त्व दिया है और किसी न किसी रूप में अपने धर्म नियमों में इनको शामिल भी किया है, पर हम कह सकते हैं कि "वैष्णव-सिद्धान्त" में इनको जितनी परिपूर्णता तक पहुँचा दिया गया है, उसकी तुलना शायद ही एकाध अन्य सम्प्रदाय या मजहब कर सके। पर इतना ऊँचा आदर्श स्वीकार करके चलने में एक खतरा अवश्य रहता है कि मनुष्य के व्यवहार और आचार में दम्भ का प्रवेश न हो जाय। कारण यह होता है कि पहले तो परम्परा या प्रशंसा के भाव से मनुष्य इस आदर्श को अंगीकार कर लेता है, पर बाद में उसका यथार्थ रूप में पालन करना कठिन जान पड़ता है। इस प्रकार अपनी मान-मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिये वह दिखावे के ढङ्ग पर इन नियमों का अनुसरण तो करते रहते हैं, पर उनकी

मानसिक स्थिति और अपरोक्ष कार्य इसके अनुकूल नहीं होते। यह दुरङ्गी स्थिति और भी शोचनीय होती है और मनुष्य न इधर का रहता है, न उधर का। इसलिये सचाई और बुद्धिमानी का मार्ग यही है कि मनुष्य अपने नियमित धर्म-विधान का पालन करते हुए उपरोक्त सद्गुणों के पालन करने का निरन्तर प्रयास करता रहे। वास्तव में इन गुणों को 'वैष्णव' या 'शैव' सम्प्रदाय के नियम समझ लेना गलत है, ये तो मानवता के लक्षण हैं। इसलिये जब कभी और जिस प्रकार से इनका ज्ञान हो जाय तभी से उनको अपनी शक्ति के अनुसार ग्रहण करता चला जाय।

ब्राह्मण गुणों से ही पूज्य होता है--

पुराणों में ब्राह्मणों की मान्यता पर बहुत जोर दिया गया है। उनको चारों वर्णों में सर्वश्रेष्ठ और समाज का अगुआ बतलाया गया है, और घोषित किया गया है कि अपराध करने पर भी ब्राह्मण को अन्य वर्ण वालों की अपेक्षा अल्प दण्ड दिया जाय। यह विधान पक्षपातपूर्ण तथा न्याय के विपरीत जान पड़ता है, पर जैसे वर्तमान समय में भी अनेक व्यक्तियों को किसी बड़ी सार्वजनिक सेवा अथवा आत्म-त्याग के लिए विशेष सम्मान और विशेष अधिकारों से पुरस्कृत किया जाता है उसी प्रकार उस युग में उन ब्राह्मणों को ये विशेषाधिकार दिये गये थे,जो अपनी बहुमूल्य विद्या बुद्धि को निस्स्वार्थ भाव से जनता-जनार्दन के हित के लिए अर्पण कर देते थे। कुछ लोगों का ख्याल है कि ब्राह्मणों ने ये लाभदायक अधिकार स्वयम् ही अपने लिए लिख डाले हैं। पर जब हम 'पद्म-पुराण' में वर्णित ब्राह्मणों के लक्षण और उनके कर्तव्यों का विवरण पढ़ते हैं तो हमको यही प्रतीत होता है कि 'ब्राह्मण' की पदवी को गुणों के आधार पर प्राप्त करना सहज न था। पहले तो उन शर्तों पर ध्यान देना चाहिये जिनका पालन करने में ब्राह्मण श्रेष्ठता का दर्जा पा सकता था—

"जन्म से अर्थात् ब्राह्मण के घर में उत्पन्न होने से तो कोई व्यक्ति 'ब्राह्मण' मात्र कहा जा सकता है। वह 'द्विज' तभी होता है जब उसके समुचित संस्कार किये जाते हैं। जब वह सम्पूर्ण विद्या प्राप्त कर लेता है तब वह 'विप्र' बनता है और श्रोत्रिय (वेदज्ञ) की पदवी का अधिकारी हो सकता है—

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ।
विद्ययायाति विप्रत्व त्रिभिः श्रोत्रिय लक्षणम् ॥
विद्यापूतो मन्त्रपूतो वेदपूतस्तथैव च ।
तीर्थस्नानादिभिर्मेध्यो विप्रः पूज्यतमः स्मृतः ॥

'वेद-विद्या, मन्त्र-जप और तीर्थों के स्नान से पवित्र और आत्म-ज्ञान सम्पन्न होने पर ही विप्र वास्तविक पूजनीय माना जा सकता है। ऐसा ब्राह्मण सदैव नारायण के चरणों में भक्ति रखने वाला, शुद्ध अन्त करण वाला, इन्द्रियों को जीतकर उन्हें वश में रखने वाला, क्रोध को जीत लेने वाला और सब मनुष्यों को समान दृष्टि से देखने वाला होना चाहिए। माता-पिता की सेवा का सदा ध्यान रखने वाला, समस्त गुरुजनों और अतिथियों का उचित सम्मान करने वाला, पराई स्त्री की ओर कभी न ताकने वाला ब्राह्मण ही पूजनीय माना जा सकता है।"

पुराणकार ने बहुत स्पष्ट रूप से धर्म का यह सिद्धान्त बतलाया है कि पूजा गुणों की ही होनी चाहिए। केवल किसी ब्राह्मण-दम्पति के घर में जन्म ले लेने से कोई व्यक्ति सार्वजनिक सम्मान और विशेष अधिकारों का पात्र नहीं माना जा सकता। ब्राह्मण का मुख्य लक्षण विद्या और ज्ञान सम्पन्न होने के साथ ही 'सर्वजन हिताय' की भावना रखना भी है। जो अपनी विद्या को केवल पेट भरने का साधन बना लेता है, वह भी अन्य लोगों का श्रद्धाभाजन और विशेष आदर-सम्मान का अधिकारी नहीं माना जा सकता। पूजनीय वही है जो अपनी शक्तियों को स्वार्थ के बजाय परमार्थ में लगाता है। स्वयम् कष्ट सहकर दूसरों को विपत्ति से छुड़ाता है। जिसे समाज के उत्थान का ध्यान रहता है और इसके लिए अपने भौतिक सुखों को तिलाञ्जलि देकर ऐसा आदर्श और उदाहरण उपस्थित करता है जिससे अन्य लोगों को भी समाज की निस्स्वार्थ सेवा करने की प्रेरणा मिले और लोग आपाधापी की हीन मनोवृत्ति को त्यागकर परोपकार का उच्च जीवन करने की स्पृहा करने लगें। 'पद्म-पुराण' ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि इस प्रकार की महान् पदवी प्राप्त कर सकना केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित नहीं है, वरन् जो कोई इन सद्गुणों को धारण करके

अपना जीवन परमार्थ के हेतु समर्पित कर देता है वही सच्चा पूजनीय 'विप्र' माना जा सकता है। इसके लिये उच्च कुल, प्रसिद्ध वंश अथवा सांसारिक वैभव आदि की कोई आवश्यकता नहीं है। नारदजी के यह प्रश्न करने पर कि क्या असत् (हीन) कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति भी पूज्य श्रोत्रिय बन सकता है? श्री ब्रह्माजी ने उत्तर दिया—

सच्छ्रोत्रिय कुलजातो ह्यक्रियो नैव पूजितः।
असत् क्षेत्रकुले पूज्यो व्यास वैभाण्डको यथा॥
क्षत्रियाणां कुले जातो विश्वामित्रोऽस्ति मत्समः।
वेश्यापुत्रो वसिष्ठश्च अन्ये सिद्धा द्विजादयः॥

"कोई व्यक्ति चाहे उत्तम श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुआ हो पर यदि वह ब्रह्म-कर्त्तव्यों को पालन नहीं करता तो कदापि पूज्य नहीं माना जा सकता। पर श्रेष्ठ कर्त्तव्यों को व्यवहार रूप में पूरा करके असत् कुल और असत् क्षेत्र (नीच जाति की स्त्री से उत्पन्न) व्यक्ति भी परम पूज्य बन जाता है। जिस प्रकार समस्त ऋषि-मुनियों के सम्मानास्पद व्यासजी मल्लाह की पुत्री सत्यवती से उत्पन्न हुये थे। ऐसी ही स्थिति वैभाण्डक ऋषि की थी। विश्वामित्र का जन्म क्षत्रिय माता-पिता से हुआ था। पर वे सार्वजनिक हित के लिए जीवन समर्पण कर देने से 'ब्रह्मर्षि' और भगवान के सदृश्य सम्माननीय बन गये। वशिष्ठजी, जिनके चरणों में श्रीरामचन्द्रजी जैसे ईश्वरावतार भी निरन्तर गिरते रहते थे, वेश्या के पुत्र थे। इसी तरह और भी अनेक सिद्ध ऋषि-मुनियों के विषय में कहा जा सकता है।"

जिन लोगों को पुराणों में केवल ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देने की बात ही दिखलाई देती है उनको इन श्लोकों पर भी ध्यान देना चाहिए। हम जानते हैं कि कितने ही पुराण-लेखकों ने ब्राह्मणों में अन्ध-श्रद्धा और भक्ति रखने को ही बड़ा महत्त्व दे डाला है, पर उनकी ही बात को सत्य मान लेना यहाँ की बुद्धिमानी है। 'पद्म-पुराण' तथा और भी समस्त पुराणों में स्थान-स्थान पर आदर्श ब्राह्मण के ये ही लक्षण बतलाये गये हैं। तो भी जो लोग उनकी उपेक्षा करके केवल ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा और विशेष अधिकारों

वाले वाक्यों का ही उल्लेख किया करते हैं, उनको हम 'कुतर्की' या 'पक्षपाती' के सिवाय और कुछ नहीं कह सकते हैं। निष्पक्ष व्यक्ति किसी की त्रुटियों के साथ उसके गुणों को भी स्वीकार करता है। जैसा हम आरम्भ में लिख चुके हैं पुराणों की कितनी ही श्रेणियाँ हैं। उनमें घटिया-बढ़िया—कई प्रकार की रचनायें पाई जाती है और सिद्धान्त विवेचन की दृष्टि से भी काफी अन्तर देखने में आता है। अगर हीनता की बातों की उपेक्षा करके उच्च आदर्श की बातों को ही पाठकों के सामने रखें तो उससे उनका अवश्य न्यूनाधिक लाभ हो सकता है। सज्जनों को 'कुतर्क' के बजाय यही जनहितकारी नीति अपनानी चाहिए।

भगवन्नाम कीर्तन का सच्चा स्वरूप—

वर्तमान समय में देश के कितने ही भागों में 'कीर्तन' का विशेष प्रचार हो गया है और उसके पक्ष विपक्ष में अनेक प्रकार की बातें सुनने में आया करती हैं। कुछ लोग उसे मोक्ष का सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाते हैं और दूसरे लोग कहते हैं कि केवल जिह्वा से नामोच्चारण करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। कुछ लोग ऐसे 'कीर्तन प्रेमियों' के उदाहरण देते हैं जो इस क्षेत्र में बड़े प्रसिद्ध हो चुके हैं, पर जिनका चरित्र और आचरण निन्दनीय हैं। कुछ लोग यह आक्षेप भी करते हैं कि 'कीर्तन' की आड़ में स्त्री-पुरुष अपनी असद्वृत्तियों की पूर्ति किया करते हैं।

वर्तमान दशा का भली प्रकार निरीक्षण करने पर हम कुछ अंशों में इन आक्षेपों की सचाई स्वीकार करते हैं पर साथ ही हमारा यह भी मत है कि इनके कारण 'कीर्तन' को न तो निन्दनीय सिद्ध किया जा सकता है और न उसे त्यागने की सम्मति दी जा सकती है। कीर्तन का आशय यही नहीं है कि बहुत बड़ा जन-समूह एकत्रित होकर ढोल, बाजा गाजा के साथ स्त्री पुरुष सम्मिलित होकर नामोच्चारण करें। इस प्रकार के सामूहिक-कीर्तन की प्रणाली श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रचलित की थी और उनके द्वारा मुसलमानी शासनकाल में निस्संदेह हिन्दू-धर्म की रक्षा में बड़ा सहायता प्राप्त हुई थी। पहले यह विशेष रूप से बङ्गाल में ही प्रचलित था इधर तीस चालीस वर्ष से उत्तर प्रदेश और अन्य हिन्दी-प्रान्तों में भी यह लोकप्रिय हो गया है।

'पद्म-पुराण' के अनुसार कीर्तन, समाज या व्यक्ति में उत्पन्न हो जाने वाला धर्म विरोधी या बाधा डालने वाली प्रवृत्तियों के निराकरण के लिये विशेष उपयोगी और सहायक है। यह एक ऐसी सीधी-साधी और साथ ही प्रभावशाली उपासना-पद्धति है जो कहीं भी और सभी अवस्थाओं में प्रयुक्त की जा सकती है। पर इसमें मन और भावों की शुद्धता का ध्यान रखना अनिवार्य है। केवल अच्छे सुर में और भक्ति-भाव का अभिनय करते हुए कीर्तन व्यर्थ होता है। अन्यथा यदि शुद्ध हृदय से तन्मयतापूर्वक किया जाय तो इससे बहुत शीघ्र परमात्मा की भक्ति का विकास होता है। 'पद्म-पुराण' में और भी कई ऐसे दोष बतलाये हैं, जिनका कीर्तन में त्याग देना अत्यावश्यक है। इस सम्बन्ध सनत्कुमार के मुख से कहलाया गया है—

"प्रथम तो नामोच्चारण करने वाले पुरुष का यही अपराध हो सकता है कि वह किसी सत्पुरुष की निन्दा करने लग जाय। दूसरा अपराध यह होता है कि अनेक व्यक्ति भक्ति करते हुये भी राम, कृष्ण, शिव आदि के नामों में भेद बुद्धि रखते हैं—

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुण नामादि सकल ।
धिया भिन्न पश्येत्स खलु हरिनामाहितकरः ॥

तीसरा अपराध अपने गुरु की किसी भी प्रकार अवज्ञा कर देना होता है। चौथा अपराध श्रुति एवम् शास्त्रों की निन्दा करना है। पाँचवाँ यह कि हरिनाम का जो माहात्म्य बतलाया जाय उसे अर्थवाद (बनावटी या प्रशंसात्मक) समझा जाय। जो व्यक्ति सदैव 'मैं और मेरा' यही ध्यान करता रहता है वह भी नाम-अपराधी होता है। जो व्यक्ति इन अपराधों को जान-बूझकर पाप बुद्धि से करता है उसका उद्धार कभी नहीं होता। इस जीवन में वह उसी प्रकार दुःखी रहता है जैसे माता से रुष्ट होकर भोजन न करने वाला बालक। इस प्रकार दस प्रकार के नामापराध होते हैं, इनको त्यागकर नाम का जप करने से मनुष्य का पूर्ण कल्याण होता है।

इनसे विदित होता है कि 'नाम कीर्तन' तभी कल्याणकारी होता है जब उसे हार्दिक श्रद्धा से किया जाता है और अपना आचरण भी पवित्र और परमार्थ

वाले वाक्यों का ही उल्लेख किया करते हैं, उनको हम 'कुतर्की' या 'पक्षपाती' के सिवाय और कुछ नहीं कह सकते हैं। निष्पक्ष व्यक्ति किसी की त्रुटियों के साथ उसके गुणों को भी स्वीकार करता है। जैसा हम आरम्भ में लिख चुके हैं पुराणों की कितनी ही श्रेणियाँ हैं। उनमें घटिया-बढ़िया—कई प्रकार की रचनायें पाई जाती है और सिद्धान्त विवेचन की दृष्टि से भी काफी अन्तर देखने में आता है। अगर हीनता की बातों की उपेक्षा करके उच्च आदर्श की बातों को ही पाठकों के सामने रखें तो उससे उनका अवश्य न्यूनाधिक लाभ हो सकता है। सज्जनों को 'कुतर्क' के बजाय यही जनहितकारी नीति अपनानी चाहिए।

भगवन्नाम कीर्तन का सच्चा स्वरूप—

वर्तमान समय में देश के कितने ही भागों में 'कीर्तन' का विशेष प्रचार हो गया है और उसके पक्ष-विपक्ष में अनेक प्रकार की बातें सुनने में आया करती हैं। कुछ लोग उसे मोक्ष का सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाते हैं और दूसरे लोग कहते हैं कि केवल जिह्वा से नामोच्चारण करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। कुछ लोग ऐसे 'कीर्तन प्रेमियों' के उदाहरण देते हैं जो इस क्षेत्र में बड़े प्रसिद्ध हो चुके हैं, पर जिनका चरित्र और आचरण निन्दनीय हैं। कुछ लोग यह आक्षेप भी करते हैं कि 'कीर्तन' की आड़ में स्त्री-पुरुष अपनी असद्वृत्तियों की पूर्ति किया करते हैं।

वर्तमान दशा का भली प्रकार निरीक्षण करने पर हम कुछ अंशों में इन आक्षेपों की सचाई स्वीकार करते हैं पर साथ ही हमारा यह भी मत है कि इनके कारण 'कीर्तन' को न तो निन्दनीय सिद्ध किया जा सकता है और न उसे त्यागने की सम्मति दी जा सकती है। कीर्तन का आशय यही नहीं है कि बहुत बड़ा जन-समूह एकत्रित होकर ढोल, बाजा गाजा के साथ स्त्री पुरुष सम्मिलित होकर नामोच्चारण करें। इस प्रकार के सामूहिक-कीर्तन की प्रणाली श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रचलित की थी और उसके द्वारा मुसलमानी शासनकाल में निस्सन्देह हिन्दू-धर्म की रक्षा में बड़ी सहायता प्राप्त हुई थी। पहले यह विशेष रूप से बङ्गाल में ही प्रचलित था, इधर तीस-चालीस वर्ष से उत्तर प्रदेश और अन्य हिन्दी-प्रान्तों में भी यह लोकप्रिय हो गया है।

'पद्म-पुराण' के अनुसार कीर्तन, समाज या व्यक्ति में उत्पन्न हो जाने वाला धर्म विरोधी या बाधा डालने वाली प्रवृत्तियों के निराकरण के लिये विशेष उपयोगी और सहायक है। यह एक ऐसी सीधी-साधी और साथ ही प्रभावशाली उपासना—पद्धति है जो कहीं भी और सभी अवस्थाओं में प्रयुक्त की जा सकती है। पर इसमें मन और भावों की शुद्धता का ध्यान रखना अनिवार्य है। केवल अच्छे सुर में और भक्ति-भाव का अभिनय करते हुए कीर्तन व्यर्थ होता है। अन्यथा यदि शुद्ध हृदय से तन्मयतापूर्वक किया जाय तो इसमें बहुत शीघ्र परमात्मा की भक्ति का विकास होता है। 'पद्म-पुराण' में और भी कई ऐसे दोष बतलाये हैं, जिनका कीर्तन में त्याग देना अत्यावश्यक है। इस सम्बन्ध सनत्कुमार के मुख से कहलाया गया है—

"प्रथम तो नामोच्चारण करने वाले पुरुष का यही अपराध हो सकता है कि वह किसी सत्पुरुष की निन्दा करने लग जाय। दूसरा अपराध यह होता है कि अनेक व्यक्ति भक्ति करते हुये भी राम, कृष्ण, शिव आदि के नामों में भेद बुद्धि रखते हैं—

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुण नामादि सकलं।
धिया भिन्न पश्येत्स खलु हरिनामाहितकरः ॥

वाले वाक्यों का ही उल्लेख किया करते हैं, उनको हम 'कुतर्की' या 'पक्षपाती' के सिवाय और कुछ नहीं कह सकते हैं। निष्पक्ष व्यक्ति किसी की त्रुटियों के साथ उसके गुणों को भी स्वीकार करता है। जैसा हम आरम्भ में लिख चुके हैं पुराणों की कितनी ही श्रेणियाँ हैं। उनमें घटिया-बढ़िया—कई प्रकार की रचनायें पाई जाती है और सिद्धान्त विवेचन की दृष्टि से भी काफी अन्तर देखने में आता है। अगर हीनता की बातों की उपेक्षा करके उच्च आदर्श की बातों को ही पाठकों के सामने रखें तो उनसे उनका अवश्य न्यूनाधिक लाभ हो सकता है। सज्जनों को 'कुतर्क' के बजाय यही जनहितकारी नीति अपनानी चाहिए।

भगवन्नाम कीर्तन का सुच्चा स्वरूप—

वर्तमान समय में देश के कितने ही भागों में 'कीर्तन' का विशेष प्रचार हो गया है और उसके पक्ष-विपक्ष में अनेक प्रकार की बातें सुनने में आया करती हैं। कुछ लोग उसे मोक्ष का सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाते हैं और दूसरे लोग कहते हैं कि केवल जिह्वा से नामोच्चारण करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। कुछ लोग ऐसे 'कीर्तन प्रेमियों' के उदाहरण देते हैं जो इस क्षेत्र में बड़े प्रसिद्ध हो चुके हैं, पर जिनका चरित्र और आचरण निन्दनीय है। कुछ लोग यह आक्षेप भी करते हैं कि 'कीर्तन' की आड़ में स्त्री-पुरुष अपनी असद्‌वृत्तियों की पूर्ति किया करते हैं।

वर्तमान दशा का भली प्रकार निरीक्षण करने पर हम कुछ अंशों में इन आक्षेपों की सचाई स्वीकार करते हैं, पर साथ ही हमारा यह भी मत है कि इनके कारण 'कीर्तन' को न तो निन्दनीय सिद्ध किया जा सकता है और न उसे त्यागने की सम्मति दी जा सकती है। कीर्तन का आशय यही नहीं है कि बहुत बड़ा जन-समूह एकत्रित होकर ढोल, बाजा गाजा के साथ स्त्री-पुरुष सम्मिलित होकर नामोच्चारण करें। इस प्रकार के सामूहिक—कीर्तन की प्रणाली श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रचलित की थी और उसके द्वारा मुसलमानी शासनकाल में निस्सदेह हिन्दू-धर्म की रक्षा में बड़ी सहायता प्राप्त हुई थी। पहले यह विशेष रूप से बङ्गाल में ही प्रचलित था, इधर तीस-चालीस वर्ष में उत्तर प्रदेश और अन्य हिन्दी-प्रान्तों में भी यह लोकप्रिय हो गया है।

'पद्म-पुराण' के अनुसार कीर्तन, समाज या व्यक्ति में उत्पन्न हो जाने वाला धर्म विरोधी या बाधा डालने वाली प्रवृत्तियो के निराकरण के लिये विशेष उपयोगी और सहायक है। यह एक ऐसी सीधी-साधी और साथ ही प्रभावशाली उपासना-पद्धति है जो कही भी और सभी अवस्थाओ मे प्रयुक्त की जा सकती है। पर इसमे मन और भावों की शुद्धता का ध्यान रखना अनिवार्य है। केवल अच्छे सुर मे और भक्ति-भाव का अभिनय करते हुए कीर्तन व्यर्थ होता है। अन्यथा यदि शुद्ध हृदय से तन्मयतापूर्वक किया जाय तो इससे बहुत शीघ्र परमात्मा की भक्ति का विकास होता है। 'पद्म-पुराण' में और भी कई ऐसे दोष बतलाये है, जिनका कीर्तन मे त्याग देना अत्यावश्यक है। इस सम्बन्ध सनत्कुमार के मुख से कहलाया गया है—

"प्रथम तो नामोच्चारण करने वाले पुरुष का यही अपराध हो सकता है कि वह किसी सत्पुरुष की निन्दा करने लग जाय। दूसरा अपराध यह होता है कि अनेक व्यक्ति भक्ति करते हुये भी राम, कृष्ण, शिव आदि के नामो मे भेद बुद्धि रखते है—

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुण नामादि सकल।
धिया भिन्न पश्येत्स खलु हरिनामाहितकरः॥

तीसरा अपराध अपने गुरु की किसी भी प्रकार अवज्ञा कर देना होता है। चौथा अपराध श्रुति एवम् शास्त्रो की निन्दा करना है। पाँचवाँ यह कि हरिनाम का जो माहात्म्य बतला या जाय उसे अर्थवाद (बनावटी या प्रशंसात्मक) समझा जाय। जो व्यक्ति सदैव 'मैं और मेरा' यही ध्यान करता रहता है वह भी नाम-अपराधी होता है। जो व्यक्ति इन अपराधो को जान-बूझकर पाप बुद्धि से करता है उसका उद्धार कभी नही होता। इस जीवन मे वह उसी प्रकार दुखी रहता है जैसे माता से रुष्ट होकर भोजन न करने वाला बालक। इस प्रकार दस प्रकार के नामापराध होते हैं, इनको त्यागकर नाम का जप करने से मनुष्य का पूर्ण कल्याण होता है।

इनसे विदित होता है कि 'नाम कीर्तन' तभी कल्याणकारी होता है जब उसे हार्दिक श्रद्धा से किया जाता है और अपना आचरण भी पवित्र और परमार्थ

की भावना से समन्वित रखा जाय। वर्तमान समय में लोगों में जो झूँठी साम्प्रदायिकता बढ़ गई है उसके कारण अनेक व्यक्ति केवल किसी एक नाम को लेने का ही आग्रह करते हैं और दूसरे नामों को अवहेलना अथवा अवज्ञा की दृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार की भेद बुद्धि कभी सच्ची धार्मिकता का लक्षण नहीं हो सकती। जो धर्म और अध्यात्म का थोड़ा भी मर्म समझता है वह केवल 'राम' और 'शिव' के नामों को ही समान श्रद्धास्पद नहीं मानता वरन् बौद्ध, पारसी, ईसाई, मुसलमान आदि किसी भी मजहब में प्रयुक्त होने वाले भगवान् के नाम को आदर के भाव से ही उच्चारण करेगा। भाषा का भेद होने से भगवान् नहीं बदल जाता। इसलिये सच्चा धार्मिक वही है जो धर्म-समन्वय और सहिष्णुता का भाव रखे। 'धर्म' को द्वेष और कलह का कारण बना लेना उसे बदनाम और कलङ्कित करना है।

सामान्य धर्म क्रियाओं का महान फल—

पुराणों की एक परिपाटी यह भी है कि उनमें जहाँ जिस चीज की उपासना या पूजा का प्रतिपादन किया है वहाँ उसे एक दम आकाश पर चढ़ा दिया जाता है। चाहे वह एक सामान्य फूल या पत्ती का भगवान् पर चढ़ाना हो, या किसी मूर्ति का दर्शन करना हो, या किसी तीर्थ में एक दिन का उपवास आदि करना हो, तो भी पुराणकार उसकी तारीफों के पुल बाँध देते हैं। 'पद्मपुराण' में ही जहाँ धात्री (आमला) और तुलसी की पूजा का जिक्र आया है, अथवा गङ्गा स्नान का माहात्म्य बतलाया गया है या एकादशी व्रत का महत्व दिखलाया है, वहाँ इनमें से प्रत्येक को अपार पुण्य प्रदायक, घोर से घोर पापों का उपशमन करने वाला कहा गया है। प्रत्येक के लिये यही प्रदर्शित किया गया है कि उसका अनुष्ठान करने से मनुष्य बिना किसी शङ्का के स्वर्ग और मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

धात्री (आमला) का फल वास्तव में स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा उपयोगी है। पर अनेक व्यक्ति उसके स्वाद में कसैलापन अधिक होने से उसका व्यवहार कम करते हैं। इसके लिये आयुर्वेद के ज्ञाताओं ने उससे 'च्यवनप्राश अवलेह' बनाया जो स्वादिष्ट और रोग निवारक दोनों गुण रखता है। पुराणकार ने

सर्वसाधारण का ध्यान इस तरफ आकर्षित करने के लिये उसका धार्मिक महत्त्व भी खूब बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन कर दिया है—

> धात्रीफलं परं पूत सर्वलोकेषु विश्रुतम् ।
> यस्यरोपान्नरो नारो मुच्यते जन्मबन्धनात् ॥
> धात्रीफलं च यत्रास्ते तत्र तिष्ठति केशवः ।
> तत्र ब्रह्म स्थिरा पद्मा तस्मात्तां तु गृहेन्यसेत् ॥

"धात्रीफल की पवित्रता तथा श्रेष्ठता सर्वविदित है। जो पुरुष या स्त्री उसका पौधा लगाते हैं वे जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पा जाते हैं। जहाँ धात्रीफल रहता है वहाँ भगवान् केशव, ब्रह्माजी और लक्ष्मी जी सदैव विद्यमान रहते हैं।"

उदाहरणार्थ तुलसी को तो सभी वैष्णव पुराणों में विष्णु भगवान् की अत्यन्त प्रिय बतलाया गया है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में उसे भगवान् कृष्ण के गोलोक की एक शापग्रस्त गोपी का प्रतीक बतलाया गया है। इसी प्रकार आमले को इन्द्र के अमृत-पात्र से गिरी हुई बूँदों द्वारा उत्पन्न कहा गया है। गङ्गाजी की उत्पत्ति वामन-भगवान् के चरणोदक के रूप में कही गई है। एकादशी-व्रत को तो निश्चित रूप से यमराज के पाश से छुटकारा पाने का सर्वश्रेष्ठ साधन घोषित कर दिया गया है—

> एकादश्यास्तु माहात्म्यं किमह वच्मि साम्प्रतम् ।
> श्रुत्वा चैकादशी नाम यमदूताश्च शङ्किता ॥

इस प्रकार के वर्णनों को कई पाठक अतिशयोक्तिपूर्ण समझकर अश्रद्धा की दृष्टि से देखने लग जाते हैं। हम भी इसके लिये उनको अधिक दोषी नहीं कह सकते, क्योंकि पौराणिक लेखकों और पौराणिक श्रोताओं की मनोवृत्ति से वे अनजान होते हैं। विशेषतः जहाँ साम्प्रदायिकता की भावना बलवती हो जाती है, वहाँ स्वमत का प्रतिपादन करने में वे कितनी भी बड़ी अतिशयोक्ति करने में संकोच नहीं करते। तुलसी की कथा का तथा उससे मिलने वाले पुण्य का अनेक पुराणों में इतना अधिक विस्तार किया गया है कि उसे एक स्थान पर एकत्र कर दिया जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ बन सकता है। इसी प्रकार गङ्गा

की महिमा का भी वारापार नहीं है, जिसके एक बार में स्नान अथवा निकट जाकर दर्शन कर लेने मात्र से समस्त पाप नष्ट होकर स्वर्ग और मुक्ति की प्राप्ति निश्चित कह दी गई है—

गंगेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम् ।
कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद् गुरुकल्मषम् ॥

इस तरह की अति-प्रशंसा आज हमको अरुचिकर प्रतीत होती है, पर प्राचीन समय में जब शिक्षा का व्यापक प्रचार नहीं हुआ था और लोक तर्क तथा प्रत्यक्ष प्रमाणों के बजाय हार्दिक श्रद्धा द्वारा ही अधिकांश में प्रेरित होते थे, उस समय ऐसे वर्णन सर्वसाधारण में 'पुण्य कर्मों' की अभिरुचि उत्पन्न करने वाले माने जाते थे और इस दृष्टि से विद्वान् लोग भी उनको बुरा नहीं कहते थे। अब समय बदल गया है। समझदार पाठक इस प्रकार की वनस्पतियों और उपवास, स्नान आदि धर्म क्रियाओं को उनसे होने वाले वास्तविक लाभ की दृष्टि से ही देखा करते हैं। इसलिये वे प्राचीन श्रद्धावादी श्रोताओं की परिस्थिति का अनुमान नहीं कर सकते और ऐसे वर्णनों का विरोध करने लग जाते हैं।

तो भी इतना मानना पड़ेगा पुराण लेखकों ने जिन तुलसी, गंगा आदि जैसी वस्तुओं की जो अति-प्रशंसा करदी है और उनसे प्राप्त होने वाले 'पुण्य' की महिमा अपरम्पार बतलाई है, वे वास्तव में बहुत लाभकारी हैं। उनकी कथाओं को आप माने चाहे न माने पर वैज्ञानिक प्रणाली से खोज करने पर भी उनकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है और उनका प्रयोग स्वास्थ्यरक्षा और अनेक व्याधियों से छुटकारा पाने के लिये प्रभावशाली माना गया है। प्राचीन ग्रन्थों ने जहाँ तुलसी के 'विष्णु-प्रिया' होने की मनोरंजक कथायें लिखी है वहाँ कहीं-कहीं उनके गुणों पर भी प्रभाव डाला गया है—

त्रिकाल विनतापुत्र प्राशय तुलसी यदि ।
विशिष्यते कायशुद्धिश्चान्द्रायण शतं विना ॥
तुलसी गन्धमादाय यत्र गच्छति मारुत. ।
दिशो दशश्च पूतास्युर्भूत ग्रामश्चतुर्विधः ॥

अर्थात् 'हे गरुड़ जी ! जो व्यक्ति नियमपूर्वक प्रतिदिन तीनों समय पत्र का सेवन करता रहता है उसका शरीर ऐसा शुद्ध हो जाता है जैसा चान्द्रायण व्रतों द्वारा सम्भव होता है। इसी प्रकार तुलसी की गन्ध को वायु जहाँ बहता है, वह ग्राम और वहाँ की दिशायें पवित्र और दोष-रहित हो जाती हैं।"

तुलसी के जो गुण धर्म शास्त्र में बतलाये गये हैं वे यथार्थ हैं और अब समय पड़ने पर उनकी सचाई प्रकट हो सकती है। एक सामयिक पत्र तुलसी की स्वास्थ्य सम्बन्धी उपयोगिता का वर्णन करते हुये यह घटना दी थी—

"बम्बई में जब 'विक्टोरिया गार्डन' और 'अलबर्ट म्यूजियम' (अजायबघर) का निर्माण हो रहा था तो वहाँ काम करने वाले मजदूर मच्छरों से ऐसे पीड़ित हो गये कि सबके सब मलेरिया बुखार के शिकार हो गये और निर्माण कार्य में बड़ी बाधा उपस्थित हो गई। तब एक चतुर हिन्दू ठेकेदार ने यह सुझाव दिया कि बाग की सीमा के किनारे किनारे चारों तरफ तुलसी के पौधे लगा दिये जायें। ऐसा करने से उस क्षेत्र में से मलेरिया का प्रकोप बहुत शीघ्र गायब हो गया और मजदूर तथा अन्य कार्यकर्ता स्वस्थ रहकर अपना कार्य ठीक तरह करते रहे।"

इसी प्रकार आमला के विषय में वैद्यक ग्रन्थों में "धात्री फल सदा पथ्यम्" (आमला हर तरह से स्वास्थ्यप्रद है) लिख दिया गया है। आधुनिक विज्ञान ने आमला को 'विटामिन सी' का भण्डार बतलाया है, जिससे अनेक बीमारियाँ दूर होती रहती हैं। गङ्गा-जल की कीटाणु नाशक शक्ति प्रसिद्ध है और वही एकमात्र ऐसा जल है, जो महीनों तक रखा रहने पर भी दूषित नहीं होता। इसी दृष्टि से अकबर बादशाह और उसके उत्तराधिकारी गङ्गा में किसी प्रकार की धार्मिक श्रद्धा न रखते हुये भी सदा हरिद्वार से लाया हुआ गङ्गा-जल पिया करते थे। एकादशी को यदि वास्तव में ठीक से उपवास किया जाय तो वह स्वास्थ्य रक्षा में बहुत अधिक सहायक होता है, इसमें सन्देह करने का कोई कारण ही नहीं है।

× × ×

इस प्रकार विविध प्रकार के उपाख्यानो द्वारा पाठको मे शारी-सिक, आत्मिक उन्नति के उपायो का प्रचार और प्रसार करना 'पद्म-पुराण' की एक विशेषता है। यदि कथा सुनते-सुनते पाठक, चाहे श्रद्धा की भावना से और चाहे प्रत्यक्ष लाभ के विचार से, यदि कुछ उपयोगी शिक्षा ग्रहण करता तो इस 'प्रणाली' को अनुचित नही कहा जा सकता। वैसे तो यह 'महा-पुराण' सैकडो ही नही हजारो 'धर्म कथाओ' का सग्रह है जिनमे सभी रुचि और प्रकृतियो के पाठको का मन लग सकता है और वे अपनी परिस्थिति के अनुसार न्यूनाधिक लाभ भी उठा सकते हैं। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायिओ के लिए तो यह विशेष रूप से सग्रह किया ही गया है और वे इसमे अवश्य ही बहुत-सी काम की बाते पा सकेगे। हमे प्रसन्नता है कि हम इतने बडे पुराण का, जिसके वृहदाकार और विस्तार देखकर सामान्य पाठक उसको हाथ लगाने का साहस भी कठिनता से करते है, सारतत्त्व ऐसे सर्वोपयोगी रूप मे उपस्थित कर सकने में सफल हो सके। यदि पाठको ने इसका पारायण करके धर्म के वास्तविक स्वरूप के विषय मे कुछ प्रेरणा ग्रहण की तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

—श्रीराम शर्मा आचार्य



पद्म-पुराण (प्रथम खण्ड) की

विषय-सूची

।। भूमि खण्ड ।।



पद्म—पुराण



"सृष्टिखण्ड"

॥ मङ्गलाचरण ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥
ॐ स्वच्छं चन्द्रावदातं करिकरमकरक्षोभसञ्जातफेनं,
ब्रह्मोद्भूतिप्रसक्तैर्व्रतनियमपरैः सेवितं विप्रमुख्यैः ।
ओंकारालङ्कृतेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणा दृष्टिपूतं,
सम्भागाभोगरम्यं जलमशुभहरं पौष्करं वः पुनातु ॥१
सूतमेकान्तमासीनं व्यासशिष्यो महामतिः ।
लोमहर्षणनामा वा उग्रश्रवसमाह तत् ॥२
ऋषीणामाश्रमास्तात गत्वा धर्मान् समासतः ।
पृच्छता विस्तराद् ब्रूहि यन्मत्तः श्रुतवानसि ॥३
वेदव्यासान्मया पुत्र पुराणान्यखिलानि च ।
तथाख्यातानि प्राप्तानि मुनिभ्योवदविस्तरात् ॥४
प्रयागे मुनिवर्य्यैश्च यथा पृष्टः स्वयं प्रभुः ।
पृष्टेन चानुशिष्टास्ते मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः ॥५
द्विजाः पुण्यमभीप्सन्तो विभुना च हितैषिणा ।
सुनाभं दिव्यरूपञ्च सत्यगं शुभविक्रमम् ॥६
अनौपम्यमिदं चक्रं वर्त्तमानमतन्द्रिताः ।
पृष्ठतो यात नियमात् पदं प्राप्स्यथ यद्धितम् ॥७

गच्छतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्यते ।
पुण्यः स देशो मन्तव्य इत्युवाच स्वयम्प्रभुः ॥८

परम पुराण पुरुष भगवान् नारायण तथा नरो मे सर्वश्रेष्ठ नर विद्या, बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी भगवती सरस्वती को नमस्कार करके, जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए। परम निर्मल चन्द्रमा के समान, वर्णों से युक्त, हाथियों की सूंड और मकरों के निरन्तर सञ्चालन से फेनों वाला, ब्रह्म की उत्पत्ति में संलग्न चित्त वाले, व्रत और नियमों के पालन करने में तत्पर, प्रमुख विप्रवृन्दों के द्वारा भली-भाँति सेवन किया ओङ्कार से सविभूषित, तीनों भुवनों के गुरु अर्थात् जनक तथा ब्रह्माजी की दृष्टि के पात से परम पुनीत, सम्भोग एवं आभोग के करने सुरम्य और अमङ्गल के हरण करने वाला पौष्कर अर्थात् पद्म सम्बन्धी आपको पवित्र करे ॥१॥ नितान्त एकान्त मे बैठे हुए सूतजी से महान् मति व्यास जी के शिष्य अथवा लोम हर्षण नाम वाले उग्रश्रवा यह बोले ॥२॥ हे तात ! ऋषिगण के आश्रमों मे जाकर संक्षेप से धर्म के विषय मे पूछने वाले को जो मुझसे आपने श्रवण किया है उसे अब विस्तारपूर्वक बतलाओ ॥३॥ पुत्र ! आपके द्वारा कहे हुए समस्त पुराण मैंने वेद व्यासजी से प्राप्त किये हैं, अब मुनियों से विस्तार के साथ कहो ॥४॥ प्रयाग मे मुनियों मे श्रेष्ठ समुदाय के द्वारा प्रभु आप से स्वयं पूछा गया था। पूछे जाने पर आपने धर्म के ज्ञान की आकांक्षा रखने वाले मुनिगण को अनुशिष्ट किया था अर्थात् उनको भली-भाँति उपदेश देकर शासित किया था। ५॥ सर्वत्र व्यापक और हित के चाहने वाले आपके द्वारा परम पुण्य देश के जानने की इच्छा रखने वाले ऋषियों से सुनाभ, दिव्य रूप वाला, सत्य पर गमन करने वाला, शुभ विक्रमशील, उपमा से रहित यह वर्त्तमान चक्र है। इस पर निस्तन्द्र अर्थात् परम सावधान होकर पीछे चले जाओ तो जो हितकर पद है उसे अवश्य ही प्राप्त कर लोगे ॥६ ७॥ इस गमन करने वाले धर्म चक्र को जहाँ पर नेमि विशीर्ण हो जावे वही परम-पुण्यमय देश है—ऐसा आपने स्वयं ही कहा था ॥८॥

उक्त्वा चैवमृषीन् सर्वानदृश्यत्वमगात् पुनः ।
गङ्गावर्तसमाहारो नेमिर्यत्र व्यशीर्यत ॥९

ईजिरे दीर्घसत्रेण ऋषयो नैमिषे तदा ।
तत्र गत्वा तु तान् ब्रूहि पृच्छतो धर्मसंशयान् ॥१०
उग्रश्रवास्ततो गत्वा ज्ञानविन्मुनिपुङ्गवान् ।
अभिगम्योपसंगृह्य नमस्कृत्वा कृताञ्जलिः ॥११
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन् ।
ते चापि सत्रिणः प्रीताः ससदस्या महात्मने ॥१२
तस्मै समेत्य पूजाञ्च यथावत् प्रतिपेदिरे ॥१३
कुतस्त्वमागतः सूत कस्माद्देशादिहागतः ।
कारणञ्चागमे ब्रूहि वृन्दारकसमद्युते ॥१४

इस प्रकार से उन समस्त ऋषिगणों से कहकर फिर आप अदृश्यता को प्राप्त हो गये थे अर्थात् छिप गये थे। जहाँ पर गङ्गा के आवर्त्तों का समाहार है वहाँ नेमि विशीर्ण हो गई थी। उस समय उस नैमिष क्षेत्र में ऋषियों ने दीर्घ सत्र के द्वारा यजन किया था। वहाँ जाकर धर्म के विषय में समुत्थित अनेक संशयों को पूछने वालों को वे सब बतलाओ ॥९।१०॥ इसके अनन्तर ज्ञान के परम वेत्ता उग्रश्रवा वहाँ जाकर पहुँचे और उन श्रेष्ठ मुनिगण के समीप जाकर हाथ जोड़कर उन एकत्रित सबको सादर प्रणाम किया ॥११॥ परम मेधा सपन्न उसने प्रणिपात की विधि से समस्त ऋषियों को सन्तुष्ट किया था। सत्र करने वाले वे सब भी सदस्यों के सहित परम प्रसन्न हुए और वे सब उन महान् आत्मा वाले के समीप आकर यथा रीति उनकी सबने पूजार्चना की थी ॥१२। ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप तो देवों के समान तेज वाले हैं। इस समय में आपका यहाँ पर किस कारण से आगमन हुआ है और किस देश से उसे बतलाने की कृपा करें आपके यहाँ पधारकर आने का जो भी कारण हो आपने यहाँ पदार्पण किया है ? ॥१३।१४॥

पित्राऽहन्तु समादिष्टो व्यासशिष्येण धीमता ।
शुश्रूषस्व मुनीन् गत्वा यत्ते पृच्छन्ति तद्वद ॥१५
वदन्तु भगवन्तो मा कथयामि कथान्तु याम् ।
पुराणञ्चेतिहासं वा धर्मानथ पृथग्विधान् ॥१६

गच्छतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्यते ।
पुण्य स देशो मन्तव्य इत्युवाच स्वयम्प्रभु. ॥८

परम पुराण पुरुष भगवान् नारायण तथा नरो में सर्वश्रेष्ठ नर एवं विद्या, बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी भगवती सरस्वती को नमस्कार करके जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए। परम निर्मल चन्द्रमा के समान, वर्णों से युक्त, हाथियों की सूंड और मकरों के निरन्तर सञ्चालन से फेनों वाला, ब्रह्मा की उत्पत्ति में संलग्न चित्त वाले, व्रत और नियमों के पालन करने में तत्पर, प्रमुख विप्रवृन्दों के द्वारा भली-भाँति सेवन किया ओङ्कार से सविभूषित, तीनों भुवनों के गुरु अर्थात् जनक तथा ब्रह्माजी की दृष्टि के पात से परम पुनीत, सम्भोग एवं आभोग के करने सुरम्य और अमङ्गल के हरण करने वाला पोष्कर अर्थात् पद्म सम्बन्धी आपको पवित्र करे ॥१॥ नितान्त एकान्त में बैठे हुए सूतजी से महान् मति व्यास जी के शिष्य अथवा लोम हर्षण नाम वाले उग्रश्रवा यह बोले ॥२॥ हे तात ! ऋषिगण के आश्रमों में जाकर संक्षेप से धर्म के विषय में पूछने को जो मुझने आपने श्रवण किया है उसे अब विस्तारपूर्वक बतलाओ ॥३॥ पुत्र ! आपके द्वारा कहे हुए समस्त पुराण मैंने वेद व्यासजी से प्राप्त किये हैं अब मुनियों से विस्तार के साथ कहो ॥४॥ प्रयाग में मुनियों के श्रेष्ठ समुदायों के द्वारा प्रभु आप से स्वयं पूछा गया था। पूछे जाने पर आपने धर्म के ज्ञान की आकांक्षा रखने वाले मुनिगण को अनुशिष्ट किया था अर्थात् उनको भली-भाँति उपदेश देकर शासित किया था। ५॥ सर्वत्र व्यापक और हित के चाहने वाले आपके द्वारा परम पुण्य देश के जानने की इच्छा रखने वाले ऋषियों से सुनाभ, दिव्य रूप वाला, सत्य पर गमन करने वाला, शुभ विक्रमशील, उपमा से रहित यह वर्त्तमान चक्र है। इस पर निस्तन्द्र अर्थात् परम सावधान होकर पीछे चले जाओ तो जो हितकर पद है उसे अवश्य ही प्राप्त कर लोगे ॥६ ७॥ इस गमन करने वाले धर्म चक्र की जहाँ पर नेमि विशीर्ण हो जावे वही परम पुण्यमय देश है—ऐसा आपने स्वयं ही कहा था ॥८॥

उक्त्वा चैवमृषीन् सर्वानदृश्यत्वमगात् पुनः ।
गङ्गावर्तसमाहारो नेमिर्यत्र व्यशीर्यत ॥९

ईजिरे दीर्घसत्रेण ऋषयो नैमिषे तदा ।
तत्र गत्वा तु तान् ब्रूहि पृच्छतो धर्मसंशयान् ॥१०
उग्रश्रवास्ततो गत्वा ज्ञानविन्मुनिपुङ्गवान् ।
अभिगम्योपसंगृह्य नमस्कृत्वा कृताञ्जलिः ॥११
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन् ।
ते चापि सत्रिणः प्रीता ससदस्या महात्मने ॥१२
तस्मै समेत्य पूजाञ्च यथावत् प्रतिपेदिरे ॥१३
कुतस्त्वमागतः सूत कस्माद्देशादिहागतः ।
कारणञ्चागमे ब्रूहि वृन्दारकसमद्युते ॥१४

इस प्रकार से उन समस्त ऋषिगणों से कहकर फिर आप अदृश्यता को प्राप्त हो गये थे अर्थात् छिप गये थे । जहाँ पर गङ्गा के आवर्तों का समाहार है वहाँ नेमि विशीर्ण हो गई थी । उस समय उस नैमिष क्षेत्र में ऋषियों ने दीर्घ सत्र के द्वारा यजन किया था । वहाँ जाकर धर्म के विषय में समुत्थित अनेक संशयों को पूछने वालों को वे सब बतलाओ ॥६।१०॥ इसके अनन्तर ज्ञान के परम वेत्ता उग्रश्रवा वहाँ जाकर पहुँचे और उन श्रेष्ठ मुनिगण के समीप जाकर हाथ जोडकर उन एकत्रित सबको सादर प्रणाम किया ॥११॥ परम मेधा सपन्न उनने प्रणिपात की विधि से समस्त ऋषियों को सन्तुष्ट किया था । सत्र करने वाले वे सब भी सदस्यों के सहित परम प्रसन्न हुए और वे सब उन महान् आत्मा वाले के समीप आकर यथा रीति उनकी सबने पूजार्चना की थी ॥१२। ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप तो देवों के समान तेज वाले हैं। इस समय में आपका यहाँ पर किस कारण से आगमन हुआ है और किस देश से उसे बतलाने की कृपा करें आपके यहाँ पधारकर आने का जो भी कारण हो आपने यहाँ पदार्पण किया है ? ॥१३।१४॥

पित्राऽहन्तु समादिष्टो व्यासशिष्येण धीमता ।
शुश्रूषस्व मुनीन् गत्वा यत्ते पृच्छन्ति तद्वद ॥१५
वदन्तु भगवन्तो मा कथयामि कथान्तु याम् ।
पुराणञ्चेतिहासं वा धर्मानथ पृथग्विधान् ॥१६

तां गिरं मधुरां तस्य शुश्रुषुर्ऋषिसत्तमाः ।
अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत ॥१७
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं लोमहर्षणिम् ।
तस्मिन् सत्रे कुलपतिः सर्वशास्त्रविशारदः ॥१८
शौनको नाम मेधावी विज्ञानारण्यके गुरुः ।
इत्थं तद्भावमालक्ष्य धर्मान् शुश्रूपुराह तम् ॥१६
त्वया सूत महाबुद्धे भगवान् ब्रह्मवित्तमः ।
इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः ॥२०
दुदोहिथ मतिं तस्य त्वं पुराणाश्रयां शुभाम् ।
अमीषां विप्रमुख्याणां पुराणं प्रतिसम्प्रति ॥२१
शुश्रूषास्ते महाबुद्धे तच्छ्रावयितुमर्हसि ।
सर्वे ह्यीमे महात्मानो नानागोत्राः समागता ॥२२

ऋषियों के इस प्रश्न का सूत जी ने उत्तर दिया—परम बुद्धिमान्, व्यास महर्षि के शिष्य पिताजी के द्वारा मुझे आज्ञा हुई है कि मुनिगण की जाकर सेवा करो और वे जो भी कुछ धर्म के विषय मे पूछें उसे भली-भाँति उन्हें बतलाओ ॥१५॥ अतएव अब आप लोग मुझे बतलायें जिस कथा को मैं आपके समक्ष में कहूं, मैं आपको पुराण-इतिहास सुनाऊँ या पृथक् पृथक् प्रकार के धर्मों को श्रवण कराऊँ ॥१६॥ उन परम श्रेष्ठ ऋषिवृन्द ने सूतजी की उस अतिशय मधुर वाणी को सुना और इसके अनन्तर उन सबको पुराणों के श्रवण करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई थी ॥१७॥ महान् विद्वान् अत्यन्त विश्वस्त लोमहर्षणि को देखकर उस सत्र में समस्त शास्त्रों के महामनीषी जो कुलपति थे ॥१८॥ वे महर्षि शौनक थे जो बड़े ही मेधावी थे और विज्ञानारण्यक में गुरु थे, उनने इस प्रकार से उनके भाव को प्राप्त कर धर्म के विषय में श्रवण करने की इच्छा वाले ने सूतजी से कहा ॥१६॥ हे सूतजी ! आप तो महान् बुद्धिमान् हैं ब्रह्मवेत्ताओं मे परमश्रेष्ठ भगवान् व्यास जी की उपासना आपने इतिहास-पुराणों के ज्ञानार्जन के लिए भली-भाँति की है ॥२०॥ आपने पुराणों के रखने वाली उस शुभ उनकी मति का दोहन किया है । अब इन विप्रों प्रमुख इन सबकी पुराणों के प्रति श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न हुई है सो

सबको आप लोगों को बतलाता हूँ ॥२७॥ सत्पुरुषों ने देवगणों का, ऋषियों का और अपरिमित तेज से समन्वित राजाओं का यह सनातन सूत का धर्म देखा है ॥२८॥

वंशानां धारणं कार्यं स्तुतीनाञ्च महात्मनाम् ।
इतिहासपुराणेषु दृष्टा ये ब्रह्मवादिनः ॥२९
न हि वेदेष्वधिकारः कश्चित् सूतस्य दृश्यते ।
वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्त्तमाने महात्मनः ॥३०
मागधश्चैव सूतश्च तमस्तौता नरेश्वरम् ।
तुष्टेनाथ तयोर्दत्तो वरो राज्ञा महात्मना ॥३१
सूताय सूतविषयो मगधो मागधाय च ।
तत्र सूत्यां समुत्पन्न सूतो नामेह जायते ॥३२
ऐन्द्रे सत्रे प्रवृत्ते तु ग्रहयुक्ते बृहस्पतौ ।
तमेवेन्द्रं वार्हस्पत्ये तत्र सूतो व्यजायत ॥३३
शिष्यहस्तेन यत् पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः ।
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णसङ्करम् ॥३४
येऽत्र क्षत्रात् समभवन् ब्राह्मण्याश्चैव योनितः ।
पूर्वेणैव तु साधर्म्याद्धर्मास्ते प्रकीर्तिताः ॥३५
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षेत्रोपजीविन. ।
पुराणेष्वधिकारो मे विहितो ब्राह्मणैरिह ॥३६

इतिहास-पुराणों में जो ब्रह्मवादी गण देखे गये हैं उनके वंशों का धारण करना तथा महात्माओं की स्तुतियों का धारण करने का कार्य है ॥२९॥ वेदों में सूतजी का कोई भी अधिकार नहीं दिखलाई देता है। वेन राजा के पुत्र पृथु जो एक महान् आत्मा वाले थे, उनके वर्तमान यज्ञ में मागध और सूत ने उस नृपति का स्तवन किया था। उस स्तुति से परम सन्तुष्ट महात्मा राजा ने उन दोनों को वरदान दिया था ॥३०।३१॥ सूत का विषय सूत के लिये और मागध के लिये मगध दिया था। उस समय में सूति में समुत्पन्न होने से यहाँ 'सूत'—यह नाम इनका हो जाता है ॥३२॥ ऐन्द्र सत्र में अर्थात् इन्द्र के द्वारा किये गये

सत्र में समस्त ग्रहों से युक्त बृहस्पति के प्रवृत्त होने पर उस बार्हस्पत्य में उसी इन्द्र के सूत उत्पन्न हुए थे ॥३३॥ शिष्य के हाथ से पृक्त एवं अभिभूत जो गुरु का हविधा उसको अपरोत्तर धारण करने से, यह वर्ण—सङ्कर की उत्पत्ति हुई थी ॥३४। जो यहाँ पर ब्राह्मणी की योनि से क्षत्रिय के द्वारा समुत्पन्न हुए पूर्व के ही साधर्म्य से वैधर्म प्रकीर्तित हुए हैं ॥३५॥ क्षेत्रों से अपनी जीविका चलाने वाले सूत का यह मध्यम धर्म है। मैंने यहाँ पर ब्राह्मणों के साथ उनका केवल पुराणों में ही अधिकार दिया था ॥३६॥

दृष्ट्वा धर्ममह पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः।
त-मात् सम्यग् भुवि ब्रूयां पुराणमृषिपूजितम् ॥३७
पितृणां मानसी कन्या वासव समपद्यत।
अपध्याता च पितृभिर्मत्स्यगर्भे बभूव सा ॥३८
अरणीव हुताशस्य निमित्तं पुण्यजन्मनः।
तस्या बभूव पूतात्मा महर्षिस्तु पराशरात् ॥३९
तस्मै भगवते कृत्वा नमः सत्याय वेधसे।
पुरुषाय पुराणाय ब्रह्मवाक्यानुवर्तिने ॥
मानवच्छद्मरूपाय विष्णवे शंसितात्मने।
जातमात्रञ्च यं वेद उपतस्थे ससंग्रहः ॥४०
मतिमन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात्।
प्रकाशो जनितो लोके महाभारतचन्द्रमाः ॥४१
भारतं भानुमान् विष्णुर्यदि न स्युरमी त्रयः।
ततोऽज्ञानतमोन्धस्य कावस्था जगतोभवेत् ॥४२

ब्रह्म के वाद करने वाले, धर्म वेदों की चर्चा करने वाले आप लोगों ने धर्म को देखकर ही मुझसे पूछा है। इसलिये मैं उस भू-मण्डल में ऋषियों के द्वारा सम्पूजित पुराण को भली-भाँति कहता हूँ ॥३७॥ पितृगण की मानसी कन्या वासव अर्थात् इन्द्र के हुई थी। वह पितृगण के द्वारा अपध्यात होती हुई मत्स्य के गर्भ से हुई थी ॥३८॥ जिस तरह अरणी में अग्नि का निवास रहता है उसी भाँति पूर्व जन्मा का निमित्त रूप उसमें पराशर से पवित्र आत्मा वाले

सबको आप लोगों को बतलाता हूँ ॥२७॥ सत्पुरुषों ने देवगणों का, ऋषियों का और अपरिमित तेज से समन्वित राजाओं का यह सनातन सूत का धर्म देखा है ॥२८॥

वंशानां धारणं कार्यं स्तुतीनाञ्च महात्मनाम् ।
इतिहासपुराणेषु दृष्टा ये ब्रह्मवादिनः ॥२९
न हि वेदेष्वधिकारः कश्चित् सूतस्य दृश्यते ।
वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्त्तमाने महात्मनः ॥३०
मागधश्चैव सूतश्च तमस्तौता नरेश्वरम् ।
तुष्टेनाथ तयोर्दत्तो वरो राज्ञा महात्मना ॥३१
सूताय सूतविषयो मगधो मागधाय च ।
तत्र सूत्यां समुत्पन्नः सूतो नामेह जायते ॥३२
ऐन्द्रे सत्रे प्रवृत्ते तु ग्रहयुक्ते बृहस्पतौ ।
तमेवेन्द्रं बार्हस्पत्ये तत्र सूतो व्यजायत ॥३३
शिष्यहस्तेन यत् पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः ।
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णसङ्करम् ॥३४
येऽत्र क्षत्रात् समभवन् ब्राह्मण्याश्चैव योनितः ।
पूर्वेणैव तु साधर्म्याद्धर्मास्ते प्रकीर्तिताः ॥३५
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षेत्रोपजीविनः ।
पुराणेष्वधिकारो मे विहितो ब्राह्मणैरिह ॥३६

इतिहास-पुराणों में जो ब्रह्मवादी गण देखे गये हैं उनके वंशों का धारण करना तथा महात्माओं की स्तुतियों का धारण करने का कार्य है ॥२९॥ वेदों में सूतजी का कोई भी अधिकार नहीं दिखलाई देता है। वेन राजा के पुत्र पृथु जो एक महान् आत्मा वाले थे, उनके वर्तमान यज्ञ में मागध और सूत ने उस नृपति का स्तवन किया था। उस स्तुति से परम सन्तुष्ट महात्मा राजा ने उन दोनों को वरदान दिया था ॥३०।३१॥ सूत का विषय सूत के लिये और मागध के लिये मगध दिया था। उस समय में सूति में समुत्पन्न होने से यहाँ 'सूत'— यह नाम इनका हो जाता है ॥३२॥ ऐन्द्र सत्र में अर्थात् इन्द्र के द्वारा किये गये

सत्र में समस्त ग्रहों से युक्त बृहस्पति के प्रवृत्त होने पर उस बार्हस्पत्य में उसी इन्द्र के सूत उत्पन्न हुए थे ॥३३॥ शिष्य के हाथ से पृक्त एवं अभिभूत जो गुरु का हविधा उसको अधरोत्तर धारण करने से यह वर्ण-सङ्कर की उत्पत्ति हुई थी ॥३४। जो यहाँ पर ब्राह्मणी की योनि से क्षत्रिय के द्वारा समुत्पन्न हुए पूर्व के ही साधर्म्य से वैधर्म प्रकीर्त्तित हुए हैं ॥३५॥ क्षेत्रों में अपनी जीविका चलाने वाले सूत का यह मध्यम धर्म है। मैंने यहाँ पर ब्राह्मणों के साथ उनका केवल पुराणों में ही अधिकार दिया था ॥३६॥

दृष्ट्वा धर्ममह पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ।
त-मात् सम्यग् भुवि ब्रूयां पुराणमृषिपूजितम् ॥३७
पितृणा मानसी कन्या वासव समपद्यत ।
अपध्याता च पितृभिर्मत्स्यगर्भे बभूव सा ॥३८
अरणीव हुताशस्य निमित्तं पुण्यजन्मनः ।
तस्या बभूव पूतात्मा महर्षिस्तु पराशरात् ॥३९
तस्मै भगवते कृत्वा नमः सत्याय वेधसे ।
पुरुषाय पुराणाय ब्रह्मवाक्यानुवर्त्तिने ॥
मानवच्छद्मरूपाय विष्णवे शंसितात्मने ।
जातमात्रञ्च यं वेद उपतस्थे ससंग्रहः ॥४०
मतिमन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात् ।
प्रकाशो जनितो लोके महाभारतचन्द्रमाः ॥४१
भारत भानुमान् विष्णुर्यदि न स्युरमी त्रयः ।
ततोऽज्ञानतमोन्धस्य कावस्था जगतोभवेत् ॥४२

ब्रह्म के वाद करने वाले, सर्व वेदों की चर्चा करने वाले आप लोगों ने धर्म को देखकर ही मुझसे पूछा है। इसलिये मैं इस भू-मण्डल में ऋषियों के द्वारा सम्पूजित पुराण को भली-भाँति कहता हूँ ॥३७॥ पितृगण की मानसी कन्या वासव अर्थात् इन्द्र के हुई थी। वह पितृगण के द्वारा अपध्यात होती हुई मत्स्य के गर्भ से हुई थी ॥३८॥ जिस तरह अरणी में अग्नि का निवास रहता है उसी भाँति पुण्य जन्मा का निमित्त रूप उसमें पराशर से पवित्र आत्मा वाले

महर्षि समुत्पन्न हुए थे ॥३६॥ ब्रह्म वाक्य को अनुवर्त्तन करने वाले, सत्य, वेधा, पुराण पुरुष, मानव का छद्म स्वरूप धारण करने वाले प्रशमनीय आत्मा भगवान् विष्णु के लिये प्रणाम किया था जिनको कि उत्पन्न होते ही संग्रह सहित समस्त वेद उपस्थित था ॥४०॥ जिसने इस अतिगहन श्रुति स्वरूप सागर से अपनी मति रूपिणी मथनिय से अच्छी तरह मन्थन करके इस लोक में महाभारत रूपी चन्द्रमा का प्रकाश समुत्पन्न किया था ॥४१॥ इस जगत् में भारत अर्थात् महाभारत ग्रन्थ, सूर्यदेव और भगवान् विष्णु ये तीन न होते तो अज्ञान के अन्धकार से युक्त इस जगत् की न मालूम क्या दशा हुई होती ? ॥४२॥

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् ।
को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षान्महाभारतकृद्भवेत् ॥४३
तस्मादहमुपाश्रौषं पुराणं ब्रह्मवादिनः ।
सर्वज्ञात् सर्वलोकेषु पूजिताद्दीप्ततेजसः ॥४४
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम् ।
उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपपादकम् ॥४५
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ।
निःशेषेषु च लोकेषु वाजिरूपेण केशवः ॥४६
ब्रह्मणस्तु समादेशाद्वेदानाहृतवानसौ ।
अङ्गानि चतुरो वेदान् पुराणन्यायविस्तरम् ॥४७
असुरेणाखिलं शास्त्रमपहृत्यात्मसात्कृतम् ।
मत्स्यरूपेणजहार कल्पादावुदकार्णवे ॥४८
अशेषमेतदवदद्दुदकान्तर्गतो विभुः ।
श्रुत्वा जगाद च मुनीन् प्रति वेदाश्चतुर्मुखः ॥४९

कृष्ण द्वैपायन महर्षि व्यास जी को साक्षात् प्रभु नारायण ही समझना चाहिए । भगवान् पुण्डरीकाक्ष नारायण के अतिरिक्त अन्य कौन हो सकता है जो महाभारत जैसे उत्तम ग्रन्थ की रचना कर सके ॥४३॥ उन्हीं परम ब्रह्मवादी, सब कुछ के ज्ञाता, सम्पूर्ण लोकों में पूजित, दीप्त तेज वाले महर्षि व्यासदेव से मैंने पुराणों का श्रवण किया है ॥४४॥ ब्रह्माजी ने समस्त शास्त्रों का सार

पुराण को सर्व प्रथम बताया है। यह सब लोकों में उत्तम है और सभी प्रकार के ज्ञान का उत्पादक है ॥४५॥ यह त्रिवर्ग का साधन, परम पुण्यमय और शतकोटि विस्तार वाला है। शेष लोकों में केशव भगवान् ने वाजि रूप से ब्रह्मा के आदेश से वेदों का समाहरण किया था। चारों वेद, उनके अङ्ग शास्त्र, पुराण एवं न्याय विस्तार सम्पूर्ण शास्त्रों को असुर ने अपहरण करके आत्मसात् कर लिया था। कल्प के आदि काल में उदकार्णव में मत्स्य रूप धारण कर सबका उद्धार किया था ॥४६।४७।४८॥ जल के ही अन्दर स्थित होते हुए विभु ने यह सम्पूर्ण बतलाया था। चतुर्मुख ब्रह्माजी ने उसका श्रवण कर सम्पूर्ण वेदों को मुनियों को बतलाया था ॥४९॥

प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्तदा।
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः ॥५०
व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा सङ्ग्रहार्थं युगे युगे।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ ॥५१
तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्।
अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम् ॥५२
तदेवात्र चतुर्लक्षं सङ्क्षेपेण निवेशितम्।
प्रवक्ष्यामि महापुण्यं पुराणं पाद्मसंज्ञितम् ॥५३
तत्रादौ सृष्टिखण्डं स्याद्भूमिखण्डंततःपरम्।
स्वर्गखण्डं ततः पश्चात्तत. पातालखण्डकम्।
पञ्चमञ्च ततः स्यातमुत्तरखण्डमुत्तमम् ॥५४
एतदेव महापद्ममुद्भूतं यन्मयं जगत्।
तद्वृत्तान्ताश्रयं यस्मात् पाद्ममित्युच्यते ततः ॥५५

उस समय में समस्त शास्त्रों की तथा पुराणों की प्रवृत्ति हुई थी फिर कुछ काल ऐसा आया कि पुराणों का श्रवणादि ग्रहण करना कम हो गया था। उस समय में विभु स्वयं व्यास रूप में अवतीर्ण हुए थे ॥५०॥ इस तरह व्यास के स्वरूप में स्थित ब्रह्माजी ने युग-युग में संग्रह किया था और द्वापर-द्वापर में चार लाख प्रमाण वाले पुराणों को बतलाया था ॥५१॥ वे अठारह होकर इस

भू-मण्डल मे प्रकाशित हुए हैं किन्तु देवलोको मे आज भी शतकोटि प्रकृष्ट विस्तार युक्त हैं ।।५२।। वह ही यहाँ पर संक्षेप से चार लाख निवेशित किया गया है। अब हम महान् पुण्यमय पाद्म संज्ञा वाले महा पुराण को बतलाते हैं ।।५३।। इस पाद्म पुराण के आदि मे सृष्टिखण्ड है और इसके आगे भू-मण्डल है। फिर उसके पीछे स्वर्ग खण्ड और इसके आगे इसमे पाताल खण्ड है। इस के अनन्तर पाँचवाँ सबसे उत्तम उत्तर खण्ड के नाम से प्रख्यात है ।।५४।। यह ही महापद्म उद्‌भूत हुआ था जिससे पूर्ण यह जगत् है। उसके सम्पूर्ण वृत्तान्त का यह आश्रय है इसी कारण से इस महा पुराण का पाद्म यह नाम कहा जाता है ।।५५।।

एतत् पुराणममलं विष्णुमाहात्म्यनिर्मलम् ।
देवदेवो हरिर्यद्वै ब्रह्मणे प्रोक्तवान् पुरा ।।५६
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ।
एतदेव च वै ब्रह्मा पाद्मं लोके जगाद वै ।।५७
पञ्चभिःपर्वभि प्रोक्तं सक्षेपाद्व्यासकारितात् ।
पौष्करं प्रथमं पर्व यत्रोत्पन्नः स्वयं विराट् ।।५८
द्वितीयं तीर्थपर्वं स्यात् सर्वग्रहगणाश्रयम् ।
तृतीयपर्वग्रहणा राजानो भूरिदक्षिणाः ।।५९
वंशानुचरितञ्चैव चतुर्थे परिकीर्तितम् ।
पञ्चमे मोक्षतत्त्वञ्च सर्वतत्त्वं निगद्यते ।।६०
पौष्करे नवधा सृष्टि सर्वेषां ब्रह्मकारिता ।
देवतानां मुनीनाञ्च पितृसर्गस्तथापरः ।।६१
द्वितीये पर्वताश्चैव द्वीपाः सप्त ससागराः ।
तृतीये रुद्रसर्गस्तु दक्षशापस्तथैव च ।।६२
चतुर्थे सम्भवो राज्ञां सर्ववंशानुकीर्त्तनम् ।
अन्त्येऽपवर्गसंस्थानं मोक्षशास्त्रानुकीर्त्तनम् ।।६३
सर्वमेतत् पुराणेऽस्मिन् कथयिष्यामि वो द्विजाः ।।६४
इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं पितृणामतिवल्लभं स्यात् ।
इदञ्च देवस्य मुदाय नित्यमिदं महापातकभिच्च पुंसाम् ।।६५

यह महा पुराण मल से रहित और भगवान् विष्णु के माहात्म्य के होने के कारण अत्यन्त निर्मल है। देवों के भी देव श्रीहरि ने पहले इसे ब्रह्माजी से कहा था ॥५६॥ इसके अनन्तर पहिले ब्रह्मा ने जितना भाग मरीचि ऋषि से कहा था, इसी को ब्रह्मा ने लोक में इसको पद्म इस नाम से कहकर बनाया था ॥५७। यह पाँच पर्वों से युक्त संक्षेप में महर्षि वेद व्यास के द्वारा कहा गया था। उन पाँच पर्वों में प्रथम पोष्कर नाम वाला पर्व है जिसमें विराट् पुरुष स्वयं समुत्पन्न हुए थे। ५८॥ दूसरा तीर्थ पर्व है जिसमें समस्त ग्रह गण का वर्णन किया गया है। तृतीय पर्व में बहुत दक्षिणा देने वाले राजाओं का वर्णन है। चतुर्थ पर्व में वंशानुचरित का परिकीर्त्तन किया गया है। पाँचवें पर्व में मोक्षतत्व एवं सर्वतत्त्व कहा जाता है ॥५९ ६०॥ सर्व प्रथम पोष्कर पर्व में नौ प्रकार की सृष्टि का वर्णन है और सबका सृजन ब्रह्माजी के द्वारा किया गया है। उसमें देवों का, मुनियों का और पितृगण का सर्ग बताया गया है। दूसरे में पर्वत, द्वीप, सात सागरों के सृजन का वर्णन किया गया है। तीसरा रुद्रसर्ग है जिसमें प्रजापति दक्ष के शाप आदि का वर्णन है ॥६१।६२॥ चतुर्थ सर्ग में राजाओं की समुत्पत्ति का वर्णन है और सबके वंशों का अनु कीर्तन किया गया है। अन्तिम में अन्त वर्ग के संस्थान का कथन है और मोक्ष शास्त्र का वर्णन किया गया है ॥६३॥ हे द्विजगण ! इस पद्म महापुराण में यह सभी विषय वर्णित किये गये है। वह हम सभी आपको बतायेंगे ॥६४॥ यह महपुराण परम पवित्र है और यश को प्रदान करने वाला निधान है। यह पितृगण का अत्यन्त प्रिय है। यह महा पुराण देवताओं को सुख देने वाला है और मनुष्यों के समस्त पातकों का नित्य नाश करने वाला है ॥६५॥

कालपरिमाण वर्णन

निर्गुणस्याप्रमेयस्य शुद्धस्याथ महात्मनः ।
कथं सर्गादिकर्तृत्वं ब्रह्मणो ह्युपपद्यते ॥१

शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्याज्ञानगोचराः ।
यत्तनो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः ॥२

उत्पन्नः प्रोच्यते विद्वान्नित्य एवोपचारतः ।
निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् ॥३
तत्पराख्यं परार्द्धञ्च तदर्द्धं परिकीर्तितम् ।
काष्ठा पञ्चदशाख्याता निमेषो नृपसत्तम ॥४
काष्ठास्त्रिंशत्कलास्त्रिंशत्कला मौहूर्तिको विधिः ।
तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषस्मृतम् ॥५
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः ।
तैः षड्भिरयनं वर्षमयने दक्षिणोत्तरे ॥६
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् ।
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम् ॥७

भीष्म पितामह ने पुलस्त्य ऋषि से कहा—हे ऋषिवर ! ब्रह्मा तो परम विशुद्ध महान् आत्मा वाला है वह निर्गुण एवम् अप्रमेय है अर्थात् प्रमा नाम वाली बुद्धि का विषय नहीं है, ऐसे ब्रह्मा को इस समस्त सर्ग आदि का कर्त्ता होना किस प्रकार से संगत हो सकता है ? पुलस्त्य ऋषि ने कहा—समस्त भावों की शक्तियाँ अचिन्त्य अर्थात् चिन्तन करने के योग्य नहीं हैं, वे तो केवल ज्ञान के द्वारा ही गोचर होती हैं । इस कारण से ब्रह्मा की सर्गादि भाव शक्तियाँ होती हैं । यद्यपि वह नित्य है तो भी उपचार से उसे उत्पन्न हुआ—ऐसा विद्वान् कहते हैं । उसके अपने मान से सौ वर्ष की उसकी आयु कही गई है । उसका पर भाग का नाम परार्द्ध है जो उसका अर्ध भाग कहा गया है । हे नृपसत्तम ! पन्द्रह काष्ठा बताई गई हैं जो निमेष होता है ॥१।२।३।४॥ तीस कला हैं और कला ही विधि का मुहूर्त होता है । उतनी ही संख्या वाले मुहूर्तों से मनुष्य का अहोरात्र (दिन और रात) होता है—ऐसा कहा गया है ॥५॥ उतने अहोरात्र होते हैं और दो पक्षों का एक मास (महीना) होता है । छै मासों का एक अयन होता है । एक वर्ष में दक्षिणायन तथा उत्तरायण दो अयन हुआ करते हैं ॥६॥ दक्षिण अयन देवों की रात्रि होती है और उत्तरायण उनका दिन होता है । इस तरह दिव्य एक सहस्र वर्षों के सतयुग—त्रेता आदि चारों युग हुआ करते हैं ॥७॥

चतुर्युग द्वादशभिस्तद्विभाग निबोध मे ।
चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ॥८
दिव्याब्दानां सहस्राणि युगेष्वाहुः पुराविदः ।
तत्प्रमाणैः शतं सन्ध्या पूर्वातत्राभिधीयते ॥९
सन्ध्यांशकश्च तत्तुल्यो युगस्यानन्तरो हि यः ।
सन्ध्या सन्ध्यांशयोरन्तः कालो यो नृपसत्तम ॥१०
युगाख्यः स तु विज्ञेयः कृतत्रेतादिसंज्ञित ।
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चैव चतुर्युगम् ॥११
प्रोच्यते तत्सहस्रन्तु ब्रह्मणो दिवस नृप ।
ब्रह्मणो दिवसे राजन् मनवश्च चतुर्दश ॥१२
भवन्ति परिमाणञ्च तेषां कालकृत शृणु ।
सप्तर्षय सुराः शक्रो मनुस्तत्सूनवोनृप ॥१३
एककाले हि सृज्यन्ते संह्रियन्ते स्वपूर्ववत् ।
चतुर्युगानांसख्यातासाधिकाह्येकसप्ततिः । १४

बारह वर्षों का चतुर्युग होता है, उसका विभाग आप लोग मुझसे भली-भाँति समझ लेवें । चार-तीन-दो और एक कृतादि में यथाक्रम हुआ करते हैं ॥८॥ पुरावेत्ता पुरुषों ने युगो मे दिव्य सहस्र वर्ष बतलाये हैं । उतने ही प्रमाण वाले सौ वर्षों की पूर्वसन्ध्या उसमे कही जाती है ॥९॥ युग के अनन्तर मे होने वाला सन्ध्यांश भी उसी के तुल्य होता है । हे नृपो मे परम श्रेष्ठ ! सन्ध्यांशो का जो मध्य का समय होता है वही सन्ध्या कही जाती है ॥१०॥ कृतयुग—त्रेता—द्वापर—कलियुग नाम वाले जो हैं उनको ही युग इस नाम से कहा जाता है । सतयुग, त्रेता आदि ये चार युग होते हैं ॥११॥ हे नृप ! इस प्रकार से चारों युगों की एक सहस्र चौकडी जब समाप्त हो जाती है तो ब्रह्मा का एक दिन होता है । हे राजन् ! ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु हो जाते हैं ॥१२॥ अब उनका काल के द्वारा किया गया परिमाण का श्रवण करो । सप्तर्षिगण, सुर, इन्द्र, मनु और उनके पुत्र एक काल में स्व पूर्ववत् सृज्यमान और से ह्रियमान हुआ करते हैं । चतुर्युगो की साधिक एक सप्तति (इकहत्तर) संख्या बताई गई है ॥१३।१४॥

मन्वन्तरं मनोः कालः सुरादीनाञ्च पार्थिव ।
अष्टौ शतसहस्राणिदिव्यया संख्ययास्मृतः ॥१५
द्विपञ्चाशत्तथान्यानिसहस्राण्यधिकानि च ।
त्रिंशत्कोट्यस्तुसम्पूर्णाः संख्याताःसंख्यया नृप ॥१६
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि महामते ।
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना ॥१७
मन्वंतरस्य संख्येयं मानुषैरिह वत्सरैः ।
चतुर्दश गुणो ह्येषः कालो ब्राह्ममहःस्मृतम् ॥१८
ब्राह्मो नैमित्तिको नाम तस्यान्ते प्रतिसञ्चरः ।
तदा हि दह्यते सर्वं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥ ९
जनप्रयान्ति तापार्त्ता महर्लोकनिवासिनः ।
एकार्णवे तु त्रैलोक्ये ब्रह्मा ब्रह्मविदांवर ॥२०
भोगिशय्यागतःशेतेत्रैलोक्यग्रासबृंहितः ।
जनस्थैर्योगिभिर्देवश्चिन्त्यमानो जगद्विभुः ॥२१

हे पार्थिव ! मनु और सुर आदि का काल मन्वन्तर होता है जो कि दिव्य संख्या से आठ सौ सहस्र कही गई है ॥ १५ ॥ हे नृप ! अन्य बावन सहस्र अधिक हैं। इस प्रकार संख्या से सम्पूर्ण तीस करोड़ सख्यात हुई अर्थात् गिनी गई है ॥१६॥ हे महामते ! अन्य सड़सठ नियुक्त हैं और अधिक के बिना बीस सहस्र काल होता है ॥१७॥ यह मन्वन्तर की संख्या यहाँ पर मानुष वर्षों से की गई है। यह समय जब ब्रह्माजी के दिन से होता है तो चौदह गुना काल बताया गया है ॥१८॥ ब्राह्म नैमित्तिक नाम है उसके अन्त में प्रत्येक सञ्चार के उस समय में यह सम्पूर्ण भूर्भुवादिक त्रैलोक्य दग्ध हो जाता है ॥१९॥ महर्लोक के निवास करने वाले जन भी ताप से अत्यन्त आर्त्त हो जाते हैं। ब्रह्म के वेत्ताओं में परमश्रेष्ठ ब्रह्मा उस समय में जबकि सम्पूर्ण त्रैलोक्य केवल समुद्रमय हो जाता है, इस त्रिभुवन का ग्रास कर बृंहित होता हुआ शेष नाग की शय्या में सस्थित होकर शयन किया करता है। जनलोक मे स्थित योगीजनों के द्वारा उस जगत् में व्यापक विभुदेव का ध्यान एवं चिन्तन किया जाता है ॥२०।२१॥

तत्प्रमाणां हि ता रात्रि तदन्ते सृजते पुनः ।
एवन्तु ब्रह्मणो वर्षमेव वर्षशत च तत् । २२
शत हि तस्य वर्षाणां परमायुर्महात्मनः ।
एकमस्य व्यतीत तु परार्द्धं ब्रह्मणोऽग्रनघ ॥२३
तस्यान्तेऽभून्महाकल्पः पाद्म इत्यभिविश्रुत ।
द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्त्तमानस्य वै नृप ।
वाराहइति कल्पोऽयं प्रथमः परिकल्पितः ॥२४
ब्रह्मा नारायणाख्यं ऽसौ कल्पादौ भगवान् यथा ।
ससर्ज सर्वभूतानि तदाचक्ष्व महामुने ॥२५
प्रजा ससर्ज भगवाननादिः सर्वसम्भवः ।
अतीतकल्पावसाने निशासुप्तोत्थितः प्रभु ॥२६
सत्वोद्रक्तस्तथा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत ।
तोयान्तःसमहीज्ञात्वा निमग्नां वारिसप्लवे ॥२७
प्रविचिन्त्य तदुद्धार कर्तुकामः प्रजापति. । २८

जितने प्रमाण वाला दिन बताया गया है उतने ही प्रमाण की उस दिन की रात होती है । उस रात्रि के समाप्त हो जाने पर पुन. इस जगत् का सृजन होता है । इस प्रकार से ब्रह्मा का वर्ष होता है और ऐसे ही सौ वर्ष होते हैं जोकि उसकी अवस्था बतायी गई है ॥२२॥ उस महान् आत्मा वाले की सो वर्षों की परमायु होती है । हे अनघ ! इसका एक वर्ष व्यतीत हुआ है और अब ब्रह्मा का परार्द्ध है ॥२३॥ इसके अन्त मे महा कल्प हुआ है जोकि पाद्म-इस नाम से प्रख्यात है । हे नृप ! यह जो वर्त्तमान दूसरा परार्द्ध है यह प्रथम वाराह कल्प परिकल्पित किया गया है ॥२४॥ भीष्मदेव ने कहा—हे महामुने ! नारायण नाम धारी यही ब्रह्मा कल्प के आदि मे भगवान् की भाँति समस्त भूतो का सृजन किया करता था—इसे अब बतलाइये ॥२५॥ पुलस्त्य ऋषि ने कहा—बीते हुए कल्प के अन्त मे निशा के समय मे सोकर उठे हुए प्रभु ने प्रजा का सृजन किया था जो कि आदि भगवान् हैं और जिनसे सभी की उत्पत्ति हुआ करती है ॥-६॥ उस समय मे सत्त्व से उद्रक्त ब्रह्मा ने इस लोक को शून्य देखा था । इस भूमि को जल के मध्य मे मग्न तथा जल की बाढ मे एकदम

डूबी हुई समझकर चिन्तन किया और प्रजापति ने इस मही के उद्धार करने की इच्छा की थी ॥२७।२८॥

विष्णुरूपंतदाज्ञात्वापृथ्वी वाढुं स्वतेजसा ।
मत्स्यकूर्मादिकाश्चान्यांवाराहीतनुमाविशत् ॥२९
वेदयज्ञमय रूपमाश्रित्य जगतः स्थितौ ।
स्थित.स्थिरात्मा सर्वात्मा परमात्माप्रजापतिः ॥३०
प्रविवेश तदा तोय तोयाधारे धराधर: ॥३१
निरीक्ष्य तं तदा देवी पातालतलमागतम् ।
तुष्टाव प्रणता भूत्वा भक्तिनम्रा वसुन्धरा ॥
नमस्ते सर्वभूताय नमस्ते परमात्मने ॥३२
मामुद्धरास्मादद्यत्वं त्वत्तोऽह पूर्वमुत्थिता ।
परमात्मन् नमस्तेऽस्तु पुरुषात्मन्नमोस्तुते ॥३३
प्रधानव्यक्तरूपाय कालभूताय ते नम: ।
त्व कर्त्तासर्वभूताना त्व पाता त्व विनाशकृत् ॥३४
सर्गादौ य. परो ब्रह्मा विष्णुरुद्रात्मरूपधृक् ।
भक्षयित्वा च सकल जगत्येकार्णवीकृते ॥३५

उस समय में भगवान् विष्णु का रूप यह जानकर अपने तेज से पृथ्वी को वहन करने के लिये मत्स्य, कूर्म आदिक तथा अन्य वाराह के शरीर में प्रवेश कर गया था ॥२९॥ सबके आत्मा, स्थिर आत्मा वाले परमात्मा प्रजापति इस जगत् की स्थिति में वेद यज्ञमय रूप का समाश्रय ग्रहण करके स्थित हुए थे ॥३०॥ उस समय में धरा को धारण करने वाले तोयाधार जल में प्रविष्ट हो गये थे ॥३१॥ उस क्षण में वसुन्धरा देवी ने पाताल के तल में आये हुए उनका दर्शन करके भक्ति-भाव से अतिशय विनम्र और प्रणत होकर उनकी स्तुति की थी। पृथ्वी ने कहा—समस्त भूत स्वरूप परमश्रेष्ठ आत्मा वाले आपके लिये बारम्बार नमस्कार है ॥३२॥ हे प्रभो ! आप अब मेरा इससे उद्धार कीजिए। आपके द्वारा मैं पहिले भी उठाई गई हूँ। हे परमात्मन् ! आपके लिये मेरा नमस्कार है, हे पुरुषात्मन् ! आपको मेरा प्रणाम है ॥३३॥ प्रधान व्यक्त रूप वाले कालभूत अर्थात् काल स्वरूप आपके लिये नमस्कार है। हे भगवन् ! समस्त

भूतो के आप ही बनाने अर्थात् सृजन करने वाले हैं तथा आप ही इन सम्पूर्ण भूतो के पालन कर्त्ता हैं और इनका विनाश भी आप ही किया करते हैं ।।.४।। सर्ग के आदि काल मे सृजन कार्य करने के लिये आप ही ब्रह्मा होते हैं जगत् के पालन करने के लिये आप विष्णु स्वरूप हैं और विनाश करने के वास्ते आप ही की आत्मा रुद्रदेव का स्वरूप धारण किया करते हैं जो एक केवल जलमय इस जगत् में सबका भक्षण करके स्थित रहा करते हैं ।।३५।।

शेषे त्वमेव गोविन्द चिन्त्यमानो मनोषिभिः ।
भवतो यत्पर रूप तन्नजानाति कश्चन ।।३६
अवतारेषु यद्रूप तदर्चन्ति दिवौकस ।
त्वामाराध्य पर ब्रह्म यातामुक्ति मुमुक्षव ।।३७
वासुदेवमनाराध्य को हि मोक्षमवाप्स्यति ।
यद्रूप मनसा ग्राह्य यद्ग्राह्य चक्षुरादिभि ।।३८
बुद्धया च यत्परिच्छेद्य तद्रूपमखिल तव ।
त्वन्मय्यहत्वदाधारात्वत्सृष्टा त्वामुपाश्रिता ।।३९
माधवीमिति लोकोऽयमभिधत्तेततोहिमाम् ।
एव सम्तूयमानस्तु पृथिव्या पृथिवीधर ।
सामस्वरध्वनि श्रीमान् जगर्ज्ज परिघर्घरम् ।।४०
तत समुत्क्षिप्य धरा स्वदष्ट्रया महावराह स्फुटपद्मलोचन ।
रसातलादुत्पलपत्रसन्निभ समुत्थितो नील इवाचलो महान् ।।४१
उत्तिष्ठता तेन मुखानिलाहत तदास्नवाम्भो जनलोकसश्रयान् ।
सनन्दनादीनपकल्मषान्मुनीश्चकार भूयोऽपिपविस्रतास्पदम् ।।४२
प्रयान्ति तोयानि खुराग्रवीक्षते रसातलेऽध कृतशब्दसन्तति ।
वलाहकानाञ्च ततिस्तुतस्य श्वासानिलास्तेपरित प्रयान्ति ।।४३
उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्र कुक्षेर्महावराहस्य मही विदार्य ।
विधुन्वतो वेदमय शरीर रोमान्तरस्था मुनयवो जुषन्ति ।।४४

हे गोविन्द ! बड़े-बड़े मनीषियो के द्वारा चिन्तन किये जाने वाले आप ही शेष की शय्या पर शयन किया करते हैं। आपका जो पर स्वरूप है उसे

कोई भी नहीं जानता है ॥३६॥ जब आप कोई अवतार धारण किया करते हैं और उस रूप को ग्रहण करके प्रकट होते हैं तो उसी आपके स्वरूप की देवगण अर्चना किया करते हैं। पर ब्रह्म आपकी आराधना करके मुक्ति की इच्छा रखने वाले लोग मोक्ष को प्राप्त किया करते हैं ॥३७॥ भगवान् वासुदेव की आराधना न करके ऐसा कौन है जो मोक्ष की प्राप्ति करेगा ? जो आपका रूप मन से ग्रहण करने के योग्य है और जिस स्वरूप को चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किया जाता है तथा जो बुद्धि से परिच्छेद्य रूप है वह सम्पूर्ण आपका ही स्वरूप है। आप मुझ में अर्थात् मेरे स्वरूप में हैं और मैं आपके ही समाश्रय वाली हूँ, आपके द्वारा मेरा सृजन हुआ है और आपके ही उपाश्रित भी हूँ,समस्त लोक इसी कारण से मेरा नाम माधवी कहा करता है। इस प्रकार से पृथ्वी के धारण करने वाले पृथ्वी के द्वारा स्तुत हुए थे। फिर श्रीमान् प्रभु साम स्वर ध्वनि वाले होकर परिघघर रूप में गर्जना करने वाले हो गये थे। इस तरह घरघराहट पूर्वक गर्जना करके उसके पश्चात् विकसित कमल के समान नेत्रों वाले महान् वराह रूपधारी भगवान् ने अपनी एक दाढ़ से भूमि को ऊपर उठा लिया था और रसातल से महान् नील पर्वत के तुल्य कमल दल की भाँति समुत्थित हो गये थे ॥३८।३९ ४० ४१॥ ऊपर की ओर उठते हुए वराह भगवान् के मुख से वायु निकला था उससे उस समय में जल ने ऊपर को एकदम ऊँची उछाल मारी थी और उसने जनलोक में निवास करने वाले कल्मष से रहित सनन्दनादि मुनिगण का विशेष रूप से पवित्रता का स्थान बना दिया था अर्थात् जो पहिले ही परम पवित्र थे उनको भी फिर विशेष उस जल के स्पर्श से पुनीत कर दिया था ॥४२॥ खुरों के अग्रभाग से आहत जल लगातार ध्वनि करता हुआ नीचे रसातल में जा रहा था और बलाहकों की पंक्ति के द्वारा स्तुति किये गये वराह भगवान् के श्वास वायु चारों ओर फैलकर आ रही थी ॥४३॥ मही का विदारण कर ऊपर को उठते हुए तथा जल से आर्द्रकुक्षि वाले एवम् वेदमय शरीर को कम्पायमान करने वाले महा वराह भगवान् के शरीर की रोमान्तरों में स्थित मुनिगण सेवा करते हैं ॥४४॥

अर्वाक्स्रोतास्तुकथितो भवतायस्तु मानुष. ।
ब्रह्मन्विस्तरतोब्रूहि ब्रह्मातमसृजद्यथा ॥४५

यथा सवर्णानसृजद् गुणाश्च स महामुने ।
यच्चतेपास्मृतंकर्म विप्रादीना तदुच्यताम् ॥४६
सत्त्वाभिध्यायिन पूर्वं सिसृक्षोर्ब्रह्मण. प्रजाः
प्रजायन्तकुरुश्रेष्ठसत्वोद्रिक्तामुखात्प्रजाः ॥४७
वक्षसो रजसोद्रिक्तास्तथान्याब्रह्मणोऽभवन् ।
रजसस्तमसश्चैव समुद्रिक्तास्तथोरुतः ॥४८
पद्भ्यामन्याः प्रजा ब्रह्मा ससर्ज कुरुसत्तम ।
तम.प्रधानास्ताः सर्वाश्चातुर्वण्यमिद ततः ॥४६

भीष्म ने कहा—आपने प्रथम स्रोत जोकि मानुष है उसका वर्णन तो कर दिया है। अब हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माजी ने जिस प्रकार से उसका सृजन किया था उसका विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए ॥४५॥ हे महामुने ! जिस रीति से वर्णों सहित उनकी रचना की थी और उनके गुणों का सृजन किया था तथ विप्र आदि चारों वर्णों के जो कर्म बतलाये थे यह सब बतलाने की कृपा करिये। ॥४६॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—सर्व प्रथम सत्त्व गुण के अभिध्यान करने वाले सृजन करने के इच्छुक ब्रह्माजी की जो प्रजा उत्पन्न हुई थी हे कुरु श्रेष्ठ ! वह समस्त प्रजा सत्त्वो द्रिक्त मुख से ही समुत्पन्न हुई थी ॥४७॥ इसके अनन्तर रजोगुण की प्रधानता रखने वाले वक्षःस्थल से ब्रह्माजी की अन्य प्रजा की समुत्पत्ति हुई थी। इसके पश्चात् रजोगुण और तमोगुण दोनों से उद्रिक्त कुरु प्रदेश से प्रजा उत्पन्न की थी। ४८॥ हे कुरुओं में परम श्रेष्ठ ! अन्त में ब्रह्माजी ने अपने पैरों से प्रजा का सृजन किया था। यह प्रजा तमोगुण की प्रधानता वाली हुई थी। इस प्रकार से ये चारों वर्णों का सृजन हुआ था ॥४६॥

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम ।
पादोरुवक्षस्थलतो मुखतश्च समुद्गताः ॥५०
यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकारह ।
चातुर्वर्ण्यं महाराज यज्ञसाधनमुत्तमम् ॥५१
यज्ञेनाप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण मानवा ।
आप्यायन्ते धर्मयज्ञा यतः कल्याणहेतवः ५२

निष्पद्यन्ते नरैस्ते तु सुकर्मनिरतैः सदा ।
विरुद्धाचरणापेतैः सद्भिः सन्मार्गगामिभिः ॥५३
स्वर्गापवर्गमानुष्यात् प्राप्नुवन्ति नरा नृप ।
यच्चाभिरुचितस्थानतद्यान्ति मनुजाविभो ॥५४
प्रजास्ता ब्रह्मणासृष्टाश्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थितौ ।
सम्यक् श्रुद्धाः समाचाराचरणा नृपसत्तम ॥५५
यथेच्छावासनिरताः सर्वबाधाविवर्जिताः ।
शुद्धान्तकरणा. शुद्धाधर्मानुष्ठाननिर्मला. ॥५६

हे नृप श्रेष्ठ ! ब्रह्माजी मुख वक्ष.स्थल ऊरुप्रदेश और पदों से ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य एवं शूद्र ये चार वर्ण उत्पन्न हुए हैं ॥५०॥ हे महाराज ! ब्रह्मा जी ने यज्ञ की निष्पत्ति करने के लिये ही इन चारों वर्णों की सृष्टि की थी क्योंकि,ये चारों ही वर्ण यज्ञादि की सिद्धि के परम श्रेष्ठ साधन होते हैं ॥५१॥ देवगण यज्ञ से परम तृप्त होते हैं, मानव वृष्टि के उत्सर्ग होने से आप्यायित हुआ करते हैं क्योंकि जो धर्म यज्ञ होते हैं वे पूर्णतया कल्याण करने के हेतु-भूत हुआ करते हैं ॥५२॥ सदा अच्छे कर्मों के करने में संलग्न रहने वाले, विरुद्ध आचरणों से रहित, सन्मार्ग के गमन करने वाले सत्पुरुषों के द्वारा वे यज्ञादि निष्पन्न किये जाते हैं ॥५३॥ हे नृप ! मनुष्य इस अपने मानव-जीवन से ही स्वर्ग तथा अपवर्ग की प्राप्ति किया करते हैं। मनुष्यों को जो भी स्थान रुचिकर प्रतीत होता है उसी पद को वे प्राप्त किया करते हैं ॥५४॥ इन चारों वर्णों की व्यवस्था का पालन करने वाली वह प्रजा ब्रह्माजी ने ऐसे उत्तम विधान से सृजित की थी सभी लोग पूर्णतया शुद्ध और अच्छे आचरण करने वाले थे ॥५५॥ जो भी अपनी इच्छा से जहाँ निवास करना चाहते थे उसी में निरत रहते थे और सब तरह की विघ्न-बाधाओं से रहित होते थे। सभी परम शुद्ध अन्त करण वाले एवं अपने विशुद्ध धर्म के अनुष्ठान करने के कारण निर्मल होते थे ॥५६॥

शुद्धे च तासां मनसि शुद्धान्तः संस्थिते हरौ ।
शुद्धज्ञानं प्रपश्यन्ति ब्रह्माख्ययेनतत्पदम् ॥५७

तत कानात्मकोयोऽसौ विरिंचावास उच्यते ।
ममारपातमत्यर्थं घोरमल्पाल्पसारवत् ॥५८
अधर्मबीजभूत तत्तमोलोभसमुद्गतम् ।
प्रजासु तासु राजेन्द्र रागादिकममाधनम् ॥५६
तत सा सहजा सिद्धिस्तेषा नातीव जायते ।
राजन् बदयादयश्चान्या सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति या ॥६०
तासु क्षीणास्वशेषासु वर्द्धमाने च पातके ।
द्वन्द्वाभिभवदु खार्त्तास्ता भवन्ति तत प्रजा ॥६१
ततोदुर्गाणि ताश्चक्रुर्धांर्क्षं पार्वतमौदकम् ।
धान्वनञ्च तथा दुर्गं पुरग्रामखर्वटादिषत् ॥६२
गृहाणि च यथान्याय तेषु चक्रु पुरादिषु ।
शीततापादिबाधाना प्रशमाय महामते ॥६३

पार्वत, धान्वन एवं औदक दुर्गों की रचना की थी तथा पुर खार्वट आदि का भी निर्माण किया था। उन नगर—पुर और दुर्गों में यथायोग्य गृहों की रचना की थी कि जिनमें निवास करने से शीत एवं ताप आदि की बाधाओं का शमन हो जावे ॥६२॥६३॥

प्रतिहारमिमंकृत्वा शीतादेस्ताः प्रजाः पुनः ।
वार्त्तोपायंततःश्चक्रुर्हस्तसिद्धिचकर्मजाम् ॥६४
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः ।
प्रियंगूकोविदाराश्च कोरदूषाः सचीनकाः ॥६५
मापा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलुत्थकाः ।
आढकाश्चणकाश्चैव शणाः सप्तदश स्मृताः ॥६६
इत्येता ओषधीनान्तु ग्राम्याणां जातयो नृप ।
ओषध्यो यज्ञियाश्चैवग्राम्यावन्याश्चतुर्दश ॥६७
व्रीहयः सयवा मापा गोधूमा अणवस्तिलाः ।
प्रियंगू सप्तमा ह्येता अष्टमास्तुकुलुत्थकाः ॥६८
श्यामाकस्त्वथ नीवारो वर्तुलः सगवेधुकः ।
अथ वेणुयवा प्रोक्ता स्तद्वन्मर्कटकानृप ॥६९
ग्राम्या वन्या स्मृता ह्येता ओषध्यश्च चतुर्दश ।
यज्ञनिष्पत्तये तद्वत्तयासां हेतुरुत्तमः ॥७०

प्रजाजन के द्वारा इस प्रकार से इन नगरों एवं दुर्गों की रचना हुई थी जिनसे शीतादि के दुःखों का प्रतिकार हो जावे। आवासों की रचना करने के पश्चात् प्रजाजन ने अपने जीवन के निर्वाह के लिये कर्म से उत्पन्न हाथों की सिद्धि के उपाय किये थे ॥६४॥ व्रीहि, यव, गोधूम, अणु, तिल, प्रियंगु, कोविदार, को दूष, चीनक, माष, मुद्ग, मसूर, निष्पाव, कुलुत्थ, आढ़क, चणक और शण इन सत्रह धान्यादिक की उत्पत्ति की थी ॥६५॥६६॥ हे नृप ! ये सब जो ऊपर में बताये गये हैं वे ग्राम्य ओषधियों की जातियाँ हैं। जो यज्ञीय और ग्राम्य ओषधियाँ हैं वे अन्य और चौदह होती हैं ॥६६॥ व्रीहि, यव, माष, गोधूम, अणु, तिल, सातवाँ प्रियगु और आठवाँ कुलुत्थ, श्यामाक, नीवार,

वर्त्तुल, गवेधुक, वेणुयव, मर्कटक हे नृप ! ये चौदह औषधियाँ ग्राम्य अर्थात् गाँवो मे पैदा होने वाली और वन्य अर्थात् जगलों मे उत्पन्न होने वाली कुल चौदह हैं। यज्ञों की सिद्धि के लिय इनकी समुत्पत्ति हुई थी और इन सबके उत्पन्न होने का उत्तम हेतु है ॥६८।६९।७०॥

एताश्च सहयज्ञेन प्रजाना कारण परम् ।
परापरविद प्राज्ञास्ततो यज्ञान् वितन्वते ॥७१
अहन्यहन्यनुष्ठान यज्ञाना पार्थिवोत्तम ।
उपकारकर पुसा क्रियमाण फलर्थिनाम् ॥७२
येषान्तु कालसृष्टोऽसोवपाविन्दुर्महामते ।
मर्यादा स्थापयामास यथास्थान यथागुणम् ॥७३
वर्णानामाश्रमानाञ्च धर्मान् धर्मभृतावर ।
लोकाश्चसर्ववर्णाना सम्यग्धर्मानुपालिनाम् ॥७४
प्राजापत्य ब्राह्मणाना स्मृतस्थानन्तु पार्थिव ।
स्थानमन्द्र क्षत्रियाणासग्रामेष्वनिवर्त्तिनाम् ॥७५
वैश्याना मारुतस्थान स्वधर्ममनुवर्त्तिनाम् ।
गान्धर्व शूद्रजातीना परिचर्यासु वर्त्तिनाम् ॥७६

ये औषधियाँ यज्ञ के साथ प्रजाओं का परम कारण हैं। इसके अनन्तर परापर के वेत्ता प्राज्ञ पुरुष यज्ञों का विस्तार करते हैं ॥७१। हे पार्थिवोत्तम ! दिन प्रतिदिन यज्ञों का अनुष्ठान फलों के चाहने वाले पुरुषों को किया हुआ अत्यन्त उपकार करने वाला होता है ॥७२॥ हे महामति वाले ! जिन यज्ञों के फल को काल की सृष्टि में पूरा चन्द्रमा ने पान कर लिया था। यथा स्थान और गुणों के अनुसार मर्यादा की स्थापना की थी ।७३॥ हे धर्म के धारण करने वालों में परम श्रेष्ठ ! सब वर्णों और आश्रमों के धर्मों का और भली भाँति धर्म के अनुपालन करने वाले समस्त वर्णों के लोकों का तथा ब्राह्मणों का प्राजापत्य का स्थान बताया गया है। सग्रामों में निवर्तित न होने वाले क्षत्रियों का ऐन्द्र स्थान कहा गया है ॥७३।७४॥ अपने उचित धर्म के पालन करने वाले वैश्यों का मारुत स्थान है। जो शूद्र वर्ण वाले पुरुष हैं और परिचर्या करने के

अपने समुचित धर्म में वर्तमान रहते हैं उनका शाश्वत स्थान बताया गया है ।।७६।७६।।

अथान्यान्मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ।
भृगुं मांपुलहश्चं वक्रनुमङ्गिरस तथा ।।७७
मरीचिं दक्षमत्रिश्च वसिष्ठश्चैव मानसान् ।
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणेनिश्चय गताः ।।७८
सनन्दनादयो ये च पूर्वं सृष्टास्तु वेधसा ।
न ते लोकेष्वसज्जन्त निरपेक्षा प्रजासु ते ।।७६
सर्वे ह्यागतविज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ।
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मनः ।।८०
ब्रह्मणोऽभून्महान् क्रोधस्त्रैलोक्यदहनक्षमः ।
तस्य क्रोधात् समुद्भूतजालामालावदीपित ।।८१
ब्रह्मणस्तु तदा ज्योति र्यलोक्यमखिलदहत् ।
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्यललाटात्क्रोधदीपितात् ।।८२
समुत्पन्नस्तदा रुद्रो मध्याह्नर्कसमप्रभः ।
अर्द्धं नारीनरवपु प्रचण्डोऽति शरीरवान् ।।८३
विभजात्मानमित्युक्त्वातब्रह्मान्तर्द्धे धेतत. ।
तथोक्तोऽसौद्विधास्त्रीत्वपुरुषत्वतथाकरोत् ।।८४

इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने अपने ही सदृश मानस पुत्रों का सृजन किया था। ये मानस पुत्र जो कि मन से ही समुत्पन्न हुए थे भृगु—पुलह—क्रतु—अङ्गिरा—मरीचि—दक्ष—अत्रि और वसिष्ठ नाम वाले थे। पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए ये नौ ब्रह्मा ही थे ।।७७।७८।। ब्रह्मा ने जो इनसे पहिले सनक—सनन्दन आदि का सृजन किया था उन्होंने लोकों के सृजन करने का कार्य नहीं किया था क्योंकि वे सब प्रजा की वृद्धि करने के कार्य की अपेक्षा ही नहीं रखते थे ।।७६।। ये सभी विज्ञान को प्राप्त करने वाले, वीतराग और मात्सर्य से रहित थे। इस प्रकार से महात्मा ब्रह्मा के द्वारा लोकों की सृष्टि के कार्य में इन सबके निरपेक्ष हो जाने पर ब्रह्मा जी को इस त्रिलोकी को दग्ध कर देने में समर्थ

महान् क्रोध उत्पन्न हुआ था और उनके क्रोध से ज्वाला माला की प्रदीप्ति करने वाली ज्योति समुत्पन्न हुई थी ॥८०।८१॥ उस समय में समस्त त्रैलोक्य को दग्ध करने वाली ज्योति ब्रह्मा के क्रोध से आविर्भूत हुई थी और क्रोध से दीप्त उनके ललाट से भृकुटी टेढ़ी हो गई ॥८२॥ उसी अवसर में मध्याह्न के सूर्य के समान प्रभा वाले रुद्र समुत्पन्न हुए थे। जिनका वपु अर्धनारी और नर के स्वरूप वाला था, वह परम प्रचण्ड शरीर धारी थे ॥८३॥ उनसे शरीर का विभाजन करो—ऐसा कह करके फिर ब्रह्मा उसी से अन्तर्हित हो गये थे। ऐसा कहे जाने पर इनने स्त्रीत्व और पुरुषत्व ये दो भाग कर दिये थे ॥८४॥

विभेद पुरुषत्वञ्च दशधा चैकधा च सा।
सौम्यासौम्यैस्तथारूपैं शान्तं स्त्रीत्वञ्च सप्रभुः ॥८५
विभेद बहुधा चैव स्वरूपैरसितैः सितैः।
ततो ब्रह्मा स्वयम्भूत पूर्वं स्वायम्भुवंप्रभुम् ॥८६
आत्मानमेव कृतवान् प्राजापत्येमनुं नृप।
शतरूपाञ्च तां नारीतपोनिर्धूतकल्मषाम् ॥८७
स्वायम्भुवो मनुर्नाम पत्नीत्वे जगृहे प्रभुः।
तस्माच्च पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत ॥८८
प्रियव्रतोत्तानपादप्रसूत्याकूतिसञ्ज्ञितम्।
ददौ प्रसूति दक्षाय आकूर्ति रुचयेपुरा ॥८९
प्रजापतिः स जग्राह तयोर्जज्ञे स दक्षिणः।
पुत्रो यज्ञो महाभाग दम्पत्योर्मिथुन ततः ॥९०
यज्ञस्य दक्षिणायान्तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे।
यामाइतिसमाख्यातादेवाः स्वायम्भुवेमनौ ॥९१

वह पुरुषत्व का जो स्वरूप था उसको दस भागों में विभक्त कर दिया था तथा स्त्रीत्व के स्वरूप का एक ही भाग रहा था किन्तु उस प्रभु ने स्त्रीत्व का बहुत से रूपों में विभेद वाला किया था। सौम्यों के साथ परम सौम्य, शान्त और शान्तों के साथ अतिशान्त, इस तरह से असित और सितों में भेद किया गया था। इसके अनन्तर ब्रह्मा स्वयं स्वायम्भुव मनु प्रभु के स्वरूप में हुए ॥८५। ॥८६॥ हे नृप! ब्रह्मा ने प्राजापत्य में अपने आपको ही मनु किया था और

तपश्चर्या से निर्धूत कल्मषों वाली उस नारी को शतरूपा बनाया था ॥८७॥ प्रभु स्वायम्भुव मनु ने उस शतरूपा को पत्नी के रूप से ग्रहण किया था। देवी शतरूपा ने उस स्वायम्भुव नामक पुरुष से प्रियव्रत, उत्तानपाद, प्रसूति और आकूति नामों वाली सन्तति को जन्म ग्रहण कराया था। दक्ष प्रजापति के लिये प्रसूति को दिया था और रुचि को आकूति दे दी थी ॥८८॥८९॥ प्रजापति उससे उन दोनों में दक्षिण को जन्म दिया था। हे महाभाग ! दोनों दम्पति में दक्ष पुत्र और फिर एक मिथुन हुआ था ॥९०॥ यज्ञ के दक्षिणा में बारह पुत्र समुत्पन्न हुए थे। स्वायम्भुव मनु के समय में देवगण 'यामा'—इस नाम से हुए थे ॥९१॥

समुद्र मन्थन प्रस्ताव तथा दुर्वासा का इन्द्र को शाप

क्षीराब्धौ तु तथा लक्ष्मीः किलोत्पन्ना मया श्रुता।
ख्यात्या भृगोः समुत्पन्ना एतदाह कथं भवान् ॥१
कथंचदक्षदुहितादेहत्यक्तवतीशुभा।
मेनायांगर्भसंभूतिमुमायाजन्मएवच ॥२
किमर्थंदेवदेवेनपत्नीहैमवतीकृता।
विरोधचायदक्षेणभगवान्स्तुब्रवीतुमे ॥३
इदं च श्रृणुभूपालयत्पृष्टोऽहमिहत्वया।
श्रीसंबंधोमयाप्येपश्रुतआसीत्पितामहात् ॥४
अत्रिपुत्रस्तुदुर्वासाःपरिभ्राम्यन्महीमिमाम्।
विद्याधरीकरेमालांहृष्ट्वासागन्धकीशुभाम् ॥५
याचयामासमेदेहिजटाजूटेकरोम्यहम्।
इतिविद्याधरीतेनपृष्टासाऽप्यपिणातया ॥६
ददौतस्मैमुदायुक्ता तां मालांसतदानृप।
गृहीत्वासुचिरकाल शिरोमालावबंधह ॥७

भीष्म पितामह ने कहा—मैंने ऐसा श्रवण किया है कि लक्ष्मी क्षीर सागर में समुत्पन्न हुई थी। हे भगवन् ! आपने यह कैसे कहा था कि लक्ष्मी

भृगु से ख्याति में उत्पन्न हुई थी ॥१॥ परम शुभ स्वरूप वाली प्रजापति दक्ष की पुत्री गौरी ने अपने देह का त्याग क्यों किया था और फिर उन्होंने मेनार के उदर में गर्भ स्थित होकर उमा के स्वरूप में जन्म ग्रहण क्यों किया था ? ॥२॥ देवों के भी देव शिव ने हैमवती को पुनः किसलिये पत्नी के स्वरूप में स्वीकार किया था। प्रजापति दक्ष के साथ शिव का विरोध किस कारण से हुआ था ? आप कृपाकर यह सब मुझे बतलाइये ॥३॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—हे भूपाल ! आपने जो कुछ इस समय मुझसे पूछा है उसका उत्तर अब आप श्रवण कीजिए। मैंने भी यह श्री का सम्बन्ध पितामह से सुना था ॥४॥ महर्षि अत्रि के पुत्र दुर्वासा ऋषि इसी मही मण्डल में भ्रमण कर रहे थे उस समय में परम सुगन्धित और अत्यन्त सुन्दर माला को विद्याधरी के हाथ में देखकर उन्होंने विद्याधरी से याचना की थी कि इस माला को मुझको देदो, मैं इसको अपनी जटाजूट में धारण करूँगा। इस प्रकार से उस ऋषि के द्वारा वह विद्याधरी पूछी गई थी। ५।६॥ हे नृप ! उस विद्याधरी ने परम प्रसन्नता के साथ उस माला को ऋषि के लिये दे दिया था और उसे ग्रहण कर ऋषि ने बहुत समय तक अपने शिर में बाँध लिया था ॥७।

उन्मत्तप्रेतवद्विप्रः शोभमानोऽब्रवीदिदम् ।
इय विद्याधरीकन्या पीनोन्नतपयोधरा ॥८
शोभालंकारसौभाग्यंयुक्ताद्दष्टाततोमनः ।
क्षोभमायातिमेचाद्यनाहकामेविचक्षणः ॥९
व्रजामितावदन्यत्रसौभाग्य स्वप्रदर्शयन् ।
एवमुक्त्वासराजेंद्रपरिबभ्राममेदिनीम् ॥१०
ऐरावतसमारूढंराजानंत्रिदिवौकसाम् ।
त्रैलोक्याधिपतिंशक्रंभ्राजमानंशचीपतिम् ॥११
तामात्मशिरसोमालांभ्रमदुन्मत्तषट्पदाम् ।
आदायामरराजायचिक्षेपोन्मत्तवन्मुनिः ॥१२
गृहीत्वादेवराजेनमालासागजमूर्द्धनि ।
मुक्तारराजसामालाकैलासेजाह्नवीयथा ॥१३

मदांधकारिताक्षोऽसौगंधाघ्राणेनवारणः ।
करेणादायचिक्षेपतामालांपृथिवीतले ॥१४

उस अत्यन्त सुगन्ध सम्पन्न माला को अपने शिर की जटाओं में बंधकर वह ब्राह्मण परम शोभित होता हुआ एक उन्मत्त प्रेत की भाँति यह बोला करता था कि यह विद्याधरी कन्या पीन (परिपुष्ट) और ऊँचे स्तनों वाली है ॥८॥ यह अति शोभा और सौभाग्य से संयुक्त है। मैंने इसको देखा है और तभी से मेरा मन क्षोभ को प्राप्त हो गया है तथा मैं काम कला में परम विचक्षण हूँ ॥९॥ मैं अब अपने सौभाग्य का स्वयं प्रदर्शन करता हुआ अन्य स्थान में जाता हूँ। हे राजेन्द्र ! वह इस तरह से कहता हुआ इस मही मण्डल में भ्रमण किया करता था ॥१०॥ एकबार देवों के राजा, त्रिलोकी के अधिपति, शची के पति भाजमन इन्द्र को ऐरावत नामक हाथी पर संस्थित उस ऋषि ने देखा था ॥११॥ उस समय एक उन्मत्त की भाँति उस मुनि ने उस अपने शिर की जटाओं में धारण की हुई माला को, जिसमें गन्ध—प्रमत्त भौंरे लिपटे हुए थे, अपने शिर से उतार कर देवराज इन्द्र के ऊपर फेंक दिया था ॥१२॥ देवराज इन्द्र ने उस माला को लेकर हाथी के मस्तक पर डाल दी थी और ऐरावत हाथी के मस्तक पर रहने वाली मुक्ता पर पड़ी हुई उस माला की ऐसी शोभा दिखाई दे रही थी जैसी कैलाश पर्वत पर गङ्गा की सुषमा होती है ॥ १३ । मद से अन्धकार युक्त नेत्रों वाले तथा उस माला की परम सुन्दर सुगन्ध का घ्राण करते हुए उस हाथी ने अपनी सूंड से उसे उतार कर पृथ्वीतल में फेंक दिया था ॥१४॥

ततस्तुक्रोधमगमत् दुर्वासामुनिपुङ्गवः ।
राजेन्द्र देवराजानं क्रुद्धश्चेदमुवाचह ॥१५
ऐश्वर्यमदृष्टात्मन्नतिस्तब्धोऽसिवासव ।
श्रियोधामस्रजंयस्मान्मद्दत्तांनाभिनंदसि ॥१६
त्रैलोक्यश्रीरतोमूढ़विनाशमुपयास्यति ।
मद्दत्ताभवतामालाक्षितौक्षिप्तायस्मान्महीतले ॥१७
तस्मात्प्रणष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यंतेभविष्यति ।
मस्यमंजातकोपस्यभयंतेतिचराचरम् ॥१८

तमात्वमतिगर्वेणदेवराजावमन्यसे ।
महेद्रोवारणस्कधादवतीर्यत्वरान्वित ॥१६
प्रसादयामासमुनिदुर्वाससमकल्मषम् ।
प्रसाद्यमान· सतदाप्रणिपातपुरःसरम् ॥०२
नाहक्षमिष्येवहुनाकिमुक्तेनशतक्रतो ।
इत्युक्त्वाप्रययौविप्रोदेवराजोऽपितपुन. ॥२१

हे राजेन्द्र ! उस समय में साक्षात् क्रोध के स्वरूप वाले, मुनि मण्डल में परम श्रेष्ठ भगवान् दुर्वासा ऋषि ने देवराज इन्द्र से अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह कहा था ॥१५॥ हे इन्द्र ! तुम अपने ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त हो रहे हो और अत्यन्त दुष्ट आत्मा वाले तुमको अपने इस विशाल वैभव से बहुत अधिक घमण्ड हो रहा है जिसके कारण से परम शोभा श्री से सम्पन्न मेरे द्वारा प्रदान की हुई इस माला का तुम अभिनन्दन नहीं कर रहे हो ॥१६॥ मेरे द्वारा दी हुई इस माला को आपने तिरस्कार पूर्वक भूमि पर डाल दिया है इसी कारण से प्रतीत होता है कि इस त्रैलोक्य की श्री मे तुम इतने निरत हो गये हो कि तुमको कुछ भी सूझ नहीं रहा है। हे महामूढ ! मेरा शाप है कि तुम शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जाओगे ॥१७॥ अब तेरी यह त्रैलोक्य की लक्ष्मी का सम्पूर्ण ऐश्वर्य नष्ट हो जायगा। जिसके हृदय में उत्पन्न क्रोध से समस्त चराचर भयभीत हो जाया करता है उसी मुझ दुर्वासा ऋषि को, हे देवों के राजन् ! अत्यन्त बढ़े हुए गर्व के कारण अपमानित करते हो। इस प्रकार से दुर्वासा ऋषि के क्रोध युक्त वचनों को सुनते ही देवराज इन्द्र बड़ी ही शीघ्रता से हाथी से नीचे उतर आए थे ॥१८ १९। उस समय में कल्मष रहित मुनि को इन्द्र ने बहुत कुछ स्तुति करके प्रसन्न किया था। प्रणिपात पूर्वक प्रसादन करने से दुर्वासा प्रसन्न तो हो गये थे ॥२०॥ किन्तु वे कहने लगे हे शतक्रतो ! तुम चाहे जितना करो और मुझसे अब अधिक प्रार्थना करने से कुछ भी लाभ नहीं है क्योंकि मैं तुमको क्षमा नहीं करूँगा। इतना कहकर विप्र दुर्वासा चले गये और फिर उसके पश्चात् इन्द्र भी चला गया था ॥२१॥

प्रागतं गानसलाणप्रययावमरावतीम् ।
ततः प्रभृतिनिःश्रीकंसशक्रभुवनत्रयम् ॥२२

नयज्ञाः सप्रवर्त्तन्तेनतपस्यन्तितापसाः ।
नचदानानिदीयन्तेनष्टप्रायमभूज्जगत् ॥२३
एवमत्यंतनिश्रीकेत्रैलोक्येसत्ववर्जिते ।
देवान्प्रतिबलोद्योगंचक्रुर्दैतेयदानवाः ॥२४
विजितास्त्रिदशादैत्यैरिन्द्राद्याः शरणंययुः ।
पितामहंमहाभागहुताशनपुरोगमाः ॥२५
यथावत्कथितेदेवैर्ब्रह्माप्राहततासुरान् ।
क्षीरोदस्योत्तरंकूलंजगाममहितःसुरैः । २६
गत्वाजगादभगवान्वासुदेवंपितामहः ।
उत्तिष्ठविष्णोशीघ्रंत्वदेवतानाहितकुरु ॥२७
त्वयाविनादानवैस्तुजिताःसर्वेपुनः पुनः ।
इत्युक्तःपुंडरीकाक्षःपुरुषःपुरुषोत्तमः । २८

देवराज इन्द्र अपने ऐरावत हाथी पर सवार होकर अमरावती को चले गये थे। तभी से लेकर इन्द्र के सहित तीनों भुवन श्री हीन होगये थे ॥२२॥ तभी से ऐसा होगया कि न तो कहीं पर भी कोई यज्ञादि किये जाते हैं और न तापस वर्ग किसी प्रकार की तपश्चर्या ही किया करते हैं। न कोई दान दिये जाते हैं। सम्पूर्ण जगत् नष्ट प्राय सा हो गया था ॥२३॥ जब इस रीति से यह त्रैलोक्य स्वत्व से रहित और अत्यन्त ही श्री हीन हो गया तो उसमें उस समय दैत्य—दानवों ने अच्छा अवसर देखा और देवगण के प्रति अपने बल का प्रयोग करने लगे थे ॥२४॥ दैत्यों ने इन्द्रादि समस्त देवगण को अपने बल—पराक्रम से जीत लिया था। उस समय में इन्द्रादि देवों ने अग्नि को आगे करके महान् भाग वाले पितामह की शरण को ग्रहण किया था ॥२५॥ देवों ने अपनी सारी गाथा ठीक ठीक सुनादी तो उस समय में ब्रह्माजी ने देवों से कहा और सुरों के सहित स्वयं क्षीर सागर के उत्तर की ओर तट पर चले गये थे ॥२६॥ वहाँ पहुँचकर भगवान् पितामह ने वासुदेव से प्रार्थना की थी कि हे विष्णुदेव ! आप अब शीघ्र ही शेष शय्या से उठिये और देवगण का हित—सम्पादन करिये ॥२७॥ हे भगवन् ! आपकी सहायता के बिना ये समस्त देवगण बार-बार दानवों के द्वारा पराजित कर दिये गये हैं। इस तरह से ब्रह्मादि के द्वारा

प्रार्थना की गई तो परम पुरुष भगवान् पुण्डरीक के सदृश नेत्रों वाले पुरुषोत्तम प्रभु ने यह श्रवण किया ॥२८॥

अपूर्वरूपसस्थानान्दृष्ट्वादेवानुवानुवाचह ।
तेजसोभवतादेवा करिष्याम्युपवृं हणम् ॥२६
वदाम्यहयत्क्रियताभवद्भिस्तदिदसुरा ।
आनीयसहितादैत्यैं क्षीराब्धौसकलौषधी ॥३०
मथानमदरकृत्वानेत्रकृत्वाचवासुकिम् ।
मथ्यतामसृतदेवा सहाये मय्यवस्थिते ॥३१
सामपूर्वचदैतेयास्तत्रसम्भाव्यकर्मणि ।
समानफलभोक्तारोयूयचात्रभविष्यथ ॥३२
मथ्यमानेचतत्राब्धौयत्समुत्पद्यतेऽमृतम् ।
तत्पानाद्बलिनोयूयममरा सभविष्यथ ॥३३
तथैवाहकरिष्यामियथात्रिदशविद्विष ।
नप्राप्स्यत्यमृतदेवा केवलक्लेशभागिन ॥३४
इत्युक्तादेवदेवेनसर्वएवन्त सुरा ।
सधानमसुरैं कृत्वायत्नवन्तोऽमृतेभवन् ॥३५

उस समय मे एक अपूर्व रूप और सस्थान वाले देवताओ को देखकर भगवान् विष्णु ने उन दवों से कहा—हे देवगण ! मैं आप सबको अपने तेज से उपवृंहित कर दूँगा ॥२६॥ मैं इस समय जो आपको बतलाता हूँ वह आप लोग करें । आप समस्त देवगण दैत्यो को भी साथ में लेकर इस क्षीर समुद्र में सकलौषधियाँ लाओ और मन्दर पर्वत को मथान बनाकर तथा वासुकि सर्पराज को उसकी नेथी (मन्थन करने वाली डोर) बनाकर इस सागर से मन्थन कर अमृत को प्राप्त करो । इस महान् कार्य की सफलता प्राप्त करने मे मैं आपको पूर्णतया सहायता करने वाला रहूँगा ॥३०॥३१॥ उन दैत्यो को शान्तिपूर्वक समझा दो कि इस महान् उद्योग के करने पर जो भी इसका सुफल सम्प्राप्त होगा उसको हम और आप सब समान रूप से भोगेंगे ॥३२॥ इस समुद्र मन्थन करने के कर्म के मध्य मे इससे जो अमृत की उत्पत्ति होगी उसके

पान करने से आप समस्त देवगण महान् बल सम्पन्न हो जाओगे ॥३३॥ मैं उस अमृत पान के अवसर पर कुछ ऐसी - क्रिया कर दूंगा कि आप लोगों के विद्वेषी दैत्य उस अमृत को प्राप्त नहीं कर सकेंगे और हे देवगण ! वे समस्त दैत्य लोग इस सागर-मन्थन में किये जाने वाले क्लेश एवं परिश्रम के ही भागीदार रह जायेंगे ॥३४। इस प्रकार से देवों के भी देव विष्णु भगवान् के द्वारा कहे जाने पर सभी से सब देवताओं ने आकर असुरों के साथ सलाह एवं मेल जोल की बात-चीत करके अमृत के निकालने के प्रयत्न में सब संलग्न हो गये थे ॥३५॥

सर्वौषधीः समानीयदेवदैतेयदानवाः ।
क्षिप्त्वाक्षीराब्धिपयसिशरदभ्रामलत्विषि ॥३६
मंथानंमंदरंकृत्वानेत्रंकृत्वानवासुकिम् ।
ततो मथितुमारब्धाराजेंद्रतरसामृतम् ॥३७॰
विबुधा.सहिताःसर्वेयत.पुच्छतः स्थिता. ।
विष्णुनावासुकेर्दैत्या.पूर्वकायनिवेशिताः ॥३८
तेतस्यप्राणवातेनवह्निनाचहतत्विषः ।
निस्तेजसोऽसुराःसर्वेबभूवुरमरद्युते ॥३९
तेनैवमुखनिःश्वासवायुनाथबलाहृतैः ।
पुच्छप्रदेशेवर्षद्भिस्तदाचाप्यायिता.सुराः ॥४०
क्षीरोदमध्येभगवान्ब्रह्माब्रह्मविदांवरः ।
महादेवोमहातेजाविष्णुपृष्ठनिवासिनो ॥४१
बाहुभ्यांमंदरंगृह्यपद्मवत्सपरंतपः ।
भृह्वलेचतदाकृत्वागृहीत्वामंदराचलम् ॥४२

समस्त देव दैत्य और दानवों ने सर्वौषधियाँ एकत्रित की थी और उन्हें शरद मेघ के आकाश के समान निर्मल कान्ति वाले क्षीर सागर के जल में डाल दिया था ॥३६॥ हे राजेन्द्र ! उन सबने मन्दराचल को मन्थान बनाया और वासुकि को मन्थन करने की नेत्री बनाकर बड़े वेग और जोश के साथ सभी देव दानव अमृत प्राप्ति के लिये मन्थन करने लगे थे ॥३७॥ हित से युक्त

समस्त देवता लोग जिधर वासुकि सर्प की पूँछ थी उधर की ओर स्थित हो गये थे और भगवान् विष्णु ने दैत्यों को वासुकि के पूर्वकाय अर्थात् मुख की ओर खड़ा करा दिया था ॥३८॥ वे सब दैत्यगण वासुकि सर्प की अ युण्डा श्वासों से और वह्नि से क्षीण कान्ति वाले हो गये थे। हे अमर द्युति वाले ! वे सभी असुरगण उस समय निस्तेज हो गये थे ॥३९॥ उस समय में वासुकि सर्प के मुख से निसृत वायु से पूँछ की ओर वर्षने वाले मेघों से सुरगण अच्छी तरह तृप्त हो रहे थे अर्थात् देवों का श्रम शान्त हो रहा था ॥४०॥ उस क्षीर सागर के मध्य में ब्रह्म वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ ब्रह्माजी थे। महान् देव और महातेज वाले विष्णु पृष्ठ निवासी थे ॥४१॥ उस परन्तप ने दोनों बाहुओं से उस मन्दराचल को पद्म की भाँति ग्रहण कर लिया था और दोनों बाहुओं को शृङ्खला बनाकर मन्दर गिरि का ग्रहण किया था। ४२॥

देवानांदानवानांचबलमध्येव्यवस्थितः ।
क्षीरोदमध्येभगवान्कूर्मरूपीस्वयंहरिः ॥४३
अन्येनतेजसादेवानुपबृंहितवान्हरिः ।
मथ्यमानेततस्तस्मिन्क्षीराब्धौदेवदानवैः ॥४४
हविर्धान्यभवत्पूर्वंसुरभिःसुरपूजिता ।
जग्मुर्मुदंतदादेवादानवाश्चमहामते ॥४५
व्याक्षिप्तचेतसःसर्वेबभूवुस्तिमितेक्षणाः ।
किमेतदितिसिद्धानांदिविचिंतयतांतदा ॥४६
बभूववारुणीदेवीमदाघूर्णितलोचना ।
कृतावर्त्ताततस्तस्मात्प्रस्खलंतीपदेपदे ॥४७
एकवस्त्रामुक्तकेशीरक्तांतस्तब्धलोचना ।
अहंबलप्रदादेवीमांवागृह्णन्तुदानवाः ॥४८
अशुचिवारुणीमत्वात्यक्तवंतस्तदासुराः ।
जगृहुस्तांतदादैत्याग्रहणान्तेसुराभवत् ॥४९

देवों और दानवों के बल के मध्य में विशेष रूप से अवस्थित क्षीर सागर के बीच में भगवान् हरि स्वयं कूर्म रूप में स्थित थे ॥४३॥ इसके अनन्तर

देवों और दानवों के द्वारा उस क्षीर सागर के मन्थन किये जाने पर भगवान् हरि ने अन्य तेज से देवों को बृंहित किया था ॥ ४४ ॥ सुरों के द्वारा पूजित हुई सुरभि पूर्व में हविर्धानी हुई थी। हे महामति वाले ! उस समय में देवगण और दानवगण सब परम प्रसन्नता को प्राप्त हुए थे ॥४५॥ सब व्याक्षिप्त चित्त वाले और स्तिमित नेत्रों वाले हो गये थे। ऐसा देखकर दिविलोक में उस अवसर पर यह क्या कारण है—ऐसा सिद्ध पुरुष चिन्तन करने लगे थे ॥४६॥ फिर उससे अपाङ्गों से सम्पन्न तथा मद से घूर्णित नेत्रों वाली और कदम-कदम पर गिरती-पड़ती हुई वारुणी देवी प्रकट हुई थी ॥४७। एक वस्त्र धारण करने वाली, केशों को खोले हुए तथा रक्त और मन्दर से स्तब्ध नेत्रों वाली वह देवी यह कह रही थी कि हे दानवो ! आप लोग मुझे ग्रहण करो, मैं बल प्रदान करने वाली हूँ ॥४८॥ देवगण ने उस वारुणी को अपवित्र समझ कर त्याग दिया था और दैत्यों ने उस अवसर पर उसका ग्रहण किया था। उसके ग्रहण करते ही वह अन्त में सुरा बन गई थी ॥४९॥

मंथनेपरिजातोऽभूद्देवश्रीनन्दनोद्भमः ।
रूपौदार्य्यगुणोपेतास्ततश्चाप्सरसांगणाः ॥५०
पश्चिकोऽस्यस्तदाजातास्सामान्यादेवदानवैः ।
सर्वास्ताःकृतपूर्वास्तुसामान्याःपुण्यकर्मणा ॥५१
ततः शीतांशुरभवद्देवानांप्रीतिदायकः ।
ययाचेशंकरोदेवोजटाभूषणकृन्मम ॥५२
भविष्यतिनसंदेहोगृहीतोऽयंमयाशशी ।
अनुमेनेचतंब्रह्माभूषणायहरस्यतु ॥५३
ततोविषंसमुत्पन्नं कालकूटभयावहम् ।
तेनचैवार्दितास्सर्वेदानवाःसहदैवतैः ॥५४
महादेवेनतत्पीतंविषंगृह्यस्वेच्छया ।
तस्यपानान्नीलकण्ठस्तदाजातोमहेश्वरः ॥५५
पीतावशेषंनागास्तुक्षीराब्धेस्तुसमुत्थितम् ।
ततोधन्वंतरिर्जातःश्वेतांबरधरःस्वयम् ॥५६

समुद्र मन्थन करने मे देव श्री नन्दन द्रुम पारिजात प्रकट हुआ था। इसके अनन्तर रूप और उदारता से सयुत अप्सराओं के समूह निकले थे। ५०॥ उस समय मे वे साठ करोड उत्पन्न हुई थी जो देव दानवों के लिये सामान्य थी। वे सब कृत पूर्वा अर्थात् पूर्व म ही की हुई थीं और पुण्य कर्म के द्वारा सामान्य हो गई थी ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर शीतांशु (चन्द्रमा) हुआ था जो कि देवगण को प्रीति के प्रदान करने वाला था। उस चन्द्र को भगवान् शङ्कर देव ने माँग लिया था कि यह मेरी जटाओ को विभूषित करने वाला भूषण बन जायगा ॥ ५२ ॥ यह मेरे शिर को अलकृत करने वाला होगा— इसमें कुछ भी सन्देह नही है। अतएव इस चन्द्र को मैंने ग्रहण कर लिया है। यह चन्द्रमा भगवान् शिव की जटाओ का भूषण हो जावे इसका समर्थन ब्रह्माजी ने भी कर दिया था ॥ ५३ ॥ इसके पश्चात् फिर उस मन्थन किये जाने वाले समुद्र से महान् भय को देने वाला कालकूट की उत्पत्ति हुई थी। उस कालकूट महाविष से देवगण के सहित समस्त दानव भी अर्दित अर्थात् दुःखित हो गये थे ॥ ५४ ॥ उस समय मे सबको परम समुत्पीडित एवम् वेचैन देखकर महादेव ने उन सबकी चिन्ता एवम् व्यथा को निवारण करने के लिये अपनी ही इच्छा से ग्रहण कर उसका पान कर लिया था। उसको पीकर कण्ठ मे ही धारण किये रहने से उसी समय से महेश्वर नीले कण्ठ वाले हो गये थे ॥५५॥ शिव के पीने के समय जो कुछ थोड़ा भाग इधर उधर रह गया था उसका पान नागो ने कर लिया था, इसके उपरान्त उस क्षीर सागर से समुत्थित स्वय श्वेत वर्ण के वस्त्र धारण किये हुए भगवान् धन्वन्तरि हुए थे ॥५६॥

विभ्रत्कमडलु पूर्णममृतस्यसमुत्थित ।
तत स्वस्थमनस्रास्तेवैद्यराजस्यदर्शनात् ॥५७
ततश्चाश्व समुत्पन्नोनागश्चैरावनस्तथा ।
तत स्फुरत्कांतमतिविकासिकमलेस्थिता ॥५८
श्रीदेवीपयसस्तस्मादुत्थिताघृतपकजा ।
तातुष्टुवुर्मुदायुक्ता श्रीसूक्तेनमहर्षयः ॥५९
विश्वावसुमुखास्तस्यगधर्वाःपुरतोजगु ।
घृताचीप्रमुखास्तत्रननृतुश्चाप्सरोगणा ॥६०

गंगाद्या सरितस्तोयैः स्नानार्थमुपतस्थिरे ।
दिग्गजाहेमपात्रस्थमादाय विमलजलम् ॥६१
स्नापयाचक्रिरेदेवी सर्वलोकमहेश्वरीम् ।
क्षीरोदस्तु स्वयतस्यै मालामम्लानपङ्कजाम् ॥६२
ददौविभूषणान्यगे विश्वकर्माचकारह ।
दिव्यमाल्याम्बरधरा स्नाता भूषणभूषिताम् ॥६३

भगवान् धन्वन्तरि अमृत से भरे हुए एक कमण्डलु को हाथ में ग्रहण करते हुए ही समुद्र से उठकर प्रकट हुए थे। तब तो वहाँ सभी लोगों ने भगवान् वैद्यराज का दर्शन किया था और सबके मन को स्वस्थता एवं शान्ति प्राप्त हुई थी ॥५७॥ इसके बाद में एक अश्व और ऐरावत हाथी प्रकट हुए थे। फिर स्फुरित, कान्ति वाली तथा मति से युक्त और विकसित कमल में स्थित, हाथ में कमल पुष्प धारण किये हुए उस सागर से श्री देवी उत्पन्न हुई थी। महर्षिगण ने श्री सूक्त के द्वारा परम प्रसन्न होते हुए उस देवी का स्तवन किया था ॥५८-॥५९॥ श्री देवी के आगे समस्त गन्धर्वों ने जिनमें विश्वावसु प्रमुख थे उनका यशोगान किया था। घृताची नाम वाली जिनकी शिरोमणि नेता था। ऐसी सब अप्सराओं ने श्री देवी के सामने नृत्य किया थी ॥६०। गङ्गा आदि सरिताएं अपने जल से देवी का स्नान कराने के लिए उपस्थित हुई थीं। दिशाओं में रहने वाले गजों ने सुवर्ण के बड़े-बड़े कलशों में महा परम विमल तीर्थों का जल भरकर सम्पूर्ण लोकों की महेश्वरी श्री देवी का स्नान कराया था। क्षीर सागर ने स्वयं अम्लान कमलों की माला लेकर उस महालक्ष्मी देवी को समर्पित की थी। अंगों में अन्य समस्त भूषणों के द्वारा विश्वकर्मा ने उस देवी को स्वलङ्कृत किया था। उस समय वह देवी परमोत्तम माला और अत्यन्त दिव्य वस्त्रों का धारण कर स्नान करने के पश्चात् भूषणों से विभूषित हो गई थी ।६१।६२।६३।

इन्द्राद्याश्चामरगणा विद्याधरमहोरगा. ।
दानवाश्चमहादैत्याराक्षसाः सह गुह्यकैः ।।६४
कन्यामभिलषन्तिस्म ततो ब्रह्माउवाचह ।
वासुदेव त्वमेवैनामयादत्ता गृहाणवै ॥६५

देवाश्च दानवाश्चैवप्रतिषिद्धामयात्विह ।
तुष्टोऽहभवतस्तावदलोल्येनेहकर्मणा ॥६६
मातुश्चीर्ब्रह्मणाप्रोक्तादेविगच्छस्व केशवम् ।
मयादत्तपतिप्राप्यमोदस्वशाश्वती.समा ॥६७
उद्वेगचपरजग्मुर्दैत्याविष्णुपराङ्मुखाः ।
त्यक्तास्तुदानवालक्ष्म्याविप्रचित्तिपुरोगमाः ॥६८
ततस्तेजगृहुर्दैत्याधन्वन्तरिकरस्थितम् ।
अमृततन्महावीर्य्यादिदैत्याः पापसमन्विता ॥६६
माययालोभयित्वातुविष्णु स्त्रीरूपसश्रय. ।
आगत्यदानवान्प्राह दीयतामेकमडलु ॥७०

उस परम दिव्य स्वरूप वाली कन्या को प्राप्त करने की अभिलाषा इन्द्र आदि देवगण, विद्याधर, महोरग, दानव, महादैत्य और गुह्यकों के सहित राक्षस सभी लोग कर रहे थे ॥६४॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजी ने कहा—हे वासुदेव ! मेरे द्वारा समर्पित इस कन्या लक्ष्मी देवी को आप ही ग्रहण कीजिए ॥६५॥ मैंने सभी इन देवों और दानवों से निषेध कर दिया है अर्थात् मैं इनमें किसी को भी इसे देना नहीं चाहता हूँ । मेरा मन तो आपके परम शान्त स्वभाव से परम सन्तुष्ट है अत. इसे ग्रहण करने के लिये आप ही योग्य वर हैं ॥६६॥ ब्रह्माजी ने उस श्री देवी से कहा—हे देवि ! तुम भगवान् केशव के समीप में जाओ । मेरे द्वारा दी हुई तुम भगवान् जैसा पति प्राप्त करके बहुत से वर्षों तक मुदित रहो । ६७॥ यह देखकर विष्णु से पराङ् मुख रहने वाले दैत्यों के हृदय में बड़ा उद्वेग उत्पन्न हुआ था । विप्रचित्ति जिनमें प्रधान था वे समस्त दानव लक्ष्मी के द्वारा परित्यक्त कर दिये गये थे ॥६८॥ इसके पश्चात् उस समस्त दैत्यों ने भगवान् धन्वन्तरि के हाथ में जो अमृत से परिपूर्ण कलश था उसे ले लिया था क्योंकि दैत्यगण तो महान् बलशाली थे और पाप कर्मों से युक्त भी थे ॥६६॥ परम सुन्दरी स्त्री का स्वरूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु ने अपनी भुवन मोहनी माया से उन दैत्यों को प्रलोभन दिया था । मोहनी ने वहाँ आकर उन दानवों से कहा कि आप सब लोग एक मण्डल बनाकर स्थित हो जाओ और इस अमृत के कमण्डलु को मुझे दे दो । ७०॥

गयाद्या: सरितस्तोयैः स्नानार्थमुपतस्थिरे ।
दिग्गजाहेमपात्रस्थमादाय विमलजलम् ॥६१
स्नापयाचक्रिरेदेवीं सर्वलोकमहेश्वरीम् ।
क्षीरोदस्तु स्वयतस्यै मालामम्लानपंकजाम् ॥६२
ददौविभूषणान्यंगे विश्वकर्माचकारह ।
दिव्यमाल्याम्बरधरां स्नातां भूषणभूषिताम् ॥६३

भगवान् धन्वन्तरि अमृत से भरे हुए एक कमण्डलु को हाथ में ग्रहण करते हुए ही समुद्र से उठकर प्रकट हुए थे । तब तो वहाँ सभी लोगों ने भगवान् वैद्यराज का दर्शन किया था और सबके मन को स्वस्थता एवं शान्ति प्राप्त हुई थी ॥५७॥ इसके बाद में एक अश्व और ऐरावत हाथी प्रकट हुए थे । फिर स्फुरित, कान्ति वाली तथा मणि से युक्त और विकसित कमल में स्थित, हाथ में कमल पुष्प धारण किये हुए उस सागर से श्री देवी उत्पन्न हुई थी । महर्षिगण ने श्री सूक्त के द्वारा परम प्रसन्न होते हुए उस देवी का स्तवन किया था ॥५८-॥५९॥ श्री देवी के आगे समस्त गन्ध० ने जिनमें विश्वावसु प्रमुख थे उनका यशोगान किया था । घृताची नाम वाली जिनकी शिरोमणि नेता था । ऐसी सब अप्सराओं ने श्री देवी के सामने नृत्य किया थी ॥६०॥ गङ्गा आदि सरिताएँ अपने जल से देवी का स्नान कराने के लिए उपस्थित हुई थीं । दिशाओं में रहने वाले गजों ने सुवर्ण के बड़े-बड़े कलशों में वह परम विमल तीर्थों का जल भरकर सम्पूर्ण लोकों की महेश्वरी श्री देवी का स्नान कराया था । क्षीर सागर ने स्वयं अम्लान कमलों की माला लेकर उस महालक्ष्मी देवी को समर्पित की थी । अंगों में अन्य समस्त भूषणों के द्वारा विश्वकर्मा ने उस देवी को स्वलङ्कृत किया था । उस समय वह देवी परमोत्तम माला और अत्यन्त दिव्य वस्त्रों को धारण कर स्नान करने के पश्चात् भूषणों से विभूषित हो गई थी ।६१।६२।६३।

इन्द्राद्याश्चामरगणा विद्याधरमहोरगाः ।
दानवाश्चमहादैत्याराक्षसाः सह गुह्यकैः ॥६४
कन्यामभिलषन्तिस्म ततो ब्रह्माउवाचह ।
वासुदेव त्वमेवैनामयाद्दत्तां गृहाणवै ॥६५

देवाश्च दानवाश्चैवप्रतिपिद्धामयात्विह ।
तुष्टोऽहभवतस्तावदलौल्येनेहकर्मणा ॥६६
मातुश्रीर्ब्रह्मणाप्रोक्तादेविगच्छस्व केशवम् ।
मयादत्तपतिप्राप्यमोदस्वशाश्वती.समा ॥६७
उद्वेगचपरंजग्मुर्दैत्याविष्णुपराङ्मुखाः ।
त्यक्तास्तुदानवालक्ष्म्याविप्रचित्तिपुरोगमाः ॥६८
ततस्तेजगृहुर्दैत्याधन्वन्तरिकरस्थितम् ।
अमृततन्महावीर्य्यादिदैत्याः पापसमन्विता. ॥६६
माययालोभयित्वातुविष्णुःस्त्रीरूपसश्रय. ।
आगत्यदानवान्प्राह दीयतामेकमडलु ॥७०

उस परम दिव्य स्वरूप वाली कन्या को प्राप्त करने की अभिलाषा इन्द्र आदि देवगण, विद्याधर, महोरग, दानव, महादैत्य और गुह्यकों के सहित राक्षस सभी लोग कर रहे थे ॥६४॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजी ने कहा—हे वासुदेव ! मेरे द्वारा समर्पित इस कन्या लक्ष्मी देवी को आप ही ग्रहण कीजिए ॥६५॥ मैंने सभी इन देवो और दानवो से निषेध कर दिया है अर्थात् मैं इनमें किसी को भी इसे देना नही चाहता हूँ । मेरा मन तो आपके परम शान्त स्वभाव से परम सन्तुष्ट है अतः इसे ग्रहण करने के लिये आप ही योग्य वर हैं ॥६६॥ ब्रह्माजी ने उस श्री देवी से कहा—हे देवि ! तुम भगवान् केशव के समीप में जाओ । मेरे द्वारा दी हुई तुम भगवान् जैसा पति प्राप्त करके बहुत से वर्षों तक मुदित रहो । ६७॥ यह देखकर विष्णु से पराङ्मुख रहने वाले दैत्यों के हृदय मे बड़ा उद्वेग उत्पन्न हुआ था । विप्रचित्ति जिनमें प्रधान था वे समस्त दानव लक्ष्मी के द्वारा परित्यक्त कर दिये गये थे ॥६८॥ इसके पश्चात् उन समस्त दैत्यो ने भगवान् धन्वन्तरि के हाथ मे जो अमृत से परिपूर्ण कलश था उसे ले लिया था क्योंकि दैत्यगण तो महान् बलशाली थे और पाप कर्मों से युक्त भी थे ॥६६॥ परम सुन्दरी स्त्री का स्वरूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु ने अपनी भुवन मोहनी माया से उन दैत्यों को प्रलोभन दिया था । मोहनी ने वहाँ आकर उन दानवो से कहा कि आप सब लोग एक मण्डल बनाकर स्थित हो जाओ और इस अमृत के कमण्डलु को मुझे दे दो । ७०॥

युष्माकंवशगाभूत्वास्थास्यामिभवतांगृहे ।
तांदृष्ट्वारूपसम्पन्नांनारीन्त्रैलोक्यसुन्दरीम् ।।७१
प्रार्थयानास्सुवपुषंलोभोपहतचेतसः ।
दत्त्वाऽमृतंतदातस्यैततोऽपश्यन्ततेऽग्रतः ।।७२
दानवेभ्यस्तदादायदेवेभ्य.प्रददेऽमृतम् ।
तत.वपुःसुरगणाः शक्राद्यास्तत्तदामृतम् ।।७३
उद्यतायुधनिस्त्रिंशादैत्यांस्तांस्तेसमभ्ययु' ।
पं तेऽमृते च वलिभिर्जितादैत्यचमूस्तत ।।७४
वध्यमानादिशोभेजुः पातालंविविशुश्च ते ।
ततोदेवामुदायुक्ता. शंखचक्रगदाधरम् ।।७५
प्रणिपत्ययथापूर्वंप्रययुस्तेत्रिविष्टपम् ।
ततः प्रभृतितेभीष्म स्त्रीलोलादानवाभवन् ।।७६

मोहनी ने दैत्यों से कहा—फिर मैं आप लोगों के वशीभूत होकर आपके ही घर में रह जाऊँगी। इस बात को सुनकर उस अति सुन्दरता से सम्पन्न और त्रिलोकी में ऐसी एक ही परमोत्कृष्ट रूप वाली उस नारी को देखकर लोभ से उपहृत चित्त वाले दैत्यगण उसके सुन्दर शरीर का उपभोग करने की प्रार्थना करते हुए उस अमृत के कलश को उसे देकर उसके सामने देखने लगे थे ।।७१।। ७२।। उस मोहनी ने दानवों से वह अमृत का कलश लेकर उस अमृत को देवताओं को पिला दिया था और तभी से सुरगण इन्द्र आदि सब अमर शरीर वाले होकर निस्त्रिंश एवम् आयुधों से संयुत होकर उन दैत्यों से युद्ध करने को समुद्यत हो गये थे। अमृत पान करके अत्यन्त बलवान् देवों ने दैत्यों की सेना पर विजय प्राप्त करली थी ।।७३ ७४।। दैत्यगण वध्यमान होकर दिशाओं में भाग गये थे और डरकर पाताल में प्रवेश कर गये थे। इसके पश्चात् देवगण ने आनन्द से युक्त होकर शख, चक्र और गदा को धारण करने वाले भगवान् विष्णु को प्रणाम किया था और फिर वे सब देवलोक (स्वर्ग) को चले गये थे। तभी से लेकर हे भीष्म ! दानवगण स्त्रियों के लिये चंचल हो गये थे ।।७५।७६।।

दक्षयज्ञ विध्वंस कथानक

कथंसतीदक्षसुतादेहत्यक्तवतीशुभा ।
दक्षयज्ञस्तुरुद्रेणविध्वस्तःकेनहेतुना ॥१
एतन्मेकौतुकंब्रह्मन्कथंदेवोमहेश्वरः ।
जगामाथक्रोधवशंत्रिपुरारिर्महायशाः ॥२
गंगाद्वारेपुराभीष्मदक्षोयज्ञमथारभत् ।
तत्रदेवासुरगणाःपितरोऽथमहर्षयः ॥३
समाजग्मुर्मुदायुक्ताः सर्वेदेवाःसवासवाः ।
नागायक्षाःसुपर्णाश्चवीरुदोषधयस्तथा ॥४
कश्यपोभगवानत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
प्रचेतसोंगिराश्चैववसिष्ठश्चमहातपाः ॥५
तत्रवेदीसमांकृत्वाचातुर्होत्रंन्यवेशयत् ।
होतावसिष्ठस्तत्रासीदगिराध्वर्युसत्तमः ॥६

भीष्म पितामह ने कहा—परम शुभ दक्ष की पुत्री सती ने अपने देह का त्याग क्यों किया था ? और किस कारण से भगवान् रुद्र ने दक्ष के यज्ञ का विध्वस किया था ? ॥१॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे हृदय में इस बात का बड़ा कौतूहल है कि महान् यश वाले त्रिपुरारि महेश्वर देव क्रोध के वशीभूत हो गये थे ॥२॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—पहिले गङ्गा के द्वार पर प्रजापति दक्ष ने यज्ञ का आरम्भ किया था । वहाँ पर सुरगण देव, पितर, महर्षि और इन्द्र के सहित समस्त देवता, नाग, यक्ष, सुपर्ण, वीरुद तथा औषधियाँ सभी आनन्द से युक्त हुए आये थे ॥ ३।४ ॥ कश्यप, भगवान् अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस, अङ्गिरा और महान् तपस्वी वशिष्ठ सभी वहाँ आये थे ॥ ५ ॥ वहाँ पर वेदी समान बनाकर चातुर्होत्र को सन्निवेशित किया था । उस यज्ञ में वशिष्ठ महर्षि तो होता थे और अध्वर्युओं मे श्रेष्ठ अङ्गिरा ऋषि अध्वर्यु थे ॥६॥

बृहस्पतिरथोद्गाताब्रह्मावैनारदस्तथा ।
यज्ञकर्मप्रवृत्ते तु हूयमानेषु चाग्निषु ॥७

आगतावसवः सर्व आदित्याद्वादशैवतु ।
अश्विनौमरुतश्चैवमनवश्चचतुर्दश ॥८
एवंयज्ञेप्रवृत्तेतुहूयमानेषुचाग्निषु ।
विभूतितांपरांतत्रभक्ष्यभोज्यकृतांशुभाम् ॥९
आलोक्यसर्वतोभूमिसमंताद्दशयोजनम् ।
महावेदीकृतातत्रसर्वैस्तत्रसमन्वितैः ॥१०
सर्वान्देवान्शक्रमुख्यान्यज्ञेदृष्ट्वासतीशुभा ।
तदासानुनयंवाक्यप्रजापतिमभाषत ॥११
ऐरावतंसमारूढो देवराजः शतक्रतुः ।
पत्न्याशच्यासहायातः कृतावासःशतक्रतुः ॥१२
पापानांयोयमयितावधर्मेणाधर्मिणांप्रभुः ।
पत्न्याधूमोर्णया सार्द्धं मिहायातःसदृश्यते ॥१३

यज्ञ कर्म के प्रवृत्त होने पर अग्नि के हवन किये जाने में बृहस्पति ब्रह्मा और नारद उग्दाता हुए थे ॥ ७ ॥ उस यज्ञ में समस्त वसुगण और बारहों आदित्य भी आये थे। अश्विनीकुमार, मरुद्गण और चौदह मनु उपस्थित हुए थे ॥ ८ ॥ इस प्रकार से उस यज्ञ के प्रवृत्त होने पर अर्थात् यज्ञ के कार्यों का आरम्भ किये जाने पर तथा अग्नि मे हवन किये जाने पर वहाँ भक्ष्य-भोज्य पदार्थों के एकत्रित होने से परम शुभ उस विभूति को देखकर और सर्व ओर दशयोजन भूमि मे एक महावेदी की रचना वह समागत सबके द्वारा की गई थी और इन्द्रादि प्रधान समस्त देवगण वहाँ उपस्थित थे इसको देखकर वह सती देवी अपने पिता दक्ष प्रजापति से विनयपूर्वक बोली थी। सती ने कहा—यहाँ पर देवराज शतक्रतु ऐरावत पर सवार हुए अपनी पत्नी शची के साथ आये हुए हैं और निवास बनाकर ठहरे हुए हैं। जो पापियों को दण्ड देने वाला है और अधर्म करने वालो को अधर्म के द्वारा शासन करने का स्वामी यमराज है वह भी धूमार्णा पत्नी के सहित यहाँ पर आये हुए दिखलाई दे रहे हैं ॥९ से १३॥

पुण्याराजर्षयश्चैवपृथिव्यायेचपार्थिवाः ।
वर्णाश्रमिणश्चैवसर्वेयेकर्मकारिणः ॥१४

किमत्रबहुनोक्तेनत्राह्मीसृष्टिरिहागता ।
भगिन्योभागिनेयाश्चभगिनीपतयस्त्विमे ॥१५
स्वभार्यासहिताःसर्वेसपुत्रास्सहबांधवाः ।
त्वयासमर्चिताःसर्वेदानमानपरिग्रहे ॥१६
आमंत्रणामंत्रितानांसर्वेषांमाननाकृता ।
एकएवात्रभगवान्पतिर्मे न समागतः ॥१७
विनातेनत्विदसर्वंशून्यवत्प्रतिभातिमे ।
मन्येचाहतुभवता पतिर्मे न निमन्त्रितः ॥१८
विस्मृतस्ते भवेन्नूनं सर्वं शंसतु मे भवान् ॥१६
तस्यास्तदुक्तं वचनं श्रु त्वा दक्षः प्रजापतिः ॥२०

परम पवित्र पुण्यमय राजर्षि लोग और पृथ्वी में जो पार्थिव अर्थात् राजा लोग हैं। वर्णाश्रमी और सब कर्म करने वाले थे वहाँ यज्ञ मे उपस्थित थे ॥१४॥ यहाँ पर अधिक क्या कहा जावे यहाँ तो सारी ब्राह्मी सृष्टि ही आ गई है। बहिन-भानजे ये भगिनी के पतिगण अपनी भार्याओं के साथ आये हैं। अपने पुत्र-पौत्रादि समस्त बान्धवगण के सहित सभी लोग आये हुए हैं और आपने इन सभी का दान-मान एवं परिग्रहों के द्वारा भली-भाँति स्वागत-सत्कार किया है ॥१५।१६॥ आमन्त्रण प्रेषित कर निमन्त्रित किये हुए सबका सम्मान आपने किया है। इस यज्ञ मे सभी लोग विद्यमान हैं अगर नहीं हैं तो केवल एक मेरे स्वामी भगवान् शिव ही नही आये हैं ॥१७॥ उनके बिना मुझे आपका यह महान् समारोह भी बिल्कुल सूना प्रतीत हो रहा है। मैं ऐसा ख्याल करती हूँ कि आपने मेरे पतिदेव को यहाँ इस यज्ञ मे निमन्त्रित ही नहीं किया है। सभव है आपको उनको निमन्त्रण देने का विस्मरण (भूल) हो गया है। ०॥ मुझे यह सब साफ-साफ बता दीजिए। पुलस्त्य मुनि ने कहा—उस अपनी पुत्री सती देवी के इन कहे हुए वचनों को प्रजापति दक्ष ने श्रवण किया था ॥१८ से २०॥

पतिस्नेहसमायुक्तांप्रालेयस्योऽपिगरीयसीम् ।
अंकमारोप्यतांबालांसाध्वीपतिपरायणाम् ॥२१
पतिव्रतांमहाभागांपतिप्रियहितैषिणीम् ।
प्राहगंभीरभावेनशृणुवत्से यथातथम् ॥२२

येनाद्यकारणेनेहपतिस्ते न निमंत्रितः ।
कपालपात्रधृक्चर्मीभस्मावृततनुस्तथा ॥२३
शूलीमुण्डीचनग्नश्चश्मशानेरमतेसदा ।
विभूत्याङ्गानिसर्वाणिपरिमार्ष्टिचनित्यशः ॥२४
व्याघ्रचर्मपरीधानोहस्तिचर्मपरिच्छदः ।
कपालमालांशिरसिखट्वांगंचकरेस्थितम् ॥२५
एतैर्दोषैर्मयावत्सेलोकानांचैवलज्जया ।
नाहूतोनंतुपुत्रतस्यकारणेनमयासुते ॥२६
यज्ञस्यास्यसमाप्तौतुपूजांकृत्वात्वयासह ।
आनीयतवभर्तारंत्वयासहत्रिलोचनम् ॥
त्रैलोक्यस्याधिकांपूजांकरिष्यामिचसत्कृतैः ।
एतत्तेसर्वमाख्यातंत्रपायाःकारणंमहत् ॥२७

अपने पति के स्नेह से युक्त, प्राणों से भी अधिक प्यारी पति परायण उस साध्वी बाला सती देवी को जो कि महापतिव्रता, पति के प्रिय हित के चाहने वाली एवम् महा भाग्यशालिनी थी दक्ष ने अपनी गोद में बिठाकर बड़े ही गम्भीर भाव से कहा—हे पुत्रि ! तुम अब यथार्थ बात सुन लो ॥२१॥ जिन कारणों से तुम्हारे पति को इस यज्ञ के महोत्सव मे निमन्त्रण नहीं किया गया । वे ये हैं कि वह नर कपाल के पात्र को धारण करने वाले हैं,व्याघ्र चर्म से सर्वदा आवृत रहते हैं और समस्त शरीर मे भस्म धारण किये रहा करते हैं ॥२२॥ त्रिशूलधारी, मुण्ड माला को पहिनने वाले नग्न और सर्वदा श्मशान में रति रखने वाले हैं तथा नित्य ही विभूति से सब अपने अङ्गों का परिमार्जन किया करते हैं ॥२३॥ बाघ के चमड़े का परिधान करने वाले तथा हाथी के चर्म को ओढ़ने वाले हैं । नर कपालो की माला को मस्तक मे डाले रहा करते हैं और हाथ मे खट्वा का एक भाग अर्थात् पाया रखते हैं ॥२४॥ हे वत्से ! इन उपर्युक्त सभी दोषो के होने के कारण लोक लज्जा से हे बेटी ! यही कारण है कि मैंने तुम्हारे पति को यहाँ इस समारोहोत्सव मे नहीं बुलाया है ॥२५॥ जब यह यज्ञ का महोत्सव सानन्द समाप्त हो जायगा तो उस समय मे तुम्हारे पति

को यहाँ बुलवाकर तुम्हारे साथ ही उन त्रिलोचन का समर्चन करूँगा ॥२६॥ फिर उस अवसर पर मैं अत्यधिक सत्कार पूर्वक त्रिलोकी की भी पूजा करूँगा। यही मेरी लज्जा का सबसे बड़ा कारण है जो सब तुमको मैंने बतला दिया है ॥ २७ ॥

यदेभिरर्जितंपुण्यंतस्यैतेफलभागिनः ।
एवमुक्ता ततः सा तु सती भीष्म रुषान्विता ॥२८
विनिंदमानापितरंक्रोधेनारुणितेक्षणा ।
एवमेतद्यथातात त्वयाचोक्तं ममाग्रतः ॥२९
सर्वोजनः पुण्यभागी पुण्येनलभतेश्रियम् ।
पुण्येनलभतेजन्मपुण्येभोगाः प्रतिष्ठिताः ॥३०
तदयजगतामीशःसर्वेषामुत्तमोत्तमः ।
स्थानान्येतानिसर्वेषांदत्तान्येतेनधीमता ॥३१
सत्येनतेनतेयज्ञविध्वंसयतुशंकरः ।
यद्यस्तिमेतपः किंचित्कश्चिद्धर्मोऽप्ययाकृतः ॥३२
तेनसत्येनतेगर्वं समाप्तिमभिगच्छतु ।
इत्युक्त्वायोगमास्थायस्वदेहम्येनतेजसा ॥३३
निर्दहाहृतदारमानसदेवामुत्पपगैः ।
विविस्मितदितिप्रोक्तेगधर्वगणगुह्यकैः ॥३४

इन सबने जिस महान् पुण्य का अर्जन किया है उससे ये सब फल भागी होते हैं। हे भीष्म! प्रजापति दक्ष के द्वारा इस प्रकार से कही जाने वाली देवी सती कोप से युक्त हो गई थी ॥ २८ ॥ कोपावेश में लाल नेत्रों वाली सती अपने पिता की बुराई करती हुई कहने लगी— हे पिताजी! आपने इस प्रकार से जो यह सब मुझसे कहा है कि सभी जन पुण्य भागी हैं क्योंकि पुण्य के प्रभाव से ही श्री की प्राप्ति हुआ करती है, पुण्य से ही जन्म का लाभ होता है क्योंकि समस्त भोग पुण्य में ही प्रतिष्ठित हैं ॥२९-३०॥ जो यह भगवान जगत् के स्वामी हैं और सभी देवों के भी परमश्रेष्ठ हैं। इन्हीं धीमान् ने सबको ये उत्तम स्थान प्रदान किये हैं ॥३१॥ वही भगवान् शङ्कर उसी सत्य से इस तुम्हारे यज्ञ का विध्वंस करेंगे यदि मेरी कोई धर्मवती

है और मैंने कोई पाप किया है। उसी मद से तेरा यह गर्व ध्वस्त हो जायगा-इतना कहकर वह देवी सती अपने देह में स्थित तेज से योग में समास्थित हो गई थी ॥ ३२।३३ ॥ उस समय उस सती ने अपने शरीर को दग्ध कर दिया था। इसे देखकर वहाँ सब देव, असुर, पतंग, गुह्यक और गन्धर्व यह कहने लगे कि यह क्या हो गया है ? ॥३४॥

गंगाकूलेतदामुक्तोदेहोवैक्रुद्धयातया ।
शौनकंनामतत्तोर्थंगंगायाः पश्चिमेतटे ॥३५
श्रुत्वारुद्रस्तुतद्वार्तांपत्न्यानाशसुदुःखितः ।
हन्तुं यज्ञंघोरभवत्देवानामिहपश्यताम् ॥३६
गणकोटिःसमादिष्टाप्रह्वावैनायकास्तथा ।
भूतप्रेतपिशाचाश्चदक्षयज्ञविनाशने ॥३७
तेगत्वाविबुधास्सर्वेयज्ञेनिर्जित्यनाशिताः ।
हतेयज्ञेतदादक्षोनिरुत्साहोनिरुद्यमः ॥३८
उपगम्याब्रवीत्त्रस्तोदेवदेवपिनाकिनम् ।
नज्ञातोऽसिमयादेवदेवानांप्रभुरीश्वरः ॥३९
त्वमस्यजगतोऽधीशःसुरास्सर्वेत्वयाजिताः ।
कृपांकुरुमहेशानगणान्सर्वान्निवर्त्तय ॥४०

विशेष रूप से क्रुद्ध देवी सती ने उस समय में भागीरथी के तट पर अपने देह का त्याग किया था, वह पश्चिम तट पर गङ्गा का शौनक नाम वाला तीर्थ है ॥३५॥ इस सती के देह के त्याग देने का समाचार सुनकर रुद्र देव को अपनी पत्नी के नाश हो जाने से महान् दुःख हुआ था। फिर वहाँ समस्त देवगण के देखते हुए भगवान् रुद्र के हृदय में दक्ष के उस यज्ञ का विध्वंस करने का विचार हुआ था ॥३६॥ भगवान् शिव ने तुरन्त करोड़ो अपने गणों को, प्रह्व और वैनायकों को तथा भूत-प्रेत एवम् पिशाचों को दक्ष के यज्ञ का विध्वस करने की आज्ञा दे दी थी ॥३७॥ उन सबने वहाँ पहुँचकर समस्त देवगण को जीत लिया था और नष्ट कर दिया था। उस यज्ञ के नष्ट हो जाने पर प्रजापति दक्ष बहुत ही उत्साह हीन और उद्यम से रहित हो गये थे ॥३८॥ इसके अनन्तर

यह दक्ष अत्यन्त भयभीत होकर देवों के देव पिनाकधारी शिव के समीप में पहुँचे और उनसे प्रार्थना करने लगे कि हे भगवन् ! आप देवों के भी महान् देव परम प्रभु और ऐसे सामर्थ्यधारी ईश्वर हैं—यह मैं नहीं जानता था ॥३९॥ हे भगवन् ! इस सम्पूर्ण जगत् के आप ही अधीश्वर हैं और आपने सब देवगण को जीत लिया है। अब हे महेशान ! मेरे ऊपर आप कृपा कीजिए और इन अपने गणों को वापिस लौटा लीजिए ॥४०॥

विरूपाक्षशुभाक्षायसहस्राक्षायवैनमः ।
मुण्डाय चण्डमुण्डाय वरखट्वाङ्गधारिणे ॥
कव्यरूपाय हव्याय सर्वसंहारिणे नमः ॥४१
भक्तानुकंपिनेऽत्यर्थरुद्रजाप्यस्तुतायच ।
विरूपायसुरूपायरूपायरूपाणाशतकारिणे ॥४२
पचास्यायशुभास्यायचन्द्रास्यायनमोनमः ।
वरदायवराहायकूर्मायचमृगायच ॥४३
लीलालकशिखण्डायकमण्डलुधरायच ।
विश्वनाम्नेऽथविश्वायविश्वेशायनमः ॥४४
त्रिनेत्रनाशमस्माकंत्रिपुरघ्नविधीयताम् ।
वाङ्मनःकायभावैस्तुप्रपन्नस्यमहेश्वर ॥४५
एवम्नुतस्तदादेवोदक्षेणापन्नदेहिना ।
दिव्येनानेनस्तोत्रेणसूनामाराधितस्तदा ॥४६

यह निवेदन करके दक्ष ने भगवान् शिव का स्तवन किया था—हे भगवन् ! आप विरूप नेत्रों वाले, शुभ नेत्रों वाले तथा सहस्राक्ष हैं, आपके लिये मेरा नमस्कार है। चण्ड स्वरूप, मुण्ड और खट्वाङ्ग के धारण करने वाले आपके लिये नमस्कार है ॥४१॥ आप विरूप हैं अर्थात् विविध प्रकार के रूप वाले हैं, आप सुन्दर रूप वाले हैं और सैकड़ों रूपों के करने वाले हैं। पाँच मुखों वाले, शुभ मुख से युक्त और चन्द्र मुख वाले आपके लिये बारम्बार नमस्कार है। वरदान प्रदान करने वाले, वराह स्वरूप, कूर्म रूपधारी और मृग रूप वाले आपको नमस्कार है ॥४२-४३॥ लीला के लिये अलक शिखण्ड वाले,

कमण्डलु धारी, विश्व नाम वाले, विश्व एवम् इस विश्व के ईश आपके लिए नमस्कार है, नमस्कार है ।।४४।। हे त्रिपुरादसुर के नाशक ! हमारे लिये त्रिनेत्र का शरण दीजिए । हे महेश्वर ! मैं मन-वाणी और शरीर से सब प्रकार की भावना पूरित होकर आपकी शरणागत मे आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिए ।।४५।। इस प्रकार से आपत्ति से ग्रस्त देह वाले दक्ष प्रजापति के द्वारा उस समय मे शिव की स्तुति की गई थी और इस उपर्युक्त स्तोत्र के द्वारा अत्यधिक आराधना की गई थी ।।४६।।

समग्र तेयज्ञफलमयादत्तप्रजापते ।
सर्वकामप्रसिद्धयर्थफलप्राप्स्यस्यनुत्तमम् ।।४७
एवमुक्तोभगवताप्रणम्याथसुरेश्वरम् ।
जगामस्वनिकेततुगणानामेवपश्यताम् ।।४८
पत्न्या शोकेनवैदेवोगंगाद्वारेतदास्थित ।
तासतीचिंतयानस्तुवनुसामेप्रियागता ।।४९
तस्यशोकाभिभूतस्यनारदोभवसन्निधौ ।
सातेसतीयादेवेशभार्याप्राणसमामृता ।।५०
हिमवद्दुहितासाचमेनागर्भमभुद्भवा ।
जग्राह देहमन्य सा वेदवेदार्थवेदिनी ।।५१
श्रुत्वादेवस्तदाध्यानमवतीर्णामिपश्यत ।
कृतकृत्यमथात्मानकृत्वादेवस्तदास्थित ।।५२
सप्राप्तयौवनादेवीपुनरेवविवाहिता ।
एवहिवर्थितभीष्मयथायज्ञोहये पुरा ।।५३

इस रीति से स्तवन करने पर परम प्रसन्न शिव ने कहा—हे प्रजापते ! चाहे तेरा यज्ञ ध्वस्त हो गया है किन्तु मैं तेरे इस यज्ञ का पूर्ण फल देता हूँ और तुम सम्पूर्ण कामनाओं की प्रसिद्धि के लिए परम श्रेष्ठ फल प्राप्त करोगे ।।४७।। इस तरह शिव के द्वारा कहे जाने पर दक्ष ने सुरों के स्वामी भोलानाथ शिव को प्रणाम किया था और उनके गुणों का ही गान करते हुए अपने निवास स्थान को चले गये थे ।।४८।। अपनी प्रिय पत्नी सती के वियोग से शोक ग्रस्त

होते हुए शिव उस समय म गङ्गा के द्वार पर ही स्थित हो गये थे। उस सती के विपर में ही चिन्ता करते हुए रहत थे और साम मे वह क्रिश न मालूम कहाँ गायब हो गई थी ॥४८॥ शोक से ग्रस्त एवम् अभिभूत शिव के समीप में देवर्षि नारद आये और कहने लगे—ह देवेश! आपके प्राणो के तुल्य वह सती भार्या थी जो कि मृत हो गई है ॥५०॥ वही आपकी प्राणोपमा भार्या सती अब हिमवान् की पुत्री हुई है और मेना के गभ से उसका जन्म हुआ है वेद और वेदो के अर्थ को जानने वाली उसने अब अन्य देह ग्रहण किया है ॥५१॥ इस समाचार का श्रवण कर उसी समय महादेव ने ध्यान करके उसका पुन अवतरण देख लिया था। तब देवेश्वर ने अपने आपको कृतकृत्य मानकर वहाँ पर ही वे स्थित हो गये थे। हे भीष्म! यौवन के प्राप्त होने पर उस देवी ने फिर शिव के ही साथ विवाह किया था। इस प्रकार से कह दिया गया है जिस तरह से पहिले यज्ञ का ध्वस किया था ॥५२ ५३॥

॥ पृथु यज्ञ कथन ॥

बहुभिर्द्ध रणीभुक्ता भूपालै श्रूयतेपुरा।
पार्थिवा पृथिवीयोगात्पृथिवीकस्ययोगत ॥१
किमर्थं च कृतासञ्ज्ञाभूमेस्सापारिभाषिकी।
गौरितीयञ्चसञ्ज्ञा वा भुव कस्माद्ब्रवीहिमे ॥२
पुराकृतयुगस्यासीदङ्गोनाम् प्रजापति ।
मृत्योस्तुदुहितातेनपरिणीतातिदुर्मुखी ॥३
सुनीथानामतस्यास्तुवेनोनामसुत पुरा।
अधर्मनिरतःकामीबलवान्वसुधाधिप ॥४
लोकस्याधर्मकृच्चापिपरभार्यापहारक ।
अयतस्यप्रसिद्धयर्थं जगदर्थंमहर्षिभि ॥५
अनुनीतोऽपिनददावनुज्ञांस्माऽभयतत ।
शापेनमारयित्वैनमराजकभयार्दिता ॥६
ममथुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद्देहमकल्मषा ।
तत्कायान्मथ्यमानात्तुजनिता म्लेच्छजातय ॥७

शरीरेमातुरशेन कृष्णाजनसमप्रभा ।
पितुरशम्यसगेन धार्मिकोधर्मकारकः ॥८

भीष्म ने कहा—ऐसा सुना जाता है कि पहिले बहुत से राजाओं के द्वारा इस धरणी का भोग किया गया था। जो राजा लोग पार्थिव—इस नाम से कहे जाते हैं वे तो पृथिवी के स्वामी होने के कारण ही पार्थिव कहे गये हैं किन्तु इस धरणी को जो पृथिवी इस नाम से पुकारा जाता है यह नाम इसका किस योग से पड़ा है ॥१॥ इस भूमि की यह पारिभाषिकी संज्ञा किस कारण से हुई है। इस भूमि का नाम 'गौ'—यह भी कहा जाता है। हे भगवन् ! इसका यह नाम किस कारण से हुआ ? कृपाकर यह मुझे बतलाइये ॥२॥ इस भीष्म के प्रश्न को सुनकर पुलस्त्य ने कहा—पहिले कृतयुग में अङ्ग नाम वाला प्रजापति था। उसने मृत्यु की पुत्री जो कि अत्यन्त दुर्मुखी थी उसके साथ विवाह किया था ॥३॥ उसका सुनीथा नाम था और उसका वेन नाम वाला पहिला पुत्र हुआ था जो कि सदा अधर्म के कार्यों में निरत रहा करता था, बहुत ही अधिक कामी और बलवान् ही इस भूमि का राजा हुआ था ॥४। वह लोक के अधर्म को करने वाला था और पराई स्त्रियों का अपहरण करता था इसको देखकर महर्षियों ने उसको प्रसिद्धि के लिए और जगत् के कल्याण के वास्ते उसको बहुत कुछ समझाया था किन्तु वह इतनी अशुद्ध आत्मा वाला था कि कभी भी अभय का प्रदान नहीं किया था। लोक में बड़ी भारी अराजकता न फैल जावे इस भय से दुःखित होकर उसे महर्षियों ने शाप देकर मार दिया था ॥५।६॥ कल्मष रहित श्रुति एवम् ब्राह्मणों ने उसके देह का बलपूर्वक मथन किया था। जब उसके शरीर का मन्थन हुआ तो उस मथित शरीर से म्लेच्छों की अनेकों जातियाँ समुत्पन्न हो गई थीं ॥७॥ ये सब शरीर में माता के अंश होने से काले अञ्जन के समान प्रभावाली थीं और पिता के अंश के संसर्ग से धर्म के करने वाली धार्मिक थी ॥८॥

उत्पन्नोदक्षिणाद्धस्तात्सधनु सशरोगदी ।
दिव्यतेजोमय.पुत्रस्त्राणत्वत्रवचाङ्गद ॥९
पृथुर्वैवाभवन्नाम्नासचविष्णुरजायत ।
सविप्रैरभिषिक्तः सस्तप कृत्वा सुदुष्करम् ॥१०

विष्णोर्वरेणसर्वस्य प्रभुत्वमगमत्प्रभुः ।
निःस्वाध्यायवषट्कारनिर्द्धर्मवीक्ष्यभूतलम् ॥११
वेद्घुमेवोद्यत.कोपाच्छरेणामितविक्रमः ।
ततोगोरूपमास्थाय भू.पलायितुमुद्यता ॥१२
पृष्ठेत्वन्वगमत्तस्याःपृथु सेषुशरासनः ।
ततः स्थित्वैकदेशेतुकिंकरोमीतिचाब्रवीत् ॥१३
पृथुरप्यवदद्वाक्यमीप्सितदेहिसुव्रते ।
सर्वस्यजगतःशीघ्रंस्थावरस्य चरस्य च ॥१४

उसके दाहिने हाथ से एक दिव्य तेज से परिपूर्ण पुत्र उत्पन्न हुआ था जो धनुष, बाण और गदा धारण किये हुए था और रत्नों से जटिल कवच एवम् अङ्गद धारण करने वाला था ॥६॥ वह नाम से पृथु हुआ था और वह विष्णु ही उत्पन्न हुए थे। विप्रवर्ग ने उसको राज्याभिषिक्त कर दिया था। उस पृथु ने परम सुदुष्कर तपस्या की थी ॥१०॥ उस तपश्चर्या के प्रभाव से उसने विष्णु से वरदान प्राप्त किया था और समस्त विश्व का स्वामी बन गया था। उसने उस समय में इस सम्पूर्ण जगत् को स्वाध्याय और वषट्कार से रहित बिना धर्म वाला देखा था ॥११॥ अपरिमित पराक्रम वाला राजा क्रोध से शर के द्वारा वेधने के लिए उद्यत हो गया था। इसके अनन्तर गाय का स्वरूप धारण करके भूमि पलायन करने को उद्यत हो गई थी ॥१२॥ इसके पीछे-पीछे धनुष पर बाण चढ़ाकर राजा पृथु भी चल दिया था। इसके पश्चात् एक स्थान पर स्थित होकर पृथ्वी ने कहा—मैं क्या करूँ ॥१३॥ इसके उत्तर में राजा पृथु ने कहा—सुव्रते! हमारा जो कुछ भी अभीष्ट पदार्थ हो उसे तू दे, यह अभीष्ट इस सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम जगत् का होगा ॥१४॥

तथेतिचाब्रवीद्भूमिर्दुदोहसनराधिपः ।
स्वकेपाणौपृथुर्वत्सं कृत्वास्वायंभुवंमनुम् ॥१५
तदन्नमभवद्दुग्धंप्रजाजीवंतियेनतु ।
ततस्तुऋषिभिर्दुग्धावत्स.सोमस्तदाभवत् ॥१६
दोग्धावाचस्पतिरभूत्पात्रंवेदस्तपोरसः ।
देवैश्चवसुधादुग्धा मरुद्दोग्धातदाभवत् ॥१७

आयुर्धनानिसौख्यंचपृथौराज्यंप्रशासति ।
नदारिद्य तथारोगी नाधनोनचपापकृत् ॥१८
नोपसर्गानचाघातः पृथौराज्यप्रशासति ।
नित्यंप्रमुदितालोकादुःखशोकविवर्जिताः ॥१९
धनुष्कोट्या च शैलेंद्रानानुत्सार्य समहाबलः ।
भूमडलंसमंचक्रे लोकानांहितकाम्यया ॥२०
नपुरग्रामदुर्गाणिनचायुधधरानराः ।
क्रियन्तेयत्रदुःखचनार्थशास्त्रस्यचादरः ॥२१

राजा पृथु के ऐसा कहने पर 'तथास्तु' अर्थात् मैं समस्त चराचर जगत् का अभीप्सित देने को प्रस्तुत हूँ—यह पृथ्वी ने उत्तर दिया था और फिर राजा ने उसका दोहन किया था । राजा पृथु ने अपने हाथ मे स्वायम्भुव मनु को वत्स बनाया था ॥१५॥ वह अन्न हुआ जिससे सब प्रजा जीवित रहती है । इसके अनन्तर सप्तर्षियो ने दोहन किया था, उस समय सोम वत्स हुआ था ॥१६॥ दोग्धा अर्थात् दोहन करने वाला वाचस्पति हुआ, वेद पात्र हुए और तप रस हुआ था । देवगण ने वसुधा (भूमि) का दोहन किया था उस समय मरुत दोहन करने वाला ॥१७॥ राजा पृथु के शासन करने पर प्रजा मे आयु, धन और सौख्य सभी थे । कही पर दरिद्रता नहीं थी, न कोई उसके राज्य मे रोगी था और न कोई भी धन हीन एवम् पाप कर्म करने वाला था ॥१८॥ पृथु के राज्य का शासन करने पर कोई भी उपसर्ग एवम् आघात नही थे । सभी लोग नित्य ही परम प्रसन्नता तथा दुःख एवम् शोक से रहित थे ॥१९॥ उस महान् बलशाली ने लोकों के कल्याण की कामना से अपनी धनुष की कोटि से बड़े-बड़े पर्वतो को उत्सारित करके इस सम्पूर्ण भू मण्डल को सम बना दिया था ॥२०॥ उस समय ग्राम-पुर और दुर्ग नहीं थे और आयुधो को धारण करने वाले मनुष्य थे जो कि दुःख से मरते हो, उस अवसर मे अर्थशास्त्र का भी कोई आदर नही था ॥२१॥

आदित्यवंशमखिलंवदप्रद्युन्ययाक्रमम् ।
सोमवंशन्चतत्वज्ञयथावद्वक्तुमर्हसि ॥२२

विष्टिर्घोरात्मिकातद्वत्कालत्वेनव्यवस्थिता ।
मनोर्वैवस्वतस्यापिदशपुत्रामहाबलाः ॥२३
इलस्तुप्रथमस्तेषांपुत्रेष्टयासमकल्पि यः ।
इक्ष्वाकु.कुशनाभश्चअरिष्टोधृष्टएवच ॥२४
नरिष्यतःकरूपश्चशर्यातिश्चमहाबलः ।
पृषध्रश्चाथनाभागः सर्वेतेदिव्यमानुषाः ॥२५
अभिषिच्यमनुःपूर्वमिलंपुत्रंसधार्मिकम् ।
जगामतपसेभूय पुष्करंसतपोवनम् ॥२६
अथाजगामसिध्यर्थंतस्यब्रह्मावरप्रदः ।
वरंवरयभद्रं तेमानवेयंयथेप्सितं ॥२७
उवाचसतदादेवंपद्माक्षपद्मजविभुम् ।
वशेमेधर्मसंयुक्ताः पृथिव्यांसर्वपार्थिवाः ॥२८

भीष्म ने कहा—हे महान् ! आप तो पूर्ण तत्त्व के ज्ञाता हैं, अब आप सूर्य वंश को क्रमानुसार बतलाइये और सोमवश को भी यथा रीति बतलाने के आप योग्य होते हैं ॥२२॥ उस समय में घोर स्वरूप वाली विष्टि अर्थात् बरबस नरको मे ढकेलने का कार्य कालत्व के कारण व्यवस्थित हो गया था । वैवस्वत मनु के दस महा बलवान् पुत्र हुए थे ॥२३॥ उन सबमें इल प्रथम पुत्र था जो पुत्रेष्टि से समकल्पित हुआ था । इक्ष्वाकु, कुशनाभ, अरिष्ट, धृष्ट, नरिष्यन्त,करूष, महाबली शर्याति, पृषध्र ये दस पुत्रों के नाम थे । ये सभी दिव्य मनुष्य थे ॥२४।२५॥ मनु ने पहिले परम धर्म के मानने वाले इल को अभिषिक्त किया था और फिर वह पुष्कर तपोवन में तपश्चर्या करने के लिए चले गये थे ॥२६॥ इसके अनन्तर उसकी सिद्धि के लिए वरदान के प्रदान करने वाले ब्रह्माजी वहाँ आये थे और उन्होने कहा—तेरा कल्याण हो और अब तुझे जो भी अभीष्ट हो वह वरदान मुझसे प्राप्त करले ॥२७॥ उस समय मे उसने पद्म के समान नेत्रों वाले पद्मज विभु श्री ब्रह्माजी से कहा—इस पृथिवी मे धर्म संयुक्त होकर सभी राजा मेरे वशीभूत हो जावें । हे स्वामिन् ! आपके चरण नमन के प्रसाद से सब ईश्वर हो जावें । ऐसा ही होगा—यह कहकर देवेश्वर ब्रह्मा वहीं पर ही अन्तर्हित हो गये ॥२८॥

भवेयुरीश्वरा स्वामिन्प्रसादात्तवकञ्ज ।
तयेत्युक्त्वातुदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ।।२६
ततोऽयोध्यासमागत्यसमतिष्ठद्यथापुरा ।
अथैकदा रथारूढ इलोनिजसुतोमनोः ।।३०
निर्जगामार्थसिध्यर्थमिनप्रायामहीमिमाम् ।
भ्रमन्द्वीपानिसर्वाणिक्ष्माभृत सम्प्रसाधयन् ।।३१
जगामोपवनशम्भोरथाकृष्ट प्रतापवान् ।
कल्पद्रुमलताकोर्णनाम्नाशरवणमहत् ।।३२
रमतेयत्रदेवेश सोम.सोमार्द्ध शेखर ।
उमया समयस्तत्र पुरा शरवणेकृतः ।।३३
पुन्नामसत्त्वंयत्किंचिदागमिष्यतिनोवनम् ।
स्त्रीत्वमेष्यतितत्सर्वंदशयोजनमण्डले ।।३४
अज्ञातसमयोराजाइलःशरवणगत ।
स्त्रीत्वजगामसहसावडवाश्वोऽभवत्क्षणात् ।।३५

इसके अनन्तर अयोध्या में आकर पूर्व की ही भाँति वह समास्थित हो गये थे। इसके अनन्तर एकबार मनु का अपना पुत्र इल रथ पर सवार हुआ था ।।२९।३०।। रथारूढ होकर वह इस इन प्राया भूमि पर अर्थ सिद्धि के लिए निकल पड़ा था। समस्त नृपों को सम्प्रसाधित करते हुए समस्त द्वीपों में भ्रमण किया था ।।३१।। इसके पश्चात् वह प्रतापित होकर महान् प्रताप वाला भगवान् शम्भु के क्रीडा स्थल उपवन में पहुँच गया था। वह उपवन कल्पवृक्षों और कल्पलताओं से आकीर्ण था और उस महान् उपवन का नाम शरवण था ।।३२।। जिस उपवन में देवेश्वर सोमार्द्धशेखर भगवान् शम्भु उमा देवी के साथ रमण किया करते हैं। वहाँ पर पहिले शरवण में ऐसा निर्णय कर दिया गया था कि इस वन में पुरुष नामधारी कोई भी आवेगा तो इस दशयोजन के मण्डल में वह स्त्री हो जायगा ।।३३।३४।। इस समय अर्थात् शिवा देवी को जो नहीं जानता था वह इल राजा उस शरवण नामक उपवन में चला गया था और वह तुरन्त ही स्त्रीत्व को प्राप्त हो गया और जो अश्व था वह भी वडवा (घोडी) हो गई थी ।।३५।।

पुरुषत्वेकृतंसर्वस्त्रीकायेविस्मृतंततः ।
इलेतिसभवद्नारीपीनोन्नतघनस्तनी ॥३६
समय.शंभुदयिताकृतःशरवणेपुरा ।
यःपुमान्प्रविशेच्चात्रसनारीत्वमवाप्स्यति ॥३७
अयमश्वोऽपिनारीत्वमगाद्राज्ञासहैवतु ।
इलःपुरुषतामेतियथासोवनदोपमः ॥३८
तथैवयत्नःकर्त्तव्यआराध्यचपिनाकिनम् ।
ततस्तेमानवाजग्मुर्यत्रदेवोमहेश्वरः ॥३६
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रं पार्वतीपरमेश्वरौ ।
तावूचतुरलंचैप समयः किंनुसाम्प्रतम् ॥४०
इक्ष्वाकोरश्वमेधेनयत्फलस्यात्सदावयोः ।
दत्वाकिंपुरुषोवीर.सभविष्यत्यसंशयम् ॥४१
तथेत्युक्त्वातुतेसर्वेजग्मुर्वैवस्वतात्मजाः ।
इष्ट्वाश्वमेधेनततइलाकिंपुरुषोऽभवत् ॥४२

प्राचीन समय मे यह ऐसा समय शरवण मे शम्भु की पत्नी के द्वारा किया गया था कि जो कोई पुरुष जाति वाला इस उपवन मे प्रवेश करेगा वह तरक्षण ही नारीत्व को प्राप्त हो जायगा ॥३६॥ यह अश्व भी राजा के साथ पुरुष जाति का होने के कारण स्त्रीत्व जाति को प्राप्त हो गया था। जिस प्रकार से कुवेर के तुल्य यह नृपति इल पुरुषत्व को प्राप्त हो जावे वैसा ही कोई उपाय एव यत्न करना चाहिए—ऐसा विचारकर सब मनुष्यो ने पिनाकी प्रभु की आराधना की और सब वहाँ पर ही पहुँच गये थे जहाँ महेश्वर देव विराजमान थे ॥३७।३८॥ तब लोगों ने अनेक स्तोत्रों के द्वारा भगवती पार्वती और परमेश्वर शिव की स्तुति की थी उन दोनो ने स्तवन समाप्त होने के पश्चात् कहा—यह तो यहाँ आने वाले के लिये ऐसा समय के अनुसार होगा ही-इसमें क्या करना चाहिए। राजा इक्ष्वाकु के अश्वमेध से हम दोनों का जो फल होगा उसे देकर यह वीर किम्पुरुष निश्चय ही हो जायगा ॥ ३६।४०।४१ ॥ ऐसा होगा—यह कहकर वे सब वैवस्वत के पुत्र चले गये थे। फिर अश्वमेध यज्ञ का यजन करके राजा इल किम्पुरुष हो गया था ॥४२॥

मासमेकंपुमान्वीरःस्त्रीत्वंमासमभूत्पुनः ।
बुधस्यभवनेतिष्ठन्निलोगर्भधरोऽभवत् ॥४३
अजीजनत्पुत्रमेकमनेकगुणसंयुतम् ।
बुध उत्पाद्य तं पूर्वंसस्वर्गमगमत्पुनः ॥४४
इलस्यनाम्नातद्वर्षमिलावृतमभूत्तदा ।
सोमार्कवंशजोराजाइलोऽभूद्वंशवर्द्धनः ॥४५
एवंपुरूरवा पूरोरभवद्वंशवर्द्धनः ।
इक्ष्वाकुरर्कवंशस्यतथैवोक्तोनरेश्वरः ॥४६
इलःकिंपुरुषत्वेचसुद्युम्नइतिचोच्यते ।
पुनःपुत्रत्रयमभूत्सुद्युम्नस्यापराजितम् ॥४७
उत्कलोऽथगयस्तद्वद्धरिताश्वश्चवीर्यवान् ।
उत्कलस्योत्कलानामगयस्यतुगयापुरी ॥४८
हरिताश्वस्यदिग्याम्यासन्नाताकुरुभिःसह ।
प्रतिष्ठानोऽभिषिच्याथसपुरूरवससुतम् ॥४९

वह वीर एक मास तक तो पुरुष होकर रहता था और फिर एक मास के पश्चात् एक मास पर्यन्त स्त्री हो जाता था। बुध के भवन में रहकर स्त्री रूप में स्थित वह इल गर्भ धारण करने वाला हो गया था ॥ ४३ ॥ उसने अनेक गुणगण से संयुत एक पुत्र को जन्म दिया था और बुध पहिले उस पुत्र का उत्पादन कर फिर स्वर्ग को चला गया था ॥४४॥ तभी से राजा इल के नाम से वह समय इलावृत प्रसिद्ध हो गया था। राजा इल सोम तथा सूर्य के वंश में उत्पन्न होने वाला था और वही इन दोनों के वंश का वर्धन करने वाला भी था ॥४५॥ इसी तरह पुरूरवा पुरू के वंश का अभिवर्धन करने वाला था। राजा इक्ष्वाकु भी इसी भाँति से सूर्य के वंश की वृद्धि करने वाला हुआ था ॥४६॥ वह इल किम्पुरुषत्व की स्थिति में जब रहा था तब सुद्युम्न इस नाम से कहा जाता था। फिर उस सुद्युम्न के किसी से भी पराजित न होने वाले तीन पुत्र हुए थे ॥ ४७ ॥ इन तीनों के नाम उत्कल, गय और हरिताश्व थे, ये तीनों बड़े बलवान् हुए थे। उत्कल की उत्कला, गय की गयापुरी नाम वाली

पुरी थी ॥४८॥ हरिताश्व की दिशाम्या थी। कुरुओं के साथ प्रतिष्ठान उसने पुरूरवा पुत्र को अभिषिक्त किया था ॥४९॥

जगामेलावृतंभोक्तुं दिव्यंवर्षफलाशनः।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादोमध्यदेशमवाप्तवान् ॥५०
नरिष्यतस्यपुत्रोऽभूच्छुकोनाममहाबलः।
नाभागादम्बरीषस्तुधृष्टस्यतुसुतत्रयम् ॥५१
धृष्टकेतु.स्वधर्मायोरणधृष्टश्चवीर्यवान्।
आनर्तोनामशर्याति सुकन्याचैवदारिका ॥५२
आनर्तस्याभवत्पुत्रोरोचमानःप्रतापवान्।
आनर्तोनामदेशोऽभून्नगरीचकुशस्थली ॥५३
रोचमानस्यरेवोऽभूद्रैवाद्रैवतएवच।
ककुद्मीचापरंनामज्येष्ठ पुत्रशतस्यच ॥५४
रेवतीतस्यसाकन्याभार्यारामस्यविश्रुता।
कल्पान्त्वंवकारूपावहव प्रथिताभुवि ॥५५
पृषध्रोगोवधाच्छूद्रोगुरुशापादजायत।
इक्ष्वाकुपुत्रानाम्नाथविकुक्षिनिमिदण्डका. ॥५६

पुरूरवा का अभिषेक करके वह दिव्य वर्ष पर्यन्त फलों का आहार करने वाला इलावृत का भोग करने के लिये चला गया था। ज्येष्ठ दायाद इक्ष्वाकु ने मध्यदेश को प्राप्त किया था ॥५०॥ नरिष्यन्त के महान् बलवान् शुक नामधारी पुत्र उत्पन्न हुआ था। नाभाग के अम्बरीष नाम वाले आत्मज ने जन्म ग्रहण किया था और धृष्ट के तीन पुत्र हुए थे ॥५१॥ इन तीनों के शुभ नाम धृष्टकेतु-स्वधर्मा और रणधृष्ट थे, ये सब बड़े वीर्य वाले थे। शर्याति के आनर्त नामक पुत्र और सुकन्या नामधारिणी पुत्री उत्पन्न हुई थी ॥५२॥ आनर्त के रोचमान नाम वाला बड़ा प्रतापी पुत्र हुआ। उसके देश का नाम भी आनर्त था और उसकी कुशस्थली नाम वाली नारी थी ॥५३॥ रोचमान के रेव हुआ और रेव से रैवत पुत्र हुआ था। उसका दूसरा ककुद्मी नाम था और पुत्रशत का ज्येष्ठ था ॥५४॥ उसकी रेवती नाम वाली कन्या थी जो बलरामजी की भार्या प्रसिद्ध

हुई थी। कल्पा और काल्पा बहुत सी भू मण्डल मे प्रथित थीं ।।५५।। गोवध से पृषध्र हुआ था जो गुरु के नाप से शूद्र हो गया था। इक्ष्वाकु के विकुक्षि—निमि और दण्डक नाम वाले पुत्र हुए थे ।।५६।।

श्रेष्ठा पुत्रशतस्यासन्पचाशच्चायन्रसुता ।
मेरोरुत्तरतस्तेतुजाता पार्थिवसत्तमा ।।५७
चत्वारिंशत्तथाष्टान्येशतमध्येचयेऽभवन् ।
मेरोर्दक्षिणतश्चैवराजानस्तेपर्कीतिता ।।५८
ज्येष्ठाश्चकुत्स्थनामाभूत्सुतस्तस्यसुयोधन ।
तस्यपुत्र पृथुर्नामविश्वस्तस्यपृथो सुत ।।५९
आर्द्र स्तस्यचपुत्रोऽभूद्युवनाश्वस्ततोऽभवत् ।
युवनाश्वस्यपुत्रोऽभूच्छावस्तोनामवीर्यवान् ।।६०
निर्मितायेनशावस्तीह्य गदेशेनराधिप ।
शावस्ताद्बृहदश्वाऽभूत्कुवलाश्वस्ततोऽभवत् ।।६१
धु धुमारत्वमगमद्ध धु हत्वाऽसुरपुरा ।
तस्यपुत्रास्त्रयोजाताद्दढाश्वोपृणिरेवच ।।६२
कपिलाश्वश्चविख्यातोधौंधुमारि प्रतापवान् ।
दृढाश्वस्यप्रमोदस्तुहयश्वस्तस्यचात्मज ।।६३

पुत्रशत के परम श्रेष्ठ पचास सुत हुए थे और वे मेरु के उत्तर की ओर उत्तम नृप हुए थे ।। ५७ ।। सौ के मध्य में अड़तालीस और हुए थे, वे मेरु के दक्षिण दिशा की ओर राजा बताये गये हैं ।।५८।। जो ज्येष्ठ था उससे ककुत्स्थ नाम वाला हुआ और उसके सुयोधन पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। उसका पुत्र पृथु हुआ और पृथु का सुत विश्व नाम वाला उत्पन्न हुआ था ।।५९।। उसका सुत आर्द्र हुआ और आर्द्र का पुत्र युवनाश्व हुआ था। युवनाश्व के पुत्र का नाम शावस्त था जो बहुत वीर्य पराक्रम वाला था ।।६०।। हे नराधिप ! उसने अङ्ग देश म शावस्ती की रचना की थी। शावस्त से बृहदश्व हुआ और इसके पुत्र का नाम कुवलाश्व था ।।६१।। इसने पहिले धुन्धु नामक असुर का हनन करके धुन्धुमारत्व को प्राप्त किया था। इसके तीन पुत्र हुए थे जिनके नाम दृढाश्व—

घृणि और कपिलाश्व थे। कपिलाश्व बड़ा प्रताप वाला धौंधुमारि के नाम से विख्यात हुआ था। दृढ़ाश्व के प्रमोद और उसके हर्यश्व आत्मज उत्पन्न हुआ था ॥६२।६३॥

हर्यश्वस्यनिकुंभोऽभूत्सहताश्वस्ततोभवत् ।
अकृताश्वोरणाश्वश्चसंहतादवसुतावुभौ ॥६४
युवनाश्वोरणाश्वस्यमाधाताचततोऽभवत् ।
मांधातुःपुरुकुत्सोभूद्धर्मसेतुश्चपार्थिवः ॥६५
मुचुकुन्दश्च विख्यातश्शक्रमित्रःप्रतापवान् ।
पुरुकुत्सस्यपुत्रोऽभूद्दु सहोनर्मदापतिः ॥६६
सभूतिस्तस्यपुत्रोऽभूत्त्रिधन्वाचततोऽभवत् ।
त्रिधन्वन मृतोजातस्त्रय्यारुणइतिस्मृत. ॥६७
तस्यसत्यव्रतोनामतस्मात्सत्यरथःस्मृतः ।
तस्यपुत्रोहरिश्चन्द्रोहरिश्चद्राच्चरोहितः । ६८
रोहिताच्चवृकोजातोवृकाद्बाहुरजायत ।
सगरस्तस्यपुत्रोऽभूद्राजापरमधार्मिक ॥६९
द्वे भार्येसगरस्यापिप्रभाभानुमनीतया ।
ताभ्यामाराधिन पूर्वमौर्वाग्नि पुत्रकाम्यया ॥७०

हर्यश्व के निकुम्भ पुत्र हुआ और निकुम्भ के वीर्य से संहताश्व ने जन्म ग्रहण किया था। सहताश्व के अकृताश्व और उरणाश्व नाम वाले दो सुतो ने जन्म लिया था ॥६४॥ उरणाश्व के युवनाश्व हुआ और उसके मान्धाता उत्पन्न हुआ था। मान्धाता के पुरुकुत्स नामक पुत्र हुआ था और धर्म सेतु राजा हुआ था जो इन्द्र का मित्र प्रबल प्रतापशाली मुचुकुन्द इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। पुरुकुत्स का पुत्र नर्मदा पति दु सह हुआ था ॥६५।६६॥ इसके पुत्र का नाम सभूति था और इस सभूति से त्रिधन्वा की उत्पत्ति हुई थी। त्रिधन्वा का त्रय्यारुण नाम से विख्यात होने वाला पुत्र हुआ था ॥६७॥ त्रय्यारुण का सुत सत्यव्रत हुआ और उससे फिर सत्यरथ की उत्पत्ति हुई। सत्यरथ के पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र था तथा हरिश्चन्द्र के रोहित पुत्र उत्पन्न हुआ ॥६८॥ रोहित से वृक

ग्रौर वृक से बाहु समुत्पन्न हुआ था। इसके पुत्र का नाम सगर था जो कि परम धार्मिक राजा हुआ था ॥६६॥ राजा सगर के दो भार्या थीं। एक का नाम प्रभा ग्रौर दूसरी का नाम भानुमती था। इन दोनों ने पुत्र की कामना से पहिले ओर्वाग्नि की ग्राराधना की थी ॥७०॥

ग्रौर्वस्तुष्टस्तयो.प्रादाद्यथेष्टं वरमुत्तमम् ।
एकापष्टिसहस्राणिसुत्तमेकंतथापरा ॥७१
ग्रगृह्णाद्वंशकर्तारंप्रभाऽगृह्णाद्बहून्सुतान् ।
एकभानुमतीपुत्रमगृह्णादसमंजसम् ॥७२
ततःपष्टिसहस्राणिसुपुवेयादवीप्रभा ।
खनत.पृथिवींदग्धाविष्णुनायेश्वमार्गणे ॥७३
ग्रसमंजस्तुतनयोह्यंशुमान्नामविश्रुतः ।
तस्यपुत्रोदिलीपस्तुदिलीपात्तुभगीरथः ॥७४
येनभागीरथीगङ्गातपःकृत्वावतारिता ।
भगीरथस्यतनयोनाभागइतिविश्रुतः ॥७५
नाभागस्यांबरीपोऽभूत्सिधुद्वीपस्ततोऽभवत् ।
तस्यायुतायुःपुत्रोऽभूद्दतुपर्णस्ततोऽभवत् ॥७६
तस्यकल्मापपादस्तुसर्वकर्मानत स्मृतः ।
तस्यानरण्यःपुत्रोऽभून्निघ्नस्तस्यसुतोभवत् ॥७७

समाराधन से सन्तुष्ट होकर ग्रौर्व ने यथेष्ट वरदान दिया था। इनमे से एक ने साठ सहस्र पुत्र और दूसरी ने एक पुत्र ही वंश को चलाने वाला स्वीकार किया था। प्रभा ने बहुत से पुत्रों की प्राप्ति स्वीकार की थी। भानुमती केवल एक ग्रसमञ्जस पुत्र प्राप्त किया था ॥ ७१।७२ ॥ इसके ग्रनन्तर यादवी प्रभा ने साठ हजार पुत्रों को प्रसूत किया था जो कि विष्णु के द्वारा ग्रश्व की खोज करने के कार्य मे पृथ्वी को खोदते हुए दग्ध कर दिये गये थे ॥ ७३ ॥ ग्रसमञ्जस का पुत्र ग्रंशुमान् हुग्रा ग्रौर इसके पुत्र का नाम दिलीप था तथा दिलीप से भगीरथ ने जन्म ग्रहण किया था ॥७४॥ यह भगीरथ महान् यशस्वी राजा था जिसने भागीरथी गङ्गा का स्वर्ग से यहाँ भू-मण्डल मे

अवतरण कराया था। भगीरथ के पुत्र का नाम नाभाग हुआ था ॥७५॥ राजा नाभाग के अम्बरीष हुआ और फिर उससे सिन्धुद्वीप हुआ था। इसके पुत्र का नाम अयुतायु था और अयुतायु से ऋतुपर्ण ने जन्म ग्रहण किया था ॥७६॥ इसके कल्मापपाद नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ और इसके पुत्र का नाम सर्वकर्मा था। सर्वकर्मा के अनरण्य हुआ और अनरण्य के पुत्र का नाम विघ्न था ॥७७॥

निघ्नपुत्रावुभौजातावनमित्ररघूत्तमौ।
अनमित्रोवनमगादरिनाशकृतेनृप ॥७८
रघोरभूद्दिलीपस्तुदिलीपाच्चाप्यजस्तथा।
दीर्घबाहुरजाज्जात प्रजापालस्ततोऽभवत् ॥७९
ततोदशरथोजातस्तस्यपुत्रचतुष्टयम्।
नारायणात्मका सर्वेरामस्तस्याग्रजोऽभवत् ॥८०
रावणान्तकरस्तद्वद्रघूणांवंशवर्द्धन.।
वाल्मीकिर्यस्यचरितचक्रेभार्गवसत्तम. ॥८१
तस्यपुत्र कुशोनामइक्ष्वाकुकुलवर्द्धन.।
अतिथिस्तुकुशाज्जातोनिषधस्तस्यचात्मज ॥८२
नलस्तुनिषधाज्जातोनभास्तस्मादजायत।
नभस पु डरीकोऽभूत्क्षेमधन्वाततःपरम् ॥८३
तस्यपुत्रोऽभवद्वीरोदेवानीक प्रतापवान्।
अहीनगुस्तस्यसुत सहस्राश्वस्तत पर ॥८४

राजा निघ्न के अनमित्र और रघूत्तम नाम वाले दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। हे नृप! शत्रुओं के नाश करने पर अनमित्र वन मे चला गया था ॥७८॥ राजा रघु से दिलीप की उत्पत्ति हुई थी और दिलीप के पुत्र का नाम अज था। अज से दीर्घबाहु हुआ और इसके पुत्र का नाम प्रजापाल हुआ था ॥७९॥ इससे राजा दशरथ की उत्पत्ति हुई जिसके चार पुत्र रत्न समुत्पन्न हुए थे। ये सभी नारायण के स्वरूप वाले थे। उनमे सबसे बडे भाई राम हुए थे ॥ ८० ॥ यह श्रीराम लङ्का के राजा रावण के वध करने वाले और रघु के वंश की वृद्धि करने वाले हुए थे। भार्गव सत्तम महर्षि बाल्मीकि ने श्रीराम के चरित्र का

को लेकर एकत्रित किया था ॥ ८ ॥ प्रभु ने वेद शक्ति से परिपूर्ण रथ में अपने हाथ से उसको ब्रह्माजी ने समस्त आयुधों को धारण करने वाला युवा नर कर दिया था ॥६॥ उस पितामह ने उसे लोक में आरोपित करके अपना आत्मीय बना लिया था। इसके पश्चात् सभी से ब्रह्मर्षियों ने कहा था कि यह हमारा स्वामी होवे ॥ १० ॥ समस्त ऋषि, देवगण, गन्धर्व और अप्सराओं के द्वारा स्तुति किये गये उसका महान् और अत्यधिक अन्तर हो गया था ॥११॥ तेज के वितान से भू मण्डल में दिव्य औषधें उत्पन्न हो गई थीं और उसकी दीप्ति सदा रात्रि में अत्यधिक हुआ करती है ॥१२॥ इसी कारण से सोम ओषधियों का स्वामी हो गया था और उसकी द्विजों में भी गणना की जाती है। यह वेदों का धामरस है जो कि यह शुभ मण्डल दिखलाई देता है ॥१३॥ यह चन्द्र का मण्डल कृष्ण पक्ष तथा शुक्ल पक्ष में सर्वदा क्षीण एवम् क्रम से वर्द्धमान हुआ करता है। प्राचेतस दक्ष ने रूप लावण्य से संयुक्त, सुन्दर वर्चस वाली सत्ताईस कन्यायें उसको दे दी थी। इसमें उसकी सहस्रों शक्तियों की सहस्रों दशाएँ हो गई थीं ॥१४।१५॥

तपश्चकारशीतांशुर्विष्णुध्यानैकतत्परः ।
ततस्तुष्टश्चभगवांस्तस्मै नारायणोहरिः ॥१६
वरंवृणीष्वचोवाच परमात्मा जनार्दनः ।
ततो वव्रे वरं सोमः शक्रलोके यजाम्यहम् ॥१७
प्रत्यक्षमेव भोक्तारो भवन्तु मम मन्दिरे ।
राजसूये सुरगणा ब्रह्माद्यायेचतुर्विधाः ॥१८
रक्षपाल.सुरोऽस्माकमास्तांशूलधरोहरः ।
तथेत्युक्तः समाजह्रे राजसूयतुविष्णुना ॥१९
होतात्रिर्भृगुरध्वर्युरुद्गाताचचतुर्मुखः ।
ब्रह्मत्वमगमत्तस्य उपद्रष्टा हरिः स्वयम् ॥२०
सदस्याःसर्वदेवास्तुराजसूयविधिस्मृतः ।
वसवोऽध्वर्यवस्तद्वद्विश्वेदेवास्तथैवच ॥२१

शीतल किरणों वाले चन्द्र ने भगवान् विष्णु के ध्यान में तत्पर होकर तप किया था। उस सोम की तपश्चर्या से भगवान् नारायण हरि परम सन्तुष्ट

हो गये थे ॥१६॥ परमात्मा जनार्दन भगवान् ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उससे कहा—जो भी तुझे अभीष्ट हो मुझसे वरदान प्राप्त करले। इस पर सोम ने प्रार्थना की थी कि मैं इन्द्रलोक में यजन करूँ—यही वरदान सोम ने उनसे माँगा था ॥१७॥ इसके अनन्तर भगवान् ने कहा—जो ब्रह्मादि चार प्रकार के सुरगण हैं वे सब राजसूय यज्ञ में मेरे मन्दिर में प्रत्यक्ष रूप से ही भोक्ता होवें ॥१८॥ उसमे राक्षसो का पालक शूलधारी देव हमारा रक्षक होगा—यह कहकर भगवान् विष्णु ने राजसूय यज्ञ किया था ॥१९॥ उस यज्ञ में होता अत्रि मुनि, अध्वर्यु भृगु और उद्गाता चतुर्मुख हुए थे। ब्रह्मा के पद को उस यज्ञ मे उपद्रष्टा हरि ने स्वय ग्रहण किया था ॥२०॥ उस यज्ञ के सदस्य सभी देवगण थे। इस प्रकार से वह राजसूय यज्ञ की विधि बताई गई है। वसुगण अध्वर्यु थे और विश्वेदेवा भी अध्वर्यु हुए थे ॥२१॥

त्रैलोक्यदक्षिणातेनऋत्विग्भ्य प्रतिपादिता ।
सोम.प्राप्याथदुष्प्राप्यमैश्वर्यंसृष्टिसत्कृतम् ॥२२
सप्तलोकैकनाथत्व प्राप्तस्स्वतपसा तदा ॥२३
कदाचिदुद्यानगतामपश्यदनेकपुष्पाभरणोपशोभाम् ।
बृहन्नितम्बस्तनभारखेदा पुष्पावभगेऽप्यतिदुर्बलागीम् ।
भार्यां च ता देवगुरोरनगवाणाभिरामायतचारुनेत्राम् ॥२४
तारा स ताराधिपति स्मरार्तं केशेपु जग्राह विविक्तभूमौ ।
सापि स्मरार्ता सहते न रेमे तद्रूपकान्त्या हृतमानसैव ॥२५
चिर विहृत्याथ जगाम तारा विधुर्गृहीत्वा स्वगृह ततोऽपि ।
न तृप्तिरासीत्स्वगृहेऽपि तस्य तारानुरक्तस्य सुखागमेपु ॥२६
बृहस्पतिस्तद्विरहाग्निदग्धस्तद्ध्याननिष्ठैकमना बभूव ।
शशाक शाप न च दातुमस्मै न मन्त्रशस्त्राग्निविषैरनेकै. ॥२७
तस्यापकर्तु विविधै रुपायैर्नैवाभिचारैरपि वागधीश: ।
स याचयामास ततस्तु देव सोम स्वभार्यार्थमनगतप्त. ॥२८

उस यज्ञ मे इस त्रिलोकी को दक्षिणा प्रतिपादित की थी। सोम ने समस्त सृष्टि के द्वारा सत्कृत दुष्प्राप्य ऐश्वर्य को प्राप्त किया था ॥२२॥ उस

समय में अपने तप से सातों लोकों के स्वामी हो जाने का वैभव उसने प्राप्त किया था ॥२३॥ किसी एक समय में सोम ने उद्यान में गई हुई, पुष्पों के आभरणों से परम शोभा वाली, बडे-बडे नितम्ब तथा स्तनों के भार से खिन्न हुई पुष्पों के भङ्ग करने में भी अत्यन्त दुर्बल अङ्गों वाली, कामदेव के बाणों से अत्यन्त अभिराम, बडे और सुन्दर नेत्रों वाली देवगुरु की भार्या को देखा था ॥२४॥ ऐसी परम सुन्दरी उसे जिसका नाम तारा था, देखकर ताराओं के अधिपति सोम कामदेव से अत्यन्त आर्त्त होकर एकान्त स्थान में उसने उसके केश पकड़ लिये थे। वह भी काम से अभिभूत हो गई थी और उसके रूप की कान्ति से उस तारा का हृदय वशीभूत हो गया था। वह वहाँ पर अपने आपको नियन्त्रित न कर सकी और वहाँ पर उसने रमण किया था ॥२५॥ चिरकाल तक वहाँ पर विहार करके फिर वहाँ से चन्द्र उसे अपने साथ ही में लेकर अपने घर को चला गया था। उस परम सुन्दरी तारा में वह सोम ऐसा अनुरक्त हो गया था कि अपने घर में उसे रखकर भी काम क्रीडा के सुख में उसकी तृप्ति नहीं हुई थी ॥२६॥ देवगुरु बृहस्पति उसके विरह से अग्नि दग्ध से हो गये थे और रात-दिन उसी के ध्यान में निमग्न मन वाले हो रहे थे। वह बृहस्पति मन्त्र—शस्त्र—अग्नि और अनेक प्रकार के विष आदि से इसको शाप भी न दे सके थे ॥२७॥ वाणी के स्वामी देवगुरु अनेक उपायों के द्वारा और अभिचारों से उसका कोई भी उपकार नहीं करना चाहते थे किन्तु काम से अत्यन्त उत्पीडित होकर उनने सोम देव से अपनी भार्या के लौटा देने की याचना की थी ॥२८॥

याच्यमानोऽपि ददौ न भार्यां बृहस्पतेः कामवशेनमोहितः।
महेश्वरेणाथ चतुर्मुखेन साध्यैर्मरुद्भिःसह लोकपालैः ॥२९
ददौ यदा तां न कथंचिदिन्दुस्तथा शिवः क्रोधपरो बभूव।
यो वामदेवः प्रथितःपृथिव्यामनेकरुद्रार्चितपादपद्मः ॥३०
ततःसशिष्यो गिरिशः पिनाकी बृहस्पतेः स्नेहवशानुबद्धः।
धनुर्गृहित्वाजगवपुरारिर्जगाम भूतेश्वरसिद्धजुष्टः ॥३१
युद्धाय सोमेन विशेषदीप्ततृतीयनेत्रानलभीमवक्त्रः।
सहैव जग्मुश्च गणेश्वराणां विंशाधिका षष्टिरथोग्रमूर्तिः ॥३२

तदा सुयुद्धं जगतां क्षयाय प्रवृद्धमालोक्यपितामहोऽपि ।
ततः प्रविश्याथ कथंचिदेव निवारयामास सुरैःसहैव ॥३३

अकारणंनिक्षयकृज्जनानां सोम त्वयापीदमकार्यकार्यम् ।
यस्मात्परस्त्रीहरणाय सोम त्वया कृत युद्धमतीवभीमम् ॥३४

पापग्रहस्त्वं भविता जनेषु पापोऽस्यलंवह्निमुखाशिना त्वम् ।
भार्यामिमार्पयवाक्पतेस्त्वं प्रमाणयन्नेव मदीयवाचम् ॥३५

तथेति चोवाच हिमांशुमाली युद्धदापाक्रामदत प्रशातः ।
बृहस्पतिस्तामथ गृह्य तारा हृष्टो जगाम स्वगृहं च रुद्रः ॥३६

उस सोम से याचना किये जाने पर भी कामदेव से अत्यन्त मोहित सोम ने बृहस्पति की भार्या को वापिस नहीं लौटाया था। उसे वापिस देने के लिये महेश्वर, चतुर्मुख, मारुतगण, मरुद्गण और समस्त लोकपालों ने सोम से कहा था ॥२६॥ जब चन्द्र ने सबके कहने पर भी किसी भी प्रकार से उस तारा को वापिस नहीं किया तो भगवान् शिव को महान् क्रोध आ गया था जो कि इस पृथ्वी में वामदेव नाम से प्रसिद्ध हैं और अनेक रुद्रों के द्वारा समर्चित चरण-कमल वाले हैं ॥३०॥ इसके अनन्तर बृहस्पति के स्नेह से अनुबद्ध होते हुए पिनाकधारी गिरीश प्रजन समस्त शिष्यगण के सहित धनुष ग्रहण कर भूतेश्वर और सिद्धों से सेवित होते हुए भगवान् पुरारि युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गये थे ॥३१॥ सोम के साथ युद्ध करने के लिये जिस समय में भगवान् शिव चले थे उस समय में उनका मुख विशेष दीप्ति वाले तीसरे नेत्र की अग्नि से महान् भीषण दिखलाई दे रहा था। उनके साथ में अत्यन्त उग्र स्वरूप वाले असंखी गणेश्वर भी चल दिये थे ॥ ३२ ॥ वह ऐसा भीषण युद्ध था जिसमें जगत् का पूर्ण क्षय ही था। इस प्रकार के उम बढ़े हुए युद्ध को देखकर पितामह ब्रह्मा ने देवगण के साथ वहाँ पहुँचकर बड़ी कठिनता से उसका निवारण किया था ॥३३॥ ब्रह्माजी ने सोम से कहा—हे सोम ! बिना ही किसी कारण के सब जनों के क्षय करा देने वाला यह कुत्सित कार्य क्यों किया है जिससे पराई स्त्री के हरण करने के लिये यह अत्यन्त भयानक युद्ध करने का विचार कर डाला है ? ॥३४॥ तुम जनों में पाप ग्रह हो जाओगे और अब भी वह्नि मुखाशियों के

महान् पापी हो गये हो। अब तुम इस भार्या को बृहस्पति को वापिस लौटा दो और मेरे वचन को प्रमाण स्वरूप समझो ॥३५॥ ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर हिमांशुमाली चन्द्र ने उनके वचन को स्वीकार कर लिया था और युद्ध करने से प्रशान्त हो गया था। तब से सोम प्रशान्त हो गया था। बृहस्पति भी अपनी भार्या तारा को लेकर परम प्रसन्न हो गये और देवगुरु तथा रुद्र दोनों अपने-अपने घर वापिस चले गये थे ॥३६॥

ततः संवत्सरस्यांतेद्वादशादित्यसन्निभः ।
दिव्यपीताम्बरधरोदिव्याभरणभूषितः ॥३७
तारोदरविनिष्क्रान्तःकुमारस्सूर्यसन्निभः ।
सर्वार्थशास्त्रविद्विद्वान्हस्तिशास्त्रप्रवर्तकः ॥३८
तामयद्राजपुत्रोऽर्थंविश्रुतोराजवैद्यकः ।
राज्ञःसोमस्यपुत्रत्वाद्राज पुत्रोबुध.स्मृतः ॥३९
अभिषेकं ततःकृत्वा प्रदानमकरोद्विभुः ।
ग्रहमध्यं प्रदायाथ ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिर्युतः ॥४०
पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवांतरधीयत ।
इलोदरे च धर्मिष्ठं बुधः पुत्रमजीजनत् ॥४१
अश्वमेधशतंसाग्रमकरोद्यस्स्वतेजसा ।
पुरूरवाइतिख्यातःसर्वलोकनमस्कृतः ॥४२

पुलस्त्य मुनि ने कहा—फिर एक वर्ष के पश्चात् बारह सूर्यों के समान तेजस्वी, दिव्य पीताम्बरधारी तथा उत्तम आभरणों से सुविभूषित सूर्य के सदृश कुमार तारा के उदर से निकला था जो कि समस्त अर्थशास्त्रों का ज्ञाता, परम विद्वान् और हस्ति शास्त्र का प्रवर्तक था ॥३७।३८॥ इसका नाम राज पुत्र था जो कि अर्थ से विश्रुत राज वैद्यक होता है। राजा सोम का पुत्र होने के कारण राजपुत्र बुध इस नाम से कहा गया था ॥३९॥ ब्रह्मर्षियों के सहित ब्रह्मा ने अभिषेक करके उसे ग्रहों का [illegible] ॥४०॥ सभी मनुष्यों के देखते हुए वह वहीं पर अन्तर्ध्यान हो गये थे और फिर इला के उदर में बुध ने परम धर्मिष्ठ पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था ॥४१॥ जिसने

अपने तेज से सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। वह समस्त लोकों के द्वारा नमस्कृत होता हुआ पुरूरवा इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥४२॥

हिमवच्छिखरेरम्येसमाराध्यपितामहम् ।
लोकैश्वर्यमगाद्राजन्सप्तद्वीपपतिस्तदा । ४३
केशिप्रभृतयोदैत्यास्तद्भृत्यत्वसमागता ।
उर्वशीयस्यपत्नीत्वमगमद्रूपमोहिता ॥४४
अजीजनत्सुतानष्टौनामतस्तान्निबोधमे ।
आयुर्दृढायुर्वश्यायुर्बलायुर्घृतिमान्वसु ॥४५
दिव्यजायु शतायुश्चसर्वेदिव्यबलौजस ।
आयुषोनहुष,पुत्रो वृद्धशर्मातथैवच ॥४६
रजिर्दंडोविशाखश्चवीरा पच महारथा. ।
रजे पुत्रशत जज्ञ राजेयाइतिविश्रुतम् ॥४७
रजिराराधयामासनारायणमकल्मषम् ।
तपसातोषितोविष्णुर्वरप्रादान्महीपते ॥४८
देवासुरमनुष्याणामभूत्सविजयीतदा ।
अथ देवासुर युद्धमभूद्वर्षशतत्रयम् ॥४९

हिमवान् पर्वत राज के सुन्दर शिखर पर भगवान् पितामह की आराधना करके उसने लोको क ऐश्वर्य को प्राप्त किया था और उस समय वह सातो द्वीपों का स्वामी हो गया था। ४३॥ उसने आठ पुत्रों को उत्पन्न किया था। उनके नाम मुझसे श्रवण करो। आयु, दृढायु वश्यायु, बलायु, धृतिमान, वसु, दिव्यजायु और शतायु ये उन आठो के नाम थे जो कि सभी दिव्य, ओज एवम् बल वाले थे। आयु के नहुष और वृद्धशर्मा पुत्र हुए थे ॥४४ ४५॥ रजि, दण्ड और विशाख इस प्रकार से पाँच महारथी पुत्र उत्पन्न हुए थे। रजि के एक सौ पुत्रों की समुत्पत्ति हुई थी जो 'राजेय'—इस शुभ नाम से लोक में विश्रुत हुए थे ॥४६।४७॥ रजि ने कल्मष से रहित भगवान् नारायण की आराधना की थी। तपश्चर्या से परम प्रसन्न भगवान् विष्णु ने महीपति को वर प्रदान किया था ॥४८॥ वह फिर उस समय मे देव—असुर और मनुष्यों में सब पर विजयी हुआ था। इसके अनन्तर तीन सौ वर्ष तक देवासुर युद्ध हुआ था ॥४९॥"

प्रह्लादस्य च पोर्योर्मं न कश्चिद्विजयी तयोः ।
ततो देवासुरैः पृष्टः पृथग्देवश्चतुर्मुखः ॥५०
अनयोर्विजयी किं स्यादृजिर्यत्रेति सोऽब्रवीत् ।
जयाय प्रार्थितो राजा सहायस्त्वमवस्व नः ॥५१
दैत्यैः प्राह यदि स्वामी वो भवामि ततस्त्वलम् ।
नासुरैः प्रतिपन्नं तत्प्रतिपन्नं सुरैस्तदा ॥५२
स्वामी भव त्वमस्माकं बलनाशाय विद्विषः ।
ततो विनाशिताः सर्वे येऽवध्या वज्रपाणिनः ॥५३
पुत्रत्वमगमत्तुष्टस्तस्येन्द्रः कर्मणा ततः ।
दत्त्वेन्द्राय पुरा राज्यं जगाम तपसे रजिः ॥५४
रजिपुत्रैस्तदाच्छिन्नं बलादिन्द्रस्य वै यदा ।
यज्ञभागश्च राज्यं च तपोबलगुणान्वितं ॥५५
राज्यभ्रष्टस्ततः शक्रो रजिपुत्रनिपीडितः ।
प्राह वाचस्पतिं दीनः पीडितोऽस्मि रजेः सुतैः ॥५६

प्रह्लाद और इन्द्र इन दोनों असुर और सुर का युद्ध बड़ा भीषण हुआ था और इन दोनों में कोई भी विजयी नहीं हुआ था। तब देवासुरों ने अलग-अलग चतुर्मुख ब्रह्माजी से पूछा था ॥५०॥ इन दोनों में विजयी कौन होगा? तब ब्रह्मा ने कहा था इस युद्ध में रजिका विजय होगा। उस समय में जय प्राप्त करने के लिये राजा से प्रार्थना की गई थी कि आप हमारे इस युद्ध में सहायता करने वाले बन जावें ॥५१॥ दैत्यों के द्वारा ऐसी प्रार्थना करने पर रजि ने कहा यदि मैं आपका स्वामी हो जाऊँ तो फिर पर्याप्त है। असुरों ने जो प्रतिपन्न नहीं किया है वह उस समय सुरों ने प्राप्त किया है ॥५२॥ फिर अन्यों ने कहा कि शत्रुओं के बल के नाश करने के लिये आप हमारे स्वामी हो जाइये। इससे जो वध्या वज्र हाथों में लेने वाले हैं वे सब विनाशित हो जावेंगे ॥५३॥ इसके अनन्तर उसके गर्भ से सन्तुष्ट इन्द्र उसके पुत्रता को प्राप्त हो गया था और रजि पहिले समय में इन्द्र को अपना राज्य देकर तप करने के लिये वन में चला गया था ॥५४॥ उस समय में रजि के पुत्रों ने बलपूर्वक इन्द्र से

द सब छिन्न कर दिया था जो कि यज्ञ का भाग था और राज्य था क्योंकि वे प के बल और गुणों से युक्त थे। ५५॥ इसके पश्चात् राज्य से परिभ्रष्ट होकर न्द्र रजि के पुत्रों के द्वारा अत्यन्त ही उत्पीडित हुआ था। उसने वाचस्पति से जाकर दीनता धारणकर प्रार्थना की थी कि मुझे रजि के पुत्रों ने सताया है ॥५६॥

नयज्ञभागोराज्यंमेपीडितस्यवृहस्पते।
राज्यलाभायमेयत्नंविधत्स्वधिषणाधिप ॥५७
ततोवृहस्पतिः शक्रमकरोद्वलदर्पितम्।
ग्रहशान्तिविधानेनपौष्टिकेनचकर्मणा ॥५८
गत्वाथमोहयामासरजिपुत्रान्वृहस्पतिः।
जिनधर्मंसमास्थायवेदबाह्यंसधर्मवित् ॥५९
वेदत्रयीपरिभ्रष्टांश्चकारधिषणाधिपः।
वेदबाह्यान्परिज्ञायहेतुवादसमन्वितान् ॥६०
जघानशक्रोवज्रेणसर्वान्धर्मवहिष्कृतान्।
नहुषस्यप्रवक्ष्यामिपुत्रान्सप्तैवधार्मिकान् ॥६१
यतिर्ययातिश्शर्यातिरुत्तरःपरएवच।
अ (आ) यतिर्वियतिश्चैवसप्तैतेवंशवर्द्धनाः ॥६२
यतिःकुमारभावेऽपियोगीवैखानसोऽभवत्।
ययातिरकरोद्राज्यंधर्मैकशरण सदा ॥६३

इन्द्र ने बृहस्पति से कहा—हे धिषणाधिप ! हे बृहस्पते ! मेरे पास अब न तो राज्य ही रहा है और न कोई यज्ञ का भाग ही है, मैं अत्यन्त पीडित हूँ। अब आप मेरे राज्य की प्राप्ति के लिये कोई यत्न कीजिए ॥५७॥ इसके अनन्तर बृहस्पति ने इन्द्र को बल से दर्पित कर दिया था और बृहस्पति ने उसके लिये ग्रहों की शान्ति का विधान तथा पौष्टिक कर्म किया था ॥५८॥ फिर धर्म के वेत्ता बृहस्पति ने वेदबाह्य जिनके धर्म में समास्थित होकर वहाँ जाकर रजि के पुत्रों को सम्मोहित कर दिया था ॥५९॥ धिषणा अर्थात् बुद्धि के स्वामी देवगुरु ने उन सबको वेदत्रयी से परिभ्रष्ट कर दिया था। इन्द्र ने उन सबको

जान लिया था कि वे सब वेदों से बहिष्कृत हैं और हेतुवाद से मुक्त हो गये हैं ॥६०॥ तब इन्द्र ने उन सब धर्म से बहिष्कृतों को वज्र से मार डाला था। अब मैं राजा नहुष के सात परम धार्मिक पुत्रों के विषय में बतलाता हूँ ॥६१॥ नहुष के पुत्र यति—ययाति—शर्याति—उत्तर—पर—ययाति और नियति ये सात ही हुए थे जो कि वंश की वृद्धि करने वाले थे ॥६२॥ यति नाम वाला जो पुत्र था वह कुमारावस्था में ही वैखानस योगी हो गया था। फिर ययाति ने राज्य का शासन किया था जो कि धर्म की रक्षा करने वाला हुआ था ॥६३॥

शर्मिष्ठातस्यभार्याभूद्दुहितावृषपर्वणः ।
भार्गवस्यात्मजाचैवदेवयानीचसुव्रता ॥६४
ययातेःपंचदायादास्तान्प्रवक्ष्यामिनामतः ।
देवयानीयदुं पुत्रंतुर्वसुं चाप्यजीजनत् ॥६५
तथाद्रुह्यमणं (नुं) पूरुंशर्मिष्ठाजनयत्सुतान् ।
यदुःपूरुपश्चभरतस्तेवैवंशविवर्द्धनाः ॥६६
पूरोर्वंशंप्रवक्ष्यामियत्रजातोऽसिपार्थिव ।
यदोस्तुयादवाजातायत्रतोबलकेशवौ ॥६७
भारावतारणार्थाय पांडवानां हितायच ।
यदो पुत्रा बभूवुश्च पंचदेवसुतोपमाः । ६८
सहस्रजित्तथाज्येष्ठःक्रोष्टानीलोञ्जिकोरघुः ।
सहस्रजितोदायादः शतजिन्नामपार्थिवः । ६९

उस ययाति की भार्या शर्मिष्ठा नाम वाली हुई थी जो कि वृष पर्व की पुत्री थी। भार्गव की आत्मजा (पुत्री) देवयानी परम सुव्रता थी ॥६४॥ राजा ययाति के पाँच दायाद (पुत्र) हुए थे। अब उनके सबके नामों का उल्लेख करके बतलाता हूँ। देवयानी ने यदु और तुर्वसु पुत्र को जन्म दिया था ॥६५॥ शर्मिष्ठा ने द्रुह्यणो और पूरु पुत्रों को समुत्पन्न किया था। यदु—पूरु और भरत ये वंश की वृद्धि करने वाले हुए थे ॥ ६६ ॥ अब पूरु के वंश को बतलाता हूँ जिसमें जो जो राजा उत्पन्न हुए थे। यदु के यादव हुए थे जिसमें बलराम और भगवान् केशव ने जन्म धारण किया था ॥६७॥ भूमि के भार को उतारने के लिये और

पाण्डवों का हित—सम्पादन करने के लिये यदु के पाँच देव पुत्रों के तुल्य सुत हुए थे ॥६८॥ सहस्रजित् सबमे ज्येष्ठ था, क्रोष्टा—नील—जिक और रघु ये पाँच पुत्र थे। सहस्रजित् का दायाद शतजित् नाम वाला राजा हुआ था ॥६६॥

शतजितश्चदायादास्त्रयःपरमधार्मिकाः ।
हैहयश्च हयश्चैव तथा तालहयश्च यः ॥७०
हैहयस्यतुदायादोधर्मनेत्रःप्रतिश्रुतः ।
धर्मनेत्रस्यकुन्तिस्तुसंहतस्तस्यचात्मजः ॥७१
संहतस्यतुदायादोमहिष्मान्नामपार्थिवः ।
आसीन्महिष्मतःपुत्रोभद्रसेन प्रतापवान् ॥७२
वाराणस्यामभूद्राजाकथितःपूर्वमेवहि ।
भद्रसेनस्यपुत्रस्तुदुर्दमोनामधार्मिकः ॥७३
दुर्दमस्यसुतोभीमोधनकोनामवीर्यवान् ।
धनकस्यसुताह्यासंश्चत्वारोलोकविश्रुताः । ७४
कृताग्नि कृतवीर्यश्चकृतधर्मातथैवच ।
कृतौजाश्चचतुर्थोऽभूत्कृतवीर्याच्चसोऽर्जुनः ॥७५
जातोवाहुसहस्रेणसप्तद्वीपेश्वरोनृप ।
वर्षायुतंतपस्तेपेदुश्चरपृथिवीपतिः ॥७६

शतजित् के पुत्र परम धार्मिक तीन हुए थे जिनके नाम हैहय—हय और तालहय थे ॥७०॥ हैहय के दायाद का धर्म नेत्र प्रसिद्ध था। धर्मनेत्र का कुन्ति हुआ और कुन्ति का संहत पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥७१॥ संहत का पुत्र महिष्मान् नाम वाला राजा हुआ था। महिष्मान् के पुत्र का नाम भद्रसेन था जो बड़ा ही प्रताप वाला था ॥७२॥ यह वाराणसी मे राजा हुआ था जिसका वर्णन पहिले कर दिया गया है। भद्रसेन के पुत्र का नाम दुर्दम था जो कि राजा हुआ था और धार्मिक था ॥ ७३ ॥ दुर्दम का पुत्र भीम धनक नामधारी अत्यन्त वीर्य पराक्रम वाला था। धनक के चार पुत्र हुए थे जो कि लोक में प्रसिद्ध हुए थे ॥७४॥ उनके नाम कृताग्नि—कृतवीर्य—कृतधर्मा—कृतौज थे। कृतवीर्य से अर्जुन अर्थात् सहस्रार्जुन समुत्पन्न हुआ था। ७५॥ यह अर्जुन सहस्र बाहुओं

वाला था और सात द्वीपों का ईश्वर नृपति हुआ था। इस पृथ्वी पति ने दश सहस्र वर्ष पर्यन्त परम दुश्चर तप किया था ॥७६॥

दत्तमाराधयामासकार्त्तवीर्योऽत्रिसंभवम् ।
तस्मैदत्तोवरान्प्रादाच्चतुर.पुरुषोत्तमः ॥७७
पूर्वंबाहुसहस्रंतुसवव्रे राजसत्तमः ।
अधर्मंध्यायमानस्यभीतिश्चापिनिवारणम् ॥७८
युद्धेनपृथिवीजित्वाधर्मेणावाप्यवैवलम् ।
संग्रामेवर्त्तमानस्यवधस्चैवाधिकाद्भवेत् ॥७९
एष धन्वी धनुर्गृह्य उत्सिक्तं पंचभि.शरैः ।
लकेशं मोहयित्वातु सबलं रावणं बलात् । ८०
निर्जित्यबद्धास्वानीयमाहिष्मत्यांबबधतम् ।
ततोगतोऽहंतस्याग्रे अर्जुनसंप्रसादयन् ॥८१
मुमोचराजन्पौत्रमेसख्यंकृत्वाचपार्थिव ।
तस्यबाहुसहस्रस्यबभूवज्यातलस्वनः ॥८२
युगांताग्ने.प्रवृत्तस्ययथाज्यातलनि.स्वनः ।
अहोबलंविधेर्वीर्यंभार्गव.सयदाच्छिनत् ॥८३
मृधे सहस्रं बाहूनांहेमतालवनयथा ।
यवसिष्ठस्तुसंक्रुद्धोह्यर्जुनंशप्तवान्विभुः ॥८४
यस्माद्वनं प्रदग्धं ते विश्रुतं मम हैहय ।
तस्मात्तेदुष्कृतंकर्मकृतमन्योहनिष्यति ॥८५

इस कार्त्तवीर्य ने अत्रिकुमार दत्त की आराधना की थी। उस पुरुषों में परम श्रेष्ठ ने उसको चार वरदान दिये थे ॥७७॥ उस राजाओं में श्रेष्ठ ने पहिला वरदान तो एक सहस्र बाहुओं का होना मांगा था। अधर्म का ध्यान करने वाले से जो भय हो उसका निवारण हो जाना यह दूसरा वर प्राप्त किया था ॥७८॥ युद्ध के द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर धर्म के द्वारा बल की प्राप्ति करना तथा संग्राम में वर्तमान चाहे कोई कितना भी अधिक हो उसका वध कर देना ये चार वरदान प्राप्त किये थे ॥७९॥ इस कर्त्तवीर्य ने धनुष ग्रहण

करके पाँच शरों से ही काम लिया था और अत्यन्त बलवान् रावण को सेना के सहित बलपूर्वक मोहित कर दिया था ॥८०॥ उस लङ्केश्वर को जीतकर बाँधकर ले आया और माहिष्मती में बाँध दिया था। फिर मैं वहाँ गया था और उसके आगे मैंने सहस्रार्जुन को प्रसन्न किया था। ८१॥ हे पार्थिव ! पुलस्त्य ने सहस्रार्जुन से कहा था कि मेरे साथ सख्य भाव को करके मेरे इस पौत्र को छोड़ दो तब उसने रावण को खोलकर छोड़ दिया था। उसकी जो एक सहस्र बाहुएँ थीं उनमें धारण की हुई धनुष की डोरी का शब्द बड़ा भयानक होता था ॥८२॥ युगान्त के समय में प्रवृत्त अग्नि के समान उसकी ज्वाला तल ध्वनि होती थी। उसके इस प्रकार के बल का छेदन भार्गव ने किया था। ८३॥ युद्ध में उन सहस्रों बाहुओं को हेमताल वन की भाँति परशुराम ने छिन्न-भिन्नकर काट दिया था। महर्षि वसिष्ठ ने क्रोधित होकर सहस्रार्जुन को शाप दे दिया था ॥८४॥ महर्षि वसिष्ठ ने यह शाप दिया था कि हे हैहय ! तूने मेरा परम प्रसिद्ध वन दग्ध कर दिया है इस दुष्कृत से तुझे ऐसा परिणाम भोगना होगा कि कोई अन्य बली तेरा हनन कर देगा ॥८५॥

छित्वाबाहुसहस्रं तेप्रमथ्यतरसावली ।
तपस्वं ब्राह्मणस्त्वांवैवधिष्यतिसभार्गवः ॥८६
तस्य रामोऽथ हंतासीन्मुनिशापेनधीमतः ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीत्पंच तत्र महारथाः ॥८७
कृतास्त्राबलिनःशूराधर्मात्मनोमहाबल ।
शूरसेनश्चशूरश्च धृष्टो वै कृष्ण एवच ॥८८
जयद्ध्वज सर्वकर्ताग्रवन्तिश्चरसापतिः ।
जयध्वजस्यपुत्रस्तुतालजङ्घोमहाबलः ॥८९
तस्यपुत्राश्शतान्येव तालजङ्घा इतिस्मृताः ।
तेषां पंचकुलान्यासन्हैहयानामहात्मनाम् ॥९०
वीतिहोत्राश्चसंजाताभोजाश्चावंतयस्तथा ।
तुंडकेराश्चविक्रांतास्तालजंघाःप्रकीर्तिताः ॥९१

तेरी इन सहस्रों बाहुओं का छेदन करके बलपूर्वक तेरा प्रमथन कर बलवान् परम तपस्वी ब्राह्मण परशुराम तेरा वध कर देगा ॥८६॥ मुनि के

शाप के कारण परशुराम उसके वध करने वाले हुए थे। उसके एक सौ पुत्र हुए थे उनमें पाँच महारथ थे ॥८७॥ ये पाँचों अस्त्रधारी, महा बलवान्, शूर-वीर और धर्मात्मा थे। उनके नाम शूरसेन—शूर—धृष्ट—कृष्ण और जयध्वज थे ॥८८॥ जयध्वज अवनि के करने वाला रमापति था। जयध्वज के पुत्र का नाम तालजङ्घ था जो परमन्त बलवान् हुआ था ॥८९॥ उसके भी एक सौ पुत्र हुए थे जो तालजङ्घ—इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे। उन महान् आत्मा वाले हैहयों के पाँच कुल हुए थे ॥९०॥ उन पाँचों कुलों के नाम वीतिहोत्र—भोज—अवन्तिय—तुण्डकेर और विक्रान्त थे। ये सब तालजङ्घ के नाम से ही कीर्तित हुए थे ॥९१॥

वीतिहोत्रसुतश्चापिअनन्तोनामवीर्यवान् ।
दुर्जयस्तस्यपुत्रस्तुबभूवामित्रकर्षण ॥९२
सद्भावेनमहाराजःप्रजाधर्मेणपालयन् ।
कार्तवीर्यार्जुनोनामराजाबाहुसहस्रधृत् ॥९३
येनसागरपर्यंताधनुषानिर्जितामही ।
यस्तस्यकीर्तयेन्नामकल्यमुत्थायमानव: ॥९४
न तस्य वित्तनाश:स्यान्नष्टं चलभते पुन: ।
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमत: ॥
यथा यष्टा यथा दाता स्वर्गलोके महीयते ॥९५

वीतिहोत्र के सुत का नाम अनन्त था जो बहुत वीर्य पराक्रम वाला हुआ था। उसके पुत्र का नाम दुर्जय हुआ था जो कि शत्रुओं का कर्षण करने वाला था ॥९२॥ महान् राजा कीर्तवीर्यार्जुन एक सहस्र बाहुओं के धारण करने वाला था और अच्छे भाव से प्रजा धर्म को परि पलित करते हुए उसने शासन किया था ॥९३। जिसने सागर पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी को धनुष के द्वारा जीत लिया था। जो मनुष्य प्रात काल में उठकर उसके नाम का कीर्तन करता है उसके वित्तका कभी नाश नहीं होता है और जो नष्ट हो गया हो वह प्राप्त हो जाता है। जो कोई कार्तवीर्य के जन्म का गुणगान करता है उसका महत्व होता है ॥९४।९५॥

र काव्य को देवी ने देखा था ।।६।। धातु के उपघात में श्रम करते हुए और अत्यन्त दुर्बल दशा में अवस्थित उनको वहाँ देखकर उस समय में पिता के द्वारा जिस रीति से वाक्य कहे गये थे उस देवी ने काव्य के लिये वैसा ही किया था ।।७।।

गीर्भिश्चैवानुकूलाभि.स्तुवंतीवल्गुभाषिणी ।
गात्रसंवाहनं कालेसेवमानात्वच सुखं. ।।८
व्रतचर्यानुकूलाभिरुपास्यबहुला. समाः ।
पूर्णे धूमव्रते तस्मिन्घोरे वर्षसहस्रके ।।९
वरेण च्छंदयामास शिवः प्रीतोऽभवत्तदा ।
एतद्व्रत त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित् ।।१०
तस्माद्वै तपसाबुद्धयाश्रु तेनचबलेनच ।
तेजसाचसुरान्सर्वांस्त्वमेकोऽभिभविष्यसि ।।११
यच्चकिंचिन्मयिब्रह्मन्विद्यतेभृगुनंदन ।
प्रतिदास्यामितत्सर्वंत्वगावाच्यनकस्यचित् ।।१२
किंभाषितेनबहुनाअवध्यस्त्वंभविष्यसि ।
तान्दत्वातुवरांस्तस्मैभार्गवायपुन. पुन. ।।१३
प्रजेशत्वं धनेशत्वमवध्यत्वंचवंददौ ।
एतांल्लब्ध्वावरान्काव्यः संप्रहृष्टतनूरुह. ।।१४

स्तुति प्रिय मधुर भाषण करने वाली उसने अनुकूल वचनों के द्वारा स्तवन करते हुए उस समय में त्वचा को सुख पहुँचाने वाले गात्र संवाहनों से (शरीर के दबाने से) सेवा की थी ।।८।। व्रतचर्या के अनुकूलताओं से बहुत-से वर्षों तक उपासना करके जब वह एक सहस्र वर्ष में समाप्त होने वाला धूमव्रत जो कि अत्यन्त घोर व्रत था सम्पूर्ण हो गया तो भगवान् शिव परम प्रसन्न हो गये और वरदान देकर सन्तुष्ट कर दिया था ।। ६ ।। भगवान् महेश्वर ने कहा—यह महान् कठिन व्रत है । इसको तूने ही पूर्ण किया है और आज तक अन्य किसी ने भी इसे नहीं किया था ।।१०।। इसीलिये अब तू तप—बुद्धि—
. और तेज से समस्त सुरों का अकेला ही अभिभूत कर देगा ।।११।।

हे ब्रह्मन् ! हे भृगुनन्दन ! और जो भी कुछ मेरे अन्दर है वह सभी कुछ तुझे दे दूँगा अब तुमको किसी से भी कुछ कहना नही चाहिए ।।१२।। बहुत कुछ कहने से क्या लाभ है इतना ही पर्याप्त है कि तू वध करने के योग्य नहीं हो। इस प्रकार से भार्गव के लिये इन वरों को देकर फिर भगवान् शिव ने उसे प्रजा का ईश होना—धन का स्वामी बनना और अवध्या होने का भी वरदान प्रदान किया था। इन समस्त अत्युत्तम वरदानों को प्राप्त करके काव्य (भार्गव) प्रसन्नता पुलकित हो गये थे ।।१३।१४।।

एवमाभाष्यदेवेशमीश्वरं नीललोहितम् ।
प्रजाग्न्वितस्ततस्तस्मैप्राञ्जलिः प्रणतोऽभवत् ।।१५
ततःसोऽन्तर्हिते देवेजयंतीमिदमब्रवीत् ।
कस्यत्वं सुभगेकावादु खितेमयिदुःखिता ।।१६
महतातपसायुक्ता किमर्थंमांजिगीषसि ।
अनयासस्थिता भक्त्याप्रश्रयेणदमेनच ।।१७
स्नेहेनचैवसुश्रोणि प्रीतोऽस्मिवरवर्णिनि ।
किमिच्छसिवरारोहेकस्तेकामः समुद्यतः ।।१८
तंतेसपादयाम्यद्ययद्यपिस्यात्सुदुष्करम् ।
एवमुक्ताब्रवीदेनं तपसाज्ञातुमर्हसि ।।१६
चिकीर्षितंहिमेब्रह्म स्त्वंवैवदयथातथम् ।
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दृष्ट्वादिव्येन चक्षुषा ।।२०
मयासहत्वंसुश्रोणिशतवर्षाणि भामिनि ।
सर्वभूतै रदृश्यांतः सप्रयोगमिहेच्छसि २१

इस प्रकार से नील लोहित देवों के अधीश्वर भगवान् शिव से भाषण करके प्रजा से समन्वित भार्गव हाथ जोड़कर परम प्रणत हो गये थे ।।१५।। इसके अनन्तर भगवान् शिव के अन्तर्धान हो जाने पर भार्गव ने जयन्ती से कहा—हे सुभगे ! तू कौन है और किसकी पुत्री है ? मेरे दुःखित होने पर तू क्यों दुःखित हो रही है ? ।।१६।। इस प्रकार की इस महान् तपश्चर्या से युक्त होकर किस प्रयोजन के लिये मेरी सेवा कर रही है ? तेरी यह तेरी भक्ति-

श्रद्धा-प्रश्रय और दम किस हेतु है ? ॥ १७ ॥ हे सुश्रोणि ! हे वरवर्णिनि ! स्नेह के वशीभूत होकर मैं तुम पर परम प्रसन्न हो गया हूँ। हे वरारोहे ! तू क्या चाहती है और तेरी क्या कामना है ? । १८॥ मैं जो भी तेरा कोई कार्य होगा चाहे वह कितना भी कठिन क्यों न हो, उसे आज पूर्ण कर दूँगा। इस तरह जब उस जयन्ती से भार्गव ने कहा तो वह इनसे बोली—आप तो मेरा जो भी कार्य है उसे तपोबल से जानने के योग्य हैं ॥१९॥ जयन्ती ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो भी मेरा कुछ निवेदित (करने का अभिलाष) है उसे आप ही ठीक-ठीक बतला दीजिएगा। इस प्रकार से कहे गये भार्गव ने अपनी दिव्य चक्षु से देखकर उससे कहा ॥२०॥ हे सुन्दर श्रोणी भागों वाली ! हे भामिनि ! तुम मेरे साथ यहाँ पर समस्त प्राणियों से अदृश्य होती हुई सौ वर्ष तक प्रमत्त सम्प्रयोग चाहती हो ॥२१॥

देवि इंदीवरश्यामे वरार्हेवामलोचने ।
एवंवृणोषिकामांस्त्वददेवंवल्गुभाषिते ॥२२
एवंभवतुगच्छाव गृहंमेमत्तकाशिनि ।
ततः सगृहमागम्यजयंत्यासह शोशना ॥२३
तयासहावसद्‍ब्माशतवर्षाणिभार्गवः ।
अदृश्यःसर्वभूतानां माययासंशितव्रतः ॥२४
कृतार्थमागतज्ञात्वा शुक्रंपर्वे दितेः सुताः ।
अभिजग्मुर्गृहंतस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः ॥२५
गतायदानपश्यंति माययासंवृतगुरुम् ।
लक्षणंतस्यवावुद्ध्वानाद्यागच्छतितेगुरुः ॥२६
एवंतेस्वानिधिष्ण्यानिगताः सर्वेययागताः ।
ततोदेवगणास्सर्वे गत्वां गरसमब्रुवन् ॥२७
दानवालयेतुभगवान्गत्वातत्रचतांचमूम् ।
मोहयित्वात्मवशगांक्षिप्रमेवतयाकुरु ॥२८

हे इन्दीवर श्यामे ! हे देवि ! हे वरार्हे ! हे सुन्दर नेत्रों वाली ! हे मृदु एवं मधुर भाषण करने वाली ! तुम इस प्रकार के वर मुझसे चाहती हो तो

मैं उन्हे देता हूँ ॥२२॥ अच्छा, ऐसा ही होगा। हे मत्तकाशिनि ! चलो, मेरे घर मे चलो। इसके अनन्तर वह भार्गव जयन्ती के साथ घर में आ गये थे ॥२३॥ फिर भार्गव ने उस जयन्ती के साथ एक सौ वर्ष तक निवास किया। माया से संशित व्रत वाला होकर समस्त प्राणियों से अदृश्य होकर ही वास किया था ॥२४॥ सब दिति के पुत्र दैत्यो ने अपने तप के कार्य मे सफल होकर आये हुए शुक्र को जानकर परम प्रसन्न हुए और उन्हे देखने की इच्छा वाले वे सब शुक्र के घर मे गये थे ॥२५॥ शुक्र के घर पर गये हुए उन दैत्यों ने जब शुक्र को नही देखा था जो कि माया से संवृत थे और उनके कोई लक्षण भी वे न जान पाये तो उन्होने विचार किया कि अभी हमारे गुरुदेव शुक्र वापिस नहीं आये हैं ॥२६॥ इस तरह निराश होकर वे सब जैसे आये थे वैसे ही अपने-अपने घरों को वापिस लौटकर चले गये थे। इसके पश्चात् समस्त देवगण आङ्गिरस के समीप मे पहुँचकर उनसे कहने लगे ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! आप दानवों के आश्रय मे पहुँचकर वहाँ उनकी उस सेना को मोहित करके शीघ्राति-शीघ्र अपने वश मे कर लेवें ॥२८।

घिषणस्तान्सुरानाहएवमेवप्रजाम्यहम् ।
तेनगत्वादानवेंद्रः प्रह्लादोवैवशीकृत. ॥२९
शुक्रोभूत्वास्थितस्तत्रपौरोहित्यचकारसः ।
स्थितोवर्षशतसाग्रमुशनातावदागत ॥३०
दनुपुत्रैस्ततोदृष्ट सभायातुवृहस्पतिः ।
उशना एक एवात्र द्वितीय किमिहागत ॥३१
सुमहत्कौतुकंचात्रभविताविग्रहोदृढम् ।
किंचदिष्यतिलोकोऽयद्वारियोऽप्ययवस्थित ॥३२
सभायामास्थितोयोऽयगुरु र्विनोवदिष्यति ।
एवंप्रजल्पतातेषादनूनांकविरागतः ॥३३
स्वरूपधारिणतत्रदृष्ट्वासीनवृहस्पतिम् ।
उवाचवचनक्रुद्ध किमर्थत्वमिहागत ॥३४
शिष्यान्मोहयसेमेत्वयुक्तं सुरगुरोस्तव ।
मूढास्तेत्वानजाननितत्वन्मायामोहिताध्रुवम् ॥३५

तन्नयुक्त तवब्रह्मन्परशिष्यप्रधर्षणम् ।
व्रजत्वदेवलोकस्वतिष्ठधर्ममवाप्स्यसि ॥३६

देवताओं के द्वारा ऐसा कहने पर देवगुरु बृहस्पति ने उन देवगणों से कहा—हाँ ऐसा ही करूँगा और अब मैं वहाँ जाता हूँ। उसने वहाँ जाकर दानवों का स्वामी जो प्रह्लाद था उसको अपना वशीकृत बना लिया था ॥२६॥ सुरगुरु स्वयं शुक्राचार्य के स्वरूप वाले बन गये और वहाँ स्थित होकर दैत्येन्द्र का जो पौरोहित्य कर्म था उसे करने लगे थे। वह इस प्रकार सौ वर्ष से भी अधिक ठहर गये थे कि उसी बीच में भार्गव भी आ गये थे ॥ ३० ॥ तब तो दनु के पुत्रों ने सभा में बृहस्पति को देखा था जो कि शुक्र के रूप स्वरूप में वहाँ पर थे। दैत्यों ने इन दानों को देखकर मनमें सोचा कि शुक्र तो एक ही है यह दूसरे कैसे,कहाँ से आगये हैं ? ॥३१॥ यह एक बड़ा कौतुक है और इसमें सुदृढ विग्रह हो जायगा। जो यह द्वार पर अवस्थित है इस विषय में लोक क्या कहगा ॥ ३२ ॥ सभा में समास्थित जो हमारे गुरुदेव हैं वह क्या कहेंगे—इस प्रकार से उन दनुओं के कहते हुए ही वहाँ पर भार्गव आ गये थे ॥३३॥ अपने स्वरूप को धारण करने वाले बृहस्पति को वहाँ बैठे हुए देखकर भार्गव बहुत क्रुद्ध होते हुए यह वचन बोले—तुम यहाँ किसलिये आ गये हो ॥३४॥ हे देव-गुरु ! तुम मेरे शिष्य दैत्यों को मोहित कर रहे हो क्या यह तुम्हारा उचित कर्त्तव्य है ? ये मूढ़ हैं और तुम्हारी माया से मोहित होगए हैं अतएव ये तुमको नहीं पहचान पा रहे हैं ॥३५॥ हे ब्रह्मन् ! पराये शिष्यों का इस तरह प्रधर्षण (धोका देना) करना तुम्हारा युक्त कार्य नहीं है। आप अब देवलोक में चले जाओ और वहाँ पर रहो अपने धर्म को प्राप्त करोगे ॥३६॥

शिष्योहिमेकश्च पूर्वंहत्तोदानवयु गर्वैः ।
विद्यार्थीतनयोब्रह्म स्त्तवायोप्यागतिस्त्विह ॥३७
श्रुत्वातुतस्यतद्वाक्यंस्मितकृत्वावदद्गुरुः ।
सतिचोरा. पृथिव्यायेपरद्रव्यापहारिणः ॥३८
एवंविधानदृष्टाश्चरूपदेहापहारिणः ।
वृत्रघातेन चेंद्रस्य ब्रह्महत्या पुराभवत् ॥३९

लोकायतिकशास्त्रेणभवतासातिरस्कृता ।
जानामित्वामांगिरसंदेवाचार्यवृहस्पतिम् ॥४०
मद्रूपधारिणंप्राप्तंसर्वेपश्यतदानवाः ।
एषवोमोहनायालंप्राप्तोविष्णुविचेष्टितैः ॥४१
तदेनंशृङ्खलैर्वद्ध्वाक्षिपेतलवणार्णवे ।
पुनरेवाब्रवीच्छुक्रःपुरोधायंदिवौकसाम् ॥४२

पहिले दानव श्रेष्ठों के द्वारा मेरा कच शिष्य मार दिया गया था। विद्यार्थी तनय है। यहाँ तुम्हारी मति अयोग्य है ॥३७॥ भार्गव के द्वारा कहे हुए इस वाक्य को सुनकर मुस्कराते हुए देवगुरु ने कहा—पृथिवी में जो पराये धन का अपहरण किया करते हैं ऐसे चोर है ॥३८॥ इस प्रकार से रूप और देह के अपहरण करने वाले विधान में देखे गये हैं। वृत्रासुर के घात करने से अर्थात् मार देने से पहिले इन्द्र को ब्रह्म हत्या लगी थी ॥ ३९ ॥ लोकायतिक शास्त्र के द्वारा आपने उसका तिरस्कार किया था। आप अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति देवाचार्य हैं—मैं आपको भली-भाँति जानता हूँ ॥ ४० ॥ आप यहाँ मेरा रूप धारण करके आये हैं। सब दानवो ! तुम इनको अच्छी तरह देख लो। यह विष्णु की विशेष चेष्टाओं के कारण यहाँ आप सबको मोहन करने के लिये प्राप्त हुए हैं ॥४१॥ सो अब आप लोग इनको शृङ्खलाओं से बाँधकर खारी सागर में डाल दो। फिर शुक्राचार्य ने कहा—यह देवों के पुरोहित हैं ॥४२॥

मोहितानूनमेतेनक्षयंयास्यथदानवाः ।
भोप्रहंदानवेंद्रे ह्यवंचितोऽस्मिदुरात्मना ॥४३
किमर्थंभवतात्यक्त कृतश्चान्य.पुरोहितः ।
देवाचार्योऽगिरःपुत्रएषएववृहस्पतिः ॥४४
वंचितोऽसिनसन्देहोहितार्थंतुदिवौकसाम् ।
त्यजस्वैनमहाभागशत्रुपक्षजयावहम् ॥४५
अनुशिष्यमयाद्यातः पूर्वमेवमहंप्रभो ।
जलमध्ये स्थितः पीतोमहादेवेन शम्भुना ॥४६
उदरस्थस्य मे जातं साग्रं वर्षशतंकिल ।
उदराच्छुक्ररूपेणशिश्नेनाहंविर्माजतः ॥४७

वरद प्राहमादेवस्शुक्रेष्ट त्ववरवृणु ।
मया वृतो वर राजन्देवदेव पिनाकधृत् ॥४८
मनसांचितिताह्यर्थामानसेयेस्थितावराः ।
भवतुमयितेसर्वे प्रसादात्तव शकर ॥४९

शुक्र ने कहा—इसके द्वारा आप सब लोग निश्चित रूप से मोह को प्राप्त हो गये हैं और सब दानव क्षय को प्राप्त हो जायँगे। हे दानवेन्द्र ! मैं इस दुरात्मा के द्वारा वञ्चित हो गया हूँ ॥ ४३ ॥ आपने मुझे क्यों त्याग दिया है और अन्य को अपना पुरोहित बना लिया है। यही अङ्गिरा का पुत्र देवों का आचार्य वृहस्पति है ॥ ४४ ॥ इसके द्वारा आप ठगे गये हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह आपकी प्रतारणा इसने देवगण के हित—सम्पादन करने के लिये ही की है। हे महाभाग ! इसका शीघ्र ही त्याग कर दो, इसका यहाँ रहना शत्रु के पक्ष की विजय कराने वाला ही होगा ॥४५॥ हे प्रभो ! पहिले मैं अनुशिष्य के भय से यहाँ से चला गया था और जल के मध्य में स्थित रहा तथा शम्भु महादेव के द्वारा पीत हो गया था ॥४६॥ उदर में स्थित मुझे सौ वर्ष बीत गये थे। फिर उदर से शिश्न के द्वारा शुक्र रूप से मैं विसर्जित हुआ हूँ ॥४७॥ इसके पश्चात् वर देने वाले देव ने मुझसे कहा था—हे शुक्र ! तू अपना अभीष्ट वरदान मुझसे माँग ले। तब देवों के भी देव पिनाक के धारण करने वाले शिव से मैंने वरदान प्राप्त किया है ॥४८॥ मैंने शिव से यही वरदान प्राप्त किया था कि हे शङ्कर ! मेरे मनके द्वारा जो भी अर्थ सोचे जावें और जो मेरे मन में स्थित मनोरथ हों वे सभी मेरे पूर्ण हों ऐसी आपकी कृपा होनी चाहिए ॥४९॥

एवमस्त्विति देवेन प्रेषितोऽस्मि तवांतिकम् ।
तावदत्राभवत्त्वायपुरोधास्ते वृहस्पतिः ॥५०
दृष्ट सत्यदानवेंद्रमयोक्तत्वनिशामय ।
वृहस्पतिस्तदावाक्यप्रह्लादप्रत्यभाषत ॥५१
नाहमेतप्रजानामि देव वा दानवनरम् ।
मद्रूपधारिणराजन्वचनार्थं तवागतम् ॥५२

ततस्तेदानवाःसर्वेसाधुसाध्विति वादिनः ।
पुरोधाःपौर्विकोनोऽस्तुयोवाकोवाभवत्विति ।।५३
नानेनकार्यमस्माकंयातुह्येपयथागतः ।
सक्रोधमशपत्काव्योदानवेंद्रान्समागतान् ।।५४
त्यक्तोयथाहंयुष्माभिस्तथासर्वाञ्चिरादिव ।
गतश्रीकान्गतप्राणान्पश्येयंदुःखजीविकान् ।।५५
सुघोरामापदंप्राप्तानचिरादेवसर्वशः ।
एवमुक्त्वागतःकाव्योयदृच्छातस्तपोवनम् ।।५६

ऐसा ही होवे—यह देव ने कहकर मुझे अब तुम्हारे समीप में भेजा है । इसी बीच में तब तक यह बृहस्पति यहाँ आकर तुम्हारा पुरोहित बन गया है ।।५०।। मैंने इसे पुरोहित के रूप में अब देखा है । हे दानवेन्द्र ! यह मेरा कथन सत्य है । तुम इसको सुना दो । उस समय देवगुरु बृहस्पति ने प्रह्लाद को उत्तर दिया था ।।५१।। मैं इसको नहीं जानता हूँ कि यह देव है या दानव है अथवा कोई नर है । यह मेरा-सा ही रूप धारण करके हे राजन् ! तुम्हें ठगने के लिये यहाँ आगया है ।। ५२ ।। इसके पश्चात् वे समस्त दानव "साधु–साधु" अर्थात्. बिल्कुल ठीक है ऐसा कहते हुए यों बोले कि हमारा पहिला ही पुरोहित है चाहे वह कोई भी होवे ।।५३।। इस आने वाले से हमको कुछ भी कार्य नहीं है । यह जैसे ही आया है वैसे ही यहाँ से अब वापिस चला जावे । उस भार्गव ने बड़े भारी क्रोध के साथ उन समागत दानवेन्द्रों को शाप दे दिया था ।।५४।। भार्गव ने कहा—जिस तरह तुम सब लोगों ने मुझे त्याग दिया है वैसे ही मैं तुम सबको चिरकाल पर्यन्त श्री से हीन, प्राण रहित और दुःख से जीवन व्यतीत करने वाले देखूँगा ।।५५।। तुम सब थोड़े ही समय में महान् घोर आपत्ति में पड़े हुए दुःखित होओगे—ऐसा कहकर काव्य अर्थात् शुक्राचार्य अपनी ही इच्छा से तपोवन में चले गए थे ।।५६।।

तस्मिन्गतेततः शुक्रे स्थितस्तत्रबृहस्पतिः ।
पालयन्दानवांस्तत्र चिरकालमनिन्दित ।।५७
ततोयदुनिवेशाले प्रतिज्ञानेनरेश्वर ।
संभूयदानवा सर्वे स्वंपृष्टंतं महागुरुम् ।।५८

संसारेऽस्मिन्नसारेतुकिंचिज्ज्ञानप्रयच्छ नः ।
येनमोक्षव्रजामश्चप्रसादात्तवमुव्रत ॥५६

ततःसुरगुरुःप्राहकाव्यरूपीतदागुरुः ।
ममाप्येषागतिः पूर्वं या युष्माभिरुदाहृता ॥६०

क्षणंकुर्वन्तुसहिताश्शुचीभूयसमाहिताः ।
ज्ञानंवक्ष्यामिवोदैत्याम्रहंवैमोक्षदायियत् ॥६१

एषाश्रुतिर्वैदिकीयाऋग्यजु सामसंज्ञिता ।
वैश्वानरप्रसादात्तुदुःखदाप्राणिनामिह ॥६२

यज्ञश्राद्धं कृतक्षुद्रै रैहिकस्वार्थतत्परैः ।
येत्वमीवैष्णवाधर्मायि च रुद्रकृतास्तथा ॥६३

शुक्राचार्य के तपोवन में चले जाने पर वहाँ पर सुरगुरु बृहस्पति स्थित हो गये थे । वहाँ पर दानवों का कुछ समय तक परिपालन करते हुए थोड़े काल तक ठहरे थे ॥५७॥ हे नरेश्वर ! इसके अनन्तर बहुत-सा समय व्यतीत हो जाने पर समस्त दानवों ने एकत्रित होकर उस समय में गुरु से पूछा था ॥५८॥ यह सम्पूर्ण संसार तो सार से हीन है इसमें हम लोग उपस्थ होकर आ गये हैं तो अब कृपाकर हमको कुछ ज्ञान दीजिए । हे सुव्रत ! ऐसा ज्ञान प्रदान कीजिए जिसे पाकर हम लोग मोक्ष की प्राप्ति कर लेवें । आपके प्रसाद से हमारा आवागमन का भव-बन्धन छूट जावे ॥५९॥ ऐसा पूछने पर भार्गव के स्वरूप को धारण करने वाले सुरगुरु ने कहा—मेरी भी यह बुद्धि पहिले ही थी अर्थात् मेरे हृदय में भी यही विचार था जिसको तुमने अब मेरे सामने प्रकट किया है ॥६०॥ एक क्षण भर के लिये आप लोग पवित्र होकर सावधान हो जाओ तब मैं हे दैत्यो ! आप सबको वह मोक्ष प्रदान कर देने वाला ज्ञान बतलाऊँगा ॥६१॥ ऋक्—यजु और साम संज्ञा वाली जो यह वैदिकी श्रुति है वह वैश्वानर के प्रसाद से इस संसार में प्राणियों को दुःख प्रदान करने वाली ही है ॥६२॥ लौकिक तुच्छ स्वार्थ में परायण लोगों के द्वारा यज्ञ और श्राद्ध आदि किये जाते हैं । जो ये विष्णु से सम्बन्ध रखने वाले धर्म हैं और जो रुद्र कृत धर्म हैं सब इसी प्रकार के हैं ॥६३॥

कुधर्मादारसहितैर्हिंसाप्रायाःकृताहितैः ।
अर्द्धनारीश्वरोरुद्रःकथंमोक्षंगमिष्यति ॥६४
वृतोभूतगणैभूं रिभूषितश्चास्थिभिस्तथा ।
नस्वर्गोनैवमोक्षोऽस्यलोकाःक्लिश्यंतिवैतथा ॥६५
हिंसायामास्थितोविष्णुःकथंमोक्षंगमिष्यति ।
रजोगुणात्मकोब्रह्मास्वसृष्टिमुपजीवति ॥६६
देवर्षयोऽप्ययेचान्येवैदिकंपक्षमाश्रिताः ।
हिंसाप्रायाः सदाक्रूरामांसादाः पापकारिणः ॥६७
सुरास्तुमद्यपानेनमासादाब्राह्मणास्त्वमी ।
धर्मेणानेनकःस्वर्गकथमोक्षंगमिष्यति ॥६८
यज्ञयज्ञादिकंकर्म स्मार्तश्राद्धादिकंतथा ।
तत्रनैवापवर्गोऽस्तियत्रैपाश्रूयतेश्रुतिः ॥६९
यज्ञंकृत्वापशुं हत्वाकृत्वारुधिरकर्दमम् ।
यद्येवगम्यतेस्वर्गोनरक. केन गम्यते ॥७०

ये सभी कुत्सित धर्म हैं । दाराओं के सहित अहित पुरुषों के द्वारा ही किये जाते हैं जो कि हिंसा पूर्ण होते हैं । अर्ध नारीश्वर रुद्र हैं वह किस तरह मोक्ष को प्राप्त होंगे ? ॥६४॥ उनको अहर्निश भूतगण घेरे रहा करते हैं और श्मशान की भस्म से तथा अस्थियों से उनका शरीर भूषित रहता है । ऐसे पुरुषों का न तो स्वर्ग में ही निवास होता है और न वे मोक्ष ही प्राप्त किया करते हैं । यहाँ लोग व्यर्थ ही क्लेश उठाया करते हैं ॥६५॥ विष्णु भी हिंसा में समास्थित रहा करते उनकी मुक्ति भी किस प्रकार से होगी ? ब्रह्माजी भी रजोगुण के स्वरूप वाले हैं जो अपनी सृष्टि को ही लेकर उप जीवित रहा करते हैं ॥६६॥ देवर्षिगण और जो भी कोई अन्य वैदिक पक्ष का आश्रय लेने वाले हैं वे सभी हिंसा प्राय, सदा क्रूरता धारण करने वाले, माँस का भक्षण करने वाले, महान् पाप कर्मों के करने वाले हैं ॥६७॥ सुरगण मद्य का पान करते हैं और ये ब्राह्मण लोग माँस भोजी हैं । इस धर्म से कैसे स्वर्ग का निवास होगा और कैसे मोक्ष प्राप्त होगा ॥ ६८ ॥ जो यज्ञादिक कर्म हैं और जो स्मार्त अर्थात्

स्मृति में कहे गये श्राद्धादिक कर्म हैं। उनमें अप वर्ग की प्राप्ति नहीं होती है जहाँ कि यह श्रुति सुनी जाती है ॥६९॥ यज्ञ करके उसमें पशु का हनन करके रुधिर का कीच किया जाता है। यदि इस प्रकार के कर्मों से जिनमें हिंसा की प्रधानता रहा करती है स्वर्ग के सुखोपभोग हो जावें तो फिर नरक की यातना किस कर्म से भोगी जायगी ? ॥७०॥

यदिभुक्तमिहान्येनतृप्तिरन्यस्यजायते ।
दद्यात्प्रवसतः श्राद्धं न सभोजनमाहरेत् ॥७१
आकाशगामिनोविप्रा.पतितामांसभक्षणात् ।
तेषां न विद्यतेस्वर्गोमोक्षोनैवेहदानवाः ॥७२
जातस्यजीवितंजंतोरिष्टं सर्वस्यजायते ।
आत्ममांसोपमं मांसं कथं खादेत पण्डितः ॥७३
योनिजान्तुकथंयोनिंसेवंते जंतवस्त्वमी ।
मैथुनेन कथ स्वर्गं यास्यंते दानवेश्वर ॥
मृद्भस्मना यत्र शुद्धिस्तत्रशुद्धिस्तु का भवेत् ॥७४
विपरीततमंभोकपश्यदानव यादृशम् ।
विण्मूत्रस्य कृतोत्सर्गे शिश्नापानेतुशोधनम् ॥७५
नसभारोऽस्तिवदनेमृदातोयेनवापुनः ।
भुक्तेवाभोजनेराजन्कथंनापानशिश्नयोः ॥७६
क्रियतेशोधनन्तद्विपरीतास्थितिस्त्वियम् ।
यत्र प्रक्षालनं प्रोक्तं तत्रतेनैवकुर्वते ॥७७

यदि भोग दूसरे के द्वारा किया जावे और तृप्ति अन्य को प्राप्त हो जाया करती हो तो प्रवास में रहने वाले को श्राद्ध दे दिया जावे पर वह प्रवासी को भोजन की प्राप्ति हो जानी चाहिए किन्तु ऐसा नहीं होता है ॥७१॥ आकाश में गमन करने वाले विप्र मांस के भक्षण करने से पतित हो गये हैं। हे दानवगण ! उन विप्रों को स्वर्ग प्राप्त नहीं होता है और उन्हें मोक्ष भी नहीं मिलता है ॥७२॥ जो जीव जन्म धारण करता है उस सबका परम अभीष्ट जीवन ही होता है। अपने मांस के तुल्य ही अन्य का मांस भी होता है। उस मांस को पण्डित

कैसे जाते हैं ? ॥७३॥ सभी लोग योनि से ही उत्पन्न हुआ करते हैं और फिर उस योनि का सेवन करके जीवगण कैसे आनन्दित हुआ करते हैं। हे दानवेश्वर! मैथुन कर्म करने से स्वर्ग का लाभ किस तरह हो सकता है—अर्थात् मैथुन सेवियों को स्वर्ग का गमन नहीं होगा। भस्म से मृत्तिका की जहाँ शुद्धि होती है वहाँ क्या शुचिता होगी ? ॥७४॥ हे दानव ! इस तरह से यह लोक बिल्कुल विपरीत है इसे देखो। मल मूत्र के त्याग करने पर जिस प्रकार का शिश्न और अपान का शोधन होता है ॥७५॥ हे राजन् ! भोजन के खा लेने पर मुख में मिट्टी और जल से मुख भी शोधन का सम्भार नहीं किया जाता है तो फिर उसके त्याग करने पर गुदा और शिश्न का यह शोधन क्यों किया जाता है ? ॥७६॥ इनका भी शोधन वैसा ही करना चाहिए। इनके शोधन में यह विपरीत स्थिति क्यों की जाती है ? जहाँ प्रक्षालन कहा गया है वहाँ उसीसे किया करते है ॥७७॥

एतदन्यच्चजगतिदृश्यते पापदायकम् ।
एवंविधो यत्र धर्मः परमार्थोमतस्तुकः ॥७८
वदस्व त्वं दानवेंद्र वद भूयो वदामि ते ।
गुरोस्तुगदितश्रुत्वापरमार्थान्वितवचः ॥
जातकौतूहलास्तत्र विविक्तास्तु भवार्णवात् ॥७९
दीक्षयस्व गुरो सर्वान्प्रपन्नान्भक्तिन स्थितान् ॥८०
येन वेन पुनर्मोहंव्रजामस्तवशासनात् ।
सुविरक्ता स्मससारेशोकमोहंप्रदायिनि ॥८१
उद्धरस्व गुरो सर्वान्क्लेशार्कपर्णकूपतः ।
कस्य देवस्य शरणगच्छामोब्राह्मणोत्तम ॥८२
दैवत च प्रपन्नानाप्रकाशयमहामते ।
स्मरणेनोपवासेन ध्यानधारणया तथा ॥८३
पूजोपहारैचकृते अपवर्गस्तुलभ्यते ।
विरक्तास्स्मकुटु वेभुभूयोनात्रयतामहे ॥८४

यह और अन्य जगत् में सभी पापों के देने वाले हैं। जहाँ पर इस प्रकार का धर्म है वहाँ परमार्थ क्या हो सकता है ? ॥७८॥ हे दानवेन्द्र ! अब

आप कहिये जिसको मैं पुनः तुमको बतलाऊँ। गुरु के इस भाषण का श्रवण कर जो कि परमार्थ से समन्वित तथा समस्त दानवगण को बड़ा कौतूहल उत्पन्न हो गया था और वे सब संसार सागर से विरक्त हो गये ॥७६॥ दानवों ने इस गुरु के प्रवचन को श्रवण कर प्रार्थना करते हुए कहा—हे गुरुचरण ! ये सब आपकी प्रपत्ति ग्रहण करने के लिये समुपस्थित है और भक्ति-भाव से पूर्णतया समन्वित हैं। आप इनको दीक्षा दीजिए ॥ ८० ॥ अब आप हमको ऐसी ही दीक्षा देवें कि जिससे हम लोग आपके दामन को प्राप्त कर फिर मोह को कभी भी प्राप्त न होवें। यह संसार तो शोक और मोह को प्रदान करने वाला है। इसे हमने भली-भाँति समझ लिया है। हमको इस संसार से अब पूर्ण वैराग्य हो गया है ॥८१॥ हे गुरुवर्य ! कुए में गिरे हुए को उसके केश पकड़कर जैसे उसका उद्धार किया जाता है वैसे ही आप हमारे केशों का आकर्षण कर इस संसार से उद्धार कर दीजिए। हे ब्राह्मणों मे परम श्रेष्ठ ! अब हम किस देव की शरण में जावें ? ॥८२॥ आपकी शरणागति में आये हुए हमारे आप ही दैवत हैं। हे महान् मति वाले ! हमको प्रकाश प्रदान कीजिए। स्मरण—उपवास—ध्यान—धारणा—पूजा और उपहार के करने से अपवर्ग का लाभ किया जाता है। अब हम लोग कुटुम्ब से पूर्ण विरक्त हो गये हैं। फिर हम लोग इसमें कुछ भी यत्न नहीं करेंगे ॥८३।८४॥

एवचैवगुरुश्छन्नस्तैरुक्तोदनुपुंगवैः।
चितयामासतत्कार्यंकथमेतत्करोम्यहम् ॥८५
कथमेतेमयापापा.वर्तव्यानरकौकसः ।
विडंबनाच्छ्रुतेर्वाह्यास्त्रैलोक्येहास्यकारिण. ॥८६
इत्युक्त्वाधिपणोराजश्चितयामासकेशवम् ।
तस्यतच्चिंतितंज्ञात्वामायामोहजनार्दनः ॥८७
समुत्पाद्यददौतस्यप्राहचेदवृहस्पतिम् ।
मायामोहोऽयमखिलास्तान्दैत्यान्मोहयिष्यति ॥८८
भवतासहित.सर्वान्विदमार्गवहिष्कृतान् ।
एवामादिश्य भगवानतर्धानं जगामह ॥८९

तपस्यभिरतान्सोऽथमायामोहोगतोऽसुरान् ।
तेपाममीपमागत्यबृहस्पतिरुवाचह ॥६०
अनुग्रहार्थंयुष्माकंभक्त्याप्रीतस्त्विहागत. ।
योगीदिगम्बरोमुण्डोर्वर्हिपत्रधरोह्ययम् ॥६१
इत्युक्ते गुरुणापश्चान्मायामोहोऽब्रवीद्वचः ।
भो भो दैत्याधिपतयः प्रब्रूततपसिस्थिताः ॥
ऐहिकार्थं तु पारक्य तपस फलमिच्छथ ॥६२

गुप्त रूप में रहने वाले सुरगुरु से इस तरह उन दनु श्रेष्ठों ने कहा था। तब गुरु ने उस कार्य के विषय में चिन्तन किया था कि इस कार्य को मैं कैसे करूँ ॥८५॥ मेरे द्वारा ये सब पापात्मा नरकगामी किस तरह से करने चाहिए। विडम्बना से ये श्रुति से बहिष्कृत है और त्रिलोकी में हास्यकारी हैं ॥८६॥ हे राजन् ! ऐसा मन मे कहकर बृहस्पति ने भगवान् केशव का ध्यान किया था सुरगुरु के उस चिन्तन को जानकर भगवान् जनार्दन ने माया-मोह समुत्पन्न कर फिर उसे दे दिया था और बृहस्पति से यह वचन बोले—यह माया-मोह है जो उन समस्त दैत्यों को मोह पैदा कर देगा ॥८७।८८॥ आप हित पूर्वक उन सब वेद के मार्ग से बहिष्कृत दनुओं को मोहित कर देना—इस प्रकार से आदेश देकर भगवान् अन्तर्हित हो गये थे ॥८९॥ इसके अनन्तर माया-मोह को प्राप्त हुए वह बृहस्पति तप मे अभिरत उन असुरो के समीप मे आकर कहने लगे ॥९०॥ आप लोगो की भक्ति भाव से प्रसन्न,आप सबके ऊपर अनुग्रह करने के लिये यह बर्हिपत्रधारी मुण्ड दिगम्बर योगी यहाँ आया है ॥९१॥ गुरु ने तो इतना ही कहा था इसके पश्चात् माया मोह यह वचन बोला था—हे दैत्यो के अधिपतियो ! आप लोग तपश्चर्या मे स्थित हैं। आप बतलाइये कि तपस्या का फल ऐहलौकिक चाहते हैं या पारलौकिक फल की इच्छा रखते हैं ? ॥९२॥

कुरुध्व मम वाक्यानि यदि मुक्तिमभीप्सथ ।
आर्हत सर्वमेतच्च मुक्तिद्वारमसंवृतम् ।
धर्माद्विमुक्तेरर्होऽय नैतस्मादपरः पर ।९३
अत्रैवावस्थिता.स्वर्गं मुक्तिंवापि गमिष्यथ ।
एवप्रक.रैर्बहुभिर्युक्तिदर्शनवर्जितै ।.९४

[illegible] ।
[illegible] ॥९५
[illegible] ।
[illegible] ॥९६
[illegible] ।
[illegible] ॥९७
[illegible] ।
[illegible] ॥९८

भगवती ने कहा—[illegible] ॥९५॥ [illegible] और मुक्ति को प्राप्त [illegible] ॥९४-९५॥ [illegible] नहीं है ॥९६॥ [illegible] ॥९७॥ [illegible] किया था ॥९८॥

[illegible] ।
[illegible] । ९९
[illegible] ।
[illegible] ॥१००

तैरप्यन्येपरेतैश्चतैरप्यन्येस्तथापरे ।
नमोऽर्हते चेति सर्वे संगमे स्थिरवादिनः ॥१०१
अल्पैरहोभिःसंत्यक्तास्तैर्दैत्यैःप्रायशस्त्रयी ।
पुनश्चरक्ताम्बरधृन्मायामोहोजितेक्षणः ॥१०२
सोऽन्यानप्यसुरान्गत्वाऊचेऽन्यन्मधुराक्षरम् ।
स्वर्गार्थंयदिवोवाञ्छानिर्वाणार्थयिवापुनः ॥१०३
तदलंपशुघातादिदुष्टधर्मैर्निबोधत ।
विज्ञानमयमेतद्वै स्वशेषमधिगच्छत ॥१०४

अर्हन्त्य मेरा धर्म है जो कि माया मोह ने कहा है । उस धर्म के आश्रित होने वाले वे आर्हत हो गये थे ॥९९॥ माया-मोह के द्वारा वे सब दैत्य वेदत्रयी के धर्म से छुड़ाकर असुर करा दिये गये थे । उनके द्वारा प्रबोधित किये गये अन्य लोग भी उन्हीं के स्वरूप वाले वैसे ही वैदिक धर्म को त्यागने वाले हो गये थे ॥१००॥ उनके द्वारा और दूसरे और दूसरों के द्वारा और लोग भी सभी संगम में स्थिरवादी होते हुए अर्हन्त को नमस्कार है ऐसा कहते थे ॥१०१॥ थोड़े ही दिनों में सभी दैत्यों ने वेदत्रयी प्रतिपादित धर्म से छुड़ा दिये गये थे और फिर लाल वस्त्रों को धारण करके वाला माया-मोह विजयनामी हो गया था ॥ १०२ ॥ यह फिर इसी रीति से अन्य जो असुर थे उनके पास पहुँचकर उनको भी यही बात मधुर वाणी में बोलता था कि यदि आप लोगों की स्वर्गीय विलास और वहीं के सुखों का उपभोग करना अथवा निर्वाणपद प्राप्त करने की अभिलाषा रखना चाहते हों तो यज्ञादि करके पशु घात करना बन्द कर दो और भली-भाँति समझ लो । यह सब विशेष ज्ञान परिपूर्ण है इस बात को जान लो ॥१०३।१०४॥

बुध्यध्वं वचः सम्यग्बुधैरेवमिहोदितम् ।
जगदेतदनाधारभ्रान्तिज्ञानानुतत्परम् ॥१०५
रागादिदुष्टमत्यर्थंभ्राम्यतेभवसङ्कटे ।
नानाप्रकार वचन स तेषां युक्तियोजितम् ॥१०६
तथातथावदद्धर्मंतत्यजुस्ते यथा यथा ।
केचिद्विनिन्दां वेदानां देवानामपरेनृप ॥१०७

यज्ञकर्मकलापस्यतथाचान्येद्विजन्मनाम् ।
नैतद्य ुक्तिसहंवाक्यंहिंमाधर्मायजायते ॥१०८
हवीष्यनलदग्धानिफलान्यर्हंतिकोविदाः ।
निहतस्यपशोर्यज्ञेस्वर्गप्राप्तियदीप्यते ॥१०६
स्वपिता यजमानेन किं वा तत्र न हन्यते ।
तृप्तये जायतेपुंसो भुक्तमन्येन चेद्यदि ॥११०
दद्याच्छ्राद्धं प्रवसतोनवहेयुः प्रवासिनः ।
यज्ञैरनेकैर्देवत्वमवाप्येन्द्रेण भुज्यते ॥१११
शम्यादि यदिचेत्काष्ठं तद्वरं पत्रभुक्पशुः ।
जनाश्रद्धेयमित्येतदगवम्य तु तद्वचः ॥११२
उपेक्ष्य श्रेयसे वाक्यं रोचतायन्मयेरितम् ।
नह्याप्तवादानभसोनिपतंतिमहासुरा· ॥११३

मेरे वचनों को अच्छी तरह समझ लो, इसको बड़े-बड़े बुधजनों ने ही कहा है। यह सम्पूर्ण जगत् आधार से रहित है और इसमें केवल भ्रान्ति का ज्ञान ही भरा हुआ है। यह राग आदि दोषत्यधिक दोष पूर्ण है। इसीसे यह जीवात्मा इस संसार के सङ्कट में भ्रमित किया जाता है। इस प्रकार से उसने मुक्ति से योजित अनेक प्रकार के वचन कहे थे ॥१०५।१०६॥ उसने उसी भाँति से कहा था कि वे जिस-जिस रीति से धर्म को त्याग देवें। हे नृप ! कुछ लोग वेदों की विशेष बुराई करते थे और दूमरे लोग देवों की निन्दा करते थे ॥ १०७ ॥ अन्य लोग यज्ञादि कर्मों के समूह की निन्दा करते थे और दूसरे द्विजन्मा ब्राह्मणों की बुराई करते थे। यह वचन युक्ति सङ्गत कभी भी नहीं हो सकते कि हिंसा मे धर्म होता है ॥१०८॥ कोविदगण अग्नि में दग्ध किये हुए हवि फलों का हनन नहीं करते हैं। यज्ञ में वध किये हुए पशु से जो स्वर्ग की प्राप्ति की इच्छा की जाती है ॥१०९॥ यदि ऐसा ही है तो यजमान के द्वारा वहाँ पर अपने पिता का हनन क्यों नहीं किया जाता है। लोग कहते थे कि यदि अन्य के द्वारा खाये हुए से पितृगण की तृप्ति होती है तो प्रवास में रहने वाले को भी श्राद्ध दिया जाने से वह प्रवासी भी उसे प्राप्त कर तृप्त होजाना

चाहिए। जहाँ पर अनेक यज्ञों से देवत्व को प्राप्त करके इन्द्र के द्वारा स्वर्ग का भोग किया जाता है ।।११०।१११।। शमी आदि यदि काष्ठ है तो उससे श्रेष्ठ तो पत्तों को खाने वाला पशु है। ये सब बातें जनो की श्रद्धा के योग्य नहीं है— इसी तरह से उसके वचनो को जानकर उपेक्षा करके सेवन करते हो या मेरे द्वारा कथित वचन आपको रुचिकर लगते हैं। जो सत्य बोलने वाले आप्त पुरुषो के वरह होते है। हे महासुरो! वे कभी योंही आकाश से नहीं गिरा करते हैं ।।११२।११३।।

युक्तिमद्वचनं ग्राह्यं मयान्यैश्च भवद्विधैः ।
तत्त्ववादेवयं सर्वे प्रपन्नास्तव भक्तितः ।।११४
कुरुष्वानुग्रहचास्प्रसन्नोऽसियादिप्रभो ।
संभारानाहरामोऽद्यदीक्षायोग्यांश्चसर्वशः ।।११५
प्रसादत्तवयेनाशुमोक्षोहस्तगतोभवेत् ।
ततस्तानब्रवीत्सर्वान्मायामोहोऽसुरांस्तदा ।।११६
प्रपत्स्यशासनह्यो पगदीयोगुरुरग्यधीः ।
दीक्षादास्यतियुष्माकंनिदेशान्ममसत्तमः ।।११७
एतान्दीक्षयभोब्रह्मन्वचनान्ममपुत्रकान् ।
गतेमोहेदानवास्तेभार्गववाक्यमब्रुवन् ।।११८
देहिदीक्षामहाभागसर्वसंसारमोचनीम् ।
तथेत्याहोशनादैत्यान्गच्छामोनर्मदामनु ।।११९

आपके समान सुयोग्य पुरुषो को मेरे द्वारा कहे गये हों या अन्य किन्हीं के द्वारा कहे गये हो किन्तु यदि युक्ति युक्त हैं तो अवश्य ही ग्रहण करने चाहिए दानवो ने कहा—तत्त्ववाद मे हम सब लोग सहमत हैं और भक्ति के भाव से आपके शरणागति मे प्राप्त हुए हैं ।।११४।। हे प्रभो! यदि आप प्रसन्न हैं तो अब हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिएगा। हम आज ही दीक्षा के योग्य जो भी सामान होवे हम सब ले आवें ।।११५।। आपके ही प्रसाद का यह फल होगा कि जिससे हमारे हाथ मे मोक्ष शीघ्र प्राप्त हो जावेगा। इतना कहने के पश्चात् उन सब असुरों से उस समय मे माया-मोह ने कहा—।।११६।। मैं गुरु के शासन

से प्रसन्न रहने वाला हूँ। यह मेरे श्रेष्ठ बुद्धि वाले गुरुवरण आपको मेरी प्रार्थना से दीक्षा दे देंगे। यह परम श्रेष्ठ हैं ॥११७॥ माया-मोह ने कहा—हे ब्रह्मन्! मेरे वचन से आप इन मेरे पुत्रों को दीक्षा दे दीजिएगा। यह कहकर माया-मोह वहाँ से चला गया था और उसके चले जाने पर उन समस्त दानवों ने भार्गव स्वरूपधारी गुरु से यह वचन कहे ॥११८॥ हे महाभाग्य वाले! आप इस संसार से मोचन (छुटकारा) कराने वाली दीक्षा हम लोगों को दे दीजिए। ऐसा ही होगा—यह कहकर वह उशनवेषी गुरु बोले—हे दैत्यो! नर्मदा के तट पर चलो ॥११९॥

भोभोस्त्यजतवासांसिदीक्षांकारयितास्मिवः।
एवंतेदानवाभीष्मभृगुरूपेणधीमता ॥१२०
आंगिरसेनतेतथाकृतादिग्वाससोऽसुराः।
बर्हिपिच्छध्वजंतेषांगुंजिकाचारुमालिकाम् ॥१२१
दत्वा चकार तेषां तु शिरसो लुंचनंततः।
केशस्योत्पाटनंचैवपरमंधर्मसाधनम् ॥१२२
धनानामीश्वरोदेवोधनदः केशलुंचनात्।
सिद्धिपरमिकाप्राप्ता सदावेषस्यधारणात् ॥१२३
निरयस्वलभ्यतेह्यं वपुराप्राहार्हतःस्वयम्।
वालोत्पाटनेनदेवत्वंमानुषैर्लभ्यतेत्विह ॥१२४
किंनकुर्वीततत्तस्मान्महापुण्यप्रदंयतः।
मनोरथो हि देवानां लोके वैमानुषेकदा ॥१२५
अस्मिन्स्याद्धारनेवर्षेजन्मनः श्रावकेकुले।
तपसायुञ्ज्महेऽस्मान्वंकेशोत्पाटनपूर्वकम् ॥१२६

हे दैत्यगणो! आप सब लोग वस्त्रों का त्याग कर देवें अब मैं आपको दीक्षा प्रदान करूँगा। हे भीष्म! इस प्रकार से धीमान् भृगु रूपधारी बृहस्पति ने वे सब असुर दानव वहाँ पर दिगम्बर अर्थात् नग्न कर दिये थे। फिर उन सबको उसने बर्हिपिच्छ की ध्वजा और गुञ्जा की माला दे दी थी ॥१२०॥ यह देकर फिर उनके सिरों का लुंचन किया था तथा केशों का उत्पादन भी

किया था जो कि धर्म का परम साधन था ॥१२१॥ धनों का स्वामी धनद देव है। सदा वेष के धारण करने से और केशों के लुञ्चन से परमिश्र सिद्धि को प्राप्त हो गये थे ॥१२२॥ इस प्रकार से नियत्व की प्राप्ति होती है यह पहिले अर्हन ने स्वयं अपने मुख से कहा था। यहाँ पर बालों के उत्पादन करने से मनुष्यों को देवत्व की प्राप्ति हो जाती है ॥१२३॥ इसलिये उसे क्यों न किया जावे क्योंकि यह महान् पुण्य के प्रदान करने वाला कार्य है। लोक में मानुष जीवन में देवों का मनोरथ कब होता है ॥१२४॥ इस भारतवर्ष में देवगण का यही मनोरथ रहता है कि श्रावक कुल में जन्म प्राप्त कर केशोत्पाटन पूर्वक हम लोग तपस्या युक्त होवें ॥१२५॥ उन्होंने चौबीस तीर्थङ्कार पुरस्कृत किये थे। फणीन्द्र ने ध्यान मार्ग के प्रदर्शन करने वाले छाया स्वरूप ही किया है ॥१२६॥

तीर्थकराश्चतुर्विंशत्यातैस्तुपुरस्कृता' ।
छायाकृतफणीन्द्रेणध्यानमार्गप्रदर्शकम् ॥१२७
र ृन्तमनवादेनस्वर्गोहस्तगतोऽर्हतम् ।
मोक्षोवाभवितानूनविचार कोऽनकथ्यते ॥१२८
ध दास्यामर्पयोभूत्वासूर्याग्निसमतेजम' ।
जप्त्वाविरागिणाश्चं वमनुपचागकतथा ॥१२९
तथातपस्यतामृत्यु गताना कालपर्ययात् ।
पापाणेनशिरोभग्नभवतेपुण्यकर्मणाम् ॥१३०
अरण्येनिजनेवास कदावंभविताहिन. ।
च एंजप्यश्रावकाश्चकरिष्यतिसमाहिता ॥१३१

मन्त्रवाद के द्वारा अर्हत का स्तवन करने वाले व्यक्ति के लिये स्वर्ग तो हाथ में आया हुआ ही हो जाता है। अथवा मोक्ष हो जायगा—यह बिल्कुल निश्चय ही है। इसमें क्या विचार कहा जाता है अर्थात् इसमें कुछ भी विचारने की आवश्यकता ही नहीं है ॥१२७॥ पञ्चाङ्ग मन्त्र को जपते हुए विरागी और अमर्पण होकर अब सूर्य की अग्नि के समान तेज वाले होवे ॥१२८॥ उस प्रकार से तप करने वाले काल के पर्यय से मृत्यु को प्राप्त होने वाले लोगों के पुण्य कर्मों का अब पाषाण से शिर का भग्न होगा। १२९॥ हम लोगों का वन में

जहाँ कि कोई भी नहीं रहना हो वय निवास होता और आश्रम होकर परम सावधान होते हुए सब आप करेंगे ॥१३०॥ हे ऋषिवर ! आपको यहाँ से नहीं जाना चाहिए क्योंकि आप तो मोक्ष मार्गी हैं। जो भी स्थान प्राप्त किये हैं वे सब पुनः आवृत्ति के कराने वाले ही हैं ॥१३१॥

भोभोश्चैनेनगतश्चमोक्षमार्गोयनोभवान् ।
लब्धानियानिस्थानानिभूयोवृत्तिकराणि च ॥१३२
भवध्व सहितायूयं ते तथा मोक्ष भागिनः ।
एवमुक्त्वासनियमान्कृत्वातान्दनुपु गवान् ॥१३३
जगामधिषणो राजन्देवलोकं दिवोकसाम् ।
आचचक्षे स तत्सर्वंदानवाना च कारितम् ॥१३४
ततस्तेत्वसुराजग्मुर्नर्मदामभितोवमन् ।
दृष्ट्वातान्दानवास्तत्र प्रह्लादेन विनाकृतान् ॥१३५
देवराजस्ततो हृष्टो नमुचिप्राहवेवचः ।
हिरण्याक्ष यज्ञहन धर्मघ्न वेदनिंदकम् ॥१३६
राक्षस क्रूरकर्माणं प्रघसविघसतथा ।
मुचिर्चैव तथा बाण विरोचनमथापि वा ॥१३७
महिषाक्ष बाष्कल च प्रचण्डंचडकतथा ।
रोचमान तथात्युग्र सुषेण दानवोत्तमम् ॥१३८
एतान्दृष्ट्वा तथा चान्यान्दानवेन्द्रानथाब्रवीत् ।
दानवेंद्राः पुराजाताः कृत राज्यं निविष्टपे ॥१३९

आप लोग संसार के ध्वंस करने वाले तथा मोक्ष के भागी होगये हैं—इस प्रकार से कहकर बृहस्पति हे राजन् ! देवो के लोक में चले गये थे और दानवो में श्रेष्ठ पुरुषो को सब नियम बद्ध कर दिया था तथा दानवो को जो भी कराना था वह सब कह दिया था ॥१३२।१३३॥ इसके पश्चात् वे समस्त दानव एवम् असुर वहाँ गये और नर्मदा के तट पर सब ओर निवास करने लगे थे। प्रह्लाद से बिना कृत समस्त दानवो को वहाँ पर इन्द्र ने देखा था ॥१३४॥ देवराज इस तरह उन असुरो को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और नमुचि से

बोले—वहाँ पर यज्ञों के हनन करने वाले, धर्म के नाशक और वेद की निन्दा करने वाले हिरण्याक्ष को, क्रूर कर्म करने वाले प्रघस तथा विघस राक्षस को, शुचि—बाण एवम् विरोचन को, महिषाक्ष, वाष्कच, प्रचण्ड, चण्डक, रोचमान और अत्यन्त उग्र दानवों में उत्तम सुषेण को इन सबको तथा अन्य दानवेन्द्रों को वहाँ देखकर इन्द्र ने कहा था—इन्द्रदेव बोले हे दानवेन्द्रो ! आप लोग तो पहिले उत्पन्न हुए हैं और आपने तो स्वर्ग में राज्य शासन किया है ॥ १३५ से १३६॥

इदानी कथमेवेद व्रतं वेदविलोपकम् ।
भवद्भिः कर्तुमारब्ध नग्नमुंडि कमडलु ॥१४०
मयूरध्वजधारित्व कथं चैवेह तिष्ठथ ।
त्यक्त सर्वासुरभाव ऋषिधर्मे वय स्थिताः ॥१४१
धर्मवृद्धिकर कर्म चरामः सर्वजंतुषु ।
त्रैलोक्यराज्यमखिलं भुंक्ष्व शक्र व्रजस्व च ॥१४२
तथेति चोक्त्वा मघवा पुनर्यातस्त्रिविष्टपम् ।
एवते मोहिता सर्वे भीष्म देवपुरोधसा ॥१४३
नर्मदा सरित प्राप्य स्थिता दानवसत्तमा ।
ज्ञात्वा शुक्रेणते सर्वे वृत्तांतमनुबोधिता ॥
तदा त्रैलोक्यहरणे चक्रु क्रूरां पुनर्मतिम् ॥१४४

इस समय में आप सबने यह वेदों के विलोप करने वाले धर्म को एवम् व्रत करना कैसे प्रारम्भ कर दिया है ? और नग्न मुण्डो वाले कमण्डलु-धारी क्यों हो गये हैं ? मोर की पंख की ध्वजा को धारण करने वाले यहाँ पर क्यों स्थित हो रहे हो ? दानवों ने इस तरह इन्द्र द्वारा पूछे जाने पर उत्तर दिया था कि हमने वह असुरत्व का भाव बिल्कुल ही त्याग दिया है और अब हम लोग ऋषि धर्म में स्थित हो गये हैं ॥ १४०।१४१ ॥ अब हम सब लोग समस्त जन्तुओं में धर्म की वृद्धि करने वाले कर्म का आचरण करते हैं । हे इन्द्रदेव ! अब आप ही समस्त त्रिलोकी के राज्य का सुखोपभोग कीजिये और यहाँ से चले जाइये ॥ १४२॥ ऐसा ही किया जायगा—यह कहकर सुरराज इन्द्र

फिर स्वर्गलोक चले गये थे। हे भीष्म ! इस प्रकार से देवों के पुरोहित बृहस्पति ने उन सब असुरों को मोहित कर दिया था ॥१४३॥ समस्त दानव श्रेष्ठ नर्मदा नदी के तट पर आकर स्थित हो गये थे। असुर गुरु शुक्राचार्य ने इनको जानकर उन सब असुरों को यह पूरा-पूरा वृत्तान्त बताकर भली-भाँति समझाया था तब तो उन असुरों ने पुनः त्रैलोक्य का हरण करने की वही क्रूर बुद्धि बनाली थी ॥१४४॥

॥ अर्जुन तथा कर्ण की उत्पत्ति और वैर का कारण ॥

कथं त्रिपुरुषाज्जातो ह्यर्जुनः परवीरहा ।
कथं कर्णस्तु कानीनः सूतजः परिकीर्त्यते ॥१
वैरं तयोः कथं भूत निसर्गादेव तद्वद ।
बृहत्कौतूहलं मह्यं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥२
छिन्ने वक्त्रे पुरा ब्रह्मा क्रोधेन महता वृतः ।
ललाटे स्वेदमुत्पन्नं गृहीत्वाऽताडयद्भुवि ॥३
स्वेदतः कुंडली जज्ञे स धनुष्कोमहेषुधिः ।
सहस्रकवची वीरः किंकरोमीत्युवाच ह ॥४
तमुवाच विरिंचस्तु दर्शयन्रुद्रमोजसा ।
हन्यतामेष दुर्बुद्धिर्जायते न यथा पुनः ॥५
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा धनुरुद्यम्य पृष्ठतः ।
सम्प्रतस्थे महेशस्य बाणहस्तोऽतिरौद्रदृक् ॥६
दृष्ट्वा पुरुषमत्युग्रं भीतस्तस्य त्रिलोचनः ।
अपक्रान्तस्ततोवेगाद्विष्णोराश्रममभ्यगात् ॥७

भीष्म ने कहा—शत्रुओं के वीरों का हनन करने वाला अर्जुन त्रिपुरुष से कैसे समुत्पन्न हुआ था और कर्ण सूत से उत्पन्न कानीन (कन्या से उत्पन्न) क्यों कहा जाता है ? ॥१॥ इन दोनों महावीरों का पारस्परिक स्वभाव से ही वैर क्यों हो गया था—इसे आप बताने की कृपा कीजिए। मुझे हृदय में इस बात का बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है। आप इस गुत्थी को भली-भाँति सुलझाने में योग्य एवम् समर्थ हैं ॥२॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—प्राचीन काल में मुख

के छिन्न हो जाने पर ब्रह्माजी को बड़ा भारी क्रोध हो गया था और उस क्रोध के अतिशय के कारण उनके ललाट पर पसीना उत्पन्न हो गया था जिसे लेकर उन्होंने भूमि पर ताड़ित किया था ।।३।। उस पसीने को कुण्डली हुई और उसने वह एक धनुषधारी महेषुधि सहस्र कवच वाला वीर समुत्पन्न किया था जो उठकर कहने लगा मैं क्या करूँ ? ।।४।। तब ब्रह्माजी ने रुद्र को दिखाते हुए उससे कहा—तू इसको ओज से मार डाल जिससे कि फिर ऐसी दुर्बुद्धि उत्पन्न न होगी ।।५।। ब्राह्मण ने यह विधाता का वचन सुनकर धनुष प्रस्तुत करके महेश के पीछे से चल दिया था । इसके हाथ में संधाना हुआ धनुष-बाण था और यह अत्यन्त रौद्र (भयानक) उस समय में दिखलाई दे रहा था ।।६।। उस अत्यंत उग्र पुरुष को पीछे आते हुए देखकर भगवान् त्रिलोचन डर गये थे और बड़े वेग के साथ वहाँ से अपक्रमण करके भगवान् विष्णु के आश्रम में चले गये थे ।।७।।

त्राहि त्राहीतिमांविष्णो नरादस्माच्च शत्रुहन् ।
ब्रह्मणानिर्मितः पापो म्लेच्छरूपोभयंकरः ।।८
यथा हन्यान्नमां क्रुद्धस्तथा कुरु जगत्पते ।
हुङ्कारध्वनिना विष्णुर्मोहयित्वा तु तंनरम् ।।९
अदृश्यः सर्वभूतानां योगात्मा विश्वदृक्प्रभुः ।
तत्रप्राप्तविरूपाक्षं सांत्वयामास केशवः ।।
ततस्स प्रणतो भूमौ दृष्टो देवेन विष्णुना ।।१०
पौत्रो हि मे भवान्रुद्र क ते कामं करोम्यहम् ।।११
दृष्ट्वा नारायणं देव भिक्षां देहीत्युवाच ह ।
कपालं दर्शयित्वाग्रे प्रज्वलंस्तेजसोत्कटम् ।।१२
कपालपाणिं सम्प्रेक्ष्यरुद्रं विष्णुरचिन्तयत् ।
कोऽन्योयोग्योभवेद्भिक्षुर्भिक्षादानस्यसांप्रतम् ।।१३
योग्योऽयमिति संकल्प्य दक्षिणं भुजमर्पयत् ।
तद्विभेदातितीक्ष्णेन शूलेन शशिशेखरः ।।१४

वहाँ पहुँचकर महेश्वर ने कहा—हे विष्णु भगवन् ! आप तो शत्रुओं के

हनन करने वाले हैं। इस नर से मेरी अब रक्षा करो, त्राण करो। यह महा-पापी ब्रह्माजी ने निर्मित किया है। यह महाम्लेच्छ स्वरूप वाला और अत्यन्त भयङ्कर है ॥८॥ हे जगतों के स्वामिन् ! वह क्रोधित होकर आ रहा है वह मुझे मार न डाले—ऐसा ही आप करें। भगवान् विष्णु ने महेश की इस करुण पुकार का श्रवण कर हुङ्कार की ध्वनि से उस नर को मोहित कर दिया था ॥९॥ योग के स्वरूप वाले समस्त प्राणियों को न दिखाई देने वाले होकर विश्व की रचना करने वाले प्रभु केशव ने वहाँ पर प्राप्त होने वाले विरूपाक्ष को सान्त्वना दी थी अर्थात् उसे शान्त कर दिया था। इसके अनन्तर देव विष्णु ने उसे भूमि में प्रणत होकर प्रणाम करते हुए उसे देखा था ॥१०॥ भगवान् विष्णु ने कहा—हे रुद्र ! आप तो मेरे पौत्र (नाती) हैं अब बतलाओ मैं तुम्हारी किस कामना को पूर्ण करूँ ? ॥ ११ ॥ भगवान् नारायण को देखकर उसने कहा कि मुझे आप भिक्षा प्रदान कीजिए। उसने भिक्षा के ग्रहण करने का कपाल उनके सामने कर दिया था। वह उस समय में अपने तेज से अत्यन्त उत्कट एवम् प्रज्वलित दिखलाई दे रहा था ॥१२॥ भगवान् विष्णु ने हाथ में कपाल लिये हुए रुद्र को देखकर विचार किया था कि इनके अतिरिक्त इस समय में अन्य भिक्षा दान के योग्य कौन भिक्षु होगा ॥१३॥ यह परम योग्य दान के लिये भिखारी प्राप्त हुआ है ऐसा मन में सकल्प करके उसे अपना दाहिना भुज प्रदान कर दिया था। शशि को शिर में धारण करने वाले ने उसका अत्यन्त तीक्ष्ण शूल से विभेदन कर दिया था ॥१४॥

आवर्ततत्ततोधारा शोणितस्य विभोर्भुजात् ।
जांबूनदरसाकारा वह्निज्वालेव निर्मिता ॥१५
निपपात कपालांतश्शम्भुनासाप्रभिक्षिता ।
ऋज्वी वेगवती तीव्रा स्पृशंतीत्यंबरंजवात् ॥१६
पंचाशद्योजनार्द्धंर्ध्यद्विस्ताराद्दशयोजना ।
दिव्यवर्षसहस्रं सा समुवाह हरेर्भुजात् ॥१७
इयं तं कालमीशोऽसौ भिक्षा जग्राह भिक्षुकः ।
दत्तानारायणेनाथ कापालेपात्रउत्तमे ॥१८

ततो नारायणः प्राह शंभुं परमिदं वचः ।
सपूर्णं वानवापात्रं ततो वै परमेश्वरः ॥१९
सतोयाबुदनिर्घोप श्रुत्वा वाक्य हरेर्हरः ।
शशिसूर्याग्निनयनः शशिशेखरशोभितः ॥२०
कपाले दृष्टिमावेश्य त्रिभिर्नेत्रैर्जनार्दनम् ।
अंगुल्या घटयन्प्राह कपालं परिपूरितम् ॥२१

इसके अनन्तर विभु की भुजा से रक्त की धारा निकलने लगी थी और वह रक्त-धारा जाम्बूनद के रस के आकार वाली वह्नि की ज्वाला की भाँति निर्मित हो गई थी ॥१५॥ शम्भु के द्वारा भिक्षा मे याचना की हुई वह भुजा के कटने से रक्त की धारा उस कपाल के अन्दर गिर गई थी। यह धारा ऋजु थी और उत्पन्न वेग वाली एवम् तीव्र थी और ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो अम्बर का वेग से स्पर्श करती हुई चली आ रही हो ॥१६॥ दीर्घता में यह पचास योजन वाली थी और विस्तार मे दश योजन थी। वह धारा एक सहस्र वर्ष दिव्य वर्ष पर्यन्त हरि की भुजा से प्रवाहमान हुई थी ॥१७। इस भिक्षुक ईश ने उस समय मे यह भिक्षा ग्रहण की थी और भगवान् नारायण ने उत्तम कपाल पात्र मे उसे प्रदान किया था ॥१८॥ इसके पश्चात् नारायण ने शम्भु से यह परम वचन कहा था कि आपका यह भिक्षा का पात्र कपाल भर गया अथवा नही भरा है ॥१९॥ तब तो हर ने सजलमेघ के तुल्य निर्घोष वाले हरि के वचन का श्रवण किया था। ब्रह्मचन्द्र को मस्तक मे धारण करने वाले शिव के दोनो नेत्र चन्द्र और सूर्य की अग्नि के समान तेज से पूर्ण थे ॥२०॥ तब तो अपने तीनो नेत्रों के द्वारा कपाल मे दृष्टि डालकर अपनी अंगुलि से सकेत करते हुए यह बतला दिया था कि मेरा कपाल भर गया है ॥२१॥

श्रुत्वा शिवस्यतांवाणीविष्णुर्धारांसमाहरत् ।
पश्यतोऽथहरेरीशःस्वांगुल्याऽघिरतदा ॥२२
दिव्यवर्षसहस्रं च दृष्टिपातैर्ममय सः ।
मध्यमाने ततो रक्तं कलिलं बुद्बुदं क्रमात् ॥२३
बभूव च ततः पश्चात्किरीटी स शरासनः ।
बद्धतूणीरयुगलो वृषस्कन्धोऽङ्गलित्रवान् ॥२४

पुरुषो वह्निसंकाशः कपाले सम्प्रदृश्यते ।
त दृष्ट्वा भगवान्विष्णुः प्राहरुद्रमिदं वचः ॥२५
कपाले भव को वाय प्रादुर्भूतोऽभवधरः ।
वचःश्रुत्वा हरेरीशस्तमुवाचविभोश्रृणु ॥२६
नरोनामेष पुरुषः परमास्त्रविदावरः ।
भवतोक्तो नर इति नरस्तस्माद्भविष्यति ॥२७
नरनारायणौ चोभौ युगे ख्यातौ भविष्यतः ।
संग्रामे देवकार्येषु लोकानां परिपालने ॥२८

शिव की उस वाणी का श्रवणकर भगवान् विष्णु ने रक्तधारा को समाहृत कर लिया था। फिर हरि के देखते हुए ईश ने अपनी अँगुलि से उस रुधिर का एक सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त दृष्टिपातों के द्वारा मन्थन किया था। उस रक्त के मथित किये जाने पर उसमें कलिल और बुद्बुद के तुल्य क्रम से हो गया था ॥२२॥२३॥ इसके पश्चात् शरासन से युक्त किरीट धारी, दो तूणीरों को बाँधे हुए, वृष स्कन्ध, अतुलित्रवान् वह्नि के तुल्य पुरुष कपाल में दिखलाई देता है उसको देखकर भगवान् विष्णु रुद्र देव से यह वचन बोले थे ॥२४॥२५॥ हे भव ! इस कपाल में कौन नर प्रादुर्भूत हो गया है ? इस प्रकार विष्णु के वचन श्रवण कर ईश ने उनसे कहा—हे विभो ! आप मुझसे सुनिये ॥२६॥ नर नाम धारी यह पुरुष परमास्त्रों के ज्ञानाओं में श्रेष्ठ है। आपने इसको 'नर'—इस नाम से कहा है इसी से यह नर ही होगा ॥२७॥ ये दोनों नर और नारायण इन दो नामों से लोक में प्रसिद्ध होंगे। ये संग्राम की सेना में, देवगणों के कार्यों में और लोकों के परिपालन में कार्य करेंगे ॥२८॥

एष नारायणसख्यो नरस्तस्माद्भविष्यति ।
असुरवधे साह्यं तवकर्त्तामहाद्युतिः ॥२९
मुनिर्ज्ञानपरीक्षायां जेता लोकेभविष्यति ।
तेजोऽधिकमिदं दिव्यं ब्रह्मणःपंचमंशिरः ॥३०
तेजसो ब्रह्मणोदीप्ताद्भुजस्य तव शोणितात् ।
ममदृष्टिनिपाताच्चत्रीणितेजांसियानितु ॥३१

तत्संयोगसमुत्पन्नः शत्रुं युद्धे विजेष्यति ।
अवध्यायं भविष्यंति दुर्जया अपि चापरे ॥३२
शक्रस्य चामराणां च तेषामेषभयंकरः ।
एवमुक्त्वास्थितः शंभुर्विस्मितश्च हरिस्तदा ॥३३
कपालस्थः स तत्रैव तुष्टाव हरकेशवौ ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय तदा वीर उदारधीः ॥३४
किंकरोमि तितोप्राह इत्युक्त्वा प्रणतः स्थितः ।
तमुवाचहरःश्रीमान्ब्रह्मणाभ्येनतेजसा ॥३५

यह नारायण का अंश है इसी से नर होगा । यह महती द्युति से सारे असुरों के वध करने के कार्य में आपकी सहायता करेगा ॥२६॥ यह मुनि ज्ञान की परीक्षा में लोक में विजय करने वाला होगा । यह ब्रह्मा का पाँचवाँ शिर उचित तेज युक्त और दिव्य है ॥३०॥ ब्रह्माजी के दीप्त तेज से, आपकी भुजा के रक्त से और मेरी दृष्टि के गिराने से इसमें तीन तेजों का जो सम्मर्द हुआ है, उन सबके संयोग से यह समुत्पन्न हुआ है । यह युद्ध में शत्रुओं को जीत लेगा । अन्य लोग जो कि दुर्जय भी हैं वे सब अवध्याय में हो जावेंगे अर्थात् इसके पराक्रम से हलके रह जायेंगे ॥३१॥३२॥ देवों के शक्र इन्द्र और देवों के लिये यह महान् भयङ्कर होगा । इतना कहकर शम्भु वहीं स्थित हो गये थे और उस काल में भगवान् हरि भी इससे परम आश्चर्य से युक्त हो गये थे ॥३३॥ कपाल में स्थित उसने वहीं पर ही हर और केशव का स्तवन किया था । फिर उसने सिर पर दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर उस समय में उस उदार बुद्धि वाले वीर ने उन दोनों से कहा था कि मैं क्या करूँ ? यह कहकर वह प्रणत होकर वहीं स्थित हो गया था । फिर उससे श्रीमान् हर ने यह कहा ॥३४-३५॥

गृहाण नरोयमनुत्पादितस्त्वदेन मुनि सत्तम ।
इत्येवमुक्त्वाञ्जलिपरं स्तुवन्तं तदा हरो नरम् ॥३६
तदंजाञ्जलिसंबद्धं गृहीत्वा च करद्वयम् ।
उवाचम्नापकारागाम पुनरंगमवादीः ॥३७

स एष पुरुषो रौद्रो योमयावेदितस्तव ।
विष्णुहुंकाररचितमोहनिद्रा प्रवेशितः ॥३८
विबोधयैनंत्वरितमित्युक्त्वान्तर्दधे हरः ।
नारायणस्य प्रत्यक्ष नरेणानेनवंस्तदा ॥३६
वामपादहतःसोऽपि समुत्तस्थौमहानलः ।
ततो युद्धं समभवत्स्वेदरक्तजयोर्महत् ॥४०
विस्फारितधनु शब्दं नादिताशेषभूतलम् ।
कवच स्वेदजस्यैकं रक्तजेन त्वपाकृतम् ॥४१
एव समेतयोर्युद्धे दिव्य वर्षद्वयंतयोः ।
युध्यतोः समतीतं च स्वेदरक्तजयोर्नृप ॥४२

ब्रह्माजी ने अपने तेज से यह धनुष हाथ मे ग्रहण कराने वाला नर सृजित किया है । तू इसको निबूदित कर दे । इस प्रकार से कहकर शङ्कर ने स्तुति करते हुए अञ्जलि धारी उस नर को और अञ्जलि-सबद्ध दोनों हाथों को पकडकर तथा कपाल से उसे उठाकर फिर वचन कहे थे ॥३६॥३७॥ वह यह ही रौद्र पुरुष है जिसके विषय मे मैंने तुमसे कहा था । विष्णु की हुङ्कार से रचित मोह निद्रा मे प्रवेश किया हुआ है ॥३८॥ तू इसको अतिशीघ्र विशेष रूप से समझ ले—यह कहकर अन्तर्ध्यान हो गये थे । नारायण के सामने ही उसी समय मे नर ने उसे वाँये पाद से हत किया था और महान् बलवान् भी खड़ा हो गया था । तब तो फिर स्वेद और रक्त से समुत्पन्न होने वाले उन दोनों में महान् सग्राम हुआ था ॥३६,४०॥ जिसमे धनुष का शब्द विस्फारित हो रहा था और समस्त भू-मण्डल जिससे शब्दायमान हो रहा था । ऐसे स्वेदज के एक कवच को रक्तज ने अपाकृत कर दिया था अर्थात् दूर कर दिया था । ४१॥ इस प्रकार से एकत्रित हुए उन दोनों के युद्ध मे दो दिव्य वर्ष युद्ध करते हुए थे । हे नृप ! उन दोनो में एक पसीने से उत्पन्न होने वाला था और दूसरा विष्णु की भुजा के रुधिर से उत्पन्न था ॥४२॥

रक्तजं द्विभुजं दृष्ट्वा स्वेदजंचैवसंगतौ ।
विचिन्त्य वासुदेवोऽगाद्‌ब्रह्मणः सदनं परम् ॥४३

ससंभ्रममुवाचेदं ब्रह्माणं मधुसूदनः ।
रक्तजेनाद्यभोब्रह्मन्स्वेदजोऽयंनिपातितः ॥४४
श्रुत्वैतदाकुलो ब्रह्मा बभाषे मधुसूदनम् ।
हरेऽद्यजन्मनि नरो मदीयो जीवतादयम् ॥४५
तथा तुष्टोऽब्रवीत्तं च विष्णुरेवं भविष्यति ।
गत्वा तयो रणमपि निवार्याह च तावुभौ ॥४६
अन्यजन्मनिभवितांकलिद्वापरयोर्मिथः ।
सघोमहारणेजातेतत्राहंयोजयामिवाम् ॥४७
विष्णुनातुसमाहूयग्रहेश्वरमुरेश्वरौ ।
उक्ताविमौनरौभद्रौपालनीयौममाज्ञया ॥४८
सहस्रांशोस्वेदजोऽयंस्वकीयोंऽशोधरातले ।
द्वापरांतेऽवतार्योऽयदेवानांकार्यसिद्धये ॥४९

दो भुजाओं वाले रक्तज और स्वेदज इन दोनों को सन्नद्ध देखकर भगवान् वासुदेव ने विशेष चिन्तन किया था और फिर ब्रह्माजी के सदन में गये थे ॥४३॥ मधुसूदन ने सम्भ्रम के सहित ब्रह्माजी से यह कहा था—हे ब्रह्मन् ! आज रुधिर से समुत्पन्न होने वाले ने इस स्वेदज को निपातित कर दिया है । ४४॥ यह श्रवण करके उस समय में ब्रह्माजी व्याकुल हो गये थे और फिर भगवान् मधुसूदन से बोले । हे हरे ! आज यह मेरा नर जन्म में जीवित हो जावे ॥४५॥ ब्रह्मा की इस प्रकार से की गई प्रार्थना से विष्णु सन्तुष्ट हो गये और यह बोले कि ऐसा ही होगा । फिर वह युद्ध स्थल में पहुँचकर उन दोनों के युद्ध को भी निवारित कर दिया था और उन दोनों से कहा था ॥४६॥ दूसरे जन्म में यह युद्ध तुम दोनों का होगा । जिस समय कलि और द्वापर इन दोनों युगों की आपस में सन्धि का काल होगा उस समय में एक महान् रण होगा उसमें मैं तुम दोनों को योजित करूँगा ॥४७॥ भगवान् विष्णु ने ग्रहों के स्वामी और सुरों के ईश्वर को बुलाकर उन दोनों से कहा था कि ये दोनों परम भद्र नर हैं । अब मेरी आज्ञा से इन दोनों का पालन करना चाहिए ॥४८॥ हे सहस्र अंशु (किरणों) वाले यह स्वेदज इस धरातल में अपना ही अंश है । इसका अवतार

द्वापर के अन्त में करना है जो कि देवों की कार्य सिद्धि के लिये ही करना होगा ।।४६।।

यदूनांतुकुलेभावीरोनाममहाबलः ।
तस्य कन्या पृथानामरूपेणाप्रतिमाभुवि ।।५०
उत्पत्स्यतिमहाभागादेवानांकार्यसिद्धये ।
दुर्वासास्तुवरंतस्यै मंत्रग्राममंप्रदास्यति ।।५१
मंत्रेणानेनयंदेवंभक्त्याआवाहयिष्यति ।
देवि तस्य प्रसादात्तु तव पुत्रो भविष्यति ।।५२
सात्वत्वामुदयेदृष्ट्वासाभिलापारजस्वला ।
चिताभिपघातिष्ठन्तीभजितव्याविभावसो ।।५३
तस्यागर्भेत्वयंभावीकानीन कुंतिनन्दनः ।
भविष्यति सुतोदेवदेवकार्यार्थसिद्धये ।।५४
तथेतिचोक्त्वाप्रोवाचतेजोराशिर्दिवाकरः ।
पुत्रमुत्पादयिष्यामिकानीनवलगर्वितम् ।।५५
यस्यकर्णेतिवैनामलोकःसर्वोवदिष्यति ।
मत्प्रसादादस्यविप्रोविप्राणांभाविताात्मनः ।।५६

यह वर नाम वाला महान् बलवान् यदुओं के कुल में उत्पन्न होगा। उसकी कन्या होगी जिसका नाम पृथा होगा और वह इस भू-मण्डल में रूप-सौन्दर्य से अनुपम होगी ।।५०।। वह महान् भाग वाली देवों की कार्य-सिद्धि के लिये ही उत्पन्न होगी। दुर्वासा ऋषि उसे वरदान और मन्त्रों का समूह प्रदान करेंगे ।।५१।। दुर्वासा ने कहा था इस मन्त्र के द्वारा जिस देवता की भक्ति से उपासना करेगी और उसका आवाहन करेगी हे देवी! उसी देवता के प्रसाद से तेरे पुत्र की उत्पत्ति होगी ।।५२।। हे विभावसो! वह पृथा तुमको उदय काल में देखकर रजस्वला होकर अभिलाषा वाली होगी और चिन्ता से अभिपन्न होकर स्थित रहेगी। उस समय में आपको सेवन अवश्य ही करना चाहिए ।।५३।। उसके गर्भ में होने वाला कानीन कुन्ति नन्दन होगा। यह पुत्र देवों के कार्यों की सिद्धि के लिये उत्पन्न होगा। ५४।। तेज के समूह भगवान् दिवाकर ने ऐसा

ही किया जायगा—यह कहकर फिर बोले—मैं बल पराक्रम के गर्व से समन्वित कानीन (कन्या से जन्म लेने वाला) पुत्र समुत्पन्न कर दूँगा ॥५५॥ समस्त लोक उसका 'कर्ण'—यह नाम कहेंगे। मेरे प्रसाद से वह भगवान् विष्णु का और विप्रों का परम भक्त होगा ॥५६॥

अदेयनास्तिवैलोकेवस्तुकिंचिच्चकेशव ।
एव प्रभावं चैवैन जनये वचनात्तव ॥५७
एवमुक्त्वासहस्रांशुर्देवदानवघातिनम् ।
नारायणं महात्मानं तत्रैवांतर्दधे रविः ॥५८
अदर्शनगतेदेवेभास्करे वारितस्करे ।
वृद्धश्रवसमप्येवमुवाच प्रीतमानसः ॥५९
सहस्रनेत्ररक्तोत्थोनरोऽयमदनुग्रहात् ।
स्वांशभूतोद्वापरातेयोक्तव्योभूतलेत्वया ॥६०
यदापाडुर्महाभागः पृथाभार्यामवाप्स्यति ।
माद्रीचापिमहाभागतदारण्यगमिष्यति ॥६१
तस्याप्यरण्यसस्थस्यमृग शापप्रदास्यति ।
तेनचोत्पन्नवैराग्यः शतश्रृंगगमिष्यति ॥६२
पुनानभीप्सन्क्षेत्रोत्थान्भार्यांसप्रवदिष्यति ।
अनीप्सतीदाकुंतीतभर्त्तारसावदिष्यति ॥६३

हे केशव ! उसकी ऐसी वृत्ति होगी कि लोक मे कोई भी वस्तु न देने के योग्य नही होगी। आपके वचन से मैं ऐसे ही दानशीलता के प्रभाव से परिपूर्ण इसको जन्म ग्रहण कराऊँगा ॥५७॥ सूर्यदेव ने इस प्रकार से दानवो के घात करने वाले महात्मा देव नारायण से कहकर रवि वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ॥५८॥ जनों के शोषण करने वाले भास्कर देव के लोप हो जाने पर प्रीति से युक्त मन वाले ने वृद्धश्रवा से इस प्रकार कहा ॥५९॥ सहस्र नेत्र वाले के रक्त मे उत्थित यह नर मेरे अनुग्रह से आपको भूतल मे स्वकीय अंश रूप इसको द्वापर के अन्त मे युक्त करना चाहिए ॥६०॥ जिस समय मे महान् भाग्य वाला राजा पाण्डु पृथा नामवाली भार्या को प्राप्त करेंगे और माद्री पत्नी को

प्राप्त करेंगे तब वह महाभाग अरण्य में चले जायेंगे ॥६१॥ अरण्य में स्थित रहने वाले भी उसको एक मृग शाप देगा। इससे वैराग्य उत्पन्न हो जाने वाला वह शतशृङ्ग को चले जायेंगे ॥६२॥ वह अपने क्षेत्र से अर्थात् भार्या के उदर से उत्पन्न पुत्रों की इच्छा रखते हुए अपनी भार्या से कहेगा। उस समय में वह कुन्ती इच्छा न रखती हुई अपने स्वामी से कहेगी ॥६३॥

नाहंमर्त्यस्यवैराजन्पुत्रानिच्छेकथचन ।
दैवतेभ्यःप्रसादाच्चपुत्रानिच्छे नराधिप ॥६४
पार्थयन्त्यास्त्वयाशक्रकुन्त्यैदेयोनरस्ततः ।
वचसा च मदीयेन एवं कुरु शचीपते ॥६५
अथाब्रवीत्तदाविष्णुं देवेशोदुःखितोवचः ।
अस्मिन्मन्वंतरेऽतीतेचतुर्विंशतिकेयुगे ॥६६
भवतीर्यरघुकुलेगृहे दशरथस्यच ।
रावणस्य वधार्थाय शान्त्यर्थं च दिवौकसाम् ॥६७
रामरूपेण भवता सीतार्थ मटतावने ।
मत्पुत्रोहिंसितोदेव सूर्यपुत्रहितार्थिना ॥६८
वालिनामाप्लवंगेन्द्रः सुग्रीवार्थ त्वयाहतः ।
दुःखेनानेन तप्तोऽहंगृह्णामि न सुतंनरम् ॥६९
पगृह्णमानदेवेन्द्रं कारणांतरवादिनम् ।
हरिःप्रोचे शुनासीरं भुवोभारावतारणे ॥७०
अवतारं करिष्यामि मर्त्यलोकेत्वहं प्रभो ।
सूर्यपुत्रस्य नाशार्थं जयार्थमात्मजस्य ते ॥७१

कुन्ती कहेगी कि हे राजन् ! मैं मनुष्य के पुत्रों की किसी प्रकार से भी इच्छा नहीं रखती हूँ और हे नराधिप ! मैं तो देवों से उनके ही प्रसाद के स्वरूप पुत्रों की अभिलाषा रखती हूँ॥ ६४ ॥ हे शक्र ! तब प्रार्थना करने वाली कुन्ती को आपके द्वारा नर देना चाहिए। हे शची के स्वामिन् ! मेरे वचन से आप इस तरह से करें ॥६५॥ इसके अनन्तर देवेश्वर इन्द्र बहुत ही दुःखित होकर भगवान् विष्णु से यह वचन बोला था। इस मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने

पर चौबीसवें युग में रघुकुल म दशरथ के यहाँ अवतार लेकर रावण के वध के लिये और देवगण को शान्ति प्रदान करने के लिये आपने श्रीराम का रूप धारण किया था। उस समय सीता की खोज करने के लिये वनों म भ्रमण करते हुए सूय पुत्र के हित चाहने वाले आपने हे देव ! मेरे पुत्र को हिंसित कर दिया था ॥६६।६७।६८॥ आपने अपने सखा सुग्रीव के हित का सम्पादन करने के लिये वानरो के राजा बाली का वध कर दिया था। मैं इस दुःख से बहुत ही सताप से युक्त हूँ इसलिये मैं इम सुतनर को ग्रहण नहीं करता हूँ ॥६६॥ इस प्रकार से ग्रहण न करते हुए और इस ग्रहण न करने का अन्य कारण बताने वाले शुनासीर से भू मण्डल का भार उतारने के लिये भगवान् ने कहा ॥७०॥ हे देवराज ! मैं मनुष्य लोक मे भी सूर्य के पुत्र के नाश करने के लिये और आपके आत्मज की विजय के लिये अवतार लूँगा। ७१॥

॥ पुष्कर तीर्थ की उत्पत्ति ॥

सभा कांतिमतीनाम देवाना शर्मदायिका ।
ऋषिसघसमायुक्ता मुनिवृन्द निषेविता ॥१
द्विजातिसामशब्देन नादितानददायिनी ।
तस्या निविष्टो दवेश सध्यासक्त पितामह ॥२
ध्यायतिस्म पर देव येनेद निर्मितजगत् ।
ध्यायतो बुद्धिरुत्पन्ना कथ यज्ञ करोम्यहम् ॥३
कस्मिन्स्थाने मया यज्ञ कार्य कुत्र धरातले ।
काशीप्रयागस्तुगा च नैमिष शृङ्खल तथा ॥४
काची भद्रा देविका च कुरुक्षेत्र सरस्वती ।
प्रभासादीनि तीर्थानि पृथिव्यामिहमध्यत ॥५
क्षेत्राणि पुण्यतीर्थानि सति यानीह सर्वश ।
महादेशाच्च रुद्रेण कृतान्यन्यानिभूतले ॥६
यथाह सर्वदेवेषु आदिदेवो व्यवस्थित ।
तथाचैव पर तीर्थमादिभूत करोम्यहम् ॥७

पुलस्त्य मुनि ने कहा—कान्तिमती नाम वाली देवताओं को कल्याण-प्रदान करने वाली एक सभा थी जोकि ऋषियों के संघ से समायुक्त थी और मुनिगण के द्वारा भी सेवित रहा करती थी ॥१॥ यह सभा द्विजातियों के द्वारा की गई सामवेद की ध्वनि से ध्वनित रहा करती थी तथा अत्यन्त ही आनन्द के प्रदान करने वाली थी। उस सभा में देवों के अधीश्वर पितामह निविष्ट होकर सन्ध्या-वन्दना में ससक्त हो गये थे ॥२॥ फिर पितामह ने परदेवता का ध्यान किया था जिसने इस जगत् का निर्माण किया है। इस प्रकार से ध्यान करते हुए उनकी बुद्धि में आया था कि मैं यज्ञ कर्म करूँ ? ॥३॥ इस धरातल में कहाँ पर किस स्थान में मुझे यज्ञ करना चाहिए ? इस पृथ्वी के मध्य में काशी, प्रयाग, तुङ्गा, नैमिष, शृङ्गन, काची, भद्रा, देविका, कुरुक्षेत्र, सरस्वती और प्रभास आदि अनेक तीर्थ स्थल हैं ॥ ४।५ ॥ इस तरह के जो पुण्य क्षेत्र तीर्थ यहाँ पर सभी ओर हैं और मेरे आदेश से रुद्र ने इस पर भू मण्डल में अन्य स्थल भी बना दिये हैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार से समस्त देवों में मुझे आदि देव व्यवस्थित किया गया है उसी प्रकार से मैं एक सबसे परम श्रेष्ठ आदिभूत तीर्थ करना चाहता हूँ ॥७॥

अहं यत्र समुत्पन्नः पद्मं तद्विष्णुनाभिजम् ।
पुष्करं प्रोच्यते तीर्थमृषिभिर्वेदपाठकैः ॥८
एवं चिंतयतस्तस्य ब्रह्मणस्तु प्रजापतेः ।
मतिरेषा समुत्पन्ना व्रजाम्येष धरातले ॥९
प्राक्स्थानं स समासाद्य प्रविष्टस्तद्वनोत्तमम् ।
नानाद्रुमलताकीर्णनानापुष्पोपशोभितम् ॥१०
तद्वनं नन्दनसमं मनोदृष्टिविवर्धनम् ।
पद्मयोनिस्तु भगवांस्तथा रूपं वनोत्तमम् ॥११
ददर्शादर्शवद्दृष्ट्या सौम्यया पाययन्निव ।
तावृक्षपंक्तयः सर्वा दृष्ट्वा देवं तथागतम् ॥१२
निवेद्य ब्रह्मणे भक्त्या मुमुचुः पुष्पसंपदः ।
पुष्पप्रतिग्रहं कृत्वा पादपानां पितामहः ॥१३

वरं वृणीध्वं भद्रं वः पादपानित्युवाच सः ।
एवमुक्ता भगवता तरवो निरवग्रहाः ॥१४
ऊचुः प्रांजलयः सर्वे नमस्कृत्वा विरिञ्चिनम् ।
वर ददासि चेद्देव प्रपन्नजनवत्सल ॥१५
इहैव भगवन्नित्य वने सन्निहितोभव ।
एष नः परमः कामः पितामहः नमोस्ऽतु ते ॥१६

जिस स्थान पर मैं समुत्पन्न हुआ था वहाँ भगवान् विष्णु की नाभि से उत्पन्न पद्म है । उस स्थल को वेदों के पाठ करने वाले ऋषियों के द्वारा पुष्कर कहा जाता है ॥८॥ इस प्रकार चिन्तन करते हुए प्रजापति ब्रह्माजी को यह बुद्धि उत्पन्न हुई धरातल मे मैं चला जाऊँ ॥९॥ पहिले वह उस स्थान मे पहुँचे और फिर उसके उत्तम वन मे उनने प्रवेश किया था जो वन अनेक तरह के वृक्ष और लताओ से घिरा हुआ था और विविध प्रकार के पुष्पो से सुशोभित हो रहा था ॥ १० ॥ वह वन नन्दन वन के सुल्य था जो मन और नेत्रों को आनन्द की वृद्धि करने वाला था । पद्म से उत्पन्न होने वाले भगवान् ब्रह्माजी ने उस प्रकार के परम सुन्दर श्रेष्ठ वन को देखा था मानो आदर्श की भाँति सौम्य दृष्टि से पिला रहे हों । उन वृक्षो पक्तियों ने वहाँ पर समागत देव को देखकर ब्रह्माजी को भक्ति-भाव से निवेदन करके विविध पुष्पो की वर्षा की थी पितामह ने वृक्षों के द्वारा समर्पित पुष्पों का प्रतिग्रह स्वीकार किया था ॥११॥ ॥१२॥१३॥ ब्रह्माजी ने वृक्षों से कहा था तुम्हारा कल्याण हो और अब तुम जो भी चाहो वह वरदान मुझसे माँग लो । इस प्रकार से ब्रह्मा के द्वारा कहे गये अवग्रह से रहित उन वृक्षो ने ब्रह्माजी को नमस्कार करके दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा—हे शरण मे आये हुए लोगों पर स्नेह करने वाले देव ! यदि आप कृपाकर वरदान देते है तो हम यही वरदान आपसे चाहते हैं कि आप हे भगवन् ! यहाँ पर ही इस वन मे सन्निहित होकर रहें । हे पितामह ! यही हम सबकी परम कामना है । हम सबका आपको नमस्कार है ॥१४॥१५॥१६॥

उत्तमं सर्वक्षेत्राणां पुण्यमेतद्वनविष्यति ।
नित्यं पुष्पफलोपेता नित्यं सुस्थिरयौवनाः ॥१७

कामगाः कामरूपाश्च कामरूपफलप्रदाः ।
कामसंदर्शनाः पुंसां तपःसिद्ध्युज्ज्वलानृणाम् ॥१८
श्रिया परमया युक्ता मत्प्रसादाद्भविष्यथ ।
एवं स वरदो ब्रह्मा अनुजग्राहपादपान् ॥१९
स्थित्वा वर्षसहस्रं तु पुष्करंप्राक्षिपद्भुवि ।
क्षितिर्निपतितातेन व्यकंपत रसातलम् ॥२०
विवशास्त्वत्यजुर्वेलां सागराः क्षुभितोर्मयः ।
शक्राशनिहतानीव्व्याघ्रव्यालावृतानि च ॥२१

ब्रह्माजी ने कहा—यह वनस्थली समस्त अन्य पुण्य क्षेत्रों से परम श्रेष्ठ होगी। इसमें नित्य ही पुष्प और फल रहा करेंगे और सर्वदा सुस्थिर यौवन वाली रहेगी ॥१७॥ यहाँ आप सब कामनाओं के गामी, इच्छा रूप वाले, काम स्वरूपानुरूप फलों के प्रदाता, इच्छा के अनुसार दर्शन देने वाले मनुष्यों को तपस्या की सिद्धि देने से उज्ज्वल होंगे ॥१८॥ मेरे प्रसाद के प्रभाव से आप सब परमोत्तम श्री से सम्पन्न हो जायेंगे। इस रीति से पितामह ब्रह्माजी ने वरदान प्रदान करके उन पादपों पर पूर्ण अनुग्रह किया था। १९॥ एक सहस्र वर्ष पर्यन्त वहाँ पर ब्रह्माजी ने अपनी स्थिति बनाकर भू मण्डल में पुष्कर को प्रक्षिप्त कर दिया था और उससे पृथ्वी रसातल को जाती हुई विशेष रूप से कम्पित हो गई थी ॥ २० ॥ क्षोभ से युक्त तरङ्गों वाले सागरों ने विवश होकर वेला का त्याग कर दिया था। पर्वतों की चोटियाँ जो व्याघ्र और व्यालों से आवृत थीं वे इन्द्र के वज्र के प्रहार की भाँति मानो निहित होगयी थीं। २१॥

शिखराण्यप्यशीर्यंत पर्वतानां सहस्रशः ।
देवसिद्धविमानानि गंधर्वनगराणि च ॥२२
प्रचेलुर्बभ्रंमुःपेतुर्विविशुश्च धरातलम् ।
कपोतमेघाःसंपेतुः पुटसंवातदर्शिनः ॥२३
ज्योतिर्गणांश्छादयंतो बभूवुस्तीव्रभास्कराः ।
महता तस्य शब्देन मूकान्धवधिरीकृतम् ॥२४
बभूव व्याकुलं सर्वं त्रैलोक्यं स चराचरम् ।
सुरासुराणांसर्वेषां शरीराणिमनांसि च ॥२५

अवसेदुश्च किमितिकिमित्येतन्नजज्ञिरे ।
धैर्यमालंब्य सर्वेऽथ ब्रह्माणं चाप्यलोकयन् ॥२६
न च ते तमपश्यंतकुत्र ब्रह्मा गतोह्यभूत् ।
किमर्थं कंपिता भूमि निमित्तोत्पातदर्शनम् ॥२७
तावद्विष्णुर्गतस्तत्र यत्र देवा व्यवस्थिताः ।
प्रणिपत्य इदं वाक्यमुक्तवंतोदिवौकसः ॥२८

सहस्रों पर्वतों के शिखर वज्र के आघात के समान क्षोर्ण हो गये थे। देवों और सिद्धों के विमान तथा गन्धर्वों के नगर सब चलायमान हो गये, चक्कर खाने लगे और गिरकर धरानल में प्रविष्ट हो गये थे। पुट संशाल के देखने वाले कपोल मेघ आकाश से पतित हो गये थे ॥२२ २३॥ तीव्र सूर्य ज्योतिर्गणों का छेदन करते हुए अस्थिरता की प्राप्त हो गये थे। उस पुष्कर के पास ऐसी महान् घोर ध्वनि हुई थी उसने सबको मूक (गूँगा) और बहरा बना दिया था ॥२४॥ स्थावर जङ्गम समस्त चराचर तीनों लोक व्याकुल हो उठे थे और सुर तथा असुर सबके शरीर एवं मन अवसाद से खिन्न हो गये थे ॥२५॥ यह क्या कारण, यह किसका ऐसा घोर परिणाम है—इसे कोई भी न जान पाये थे। इसके अनन्तर सबने धैर्य धारण किया और सबके सब ब्रह्माजी को देखने लगे थे ॥२६॥ किन्तु उन्होंने वहाँ ब्रह्माजी को नहीं देखा था। वे विचारने लगे कि ब्रह्मा कहाँ चले गये हैं ? यह भूमि किस लिये ऐसी कम्पित हुई है। यह तो किसी उत्पात का ही कोई निमित्त है ॥२७॥ इसी बीच में वहाँ पर भगवान् विष्णु पहुँच गये थे जहाँ पर देव लोग समवस्थित थे। तब देवगणों ने विष्णु को प्रणाम किया और उनसे यह वाक्य बोले थे ॥२८॥

किमेतद्भगवन्नत्र हि निमित्तोत्पातदर्शनम् ।
त्रैलोक्य कंपितं येन सयुक्तं कालधर्मणा ॥२९
शुभोऽशुभोवानव्दोऽस्यंत्रैलोक्यस्यदिवौकसाम् ।
भगवन्वदिजानासिकिमेतत्कथयस्वनः ॥३०
एवमुक्तोऽब्रवीद्विष्णुः परमेणानुभावितः ।
मार्भैष्टमरुतःसर्वे शृणुध्वंचात्र कारणम् ॥३१

निश्चयेनानुविज्ञाय वक्ष्याम्येपयथाविधम् ।
पद्महस्तोहिभगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥३२
भूप्रदेशेपुण्यराशौ यज्ञ कर्त्तुं व्यवस्थितः ।
अवरोहे पर्वताना वने चातीवशोभने ॥३३
कमलतस्य हस्तात्तु पतित धरणीतले ।
तस्यशब्दोमहानेष येन यूय प्रकम्पिता ॥३४
तत्रासौ तरुवृंदेन पुष्पामोदाभिनन्दितः ।
अनुगृह्यायभगवान्वनतत्समृगाडजम् ॥३५

हे भगवन् ! यह क्या हो रहा है और किस उत्पात के दिखावे का निमित्त है—इसे आप कृपाकर बतलाइये । काल धर्म से संयुक्त त्रिलोकी को जिसने कम्पायमान कर दिया है ॥२६॥ त्रैलोक्य के देवगणों के लिये यह शब्द शुभ है अथवा अशुभ है ? हे भगवन् ! यदि आप इसे जानते हैं तो कृपया बतला दीजिये कि यह क्या है ? ॥३०॥ इस तरह से जब भगवान् विष्णु से प्रार्थना की गई तो अत्यन्त अनुग्रह से अनुभावित होकर विष्णु ने देवगणों से कहा—हे देवगणो ! आप लोग भयभीत मत होओ । इसका कारण आप लोग मुझसे श्रवण करलो ॥३१॥ मैं पूर्ण निश्चय करके और समझकर पूरी बात जो भी जैसी है तुम्हें बतलाता हूँ । लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजी पद्म हाथ में धारण करने वाले हैं ॥३२॥ उन्होंने पुण्य स्थल भू-मण्डल में यज्ञ करने की व्यवस्था का निश्चय किया है । पर्वतों के अवरोह में और अतीव शोभा सम्पन्न वन में उस यज्ञ करने का विचार किया है ॥३३॥ उनके हाथ से पद्म धरणी तल पर गिर गया है । उस कमल के पातन होने का यह महान् शब्द है जिससे कि भीत होकर आप लोग कम्पयुक्त हो गये हैं । वहाँ पर तरुओं के समूह के द्वारा इन ब्रह्माजी का पुष्पों की गन्ध से अभिनन्दन किया गया है । मृगाडज के सहित उस वन को ब्रह्माजी ने अनुगृहीत किया है ॥३४॥३५॥

जगतोऽनुग्रहार्थाय वास तत्रान्वरोचयत् ।
पुष्करं नाम तत्तीर्थं क्षेत्र वृषभमेव च ॥३६
जनितं तद्भगवता लोकाना हितकारिणा ।
ब्रह्माणतत्रवंगत्वा तोषयध्वं मया सह ॥३७

आराध्यमानो भगवान्प्रदास्यतिवरान्वरान् ।
इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुः सहतैर्देवदानवैः ।।३८
जगामतद्वनोद्देशं यत्रास्ते स तु कजजः ।
प्रहृष्टास्तुष्टमनसः कोकिलालापलापिताः ।।३९
पुष्पोच्चयोज्ज्वलं शस्तं विविशुर्ब्रह्मणोवनम् ।
संप्राप्तंसर्वदेवैस्तु वनंनंदनसंमितम् ।।४०
पद्मिनीमृगपुष्पाढ्यं सुहढं शुशुभे तदा ।
प्रविश्याथ वनंदेवाः सर्वपुष्पोपशोभितम् ।।४१
इहदेवोऽस्तीतिदेवा वभ्रमुश्चदिदृक्षवः ।
मृगयंतस्ततस्ते तु सर्वेदेवाः सवासवाः ।।४२

अद्भुतस्यवनस्यांतं न ते ददृशुरानुगाः ।
विचिन्वद्भिस्तदादेवं दैवैर्वायुर्विलोकितः ॥४३
स तानुवाच ब्रह्माणं न द्रक्ष्यथ तपोविना ।
तदाखिन्नाविचिन्वंतस्तस्मिन्पर्वतरोधसि ॥४४
धर्मनेत्रत्राणमस्मादधिकं कर्तु महंसि ।
वाङ्मनःकायभावैस्त्वां प्रपन्नास्स्मः पितामह ॥४५
एवस्तुतस्तदादेवैर्ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
प्रदास्यामि स्मृतोवाढममोघं दर्शनं हि वः ॥४६
ब्रुवंतुवांछितंपुत्राः प्रदास्यामि वरान्वरान् ।
एवमुक्ता भगवतादेवा वचनमब्रुवन् ॥४७
एषएवाद्य भगवन्सु पर्याप्तोमहान्वरः ।
जनितोनः सुराध्वोऽयंकमलंक्षिपतात्वया ॥४८
किमर्थकंपिताभूमिर्लोकाश्चाकुलिताःकृताः ।
नैतन्निरर्थकं देव उच्यतामत्रकारणम् ॥४९

अत्यन्त शीघ्रता से गमन करने वाले भी वे सब उस परम अद्भुत वन का अन्त न देख पाये थे। उस समय में सब ब्रह्माजी की खोज करने वाले देवों ने वायु को देखा था ॥४३॥ उस वायु ने उन सबसे कहा था कि आप लोग तपश्चर्या के बिना ब्रह्माजी को नहीं देख सकेंगे। उस समय उस पर्वत के मध्य में ब्रह्मा को ढूंढते हुए सब अत्यन्त खिन्न हो गये थे ॥४४॥ देवों ने वहाँ पर ब्रह्मा का बहुत कुछ स्तवन किया था और कहा—हे धर्मनेत्र ! इतने ही से आप हमारी रक्षा करने के योग्य होते हैं। हम सभी लोग मन—वाणी और शरीर से आपकी शरणागति में समुपस्थित हो गये हैं। हे पितामह ! हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिए ॥ ४५ ॥ इस प्रकार से देवगण के द्वारा स्तुति किये गये ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने कहा था—आप लोगों के द्वारा स्मृत हुआ मैं आप सभी को अपना दर्शन दूंगा ॥४६॥ हे पुत्रो ! आप लोग अपना अभीप्सित बतलाओ। मैं आपको श्रेष्ठ वरदान प्रदान करूंगा। इस रीति से कहे गये देवताओं ने अपने वचन कहे थे ॥ ४७ ॥ हे भगवन् ! यह ही आज बहुत ही

पर्याप्त (काफी) महान् वरदान है कि आपने अपने हाथ के कमल को फेंकते हुए यह बड़ा ही सुन्दर शब्द समुत्पन्न हमारे लिये पैदा कर दिया था ।।४८।। यह समस्त भू-मण्डल आपने किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये प्रकम्पित किया है और ये लोक सब क्यों व्याकुल कर दिये हैं ? हे देव ! यह सब कुछ बिना किसी प्रयोजन के व्यर्थ तो नहीं है । इसका अवश्य ही कुछ प्रयोजन है । आप इसका जो भी कारण हो उसे ही बताने का अनुग्रह करें ।।४६।।

युष्मद्धितार्थमेतद्धि पद्म विनिहितंमया ।
देवतानां च रक्षार्थं श्रूयतामत्रकारणम् ।।५०
असुरोवज्रनाभोऽयं बालजीवापहारकः ।
अवस्थितस्त्ववष्टभ्यरसातलतलाश्रयम् ।।५१
युष्मदागमनं ज्ञात्वा तपस्थान्निहितायुधान् ।
हन्तुकामोदुराचारःसेंद्रानपि दिवौकसः ।।५२
घात.कमलपातेन मयातस्यविनिर्मितः ।
स राज्यैश्वर्यदर्पिष्ठस्तेनासौनिहतोमया ।।५३
लोकेऽस्मिन्समये भक्ताब्राह्मणा वेदपारगाः ।
मेव ते दुर्गतिं यांतुलभंतांसुगतिंपुनः ।।५४
देवानां दानवानांच मनुष्योरगरक्षसाम् ।
भूतग्रामस्यसर्वस्य समोऽस्मिस्त्रिदिवौकसः ।।५५
युष्मद्धितार्थपापोऽसौमयामन्त्रेणघातितः ।
प्राप्त.पुण्यकृतांलोकान्कमलस्यास्यदर्शनात् ।।५६

इस पर ब्रह्माजी ने कहा—मैंने आप सब लोगों की भलाई के लिये ही यह पद्म विशेष रूप से निहित किया है । इस कमल का फेंका जाना देवताओं की रक्षा करने के लिये ही हुआ है । इसमें जो भी कारण है उसे सुन लो ।।५०।। यह वज्रनाभ नाम वाला असुर है जो बालजीवों के अपहरण करने वाला है । वह रसातल के तल को अपना आश्रय बनाकर तथा उसे अवष्टब्ध करके अवस्थित हो रहा है । आप सबका यहाँ आगमन जानकर तपश्चर्या में स्थित निहित आयुधों वाले आप सबके हनन करने की इच्छा वाला वह दुष्ट आचार वाला था । वह

इन्द्र के सहित सभी देवताओं को मार डालने की इच्छा कर रहा था ।।५१।। ।।५२।। मैंने इस कमल के गिरा देने से उसका घात कर दिया था। वह अपने राज्य के ऐश्वर्य से बहुत ही अत्यन्त घमण्ड वाला था। इससे मैंने उसको मार डाला है ।।५३।। इस समय लोक में वेदों के परगामी ब्राह्मण भक्त सब दुर्गति को प्राप्त न होवें और सभी पुनः सुगति का लाभ करें ।।५४।। हे देवगण ! मैं तो देवों के, दानवों के, मनुष्यों के, उरगों के, राक्षसों के और सम्पूर्ण प्राणिमात्र के लिये समान हूँ अर्थात् सभी का कल्याण चाहने वाला हूँ ।।५५।। आप सभी के कल्याण करने के लिये मैंने इस महान् पापात्मा का अन्त से घात किया है और अब वह इस कमल के दर्शन से ही पुण्यकारी लोकों को प्राप्त हो गया है ।।५६।।

यन्मयापद्ममुक्तं तु तेनेदंपुष्करं भुवि ।
ख्यातंभविष्यते तीर्थं पावनं पुण्यदंमहत् ।।५७
पृथिव्यां सर्वजंतूनाम्पुण्यदं परिपठ्यते ।
कृतोह्यनुग्रहोदेवा भक्तानां भक्तिमिच्छताम् ।।५८
वनेऽस्मिन्नित्यवासेन वृक्षैरभ्यर्थितेनच ।
महाकालोवनेऽस्मागादागतस्य ममानघाः ।।५९
तपस्यतांच भवतांमहज्ज्ञानं प्रदर्शितम् ।
कुरुध्वं हृदयेदेवाः स्वार्थंचैव परार्थकम् ।।६०
भवद्भिर्दर्शनीयं तु नानारूपधरैर्भुवि ।
द्विषन्वैशासिनंविप्रं पापेनैवार्दितोनरः ।।६१
नविमुच्येत पापेन जन्मकोटिशतैरपि ।
वेदांगपारगं विप्रं नहन्यान्नचदूषयेत् ।।६२
एकस्मिन्निहते यस्मात्कोटिर्भवतिघातिता ।
एकंवेदान्तगं विप्रंभोजयेच्छ्रद्धयान्वितः ।।६३

मैंने जो यह पद्म मुक्त किया है इससे भू-मण्डल में यह पुष्कर प्रसिद्ध होगा जो कि परम पुण्य के प्रदान करने वाला एक महान् पावन तीर्थ होगा ।।५७।। पृथ्वी में समस्त जन्तुओं को पुण्य प्रदान कराने वाला कहा जाता है।

हे देवगण ! भक्ति की इच्छा रखने वाले भक्तों के लिये मैंने यह अनुग्रह ही किया है ।।५८।। इस वन में निवास करने से और वृक्षों के द्वारा अभ्यर्चित होने से मेरा यहाँ पर आये हुए को महान् काल होगया है ।।५९।। हे अनघो ! तपस्या करने वाले आप लोगों को महान् ज्ञान प्रदर्शित होगा । हे देवताओ ! आप लोग हृदय मे स्वार्थ तथा परार्थ दोनों ही करो ।।६०।। भू-मण्डल मे नाना रूपों के धारण करने वाले आपको द्वेष-भाव रखने वाले और ज्ञानी विप्र देखने योग्य होंगे यह मनुष्य पाप के द्वारा ही अर्दित हो रहा है ।।६१।। सैकडों करोड जन्मो में भी पाप से विमुक्त नहीं होता है । अतएव जो वेद का पारगामी विप्र है उसका हनन तथा दूषण नहीं करना चाहिए ।।६२।। एक का भी विहनन करने से करोडों की घात हो जाया करती है इतना महान् पाप है । एक वेदान्त शास्त्र के पूर्ण ज्ञान रखने वाले विप्र को परम श्रद्धा से समन्वित होकर भोजन कराना चाहिए । ६३।।

क्षेत्रनिर्देशाया मासयथावत्कथयामिते ।
उत्तरे चन्द्रनद्यास्तु प्राची यावत्सरस्वती ।।६४
पूर्वंतुनन्दनात्कुरस्नयावत्कल्पसपुष्करम् ।
वेदीह्येपाकृतायज्ञे ब्रह्मणालोककारिणा ।।६५
ज्येष्ठ तुप्रथमन्त्रेयतीर्थं त्रैलोक्यपावनम् ।
ख्यातमद्ब्रह्मदैवत्यं मध्यमं वैष्णवं तथा ।।६६
कनिष्ठं रुद्रदैवत्यं ब्रह्मा पूर्वमकारयत् ।
आद्यमेतत्परं क्षेत्र गुह्यं वेदेषु पठ्यते ।।६७
अरण्य पुष्कराख्यं तु ब्रह्मायत्राभिहित.प्रभुः ।
अनुग्रहोभूमिभागेकृतोयैब्रह्मणास्वयम् ।।६८
अनुग्रह र्थं विप्राणां सर्वेषांभूमिचारिणाम् ।
सुवर्णंवज्रपर्यंता वेदिकाका महोकृता ।।६९
विचित्रकुट्टिमारत्नै. कारितासर्वशोभना ।
रमतेतत्र भगवान्ब्रह्मालोकपितामहः ।।७०

ब्रह्माजी ने देवों से कहा—इस क्षेत्र मे जो भी मैंने निर्देशित किया है वह सब ठीक ठीक तुमको बतलाता हूँ । चन्द्र नदी के उत्तर मे जब तक प्राची

इन्द्र के सहित सभी देवताओं को मार डालने की इच्छा कर रहा था ।।५१।। ।।५२।। मैंने इस कमल के गिरा देने से उसका घात कर दिया था । वह अपने राज्य के ऐश्वर्य से बहुत ही अत्यन्त घमण्ड वाला था । इससे मैंने उसको मार डाला है ।।५३।। इस समय लोक में वेदों के पारगामी ब्राह्मण भक्त सब दुर्गति को प्राप्त न होवें और सभी पुनः सुगति का लाभ करें ।।५४।। हे देवगण ! मैं तो देवों के, दानवों के, मनुष्यों के, उरगों के, राक्षसों के और सम्पूर्ण प्राणिमात्र के लिये समान हूँ अर्थात् सभी का कल्याण चाहने वाला हूँ ।।५५।। आप सभी के कल्याण करने के लिये मैंने इस महान् पापात्मा का मन्त्र से घात किया है और अब वह इस कमल के दर्शन से ही पुण्यकारी लोकों को प्राप्त हो गया है ।।५६।।

यन्मयापद्ममुक्तं तु तेनेदंपुष्करं भुवि ।
ख्यातंभविष्यते तीर्थं पावनं पुण्यदमहत् ।।५७
पृथिव्यां सर्वजंतूनाम्पुण्यद परिपठ्यते ।
कृतोह्यनुग्रहोदेवा भक्तानां भक्तिमिच्छताम् ।।५८
वनेऽस्मिन्नित्यवासेन वृक्षैरभ्यर्थितेनच ।
महाकालोवनेऽत्रागादागतस्य ममानघाः ।।५६
तपस्यतांच भवतामहज्ज्ञानं प्रदर्शितम् ।
कुरुध्वं हृदयेदेवाः स्वार्थंचैव परार्थकम् ।।६०
भवद्भिर्दर्शनीयं तु नानारूपधरैर्भुवि ।
द्विपत्वैर्ज्ञानिनंविप्रं पापेनैवार्दितोनरः ।।६१
नविमुच्येत पापेन जन्मकोटिशतैरपि ।
वेदांगपारगं विप्रं नहन्यान्नचदूषयेत् ।।६२
एकस्मिन्निहते यस्मात्कोटिर्भवतिघातिता ।
एकवेदान्तगं विप्रंभोजयेच्छ्रद्धयान्वितः ।।६३

मैंने जो यह पद्म मुक्त किया है इससे भू-मण्डल में यह पुष्कर प्रसिद्ध होगा जो कि परम पुण्य के प्रदान करने वाला एक महान् पावन तीर्थ होगा ।।५७।। पृथ्वी में समस्त जन्तुओं को पुण्य प्रदान कराने वाला कहा जाता है ।

हे देवगण ! भक्ति की इच्छा रखने वाले भक्तों के लिये मैंने यह अनुग्रह ही किया है ॥५८॥ इस वन में निवास करने से और वृन्दों के द्वारा अभ्यर्थित होने से मेरा यहाँ पर आये हुए को महान् काल होगया है ॥५९॥ हे अनघो ! तपस्या करने वाले आप लोगों को महान् ज्ञान प्रदर्शित होगा । हे देवताओ ! आप लोग हृदय में इसके स्वार्थ तथा परार्थ दोनों ही करो ॥६०॥ भू मण्डल में नाना रूपों के धारण करने वाले आपको द्वेष भाव रखने वाले और ज्ञानी विप्र रखने योग्य होंगे यह मनुष्य पाप के द्वारा ही मर्दित हो रहा है ॥६१॥ सैकड़ों करोड़ जन्मों में भी पाप से विमुक्त नहीं होता है । अतएव जो वेद का पारगामी विप्र है उसका हनन तथा दूषण नहीं करना चाहिए ॥६२॥ एक का भी विहनन करने में करोड़ों की घात हो जाया करती है इतना महान् पाप है । एक वेदान्त शास्त्र के पूर्ण ज्ञान रखने वाले विप्र को परम श्रद्धा से समन्वित होकर भोजन कराना चाहिए ।६३॥

क्षेत्रनिवशाया भासयथावत्कथयामिते ।
उत्तर चन्द्रनद्यास्तु प्राची यावत्सरस्वती ॥६४
पूर्वतुनन्दनात्कृत्स्नयावत्कल्पसपुष्करम् ।
वेदीह्येपाकृतायज्ञे ब्रह्मणालोककारिणा ॥६५
ज्येष्ठ तुप्रथमज्ञयतीर्थं त्रैलोक्यपावनम् ।
ख्यातन्तद्ब्रह्मदैवत्यं मध्यमं वैष्णवं तथा ॥६६
कनिष्ठं रुद्रदैवत्यं ब्रह्मा पूर्वमकारयत् ।
आद्यमेतत्परं क्षेत्रं गुह्यं वेदेषु पठ्यते ॥६७
अरण्यं पुष्कराख्यं तु ब्रह्मासन्निहितः प्रभुः ।
अनुग्रहोभूमिभागेकृतोयंब्रह्मणास्वयम् ॥६८
अनुग्रहार्थं विप्राणां सर्वेषांभूमिचारिणाम् ।
सुवर्णवज्रपर्यन्ता वेदिकाया महीघ्नता ॥६९
चित्रितकुट्टिमास्तले धारितासर्वशोभना ।
रमतेतत्र भगवान्ब्रह्मालोकपितामहः ॥७०

ब्रह्माजी ने देवों से कहा—इस क्षेत्र में जो भी मैंने निवेशित किया है वह सब ठीक ठीक तुमको बतलाता हूँ । चन्द्र नदी के उत्तर में जब तक प्राची

अर्थात् पूर्व दिशा ही सरस्वती है ।।६४।। नन्दन मे पूर्व जितना भी सम्पूर्ण कल्प है वह पुष्कर है । लोकों के धारण करने वाले ब्रह्मा ने यज्ञ में यह वेदी बनाई थी ।।६५।। सबसे बड़ा, प्रथम और त्रिलोकी मे परम पावन इस तीर्थ को समझना चाहिए । इसको अधिष्ठातृ देवता ब्रह्माजी हैं—ऐसा ही प्रसिद्ध है । तथा जो मध्यम तीर्थ है वह वैष्णव है अर्थात् उसके अधिष्ठातृ देवता विष्णु हैं ।।६६।। सबसे छोटा रुद्र के अधिष्ठातृ देवता वाला तीर्थ है । ऐसा ही ब्रह्माजी ने पहिले किया था, यह परम श्रेष्ठ आद्य क्षेत्र है जो वेदों में अति गोपनीय पढ़ा जाता है ।।६७।। पुष्कर नाम वाला जो अरण्य (वन) है वहाँ पर प्रभु ब्रह्मा सन्निहित रहा करते हैं । इस भूमि के भाग में ब्रह्माजी ने स्वयं परम कृपा की है ।।६८।। समस्त भूमि पर विचरण करने वाले विप्रों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये इस मही को सुवर्ण वज्र पर्यन्त वेदिका के मध्य वाली कर दिया है ।। ६९ ।। यह वेदी अति विचित्र कुट्टिम रत्नों से सब प्रकार की शोभा वाली बनादी है जहाँ पर भगवान् पितामह ब्रह्मलोक के अधिष्ठाता रमण किया करते हैं ।।७०।।

विष्णुरुद्रौतथादेवौवसवोऽप्यश्विनावपि ।
मरुतश्चमहेंद्रश्च रमंतेचदिवौकसः ।।७१
एतत्तेतथ्यमाख्यातंलोकानुग्रहकारणम् ।
संहितानुक्रमेणात्रमंत्रैश्चविधिपूर्वकम् ।।७२
वेदान्पठंतियेविप्रा गुरुशुश्रूषणेरताः ।
वसंति ब्रह्मसामीप्येसर्वेतेनानुभाविताः ।।७३
भगवन्केनविधिनाअरण्येपुष्करेनरैः ।
ब्रह्मलोकमभीप्सद्भिर्वस्तव्यंक्षेत्रवासिभिः ।।७४
किमनुष्ठेयंरुतस्त्रीभिरुतवर्णाश्रमान्वितैः ।
वसद्भिः किमनुष्ठेयमेतत्सर्वं ब्रवीहिमे ।।७५
नरैःस्त्रीभिश्चवस्तव्यंवर्णाश्रमनिवासिभिः ।
स्वधर्माचारनिरतैर्दंभमोहविवर्जितैः ।।७६

यहाँ पर भगवान् विष्णु, रुद्र, इन्द्रदेव, अश्विनीकुमार, मरुत्, महेन्द्र तथा अन्य सब देवगण भी रमण किया करते हैं ।।७१।। यह परम सत्य मैंने

बता दिया है जो लोगों के ऊपर अनुग्रह के लिये ही किया गया है । यही इसका कारण है । यहाँ पर जो विप्र संहिता के अनुक्रम से वेदों का पाठ किया करते हैं तथा विधि विधान के सहित मन्त्रों से वेदों को पढ़ते हैं और अपने गुरुचरणों की सेवा में अनुरक्त रहा करते हैं वे सब अनुभावित होते हुए ब्रह्म के ही समीप में निवास किया करते हैं ॥ ७२ ७३ ॥ भीष्म ने पूछा था—हे भगवन् ! इस अरण्य में मनुष्यों को किस विधि से निवास करना चाहिए जो कि ब्रह्मलोक की इच्छा रखते हैं और इस क्षेत्र में वास किया करते हैं । मनुष्यों को, स्त्रियों को और वर्णाश्रमों से युक्त रहने वालों को यहाँ निवास करते हुए क्या करना चाहिए—यह सब कृपाकर हमको बताइये । पुलस्त्य मुनि ने कहा—पुरुषों को तथा स्त्रियों को वर्णाश्रम के अनुसार ही अपने-अपने धर्मों का आचार पालन करते हुए मोह और दम्भ से रहित होकर यहाँ पर निवास करना चाहिए ॥७४॥७५॥७६॥

॥ ब्रह्मदेव कृत यज्ञ वर्णन ॥

यदेतत्कथितं ब्रह्म स्तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।
कमलस्याभिपातेन तीर्थजात धरातले ॥१
तत्रस्थेन भगवता विष्णुना शंकरेण च ।
यत्कृत मुनिशार्दूल तत्सर्वं परिकीर्त्तय ॥२
कथं यज्ञाहिदेवेन विभुना तत्र कारित ।
केसदस्याश्चर्त्विजश्च ब्राह्मणा केसमागता ॥३
के भागास्तस्य यज्ञस्य किं द्रव्यं काचदक्षिणा ।
कावेदीकिंप्रमाणञ्चकृत तत्र विरिञ्चिना ॥४
योयाज्य सर्वदेवानां वेदै सर्वत्र पठ्यते ।
कंचकाममभिध्याय-वेधायज्ञचकार ह ॥५
यथामोऽव्ययदेवेशो ह्यजरश्चामरश्चह ।
तथाधंमाशय स्वर्गस्तस्य देवस्य हव्यपे ॥६
अन्येषामपिदेवानां दत्त स्वर्गोमहात्मना ।
अग्निहोत्रार्थमुत्पन्नावेदाश्चौषधयस्तथा ॥७

भीष्म ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने पुष्कर तीर्थ का अत्यन्त उत्तम माहात्म्य का वर्णन किया है जो कि इस धरातल में ब्रह्माजी के हाथ से गिरे हुए कमल से यह तीर्थ हुआ है ॥१॥ हे मुनियों में शार्दूल ! अब आप यह वर्णन करने की कृपा कीजिये कि उस तीर्थ में स्थित भगवान् विष्णु और शङ्कर ने जो कुछ भी क्या किया था ॥२॥ विभुदेव ने वहाँ पर किस प्रकार से यज्ञ कराया था । उस यज्ञ में कौन-कौन ब्राह्मण वहाँ आये थे और उस यज्ञ के सदस्य तथा ऋत्विज बने थे ॥३॥ उस यज्ञ के कितने कौन-कौन से भाग थे । उसमें क्या-क्या द्रव्य थे और क्या उसकी दक्षिणा थी । उसकी वेदी कैसी और कितनी लम्बी-चौड़ी ब्रह्माजी ने वहाँ आकर बनाई थी ॥४॥ जो समस्त देवों का यजन करने के योग्य है वह वेदों के द्वारा सर्वत्र पता ही जाता है । वेधा ने किस कामना के लिये यह यज्ञ वहाँ पर किया था ॥५॥ जिस प्रकार से यह देवों का भी देवेश्वर जरा (वृद्धावस्था) और मृत्यु से रहित है तथा उस देव का कभी क्षय को प्राप्त न होने वाला स्वर्ग दिखलाई देता है ॥६॥ इस महान् आत्मा वाले ने अन्य देवों को स्वर्ग प्रदान किया है । अग्निहोत्र का कार्य संपादन करने के लिये ये समस्त वेद एवं औषधियाँ समुत्पन्न हुए हैं ॥७॥

येचान्येपशवोभूमौसर्वेतेयज्ञकारणात् ।
सृष्टा भगवतानेनइत्येषा वैदिकीश्रुतिः ॥८
तदत्रकौतुकंमह्यं श्रुत्वैवतत्प्रभाषितम् ।
यंकाममधिकृत्यैकं यत्फलं यां च भावनाम् । ९
कृतश्चानेनवैयज्ञःसर्वंशंसितुमर्हसि ।
शताहपा च यानारीसावित्रीसात्विहोच्यते ॥१०
भार्यासाब्रह्मणः प्रोक्तात्रपीशांजननीचसा ।
पुलस्त्याद्यान्मुनीन्सप्तदक्षाद्यास्तुप्रजापतीन् ॥११
स्वायंभुवादींश्चमनून्सावित्रीसमजीजनत् ।
धर्मपत्नींतुतांब्रह्मापुत्रिणीमात्मनःप्रियाम् ॥१२
पतिव्रतांमहाभागांसुव्रतांचारुहासिनीम् ।
कथसतीं परित्यज्यभार्यामन्यामविंदत ॥१३

किंनाम्नी किंसमाचारा कस्य सा तनया विभोः ।
क्वमा दृष्टा हि देवेन केन चास्य प्रदर्शिता ॥१४

इस भूमि पर जो ये सब पशु हैं वे सभी यज्ञ कार्य की पूर्ति करने के कारण से ही इन भगवान् के द्वारा सृजित किये गये हैं—ऐसी वेदोक्त श्रुति है ॥८॥ इस विषय मे मुझे आपके इस भाषण का श्रवणकर बड़ा भारी कौतुक होता है। जिस कामना को लेकर या जिस भावना को हृदय मे रखकर जो किया जाता है उसका एक फल होता है ॥९॥ इन महापुरुषो ने यज्ञ किया था सो यह सभी आप मुझे बताने के योग्य होते हैं। जो व्रतरूपा नारी थी वह सावित्री कही जाती है ॥१०॥ वह ऋषियों को जन्म देने वाली माता है पुलस्त्य आदि मुनियो को और दक्ष प्रभृति, सात प्रजापतियों को एवं स्वायम्भुव आदि मनुओं को उसी सावित्री ने जन्म प्रदान किया था। उसे ब्रह्मा की भार्या बनाया गया है। अपनी प्रिय पुत्री उस धर्मपत्नी को ब्रह्मा जी ने जो कि परम पतिव्रता—सुभगा, सुव्रता, सती और चारुहासिनी थी, उसका परित्याग कर कैसे दूसरी भार्या को प्राप्त कर लिया था ॥११।१२।१३॥ वह किस नाम वाली थी, उसका आचार क्या था और वह किसकी पुत्री थी ? देवदेव ने उसको कहाँ पर देखा था और किसने इनको उसे दिखलाया था ? ॥१४॥

किंरूपा सा तु देवेशी दृष्टा चित्तविमोहिनी ।
या तु दृष्ट्वा स देवेश कामस्य वशमेयिवान् ॥१५
वर्णतो रूपतश्चैव सा विश्रास्त्वधिका मुने ।
या मोहितवतो देव सर्वलोकेश्वरं विभुम् ॥१६
यथा गृहीतवान्देवो नारी तां लोकसुन्दरीम् ।
यथा प्रवृत्तो यज्ञोऽसौ तथा सर्वं प्रकीर्तय ॥१७
तां दृष्ट्वा ब्रह्मणः पार्श्वे सावित्री किंचकार ह ।
सावित्र्यां तु तदा ब्रह्मा कां तु वृत्तिमवर्त्तत ॥१८
सन्निधौ कानि वाक्यानि सावित्री ब्रह्मणा तदा ।
उक्ता प्युक्तवती भूय सर्वं शंसितुमर्हसि ॥१९
किं कृतं तत्र युष्माभि: कोपो वाथ दमापि वा ।
यत्कृतं तत्र यद्दृष्टं यत्त्वोक्तं मया त्विह ॥२०

विस्तरेणेहसर्वाणिकर्माणिपरमेष्ठिनः ।
श्रोतुमिच्छाम्यशेषेणविधेर्यज्ञविधिपरम् ॥२१

यह देवी किस प्रकार के रूप-सौन्दर्य वाली थी जो कि चित्त को विमोहित करने वाली देखी गई थी जिसका एकबार ही दर्शन करके यह देवेश्वर काम के वशीभूत हो गये थे ॥१५॥ हे मुने ! क्या यह सुन्दर वर्ण और रूप लावण्य से सावित्री से भी अधिक थी जिसने समस्त लोकों के स्वामी विभु को भी इस प्रकार से मोहित कर लिया था ? ॥१६॥ जिस प्रकार से इस देवेश्वर ने उस लोक सुन्दरी का ग्रहण किया था और जिस रीति से उसके द्वारा यह यज्ञ प्रवृत्त किया गया था यह सब कुछ आप वर्णन करिये ॥१७। ब्रह्माजी के समीप में ग्रहण की हुई उस नारी को देखकर फिर सावित्री ने क्या किया था और सावित्री के विषय में उस समय में ब्रह्मा ने किस वृत्ति का बरताव किया था ॥१८॥ उस समय में ब्रह्मा के समीप में सावित्री ने कौन से वाक्य कहे थे और उसके कहने पर फिर उनसे क्या कहा गया था ?—यह सभी कुछ आप बताने का अनुग्रह कीजिए ॥१६॥ आपने कोप अथवा क्षमा किसलिये किया था और जो कुछ किया था तथा आपका वहाँ जो देखा था एवम् मैंने कहा था—इन सबको परमेष्ठी के कर्मों को मैं पूर्ण रूप से श्रवण करने की इच्छा करता हूँ तथा विधाता की यज्ञ की विधि भी सुनना चाहता हूँ ॥२०।२१॥

प्रश्नभारोमहानेष त्वयोक्तो ब्रह्मणश्चय ।
यथाशक्तिनु वक्ष्यामि श्रूयतातरार यश. ॥२२
सहस्रास्य सहस्राक्ष सहस्रचरणाचयम् ।
सहस्रश्रवण चैव सहस्रकरमव्ययम् ॥२३
सहस्रजिह्वं साहस्र सहस्रपरमप्रभुम् ।
सहस्रद सहस्रादि सहस्रभुजमव्ययम् ॥२४
हवन सवन चैव हव्यहोतारमेव च ।
पात्राणि च पवित्राणि वेदी दीक्षा चरुस्रु वम् ॥२५
स्रुवमोमम्वभृच्चैव प्रोक्षणी दक्षिणाघनम् ।
अदध्वर्यु सामग विप्र सदस्यान्सदनंसद ।२६

यूपं समित्कुशं दर्वी चमसोलूखलानि च ।
प्राग्वंशं यज्ञभूमि च होतारं बन्धनंचयत् ॥२७
ह्रस्वान्यतिप्रमाणानिप्रमाणस्थावराणिच ।
प्रायश्चित्तानिवाजाश्चस्थंडिलानिकुशास्तथा ॥२८

पुलस्त्य मुनि ने कहा—आपने ब्रह्मा के विषय में बहुत-से प्रश्नों का बोझा मेरे समक्ष मे रख दिया है । मैं अपनी शक्ति के अनुसार बतलाता हूँ । उस परम यज्ञ का आप श्रवण करो ॥२२॥ वह सहस्र मुखों से युक्त है, सहस्र नेत्र, सहस्र चरणों का समुदाय, सहस्र श्रवण और सहस्र अव्यय हाथ हैं ॥२३॥ उसके सहस्र जिह्वा हैं । वह सहस्रों सहस्र परम प्रभु हैं । सहस्रों के प्रदान करने वाले, महत्तादि तथा सहस्र अक्षय भुजाओं वाला है ॥२४॥ हवन—सवन—हव्य—होता—पवित्र पात्र—वेदी—दीक्षा—चरु—स्रुव—स्रुक्—सोम-अवभृथ—प्रोक्षणी—दक्षिणा देने के लिये धन—सामवेद का गान करने वाला विप्र—सदस्य—सदन—सद—यूप—समिधा—कुश—दर्वी-चमस—उलूखल—प्राग्वंश—यज्ञभूमि—होता और जो बन्धन है । ये ह्रस्व हैं और अत्यधिक प्रमाण वाले तथा स्थावर प्रमाण वाले हैं । प्रायश्चित—वाज—स्थण्डिल और कुशाएँ भी उसी प्रकार के हैं ॥२५ से २८॥

मंत्रंयज्ञश्च हवनं वह्निभागं भवचमम् ।
अग्रेभुजं होमभुजं शुभार्चिषमुदायुधम् ॥२९
आहुर्वेदविदोविप्रा योयज्ञ.शाश्वतःप्रभु ।
यां पृच्छसि महाराजपुण्यादिव्यामिमांकथाम् ॥३०
यदर्थभगवान्ब्रह्माभूमौ यज्ञमथाकरोत् ।
हितार्थंसुरमर्त्यानांलोकानांप्रभवायच ॥३१
ब्रह्माय कपिलश्चैव परमेष्ठी तथैव च ।
देवाःसप्तर्षयश्चैव त्र्यंबकश्च महायशाः ॥३२
सनत्कुमारश्च महानुभावो मनुर्महात्मा भगवान्प्रजापतिः ।
पुराणदेवोऽथ तथा प्रचक्रे प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥३३
पुरा कमलजातस्य स्वपतस्तस्यकोटरे ।
पुष्करे यत्र सम्भूतादेवाश्चर्षिगणास्तथा ॥३४

एषपौष्करकोनामप्रादुर्भावोमहात्मनः ।
पुराणं कथ्यतेयत्र वेदस्मृतिसुसंहितम् ॥३५

मन्त्र, यज्ञ, हवन, वह्निभाग, भव, चम, अग्नि भुज, होम भुज, शुभार्चि और उदायुध को वेदों के ज्ञाता विप्रों ने बताया है। जो यज्ञ है वह शाश्वत प्रभु है। हे महाराज ! आप जो परम दिव्य एक पुण्यमयी कथा को मुझसे पूछ रहे हैं। भगवान् ब्रह्मा ने भू-मण्डल में जिस लिये यह किया था उसका कारण देव-गण और मनुष्यों का हित का सम्पादन तथा लोकों के प्रभव के लिये किया था ॥२६।३०।३१॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा–कपिल–परमेष्ठी–देवगण–सप्तर्षि–महान् यश वाले त्र्यम्बक—महानुभाव सनत्कुमार—महात्मा 'मनु—भगवान् प्रजापति और प्रदीप्त अग्नि के समान तेज वाले पुराण देव किये गये थे ॥३२॥ ॥३३॥ पहिले समय में तपन करने वाले कमल से समुत्पन्न होने वाले के कोटर पुष्कर में देवता तथा ऋषिगण उत्पन्न हुए थे ॥३४॥ महान् आत्मा वाले का यह पौष्कर नाम वाला प्रादुर्भाव है जिसमे वेद स्मृति से सुसंहित पुराण कहा जाता है ॥३५॥

वराहस्तुश्रुतिमुखः प्रादुर्भूतोविरिंचिनः ।
सहायार्थं सुरश्रेष्ठो वाराहं रूपमास्थितः ॥३६
विस्तीर्णं पुष्करे कृत्वा तीर्थं कोकामुखं हि तु ।
वेदपादोयूपदंष्ट्र क्रतुहस्तश्चितीमुखः ॥३७
अग्निजिह्वोदर्भरोमाब्रह्मशीर्षोमहातपाः ।
अहोरात्रेक्षणोदिव्योवेदांगःश्रुतिभूषणः ॥३८
आज्यनासः स्रुवतुंडःसामघोषस्वनोमहान् ।
सत्यधर्ममयः श्रीमान्कर्मविक्रमसत्कृतः ॥३९
प्रायश्चित्तनखोघोरः पशुजानुर्मखाकृतिः ।
उदगात्रंत्रो होमलिंगो फलबीजमहौषधिः ॥४०
वाय्वंतरात्मा मंत्रास्थिरापः स्फिक् सोमशोणितः ।
वेदस्कन्धो हविर्गंधो हव्यकव्यातिवेगवान् ॥४१
प्राग्वंशकायोद्युतिमान्नानादीक्षाभिरर्चितः ।
दक्षिणाहृदयोयोगोमहासत्रमयोमहान् ॥४२

श्रुति के मुख वाला वराह विरञ्चि (ब्रह्मा) से प्रादुर्भूत हुआ था। सुरगण में परम श्रेष्ठ देव ने सहायता करने के लिये ही वाराह रूप को धारण किया था ॥३६॥ पुष्कर में कोका मुख तीर्थ को विस्तार युक्त करके इस रूप में समास्थित हुए थे। वेद जिसके चार चरण थे और यूप दाढ़ें थीं, क्रतु हस्त थे तथा चिती मुख वाले थे ॥३७॥ अग्नि की जिह्वा—दर्भों के रोम और ब्रह्म के मस्तक वाले महान् तप से युक्त उनका स्वरूप था। अहोरात्र ही उनके दोनों नेत्र थे तथा वेदों के अङ्ग श्रुति भूषण थे ॥३८॥ आज्य अर्थात् घृत ही उनकी नासिका थी स्रुव तुण्ड था। सामवेद की ध्वनि ही उस वाराह रूपधारी प्रभु का घोष था जो कि अति महान् था। श्री से सम्पन्न वाराह भगवान् सत्य और धर्म से परिपूर्ण थे तथा कर्म एवम् विक्रम से सत्कार युक्त थे ॥३९॥ प्रायश्चित ही उनके नख थे, और उनके पशु जानु थे और मख की आकृति वाले थे। उद्गातान्त्र—होम लिङ्ग वाले, फल, बीज और महौषधि से युक्त वायु की अन्तरात्मा वाले, मन्त्रों की अस्थियों से युक्त थे। जल ही उनके स्फिक् थे और सोम रुधिर था, वेद स्कन्ध थे, हवि गन्ध था और हव्य तथा कव्य रूपी वेग से संयुत थे ॥४०।४१॥ प्राग्वंश उनका शरीर था, वे द्युति से युक्त थे तथा अनेक प्रकार की दीक्षाओं से समन्वित थे। दक्षिणा उनका हृदय था वाराह भगवान् योगी और महान् सत्र से परिपूर्ण थे ॥४२॥

उपाकर्मेष्टिरुचिरःप्रवर्ग्यावर्तभूषणः।
छायापत्निसहायोवैमणिशृङ्गमिवोच्छ्रितः ॥४३
सर्वलोकहितात्मायोदंष्ट्रयाम्भुअहारणाम्।
ततःस्वस्थानमानीमपृथिवीपृथिवीधरः ॥४४
ततोजगामपृथिवी निर्वाणंधारणाद्धरेः।
एवमादिवराहेण धृत्वाब्रह्महितार्थिना ॥४५
उद्धृता पुष्करेपृथ्वीसागरांबुगतापुरा।
मृतः दामदमाभ्यांयोदिव्येकोकामुखेस्थितः ॥४६
आदित्यैर्वसुभि-साध्यैर्मरुद्भिर्देवतैःसह।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥४७

एषपौष्करकोनामप्रादुर्भावोमहात्मनः ।
पुराणं कथ्यतेयत्र वेदस्मृतिसुसंहितम् ॥३५

मन्त्र, यज्ञ, हवन, वह्निभाग, भव, यम, अग्नि भुज, होम भुज, सुभांचि और उदायुध को वेदों के ज्ञाता विप्रों ने बताया है। जो यज्ञ है वह शाश्वत प्रभु है। हे महाराज ! आप जो परम दिव्य एक पुण्यमयी कथा को मुझसे पूछ रहे हैं। भगवान् ब्रह्मा ने भू-मण्डल में जिस लिये यह किया था उसका कारण देव-गण और मनुष्यों का हित का सम्पादन तथा लोकों के प्रभव के लिये किया था ॥२६।३०।३१॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा–कपिल–परमेष्ठी–देवगण–सप्तर्षि–महान् यश वाले त्र्यम्बक—महानुभाव सनत्कुमार—महात्मा मनु—भगवान् प्रजापति और प्रदीप्त अग्नि के समान तेज वाले पुराण देव किये गये थे ॥३२॥ ॥३३॥ पहिले समय में शयन करने वाले कमल से समुत्पन्न होने वाले के कोटर पुष्कर में देवता तथा ऋषिगण उत्पन्न हुए थे ॥३४॥ महान् आत्मा वाले का यह पौष्कर नाम वाला प्रादुर्भाव है जिसमें वेद स्मृति से सुसंहित पुराण कहा जाता है ॥३५॥

वराहस्तुश्रुतिमुखः प्रादुर्भूतोविरिंचिनः ।
सहायार्थं सुरश्रेष्ठो वाराहं रूपमास्थितः ॥३६
विस्तीर्णं पुष्करे कृत्वा तीर्थं कोकामुखं हि तु ।
वेदपादोयूपदंष्ट्र क्रतुहस्तश्चितीमुखः ॥३७
अग्निजिह्वोदर्भरोमाब्रह्मशीर्षोमहातपाः ।
अहोरात्रेक्षणोदिव्योवेदाङ्गःश्रुतिभूषणः ॥३८
आज्यनासः स्रुवतुण्डःसामघोषस्वनोमहान् ।
सत्यधर्ममयः श्रीमान्कर्मविक्रमसत्कृतः ॥३९
प्रायश्चित्तनखोघोरः पशुजानुर्मखाकृतिः ।
उद्गात्रान्त्रो होमलिंगो फलबीजमहौषधिः ॥४०
वाय्वंतरात्मा मन्त्रास्थिरापः स्फिक् सोमशोणितः ।
वेदस्कन्धो हविर्गंधो हव्यकव्यातिवेगवान् ॥४१
प्राग्वंशकायोद्युतिमान्नानादीक्षाभिरर्चितः ।
दक्षिणाहृदयोयोगीमहासत्रमयोमहान् ॥४२

श्रुति के मुख वाला वराह विरञ्चि (ब्रह्मा) से प्रादुर्भूत हुआ था। पुराण में परम श्रेष्ठ देव ने सहायता करने के लिये ही वाराह रूप को धारण किया था ॥३६॥ पुष्कर में कोका मुख तीर्थ को विस्तार युक्त करके इस रूप में समास्थित हुए थे। वेद जिसके चार चरण थे और यूप दाढ़ें थीं, क्रतु हस्त थे तथा चिती मुख वाले थे ॥३७॥ अग्नि की जिह्वा—दर्भों के रोम और ब्रह्म के मस्तक वाले महान् तप से युक्त उनका स्वरूप था। अहोरात्र ही उनके दोनों नेत्र थे तथा वेदों के अङ्ग श्रुति भूषण थे ॥३८॥ आज्य अर्थात् घृत ही उनकी नासिका थी स्रुव तुण्ड था। सामवेद की ध्वनि ही उस वाराह रूपधारी प्रभु का घोष था जो कि अति महान् था। श्री से सम्पन्न वाराह भगवान् सत्य और धर्म से परिपूर्ण थे तथा कर्म एवम् विक्रम से सत्कार युक्त थे ॥३९॥ प्रायश्चित ही उनके नख थे, और उनके पशु जानु थे और मख की आकृति वाले थे। उद्गातन्त्र—होत्र लिङ्ग वाले, फल, बीज और महौषधि से युक्त वायु की अन्तरात्मा वाले, मन्त्रों की अस्थियों से युक्त थे। जल ही उनके स्फिक् थे और सोम रुधिर था, वेद स्कन्ध थे, हवि गन्ध था और हव्य तथा कव्य रूपी वेग से संयुत थे ॥४०।४१॥ प्राग्वंश उनका शरीर था, वे द्युति से युक्त थे तथा अनेक प्रकार की दीक्षाओं से समर्चित थे। दक्षिणा उनका हृदय था वाराह भगवान् योगी और महान् सत्र से परिपूर्ण थे ॥४२॥

उपाकर्मोष्ठरुचिरःप्रवर्ग्यावर्तभूषणः ।
छायापत्नीसहायोवैमणिशृङ्गमिवोच्छ्रितः ॥४३
सर्वलोकहितात्मायोदंष्ट्रयाभ्युज्जहारगाम् ।
ततःस्वस्थानमानीयपृथिवीपृथिवीधरः ॥४४
ततोजगामपृथिवी निर्वाणंधारणाद्धरेः ।
एवमादिवराहेण धृत्वाब्रह्महितार्थिना ॥४५
उद्धृता पुष्करेपृथ्वीसागरांबुगतापुरा ।
मृगः समस्मान्यांयोदिव्येकोवामुगेरियनः ॥४६
पादिस्वंबंमुभि मार्ग्यंमंर्त्तिर्दिवनं.मह् ।
रद्रं विभ्रमह्लायेश मदरामामतिरं: ॥४७

दिग्भिर्विदिग्भिः पृथिवीनदीभिः सह सागरैः ।
चराचरगुरुश्रीमान्ब्रह्माब्रह्मविदांवरः ॥४८
उवाचवचनंकोकामुखतीर्थंत्वयाविभो ।
पालनीयंसदागोप्यंरक्षाकार्यामखेत्विह ॥४९
एवंकरिष्येभगवस्तदाब्रह्माणमुक्तवान् ।
उवाचतंपुनर्ब्रह्माविष्णुदेवंपुरः स्थितम् ॥५०

उपाकर्म इष्टि से रुचिर और प्रवर्ग्यावर्त्त के भूषण वाले थे। छाया रूपिणी पत्नी की सहायता वाले और मणियों की शिखर की भाँति मत्युन्नत स्वरूप था ॥४३॥ समस्त लोकों की हित—कामना से पूर्ण उस वाराह भगवान् न अपनी दंष्ट्रा से भूमि का उद्धार किया था। इसके अनन्तर उन वाराह रूपी पृथ्वीधर भगवान् ने अपनी दाढ़ पर पृथ्वी को उठाकर अपने स्थान पर उसे ले आये थे ।४४। इसके पश्चात् हरि के द्वारा धारण करने से वह पृथ्वी भी निर्वाण को प्राप्त हो गई थी। इस तरह से ब्रह्मा के हित करने वाले भगवान् आदि वाराह ने पृथ्वी को दाढ़ पर धारण किया था और समुद्र के जल के मध्य में गई हुई पृथ्वी का पहिले पुष्कर में उद्धार किया था। जो शमदमों से युक्त दिव्य कोका मुख में स्थित हो गये थे ॥ ४५।४६ ॥ समस्त आदित्य—वसुगण—साध्य—मरुद्गण और देवों के साथ, रुद्रगण, विश्व के सहायक यक्ष—राक्षस और किन्नरों के सहित, दिशा, विदिशा, पृथिवी, नदी और समस्त सागरों के साथ ब्रह्म के वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ चर और अचर सबके गुरु श्रीमान् ब्रह्मा जी ने कोका मुख तीर्थ से यह वचन कहे थे—हे विभो! तुमको मेरे वचनों का पालन करना चाहिए और सदा उनको गोपनीय रखना। यहाँ पर तुमको मख में रक्षा करनी चाहिए ॥४७।४८।४९॥ तब उसने ब्रह्माजी से कहा था—हे भगवन्! मैं इसी प्रकार से करूँगा। इसके पश्चात् पुनः समक्ष में संस्थित विष्णुदेव से ब्रह्माजी ने कहा था॥५०॥

त्वं हि मे परमोदेवस्त्वंहि मे परमोगुरुः ।
त्वं हि मेपरमंधामशक्रादीना सुरोत्तम ॥५१
उत्फुल्लामलपद्माक्ष शत्रुपक्षक्षयावह ।
यथायज्ञेन मेध्वंसोदानवैश्चविधीयते ॥५२

यथात्वयाविधातव्यप्रणतस्यनमोऽस्तुते ।
भयत्यजस्वदेवेशक्षयनेष्यामिदानवान् ।।५३
येचान्येविघ्नकर्त्तारोयातुधानास्तथासुराः ।
घातयिष्याम्यहंसर्वान्स्वस्तितेस्तुपितामह ।।५४
एवमुक्त्वास्थितस्तत्रसाहाय्येन कृतक्षणः ।
प्रववुश्चशिवावाताः प्रसन्नाश्चदिशोदश ।।५५
सुप्रभाणिचज्योतींपिचन्द्रंचक्रुः प्रदक्षिणम् ।
नविग्रहंग्रहाश्चक्रुः प्रसेदुश्चापि सिंधवः ।।५६

हे शक्र आदि मे श्रेष्ठ देव ! आप ही मेरे परम देव हैं और आप ही मेरे परम गुरु हैं । हे देवेश्वर ! आप ही मेरे परम धाम हैं ।।५१।। हे विकसित विशुद्ध कमल के समान नेत्रों वाले ! आप तो शत्रुओं के पक्ष का क्षय कराने वाले हैं । दानवों द्वारा मेरे यज्ञ का ध्वंस किया जाता है सो आप कृपया ऐसा करिये जिससे यह न हो मैं आपकी सेवा मे प्रणत हूँ और मेरा आपको नमस्कार है । हे देवेश ! आप भय का त्याग कर दीजिए । मैं दानवों का क्षय कर दूँगा ।।५२।५३।। और जो अन्य विघ्नों के करने वाले हैं चाहे वे यातुधान हों या असुर हो, मैं उन सबको मार डालूँगा । हे पितामह ! आपका कल्याण हो ।।५४।। इस प्रकार से कहकर सहायता से कृतक्षण अर्थात् परम प्रसन्न होता हुआ वहीं पर ही स्थित हो गये थे । उस समय मे मङ्गलकारी वायु वहन करने लगा और दशों दिशाएँ अत्यन्त प्रसन्न दिखलाई देने लगी ।। ५५ ।। आकाश मे जितने भी ग्रहनक्षत्र आदि थे वे सब उत्तम प्रभा वाले होकर चन्द्रमा की प्रदक्षिणा करने लगे थे । ग्रह परस्पर मे विग्रह नही करने वाले हो गये तथा सिंधु भी प्रसन्न थे ।।५६।।

नीरजस्काभूमिरासीत्सकलाह्लदयस्त्रयः ।
जग्मुः स्वमार्गंसरितोनापिचुक्षुभुरर्णवाः ।।५७
आसञ्शुभानीन्द्रियाणिनराणामन्तरात्मनाम् ।
महर्षयोवीतशोकावेदानुच्चैरवाचयन् ।।५८
यज्ञेतस्मिन्हविः पाकेशिवआसञ्चपावकाः ।
प्रवृत्तधर्मसद्वृत्तलोकामुदितमानसाः ।।५९

विष्णोःसत्यप्रतिज्ञस्यश्रुत्वाऽरिनिधनागिरः ।
ततोदेवाःसमायातादानवाराक्षसैस्सह ॥६०
भूतप्रेतपिशाचाश्चसर्वेतत्रागताःक्रमात् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैवनागाविद्याधरागणाः ॥६१
वानस्पत्याश्चौषधयोयच्चेहयच्चनेहति ।
ब्रह्मादेशान्मारुतेनआनीताः सर्वतोदिशः ॥६२
यज्ञपर्वतमासाद्यदक्षिणामभितोदिशम् ।
सुराउत्तरतः सर्वे मर्यादापर्वते स्थिताः ॥६३

भूमि रज से रहित हो गई थी। तीनों ह्लादी कला से युक्त हो गये थे। समस्त नदियाँ अपने सही मार्ग में बहने लगीं और सागर क्षोभ से रहित होगये थे ॥५७॥ मनुष्यों की अन्तरात्माओं की सब इन्द्रियाँ शुभ हो गई थीं। जो महर्षि लोग थे उनके सब शोक नष्ट हो गये थे और वे वेदों का उच्च स्वर से पाठन कर रहे थे ॥५८॥ उस पवित्र यज्ञ में हवि कल्याणकारी था एवं पावक भी मङ्गल करने वाले थे। जितने भी लोक थे वे सब धर्म कार्य और सद्वृत्त में प्रवृत्ति वाले होकर प्रसन्न मन वाले थे ॥५९॥ सत्य प्रतिज्ञा वाले भगवान् विष्णु की शत्रुओं के निधन कर देने वाली वाणी श्रवण कर फिर राक्षसों के सहित दानवगण और देवता वहाँ आ गये ॥६०॥ भूत-प्रेत और पिशाच सभी क्रम से वहाँ पर आ गये। गन्धर्व, अप्सराएं, नाग, विद्याधरगण, वनस्पतियाँ और औषधियाँ जो यहाँ थीं और यहाँ नहीं भी थीं उनको ब्रह्मा के आदेश से मारुत ने सब दिशाओं से वहाँ ला दिया था ॥६१।६२॥ यज्ञ होने वाले पर्वत पर दक्षिण दिशा में सब ओर से सुरगण उत्तर दिशा के सभी उस मर्यादा पर्वत पर स्थित हो गये थे ॥६३॥

गंधर्वाप्सरसश्चैवमुनयो वेदपारगाः ।
पश्चिमांदिशमास्थायस्थितास्तत्रमहाक्रतौ ॥६४
सर्वदेवनिकायाश्चदानवाश्चासुरागणाः ।
अमर्षंपृष्ठत कृत्वासुप्रीतास्तेपरस्परम् ॥६५
ऋषयोन्यपर्यचरन्सर्वेशुश्रूषन्त्याह्मणास्तथा ।
ऋषयो ब्रह्मर्षयश्चैव द्विजादेवर्षयस्तथा ॥६६

राजर्षयो मुख्यतमास्समायातास्सम तत्र ।
यतमश्च सरोऽप्यत्र क्रतौ याज्यो भविष्यति ॥६७
पशवः पक्षिणश्चैव तत्रायाता दिदृक्षवः ।
ब्राह्मणा भोक्तुकामाश्च सर्वे वर्णानुपूर्वशः ॥६८
स्वयं च वरुणो रत्नं दक्षश्चान्नं स्वयं ददौ ।
आगत्य वरुणो लोकात्पक्वं चान्नं स्वतोऽपचत् ॥६९
वायुर्भक्षविधाराश्च रसपाचो दिवाकरः ।
अन्नपाचनकृत्सोमो मतिदाता बृहस्पतिः ॥७०
धनदानं धनाध्यक्षो वस्त्राणि विविधानि च ।
सरस्वती नदाध्यक्षो गङ्गादेवी सनर्मदा ॥७१

उस महान् क्रतु में गन्धर्व—अप्सरोगण और वेद के पारगामी मुनि लोग वहाँ पर पश्चिम दिशा में आस्थित होकर ठहर गये थे ॥६४॥ समस्त देवों के सिवाय, दानव और असुरगण पीछे से अमर्ष करके वे सब आपस में सुसमग्न थे ॥६५॥ सब लोग ऋषिगण और ब्रह्मणों की शुश्रूषा करते हुए उनकी परिचर्या करते थे। वहाँ पर ऋषि—ब्रह्मर्षि—द्विज—देवर्षि और राजर्षि जो मुख्यतम थे वे सभी एक साथ आये थे यहाँ पर कौन सा सर इस क्रतु में यजन करने योग्य होगा ॥६६।६७॥ पशु और पक्षी भी देखने की इच्छा रखते हुए यहाँ पर आये थे। भोजन करने की कामना वाले ब्राह्मण और सभी वर्णों वाले लोग क्रम से वहाँ उपस्थित हुए थे ॥६८॥ वरुण देव ने स्वयं वहाँ उपस्थित होकर रत्न तथा दक्ष ने स्वयं आकर अन्न समर्पित किया था। वरुण ने वहाँ अपने लोक से आकर पक्व अन्न को स्वयं ही पकाया था ॥६९॥ वायु ने भक्ष विचारों को करने वाले का कार्य किया था और दिवाकर रसों का पाचन करने वाला हुआ था। अन्न का पाचन करने वाला सोम था और मति को प्रदान करने वाले गुरुदेव बृहस्पति थे ॥७०॥ धन का अध्यक्ष कुबेर धन का दान करता था और अनेक प्रकार के वस्त्रों को सरस्वती प्रदान कर रही थी। नर्मदा के सहित गङ्गा देवी समस्त नद नदियों की अध्यक्ष थी ॥७१॥

देवानामनिषीनत्र ऋषिभिश्च समागमे ।
ब्रह्मणो दक्षिणे पार्श्वे स्थितो विष्णुः सनातनः ॥७२

वामपार्श्वेस्थितोरुद्रःपिनाकीवरदःप्रभुः ।
ऋत्विजांचापिवरणंकृतंतत्रमहात्मना ।।७३
भृगुर्होतावृतस्तत्रपुलस्त्योऽध्वर्यु सत्तमः ।
तत्रोद्गातामरीचिस्तुब्रह्मावैनारदःकृतः ।।७४
सनत्कुमारादयो ये सदस्यास्तत्रतेऽभवन् ।
प्रजापतयो दक्षाद्या वर्णा ब्राह्मणपूर्वका. ।।७५
ब्रह्मणश्चसमीपेतु कृता ऋत्विग्विकल्पना ।
वस्त्रैराभरणैर्युक्ताः कृता वैश्रवणेन ते ।।७६
अंगुलीयैः सकटकै मुकुटैर्भू षिताद्विजाः ।
चत्वारो द्वौ दशान्येच तत्स्ते षोडशर्त्विजः ।।७७
ब्रह्मणा पूजिताःसर्वे प्रणिपातपुरःसरम् ।
अनुग्राह्यो भवद्भिस्तु सर्वैरस्मिन्क्रताविह ।।७८

वहाँ उस महामख में देवगण की संनिधि मे और ऋषिगण के साथ समागम मे ब्रह्माजी के दक्षिण पार्श्व मे सनातन विष्णु स्थित हुए थे ।।७२।। ब्रह्मा के बाँये पार्श्व मे पिनाक को धारण करने वाले वरदाता प्रभु रुद्र संस्थित हुए थे । वहाँ पर महान् आत्मा वाले ने ऋत्विजों का वरण किया था ।।७३।। होता के पद पर वहाँ यज्ञ में भृगु ऋषि का वरण किया गया था और पुलस्त्य का वरण उत्तम अध्वर्यु के पद पर किया गया था । मरीचि ऋषि उस यज्ञ में उद्गाता थे तथा देवर्षि नारद ब्रह्मा बनाये गये थे । ७४।। सनत्कुमार आदि जो अन्य थे वे सब उस यज्ञ में सदस्य हुए थे । प्रजापति दक्ष आदि जो थे ब्राह्मण पूर्वक वर्ण थे ।।७५ । ब्रह्मा के समीप में ऋत्विजों की विशेष कल्पना की गई थी । वैश्रवण (कुबेर) ने उन सबको वस्त्र और आभूषणों से समन्वित किया था ।।७६।। अंगूठी—कड़े और मुकुट आदि आभरणों से द्विजों को विभूषित किया गया था । इस तरह से चार–दो और दस कुल सोलह ऋत्विज उस यज्ञ में वरण किये गये थे ।।७७।। इन सबका पूजन प्रणिपात के सहित ब्रह्माजी के द्वारा किया गया था । ब्रह्मा ने प्रार्थना की थी कि आप सबको इस यज्ञ में मुझे पूर्ण रूप से अनुग्रहीत करना चाहिए ।।७८।।

सुसत्कृताचपत्नी सा सावित्री च वरांगना ।
अध्वर्युणासमाहूता एहि देवि त्वरान्विता ॥७९
उत्थिताश्चाग्नयः सर्वे दीक्षाकालउपागतः ।
व्यग्रासाकार्यकरणेस्त्रीस्वभावेन नागता ॥८०
सावित्रीव्याकुलादेवप्रसक्तागृहकर्मणि ।
सख्योनाभ्यागतायावत्तावन्नागमनं मम ॥८१
एवमुक्तोऽस्मि वै देव कालश्चाप्यतिवर्त्तते ।
यत्तेऽद्यरुचितं तावत्तत्कुरुष्व पितामह ॥८२
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा किंचित्कोपसमन्वितः ।
पत्नी चान्यां मदर्थे वै शीघ्रं शक्र इहानय ॥८३
यथा प्रवर्त्तते यज्ञःकालहीनो नजायते ।
तथाशीघ्रं विधत्स्वत्वं नारीकांचिदुपानय ॥८४
यावद्यज्ञसमाप्तिर्मेवर्णत्वमाक्रुयामनः ।
भूयोऽपितां प्रमोक्ष्यामि समाप्तौतुक्रतोरिह ॥८५

यह वर अङ्गो वाली सावित्री पत्नी उस यज्ञ में भली-भाँति सत्कार वाली की गई थी। अध्वर्यु ने उसे बुलाया था कि हे देवि ! आप शीघ्रता से यहाँ आइये। ये सम्पूर्ण अग्नि समुत्थित हो गई है और अब दीक्षा का समय उपस्थित हो गया है। वह कार्यों के करने में बहुत व्यग्र हो रही थी और स्त्री-जन स्वभाववश वहाँ नहीं आई थी ॥७९।८०॥ हे देव ! सावित्री देवी इस समय में व्याकुल हैं और गृह के कार्यों में संलग्न है। उनने कहा है कि जब तक मेरी सखियाँ नहीं आती हैं तब तक मेरा आगमन नहीं हो सकता है ॥८१॥ हे देव ! मुझसे इस प्रकार से कहा गया है और अब समय का अति-वर्त्तन हो रहा है। हे पितामह ! आज अब जो भी कुछ आपको रुचे वही इस समय कीजिए ॥८२॥ इस तरह से जब ब्रह्माजी से कहा गया तो उनको कुछ क्रोध उत्पन्न हो गया था। ब्रह्माजी ने कोप से युक्त होकर इन्द्रदेव से कहा—हे इन्द्रदेव ! मेरे लिये इस समय में यज्ञ कार्य सम्पन्न करने के लिये दूसरी कोई पत्नी को शीघ्र ही व्यवस्था करो। उसे अभी यहाँ से लाओ ॥ ८३ ॥

जिस तरह भी यज्ञ का कार्य प्रवृत्त हो जावे और समय की हानि होने से उसमें कोई हीनता उत्पन्न न हो। तुम उसी प्रकार से अत्यन्त शीघ्रता करो और किसी नारी को यहाँ ले आओ ॥८४॥ जब तक मेरे इस यज्ञ की समाप्ति हो मैं तेरा वरण करता हूँ—इसका कोई भी विचार मन मे मत करना। फिर इस यज्ञ की समाप्ति हो जाने पर उसका मोक्ष कर दूँगा ॥८५॥

एवमुक्तस्तदाशक्रोगत्वासर्वंधरातलम् ।
स्त्रियोदृष्टास्तुयास्तेनसर्वास्तास्सपरिग्रहाः ॥८६
आभीरकन्या रूपाढ्या सुनासा चारुलोचना ।
नदेवीनचगन्धर्वीनासुरीनचपन्नगी ॥८७
नचास्ति तादृशी कन्या यादृशीसा वरांगना ।
ददर्शतामुचार्वंगीश्रियदेवीमिवापराम् ॥८८
संक्षिपन्तींमनोवृत्तिविभव रूपसंपदा ।
यद्यत्तुवस्तुसौंदर्याद्विशिष्टं लभ्यते क्वचित् ॥८९
तत्तच्छरीरसंलग्नतन्वंग्या ददृशे वरम् ।
तां दृष्ट्वा चिंतयामास यद्येषा कन्यका भवेत् ॥९०
तन्मत्त.कृतपुण्योऽन्योवदेवोभुविविद्यते ।
योऽपिद्रत्नमिदसेयंसद्भाग्याया पितामहः ॥९१

इस तरह से जब इन्द्र से कहा गया था तो देवराज उस समय में सम्पूर्ण धरातल में घूमा था। उसने जो भी स्त्रियाँ देखीं थी वे सभी परिग्रह से युक्त ही मिली थी ॥८६॥ एक आभीर (अहीर) की कन्या मिली थी जो रूप-लावण्य से सम्पन्न थी। उसकी नासिका बहुत सुन्दर थी और नेत्र भी उसके बहुत सुन्दर एवम् मनोरम थे। उस तरह की कोई भी देवी—गन्धर्वी—आसुरी और पन्नगी नहीं थी ॥८७॥ जैसी परम सुन्दरी वह आभीर कन्या थी वैसी अन्य कोई भी सुन्दरी नहीं थी। इन्द्रदेव ने मनोहर अङ्गों वाली उस कन्या को दूसरी लक्ष्मी देवी के सदृश ही देखा था ॥८८॥ रूप—सौन्दर्य की सम्पत्ति से मनोवृत्ति के वैभव को संक्षिप्त करती हुई वह कन्या थी। जो भी वस्तु सौन्दर्य विशेषता वाली हो वह कहीं प्राप्त की जाया करती है ॥८९॥ उसके शरीर

मे मलग्न वही-वही सन्वङ्गी का परम श्रेष्ठ देखा था। उस कन्या को देखकर इन्द्र ने सोचा था कि यह कन्या ब्रह्मा की पत्नी हो सकती है ॥६०॥ इस भूमि मे मुझसे अधिक अन्य कोई भी पुण्य वाला नहीं है। यह स्त्रियों म रत्न के समान है। पितामह ब्रह्माजी के साथ सौभाग्य प्राप्त करने क योग्य यही एक नारी है ॥६१॥

कासि कस्य कुतश्चत्वमागतासुभ्रु कथ्यताम्।
एकाकिनी किमर्थचवीथीमध्येतुतिष्ठसि ॥६२
गोपकन्यास्वह वीर विक्रीणामीह गोरसम्।
नवनीतमिद शुद्ध दधि चेद विमण्डकम् ॥६३
दध्ना चवात्र तक्रेण रसेनापि परतप।
अर्थी येनासि तद्ब्रूहि प्रगृह्णीष्व यथेप्सितम् ॥६४
एवमुक्तस्तदा शक्रो गृहीत्वा ता करे दृढम्।
अनयत्ता विशालाक्षी यत्र ब्रह्माव्यवस्थित: ॥६५
नीयमाना तु सा तेन क्रोशन्ती पितृमातरौ।
हातातमातर्हाभ्रातनयत्येप नरो बलात् ॥६६
इत्यमाभाष्यमाणस्तु तया शक्रोऽनयच्च ताम्।
ब्रह्मण पुरतस्थाप्यप्राहास्यार्थममाऽऽनले ॥
आनीतासि विशालाक्षि माशुचोवरवर्णिनि।
गोपकन्याचतद्दृष्ट्वागौरवर्णमहाद्युतिम् ॥६७
कमलाक्षसुवाह्न स पुण्डरीकनिभेक्षणम्।
तप्तकाचनसङ्क्लिसिसदृशापीनवक्षसम् ॥६८
मत्तेभहस्तवृत्तोरुरक्तोत्तुंगनखच्छविम्।
प्राप्तसाऽमन्यतात्मानमन्मथस्येषुगोचरे ॥६९
तत्प्राप्तिहेतुकधिया गतचित्तेवलक्ष्यते।
प्रभुत्वमात्मनोदानेगोपकन्याऽप्यमन्यत ॥१००

देवराज इन्द्र ने उस बालाङ्गना से पूछा—हे सुभ्रु! आप कौन है, किस की आत्मजा है और कहाँ से आई है—यह बतलाइये। आप यहाँ वीथी के

थे ॥१०६॥ उदुम्बर (गूलर) के दण्ड से युक्त तथा मृगचर्म से आवृत ब्रह्माजी उस समय में उस महान् अध्वर में अपने ही अद्भुत तेज की महिमा से परम शोभित हो रहे थे ॥१०७। तब तो वेदों के पूर्ण वेत्ता ब्राह्मणों के द्वारा उस यज्ञ-भूमि में होम का कार्य आरम्भ कर दिया गया था। भृगु महर्षि के सहित सब ऋत्विजों ने उसी समय वेद में जो भी कर्म बताया गया है वह आरम्भ कर दिया था। उस समय में जो यह महान् यज्ञ प्रारम्भ हुआ था वह दो सहस्र युग पर्यन्त पुष्कर क्षेत्र में हुआ था ॥१०८॥

॥ नन्दा धेनु—व्याघ्र उपाख्यान ॥

अथ देवव्रतःप्राह किमन्यासां सरिद्वरा ।
एतन्मे कौतुकं ब्रह्मन्नदादघ्ना सरस्वती ॥१
यथाभूता येन कृता कारणेन सरिद्वरा ।
एवमुक्तं पुलस्त्य स भीष्मायैतत्पुरातनम् ॥२
आख्यातुमुपचक्राम नन्दा नाम यतस्स्मृता ।
क्षत्रव्रतधरो नित्यमासीद्राजा प्रभञ्जनः ॥३
प्रवृत्तोऽसौ मृगान्हन्तुं वने तस्मिन्महाबलः ।
॥ ददर्श ततस्तस्मिन्मृगीगुल्मान्तरेस्थिताम् ॥४
मार्गणेन सुतीक्ष्णेन तां विव्याध पुरोगताम् ।
सा विलोक्य दिशः सर्वास्तु दृष्ट्वा शरपाणिनम् ॥५
प्राह किं ते कृतं मूढ त्वयैतत्कर्म दुष्करम् ।
स्तनं तावत्प्रयच्छामि सुतस्याधोमुखी स्थिता ॥६
मांसलोभेन विद्धाहं त्वरसा ह्यकुतोभया ।
पिबतः पुत्रवत्सा च गूढमैथुनमागतम् ॥७
एवंविध मृग राजन्ब्रह्मह्त्यास्त्राऽऽमया श्रुतम् ।
स्तनं तु तनयस्यास्य प्रयच्छन्ती त्वयाहृता ॥८

श्रीसूतजी ने कहा—इसके अनन्तर देव व्रत ने कहा—वह अन्य सरिताओं में परम श्रेष्ठ क्या है ? हे ब्रह्मन् ! मेरे हृदय में यह बड़ा कौतुक है।

नन्दा शब्द वाली सरस्वती जिस प्रकार से और जिस कारण से श्रेष्ठ सरिता की गई थी—यह सब कृपाकर मुझे बतलाइये। इस तरह से पूछे जाने पर पुलस्त्य मुनि ने भीष्म के लिये यह पुराना इतिहास बताने का आरम्भ किया था कि जिस कारण से नन्दा यह नाम पड़ा था। पहिले एक क्षत्रियों के व्रत को धारण करने वाला प्रभञ्जन नामधारी राजा हुआ था ॥१।२।३॥ महान् बलशाली यह राजा उस वन में मृगों का हनन करने के लिये प्रवृत्त हुआ था। उसने वहाँ उस वन में झाड़ियों के बीच में बैठी हुई हिरनी को देखा था ॥४॥ सामने आई हुई उस हिरनी को देखकर उस राजा प्रभञ्जन ने अपने एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाण से उसे विद्ध कर दिया था। उस हिरनी ने समस्त दिशाओं को देखते हुए हाथ में शरों को धारण करने वाले उस राजा को देखा था ॥५॥ वह हिरनी उससे बोली—अरे मूढ़! तूने यह क्या दुष्कर कर्म कर डाला है। मैं नीचे की ओर मुख करके इस समय में अपने पुत्र को स्तन पिला रही थी ॥६॥ तूने मुझे माँस के लोभ से विद्ध कर दिया है। मैं तो इस समय में निर्भय होकर स्तन का पान करा रही थी। छिपकर मेरे समीप में स्थित स्तन का पान करने वाले गुप्त वत्स का मैं पोषण कर रही थी ॥ ७ ॥ इस प्रकार की स्थिति में रहने वाले मृग को नहीं मारना चाहिए। हे राजन्! मैंने ऐसा पहिले सुना था। मैं जिस समय में अपने पुत्र को स्तन का पान करा रही थी उसी दशा में तूने मुझे मार डाला है ॥८॥

बाणेनाशनिकल्पेन निर्दोषा वनमागता।
तस्मात्त्वमपि दुर्बुद्धे क्रव्यादत्वमवाप्स्यसि ॥९
वनेऽस्मिन्कटकाकीर्णे व्याघ्ररूपं त्वमाप्नुहि।
शापप्रदानं श्रुत्वैव स राजा पुरतःस्थितः ॥१०
प्रोवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा ता मृगी व्यथितेन्द्रियः।
स्तनं तु तनयस्येह प्रयच्छन्ती न मे मता ॥११
अज्ञानेन हता भद्रे प्रसीद सुसमाधिना।
व्याघ्ररूपमहं त्यक्त्वाप्राप्स्यामि मानुषं कदा ॥१२
एवंविधस्य शापस्य विमोक्षं शंस मे मृगि।
एवमुक्ते मृगी तस्य प्रोवाच वचनं शुभम् ॥१३

थी ॥१०६॥ उदुम्बर (गूलर) के दण्ड से युक्त तथा मृगचर्म से आवृत ब्रह्माजी उस समय में उस महान् अध्वर में अपने ही अद्भुत तेज की महिमा से परम शोभित हो रहे थे ॥१०७॥ तब तो वेदों के पूर्ण वेत्ता ब्राह्मणों के द्वारा उस यज्ञ-भूमि में होत्र का कार्य आरंभ कर दिया गया था। भृगु महर्षि के सहित सब ऋत्विजों ने उसी समय वेद में जो भी कर्म बताया गया है वह प्रारम्भ कर दिया था। उस समय में जो वह महान् यज्ञ प्रारम्भ हुआ था वह दो सहस्र युग पर्यन्त पुष्कर क्षेत्र में हुआ था ॥१०८॥

॥ नन्दा धेनु—व्याघ्र उपाख्यान ॥

अथ देवव्रतःप्राह किमन्यासा सरिद्वरा।
एतन्मे कौतुकं ब्रह्मन्नदाख्या सरस्वती ॥१
यथाभूता येन कृता कारणेन सरिद्वरा।
एवमुक्तः पुलस्त्य स भीष्मायैतत्पुरातनम् ॥२
आख्यातुमुपचक्राम नन्दा नाम यतस्स्मृता।
क्षत्रव्रतधरो नित्यमासीद्राजा प्रभञ्जनः ॥३
प्रवृत्तोऽसौ मृगान्हन्तुं वने तस्मिन्महाबलः।
स ददर्श ततस्तस्मिन्मृगीगुल्मान्तरेस्थिताम् ॥४
मार्गणेन सुतीक्ष्णेन तां विव्याध पुरोगताम्।
सा विलोक्य दिशः सर्वास्तं दृष्ट्वा शरपाणिनम् ॥५
आह किं ते कृतं मूढ त्वयैतत्कर्म दुष्करम्।
स्तनं तावत्प्रयच्छामि सुतस्याधोमुखी स्थिता ॥६
मांसलोभेन विद्धाहं तरसा ह्यकुतोभया।
पिबतं गुणवत्सं च मूढमैथुनमागतम् ॥७
एवंविधं मृगं राजन्सहन्यात्प्राज्ञमथाश्रुतम्।
स्तनं तु तनयस्यास्य प्रयच्छन्ती त्वयाहता ॥८

श्रीसूतजी ने कहा—इसके अनन्तर देव व्रत ने कहा—वह अन्य सरिताओं में परम श्रेष्ठ क्या है? हे ब्रह्मन्! मेरे हृदय में यह बड़ा कौतुक है।

नन्दा शब्द वाली सरस्वती जिस प्रकार से और जिस कारण से श्रेष्ठ सरिता की गई थी—यह सब कृपाकर मुझे बतलाइये। इस तरह से पूछे जाने पर पुलस्त्य मुनि ने भीष्म के लिये यह पुराना इतिहास बताने का प्रारम्भ किया था कि जिस कारण से नन्दा यह नाम पड़ा था। पहिले एक क्षत्रियों के व्रत को धारण करने वाला प्रभञ्जन नामधारी राजा हुआ था ॥१।२।३॥ महान् बलशाली यह राजा उस वन में मृगों का हनन करने के लिये प्रवृत्त हुआ था। उसने वहाँ उस वन में झाड़ियों के बीच में बैठी हुई हिरनी को देखा था ॥४॥ सामने आई हुई उस हिरनी को देखकर उस राजा प्रभञ्जन ने अधम एक अत्यंत तीक्ष्ण बाण से उसे बिद्ध कर दिया था। उस हिरनी ने समस्त दिशाओं को देखते हुए हाथ में बाणों को धारण करने वाले उस राजा को देखा था ॥५॥ वह हिरनी उससे बोली—अरे मूढ ! तूने यह क्या दुष्कर कर्म कर डाला है ! मैं नीचे की ओर मुख करके इस समय में अपने पुत्र को स्तन पिला रही थी ॥६॥ तूने मुझे माँस के लोभ से बिद्ध कर दिया है। मैं तो इस समय में निर्भय होकर स्तन का पान करा रही थी। छिपकर मेरे समीप में स्थित स्तन का पान करने वाले सुत वत्स का मैं पोषण कर रही थी ॥ ७ ॥ इस प्रकार की स्थिति में रहने वाले मृग को नहीं मारना चाहिए। हे राजन् ! मैंने ऐसा पहिले सुना था। मैं जिस समय में अपने पुत्र को स्तन का पान करा रही थी उसी दशा में तूने मुझे मार डाला है ॥८॥

बाणेनाशनिकल्पेन निर्दोषा वनमागता।
तस्मात्त्वमपि दुर्बुद्धे क्रव्यादत्वमवाप्स्यसि ॥९
वनेऽस्मिन्कटकाकीर्णे व्याघ्ररूप त्वमाप्नुहि।
शापप्रदानं श्रुत्वैव स राजा पुरतःस्थित. ॥१०
प्रोवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा तां मृगीं व्यथितेन्द्रियः।
स्तनं तु तनयस्येह प्रयच्छन्तीं न मे मता ॥११
अज्ञानेन हता भद्रे प्रसीद सुसमाधिना।
व्याघ्ररूपमहं त्यक्त्वाप्राप्स्यामि मानुषं कदा ॥१२
एवंविधस्य शापस्य विमोक्षं शंस मे मृगि।
एवमुक्ते मृगी तस्य प्रोवाच वचनं शुभम् ॥१३

राजन्नब्दशतान्ते तु शापस्यागतया गवा ।
नदया सह संवादमासाद्यान्तो भविष्यति ॥१४

दोष रहित मुझको जबकि मैं इस वन में यहाँ आ गई थी तूने वज्र के तुल्य तीक्ष्ण बाण से मेरा वध कर दिया है। इसलिए हे दुष्ट बुद्धि वाले ! मैं यह शाप देती हूँ कि तू राक्षसत्व को प्राप्त हो जायगा ॥९॥ इसी वन में जो कि चारों ओर से काँटों से घिरा हुआ है तू व्याघ्र का रूप प्राप्त करेगा। इस तरह से सामने स्थित उस राजा ने हिरनी के द्वारा दिये हुए शाप का श्रवण किया था ॥१०॥ राजा व्यथित इन्द्रियों वाला होकर अपने दोनों हाथों को जोड़ते हुए उस मृगी से बोला—मुझे यह ज्ञान नहीं था कि तू अपने पुत्र को स्तन पिला रही थी ॥ ११ ॥ हे भद्रे ! मैंने तुम्हारा हनन अज्ञान से ही किया है। अब तुम मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे यह बतला दो कि व्याघ्र के रूप को त्याग कर फिर मैं मनुष्य का शरीर कब प्राप्त करूँगा ॥१२॥ हे मृग ! तुमने जो मुझे यह शाप दिया है उससे मेरा छुटकारा कब हो जायगा—यह मुझे बतलादो। राजा के इस प्रकार से कहने पर उस हिरनी ने शुभ वचन बोले ॥१३॥ हे राजन् ! एक सौ वर्ष के पश्चात् आई हुई गौ नन्दा के साथ सम्वाद प्राप्त करके फिर इस शाप का अन्त हो जायगा ॥१४॥

मृग्योक्ते वचने राजा व्याघ्र एवाभवत्तदा ।
नखदंष्ट्रायुधोपेतो व्याघ्ररूपोऽतिभीषणः ॥१५
तत्रासौ भक्षयन्नास्तेमृगान्हत्वा चतुष्पद ।
द्विपदानपि तत्रस्थान्कालेन क्रमयोजितान् ॥१६
एवं तत्र वने तस्य संवत्सरशतं गतम् ।
आत्मानं निंदमानस्य मृगमांसानि खादत ॥१७
कदाहं मानुषं भावं गमिष्यामीदृशं पुनः ।
कुत्सितं न करिष्यामि वियोनिकरणं महत् ॥१८
कुर्वता मांसलोभेन मृगया परिधावता ।
आपदासहितं प्राप्तं मानुषाणां मयाधमम् ॥१९
दर्शनं दुःखदं मह्यं मृगाणां मानुषैः सह ।
पापेन पापतां नीतो ह्यापेऽपि सताकुले ॥२०

उत्पन्नो विकृति नीतः पश्य कालस्य पर्ययम् ।
तस्मान्मे सुकृतं नास्ति हिंसाप्येकं विगर्हिता ॥२१
तया तु प्राप्यते दुःखं न च मोक्षो भविष्यति ।
कथं मे भविता मोक्षः कथं सत्या मृगी भवेत् ॥२२

मृगी के द्वारा यह वचन कहे जाने पर उसी समय राजा प्रभञ्जन व्याघ्र हो गया था जिसके बड़े तीक्ष्ण नख और दाढ़ों के आयुध थे। वह महान् भीषण व्याघ्र के स्वरूप वाला हो गया था ॥१५॥ यह व्याघ्र वहाँ उस वन में चौपायों और हिरनों को मारकर भक्षण करता हुआ रहता था। वहाँ पर स्थित और क्रम से योजित द्विपदों को भी समय पर भक्षण कर लेता था ॥१६॥ इस प्रकार से उस वन में रहते हुए उसके एक सौ वर्ष व्यतीत होगये थे। मृगों के माँस खाते हुए वह अपने आपको बहुत ही बुरा समझता था ॥१७॥ वह मन में सोचता था कि मैं फिर किस समय मनुष्यता को प्राप्त करूँगा? अब भविष्य में फिर ऐसा बुरा कोई भी काम नहीं करूँगा जो कि दूसरी कुत्सित योनि प्रदान करने वाला होवे ॥१८॥ माँस के लोभ से परिधावन करते हुए शिकार करने वाले मैंने मनुष्यों को भय देने वाला आपत्ति से परिपूर्ण यह जन्म प्राप्त किया है ॥१९॥ अब तो मनुष्यों के साथ मृगों का दर्शन भी मुझे दुःखद होगया है। पाप रहित सत्पुरुषों के कुल में भी रहते हुए मैंने अपने ही किये हुए पाप कर्म से इस पाप योनि को प्राप्त किया है ॥२०॥ सत्कुल में समुत्पन्न होकर भी मैं इस तरह की विकृति को प्राप्त हो गया हूँ यह कैसा काल का विपर्यय है। इससे यह ज्ञात होता है कि मेरा एक भी सुकृत नहीं है और यह विशेष निन्दित हिंसा है ॥२१॥ उसी हिंसा से मुझे यह दुःख प्राप्त होता है और मेरा मोक्ष नहीं होगा। मेरा मोक्ष किस प्रकार से होगा और यह हिरनी की बात कब किस प्रकार से सत्य होगी ॥२२॥

गते वर्षशते तस्य वसतस्तद्वने तदा ।
आयातं गोकुलं काले यत्रसोदककारणात् ॥२३
गोवाटवाटीसंस्थानं तत्तत्र समवस्थितम् ।
वनोपकण्ठे मंथानरवेणापूरितं च यत् ॥२४

क्षीवैर्गोपैःसमाकीर्णं पादपैरपि तद्वनम् ।
निशि वंशरवोपेतं गोपीनां च शुभप्रदम् ॥२५
एवं तु वसतस्तस्य सर्जूरवनसंसदि ।
हृष्टा तुष्टा च पुष्टा च नदा वै नाम नामतः ॥२६
गोमण्डलस्य सा मुख्या हंसवर्णा घटस्रवा ।
दीर्घघोणा विभक्ताङ्गी वधुराङ्गी तनुत्वचा ॥२७
नीलकण्ठा शुभग्रीवा घण्टाली मधुरस्वना ।
सा च यूथस्य सर्वस्य पुरश्चरति निर्भया ॥२८
घासस्थानं चरेच्छन्नं गत्वैका च यथासुखम् ।
यथेष्टकामा सुरभिश्छन्नं चरति वै तृणम् ॥२९

उस समय में उस वन मे निवास करते हुए उसको एक सौ वर्ष व्यतीत होगये थे। समय पर यवस और उदक के कारण से वहाँ गोकुल आया था ॥२३॥ वहाँ पर गो वाट और वाटी का सस्थान समवस्थित हो गया था जो कि वन के समीप में मन्थर की ध्वनि से परिपूर्ण हो गया था ॥२४॥ वह वन मत्तवाले गोपों और पादपो से समाकीर्ण हो रहा था। रात्रि के समय मे गोपियों की वंशी की ध्वनि से वह वन बहुत ही शुभ प्रद होगया था ॥२५॥ उस सर्जूरो के वन रूपी संसद मे इस प्रकार से उसका निवास करते हुए परम प्रसन्न, सतुष्ट और परिपुष्ट नाम से नन्दा नाम वाली धेनु वहाँ पर रहती थी ॥२६॥ वह नन्दा धेनु उस सम्पूर्ण गो-मण्डल मे प्रधान थी। उसका वर्ण हंसके समान था तथा वह घटस्रवा थी अर्थात् उसके ऐन घट की भाँति स्रवण करने वाले थे। उसकी नासिका लम्बी थी। उस समस्त अङ्गावयव ठीक तरह से विभक्त थे तथा उसके सभी अङ्ग उतार-चढाव के अनुसार सुडौल थे। उसकी त्वचा पतली थी ॥२७॥ वह नन्दा नीले कण्ठ वाली थी। उसकी गरदन बहुत शुभ थी, वह घण्टाली और मधुर ध्वनि वाली थी। वह सर्वदा गायो के यूथ के आगे निडर होकर चला करती थी ॥२८॥ जहाँ पर घास होती थी वहाँ चुपचाप अकेली जाकर सुखपूर्वक घास को चरा करती थी। यथेष्ट कामना वाली वह सुरभि गुप्त रूप से तृण को खाया करती थी ॥२९॥

रोहितो नाम तत्रान्यः पर्वतः सरितस्तटे ।
अनेककन्दरदरीगुहासत्त्वनिषेवित ॥३०
तस्य पूर्वोत्तरे भागे घोरे तृणसमाकुले ।
सङ्कटे विषमे दुर्गे भैरवे लोमहर्षणे ॥३१
मृगसिंहसमाकीर्णे बहुश्वापदसेविते ।
वल्लीवृक्षादिगहने शिवाशतनिनादिते ॥३२
दुर्गेऽस्मिन्वसते रौद्रः कामरूपी भयंकरः ।
द्वीपी शोणितदिग्धांसो घोरदंष्ट्रो नखायुधः ॥३३
नंदो नाम स धर्मात्मा स च गोपीहिते रतः ।
अच्छिन्नाग्रैस्तृणैर्दीर्घैर्गोधन परिरक्षति ॥३४
तस्य यूथपरिभ्रष्टा सा नंदा तृणलिप्सया ।
चरती व्याघ्रपुरतः सा धेनुः प्रत्युपस्थिता ॥३५

वहाँ पर रोहित नाम वाला सरिता के तट पर एक अन्य पर्वत था जिसमे बहुत-सी गुफा और कन्दराएँ थीं जिनमे अनेक प्रकार के जीव-जन्तु रहा करते थे ।।३०।। उस पर्वत के पूर्वोत्तर भाग मे एक दुर्ग था जो बड़ा ही सङ्कट पूर्ण—घोर—विषम—भैरव और लोमहर्षण अर्थात् रोमाञ्च खड़े कर देने वाला था ।।३१।। वह दुर्ग मृग और सिंहों से घिरा हुआ था तथा उसमे अन्य बहुत-से श्वापद पशु रहा करते थे । उसमें वल्लियाँ और वृक्ष इतने घने थे कि वह बड़ा ही गहन हो रहा था । वहाँ पर सैंकड़ो गीदड़ो की ध्वनियो से सदा शब्दायमान वह रहा करता था ।।३२।। इस दुर्ग मे महान् रौद्र रूप भयङ्कर—शोणित (रुधिर) से दिग्ध अंस वाला—घोर दाढ़ों से युक्त नखों के आयुधों वाला—अपनी इच्छा से रूप धारण करने वाला द्वीपी रहा करता था ।।३३।। नन्द नामधारी धर्मात्मा था जो सर्वदा गोपियो के हित में अनुराग रखने वाला था । वह बिना टूटे हुए अग्रभाग वाले तृणों से गोधन की परिरक्षा किया करता था ।।३४।। उसकी नन्दा नामवाली धेनु यूथ से परिभ्रष्ट हो गई थी और तृणों के चरने की लिप्सा से चरती हुई वह धेनु व्याघ्र के सामने उपस्थित हो गई थी ।।३५।।

अभ्यद्रवच्च ता द्वीपी तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।
त्वमद्य विहितो भक्ष स्वय प्राप्तासि धेनुके ॥३६
द्वीपिनश्च वच श्रुत्वा निष्ठुर रोमहर्षणम् ।
शुक्लरूपान्वितं बाल भद्रमिदुसमप्रभम् ॥३७
वत्स स्मरति सा धेनु स्नेहाक्ता गद्गदाक्षरम् ।
दह्य ती पुत्रशोकेन तदा सा पुत्रवत्सला ॥३८
रुदती करुण चैव निराशा पुत्रदर्शने ।
द्वीपी दृष्ट्वा तु ता धेनु क्रदमाना सुदु खिताम् ॥३९
उवाच वचन घोर धेनुके कि प्ररुद्यते ।
दैवात्सुखोपपन्नासि भक्षस्त्व मे यदृच्छया ॥४०
रुदत्या वा हसत्या वा तवात्त जीवित भवेत् ।
विहित भुज्यते लोके स्वय प्राप्तासि धेनुके ॥४१
मृत्युस्ते विहितोऽद्य व वृथा किमनुशोचसि ।
पप्रच्छ ता पुनर्द्वीपी किमर्थं रुदित त्वया ॥४२

वह द्वीपी उसे देखकर उसने धेनु पर आक्रमण कर दिया था और "खड़ी रह—खड़ी रह" ऐसा उसने धेनु से कहा था। हे धेनुके ! आज तू ही मेरा भक्ष हुआ है जो कि स्वय तू यहाँ प्राप्त हो गई है ॥३६॥ उस द्वीपी के प्रतिशय निर्दयतापूर्ण और रोमहर्षण इस वचन का श्रवण कर वह धेनु अपने शुक्ल रूप से समन्वित, परम भद्र और चन्द्रमा के समान प्रभा वाले वत्स का स्मरण करती हुई स्नेह से द्रवित होकर गद्गद अक्षरों वाली उनस पुत्र पर वात्सल्य रखने वाली वह उस समय पुत्र के शोक से अत्य त खिन्न हो गई थी ॥३७॥ ॥३८॥ वह करुणा के साथ रुदन करती हुई अब अपने पुत्र के दर्शन करने में बिल्कुल ही निराश हो गई थी। उस द्वीपी ने उस धेनु को क्रन्दन करती हुई और अत्यन्त ही दु खित देखा था ॥ ३९ ॥ वह द्वीपी उस धेनु से बोला और परम घोर वचन कहकर पूछा—हे धेनुके ! तू रुदन क्यों कर रही है ? दैववश सुख से ही तू यहाँ उपपन्न हो गई है और तू यदृच्छया प्राप्त होने वाला मेरा भक्ष है ॥४०॥ रुदन करने वाली हो या हँसती हुई हो तेरा जीवन तो अब

समाप्त ही होगा क्योंकि लोक में विहित का भोग किया जाता है। हे धेनुके! तू तो यहाँ स्वयं ही प्राप्त हो गई है ॥४१॥ आज ही तेरी मौत निश्चित है। अब तू व्यर्थ ही क्यों सोच कर रही है। इसके पश्चात् द्वीपी ने उस धेनु से फिर पूछा था कि तू किसलिए रुदन करती है ॥४२॥

कौतुकं चात्र मे जातं महन्मे कथयस्व वै ।
व्याघ्रस्य वचनं श्रुत्वा नंदावाक्यमथाब्रवीत् ॥४३
क्षन्तुमर्हसि मे नाथ कामरूपिन्नमोऽस्तु ते ।
त्वां समासाद्य लोकस्य परित्राणं न विद्यते ॥४४
जीवितार्थं न शोचामि प्राप्तव्यं मरणं मया ।
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्यच ॥४५
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न शोचामि मृगाधिप ।
देवैरपि यथा सर्वैर्मर्तव्यमवशैर्ध्रुवम् ॥४६
तस्मात्तु नाहमेवैका व्याघ्र शोचामि जीवितम् ।
किंतु स्नेहेन यै साधो दुःखेन रुदितं मया ॥४७
अस्ति मे हृदि संतापस्तं च त्वं श्रोतुमर्हसि ।
प्रथमे वयसि प्राप्ते प्रसूताऽहं मृगाधिप ॥४८
दृष्ट प्रथमजातश्च सुतस्तु मम बालकः ।
क्षीरपायी च मे वत्सस्तृणं नाद्यापि जिघ्रति ॥४९
न च गोपकुले गच्छ क्षुधार्तो मामवेक्षते ।
तमहं चानुशोचामि कथं जीविष्यते सुतः ॥५०

द्वीपी ने कहा कि इस प्रकार तेरे क्रन्दन को देखकर मेरे हृदय में बड़ा भारी कौतुक उत्पन्न हो रहा है। इसलिए तू मुझे इसका कारण बतला। व्याघ्र के इस वचन का श्रवण कर नन्दा यह वाक्य बोली—॥४३॥ हे काम के रूप धारण करने वाले! हे नाथ! आप मुझे क्षमा कर देने के योग्य हैं। मेरा आपको प्रणाम है। आपको प्राप्त करके प्राण का परित्राण नहीं होता है ॥४४॥ मैं इस समय में अपने जीवन के लिए शोक नहीं कर रही हूँ क्योंकि मृत्यु तो मुझे प्राप्त करनी ही है। जो भी कोई जन्म लेकर यहाँ संसार में

समुत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु का होना निश्चित ही है और जो मृत्यु को कभी भी प्राप्त होता है उसको जन्म ग्रहण करना भी परम निश्चित है ।।४५।। हे मृगों के स्वामिन् ! यह जन्म लेना और मृत्यु को प्राप्त होना तो सभी के लिये अपरिहार्य है अर्थात् टलने के योग्य नहीं है । ऐसे विषय में मैं चिन्ता नहीं करती हूँ । क्योंकि देवगण के द्वारा भी सबको अवश्य होकर निश्चय ही मरना ही होता है ।। ४६ ।। इसलिये हे व्याघ्र ! मैं शोच नहीं कर रही हूँ किन्तु मैं एक ही अकेली नहीं हूँ । हे साधो ! स्नेह के कारण से मुझे दुःख है और उसीसे मैंने रुदन किया है ।।४७।। मेरे हृदय में जो एक सन्ताप है उसे आप सुनने के योग्य होते हैं । हे मृगाधिप ! प्रथम वय में जब मैं प्राप्त हुई तो मैंने प्रसव किया था ।।४८।। प्रथम ही समुत्पन्न मेरा बालक सुत मुझे बहुत ही प्यारा है । वह मेरा नन्हा-सा बच्चा अभी दूध पीता है और अभी वह इतना छोटा है कि तृण नहीं चरता है ।। ४९ ।। वह बिचारा गौओं के समूह में बँधा हुआ है और भूख से पीड़ित होकर मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा । मैं इस समय में उसी अपने पुत्र के लिये सोच कर रही हूँ कि मेरे मर जाने के पश्चात् वह कैसे जीवित रहेगा ? ।५०।।

तस्येच्छामि स्तनं दातुं पुत्रस्नेहवशं गता ।
पाययित्वा स्तनं वत्समवलिह्य च मूर्द्धनि ।।५१
सखीनामर्पयित्वा तु सदिश्य च हिताहितम् ।
पुनः प्रत्यागमिष्यामि यथेष्टं भक्षयिष्यसि ।।५२
स नदाया वचः श्रुत्वा मृगेन्द्रः पुनरब्रवीत् ।
किं ते पुत्रेण कर्त्तव्यं मरणं किं न बुध्यसे ।।५३
त्रस्यति सर्वभूतानि म्रियते मां निरीक्ष्य च ।
त्वं पुनः कृपयाविष्टा पुत्र पुत्रेति भाषसे ।।५४
न पुत्रा न तपोदानं न माता नपिता गुरु ।
ह्यनुवर्ति परित्रातुं नरं कालप्रपीडितम् ।।५५
कथं त्वं गोकुलं गत्वा गोपीजनसमाकुलम् ।
वृषभैर्नादितं दिव्यं बालवत्सविभूषितम् ।।५६

भूषणं देवलोकस्य स्वर्गं तुल्यं न संशयः ।
नित्यं प्रमुदितं दिव्यं सर्वदेवप्रपूजितम् ॥५७
गोलोक प्रतिमं दृष्ट्वा कथं प्रत्यागमिष्यसि ।
पञ्चभूतानि मे भद्रे पिबतु रुधिरं तव ॥५८

पुत्र के स्नेह से वशीभूत होकर मैं उसे अपने स्तन का दूध पिलाना चाहती हूँ और स्तन पिलाकर अपने वत्स के मस्तक को चाटने की भी इच्छा रखती हूँ ॥५१॥ इसके पश्चात् उसे अपनी सखियों के सुपुर्द करके उसके हित एवम् अहित के विषय में पूरा सन्देश उन्हें देकर मैं फिर तुम्हारे पास वापिस आ जाऊँगी। फिर आप मुझे अपनी इच्छा के अनुसार भक्षण कर लेंगे ॥५२॥ उस व्याघ्र ने नन्दा धेनु के इस वचन का श्रवण कर वह मृगेन्द्र फिर बोला—तुझे अब पुत्र से क्या करना है? क्या तू अपनी मौत को नहीं जानती है? ॥ ५३ ॥ समस्त प्राणी मुझसे त्रस्त हो जाते हैं और मुझे देखकर मर जाया करते हैं। तू ही एक ऐसी है कि कृपा से समाविष्ट होती हुई हा पुत्र-हा पुत्र-ऐसा कह रही है ॥५४॥ काल से जो पीड़ित होता है अर्थात् जिसकी मौत आ जाती है उस नर को पुत्र—तपश्चर्या—दान—माता—पिता और गुरु कोई भी इनमें से रक्षा नहीं कर सकता है ॥ ५५ ॥ तू उस गोकुल में जाकर जो गोपीजनों से घिरा हुआ है, जिसमें वृषभों का नाद हो रहा है जो वत्सयुक्त और छोटे छोटे वत्सों से विशेष रूप से भूषित है, जो देवलोक का भूषण है और स्वर्ग के तुल्य है वह स्थान तो नित्य ही प्रमोद से परिपूर्ण रहता है और परमोत्तम एवम् समस्त देवगण के द्वारा पूजित है। उस गोलोक के समान स्थल को देखकर तू वापिस कैसे आयेगी? हे भद्रे! मेरे पाँचों भूत तेरे रुधिर को पीवें ॥५६-५७ ५८॥

न निर्विण्णानि भूतानि वाङ्मात्रेण करोम्यहम् ।
एष प्रणयसंभाषा मृगेन्द्र शृणु मे वचः ॥५९
दृष्ट्वा सखी सुतं बाल गोगांश्च प्रतिपालयान् ।
गोपीजनसुपामन्त्र्य जननी च विशेषतः ॥६०
शपथैरागमिष्यामि मन्यसे यदि सुव्रतान् ।
यत्साग्रं पञ्चयष्यायां मामाभिभृत्रधेनुष ॥६१

तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।
यत्पापं लुब्धकानां तु म्लेच्छानां गरदायिनाम् ॥६२
तेन पापेन लिप्येऽह यद्यहं नागमे पुनः ।
गोषु विघ्नांश्च ये कुर्युः स्वपंती ताडयंति च ॥६३

मैं वाणीमात्र से प्राणियों को वैराग्य युक्त नहीं करता हूँ। इसके अनन्तर नन्दा ने कहा—हे मृगेन्द्र ! प्रथम वत्स को मनुस्तन करने वाले मेरे वचन को आप सुनिये ॥५९॥ मैं अपनी सखी—सुत बालक—गोपगण—प्रतिपालक—गोपीजन तथा विशेष रूप से जननी का उपामन्त्रण करके शपथ पूर्वक कहती हूँ कि मैं फिर आपके पास आ जाऊँगी। यदि आप मेरा वचन सत्य मानते हैं तो मुझे छोड़ दीजिए। जो पाप ब्राह्मण की हत्या करने में होता है तथा जो पाप माता-पिता के वध करने में होता है उसी पाप से मैं भी लिप्त हो जाऊँ अगर फिर मैं वापिस न आऊँ। जो पाप लुब्धकों को होता है तथा म्लेच्छों को घोर विष देने वालों को लगता है वही पाप मुझे भी लगेगा यदि मैं वापिस फिर न आऊँ ॥६०।६१।६२।६३॥

तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।
सकृद्दत्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति ॥६४
तस्य पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।
यस्त्वनड्वाहृमलीवर्दान्विषमे वाहयेत्पुमान् ॥६५
कथायां कथ्यमानायां विघ्नं कारयते तु यः ।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥६६
गृहे यस्यागतं मित्रं निराशं प्रतिगच्छति ।
तस्य पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥६७
इत्येतैः पातकैर्घोरैरागमिष्याम्यहं पुनः ।
श्रुत्वा संप्रत्ययं द्वीपी पुनर्वचनमब्रवीत् ॥६८
सजातः प्रत्ययोऽस्माकं शपथैर्धेनुके तव ।
कदाचिन्नन्यसे गत्वा मूर्खोऽयं वञ्चिता मया ॥६९
अत्रापि केचिद्वक्ष्यंति शपथे नास्ति पातकम् ।
कामिनीषु विवाहेषु गवांमुक्तौ तथैव च ॥७०

गौओं में जो लोग विघ्न किया करते है और सोती हुई का जो ताड़न करते हैं उनको जो पाप लगता है उसी पाप से मैं भी लिप्त हो जाऊँ अगर फिर वापिस मैं न आऊँ। जो एकबार किसी कन्या को देकर अर्थात् दान करके फिर उसी कन्या को दूसरे किसी को देने की इच्छा करता है उसे जो पाप लगता है मैं भी उसी पाप की भागिनी बन जाऊँ अगर फिर वापिस लौटकर मैं आपके पास न आ जाऊँ। जो अयोग्य बैलों को विषम स्थल मे वाहन किया करता है और जो पुरुष कही जाने वाली कथा मे विघ्न उपस्थित किया करता है उसे जो पाप होता है मैं भी उसी पाप से युक्त पापिनी हो जाऊँ अगर मैं फिर तुम्हारे पास वापिस लौटकर न आऊँ ॥६४,६५,६६॥ जिसके घर पर आया हुआ मित्र निराश होकर वापिस लौट जाता है उसे जो पाप होता है वही पाप मुझे लगे यदि मैं पुनः वापिस न आऊँ ॥६७॥ इन इतने घोर पातकों से मैं पुनः आपके पास लौटकर आऊंगी। द्वीपी ने उसके कहे हुए वचनो से पूर्ण विश्वास समझकर फिर वह वचन बोला—व्याघ्र ने कहा—॥६८॥ हे धेनुके! तेरी शपथो से हमको पूर्ण विश्वास हो गया है। कदाचित् तू ऐसा भी मानती हो कि मैंने इस मूर्ख को ठग लिया है ॥६९॥ इस विषय मे भी कुछ लोग ऐसा कहा करते हैं कि शपथ मे कुछ भी पातक नही होता है। कामनियो के विषय मे—विवाह कार्य के मामलो मे और गौओ की मुक्ति के मामले मे शपथ लेने पर भी कोई पाप नही माना जाता है ॥७०॥

प्राणत्यागे समुत्पन्ने श्रद्धातव्यं न च त्वया।
लोकेऽस्मिन्नास्तिकाः केचिन्मूर्खाः पण्डितमानिनः ॥७१
भ्रामयिष्यन्ति ते चित्तं चक्रारूढमिव क्षणात्।
कुतर्कहेतुवृत्तान्तैरज्ञानावृतचेतसः ॥७२
मोहयन्ति नराः क्षुद्रा आगमार्थविशारदाः।
अतथ्यान्यपि तथ्यानि दर्शयन्त्यतिपेशलाः ॥७३
त्वयैव दर्शितं सर्वं यथेष्टं कुरु साम्प्रतम्।
एवमेव महासाध्वी कस्त्वां वञ्चयितुं क्षमः ॥७४
आत्मैव वञ्चितस्तेन यः परं वञ्चयिष्यति।
धेनुके पश्य गच्छ त्वं पुत्रकं पुत्रवत्सले ॥७५

अनुज्ञाता मृगेंद्रेण प्रयाता पुत्रवत्सला ।
अथ पूर्णमुखी दीना वेपमाना सुदुःखिता ॥७६
अशक्ता स्वपरित्राणे विलपती मुहुर्मुहुः ।
सा तत्र गोकुलं प्राप्ता हरिन्नद्यास्तटे स्थितम् ॥७७

प्राणत्याग के समुत्पन्न होने पर आपको कभी भी श्रद्धा नहीं करनी चाहिए—ऐसा कहकर इस लोक में नास्तिक,अपने आपको महान् मनीषी मानने वाले कुछ मूर्ख भ्रम में डाल देते हैं ॥७१॥ ऐसे ही लोग चक्र पर आरूढ को भ्रामित किया करते हैं, यह एक बड़ी विचित्र बात है। कुत्सित तर्क, हेतु और वृत्तान्तों के द्वारा अज्ञान से आवृत चित्त वाले क्षुद्र नर मोह को प्राप्त कर दिये जाया करते हैं। आगमों के अर्थ के विशेष विद्वान् अत्यन्त मृदु होते हुए जो अतथ्य है उसे भी तथ्य दिखा दिये करते हैं ॥७२।७३॥ तुमने सभी कुछ दिखलाया है अब जो चाहो वह करो। नन्दा ने कहा—हे साधो! ऐसा ही है परन्तु आपको वञ्चित कर देने की सामर्थ्य वाला कौन है? जो किसी दूसरे को प्रतारित किया करता है वह अपनी आत्मा को ही वस्तुतः वञ्चित किया करता है ॥७४॥ द्वीपी ने कहा—हे धेनुके! तुम पुत्र वत्सला हो, इसलिये जाओ और अपने पुत्र को देखो ॥७५॥ इस प्रकार मृगेन्द्र के द्वारा आज्ञा प्राप्त हुई वह पुत्र वत्सला धेनु वहाँ से रवाना हो गई थी किन्तु वह उस समय में अश्रुओं से परिपूर्ण नेत्रों वाली—अत्यन्त दैन्य भाव से समन्वित, काँपती हुई और बहुत ही दुःखित थी ॥७६॥ अपने आपके परित्राण करने में असमर्थ वह बार-बार विलाप करती हुई हरिन्नदी के तट पर स्थित गोकुल में प्राप्त हो गई थी ॥७७॥

श्रुत्वा वत्सं तु क्रोशतं पर्यधावत संमुखी ।
उपसृप्य च तं बालं बाष्पपर्याकुलेक्षणम् ॥७८
संप्राप्य मातरं वत्सःशंकित- परिपृच्छति ।
न ते पश्याम्यहं स्वास्थ्यं धैर्यं नैवात्र लक्षये ॥७९
उद्विग्ना चापि ते दृष्टिर्भीता चातीव लक्ष्यसे ।
पिब पुत्र स्तनं मेऽद्य कारणं यदि पृच्छसि ॥८०
अशक्ताहं तवास्यातुं कुरु तृप्तिं यथेप्सिताम् ।
अपश्चिमं तु ते पुत्र दुर्लभं मातृदर्शनम् ॥८१

एकाहमद्य मे पीत्वा प्रभाते कस्य पास्यसि ।
त्वां त्यक्त्वा पुत्रगंतव्यं शपथैरागता ह्यहम् ॥८२
क्षुत्क्षामस्य च व्याघ्रस्य दातव्यमात्मजीवितम् ।
नदायाश्च वचः श्रुत्वा वत्सो वचनमब्रवीत् ॥८३

वहीं पर उसने अपने वत्स के रुदन का श्रवण किया था और वह उसी के सामने दौड़कर पहुँची थी । उसने अपने बालक को वाष्पों से भरे हुए नेत्रों वाला पाया और वह उसके समीप में प्राप्त हो गई थी ॥७८॥ उस वत्स ने अपनी माता को प्राप्त करके कुछ शङ्कित-सा होते हुए उससे पूछा—हे माता ! आज मैं तेरा अच्छा स्वास्थ्य और धैर्य नहीं देख रहा हूँ । तेरी यह दृष्टि भी कुछ उद्वेग से पूर्ण है और आज तो तू बहुत ही डरी हुई दिखलाई दे रही है ॥७९॥ इस प्रकार से पुत्र के कहने पर नन्दा ने कहा—हे पुत्र ! अब आज तो तू मेरा स्तन का पान कर ले । यदि इस सबका तू कारण ही पूछता है ॥८०॥ तो उसको बताने मे मैं असमर्थ हूँ । अब तू यथेच्छ रूप से अपनी तृप्ति कर ले । हे पुत्र ! इसके पीछे तो तुझे अपनी माता का दर्शन दुर्लभ हो जायगा ॥८१॥ मैं एक ही हूँ । आज मेरा स्तन पीकर फिर प्रभात मे तू किसका स्तन पीयेगा ? मैं तो अब तुझे यहीं छोड़कर चली जाऊँगी क्योंकि मैं शपथ से ही यहाँ पर आई हूँ ॥८२॥ भूख से क्षीण व्याघ्र को मुझे अपना जीवन देना है । नन्दा के इन वचनों को सुनकर वत्स ने यह वचन कहा—॥८३॥

अहम् तत्र गमिष्यामि यत्र त्वं गतुमिच्छसि ।
श्लाघ्यममापि मरणं त्वया सह न संशयः ॥८४
एकाकिनापि मर्तव्यंममार्तेन त्वया विना ।
यदि मासहितं मातर्वने व्याघ्रो हनिष्यति ॥८५
यागतिर्मातृभक्तानां ध्रुव सा मे भविष्यति ।
तस्मादवश्ययास्यामि त्वया सह न संशयः ॥८६
अथवा तिष्ठ मातस्त्वं शपथाः संतु मे मम ।
जनन्या च वियुक्तस्यजीवितेकिं प्रयोजनम् ॥८७
अनाथस्यवनेनित्य कोमे नाथोभविष्यति ।
नास्तिमातृसमोबन्धुर्बालानांक्षीरजीविनाम् ॥८८

नास्ति मातृसमो नाथो नास्ति मातृसमा गतिः ।
नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्ति मातृसमंसुखम् ॥८९
नास्ति मातृसमो देव इह लोके परत्र च ।
एवं वै परमोधर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ॥९०
ते तिष्ठति सदा पुत्रास्ते यान्ति परमा गतिम् ।
ममैव विहितो मृत्युर्नत्वं पुत्रागमिष्यसि ॥९१

वत्स बोला—हे माता ! जहाँ आप जाना चाहती है वहाँ पर मैं जाऊँगा। तुम्हारे ही साथ मेरा मरण भी बहुत ही श्लाघनीय होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥८४॥ जब तू यहाँ नहीं होगी तो अकेले रह जाने पर भी मुझे मरना हो पड़ेगा क्योंकि उस दशा मे मैं बड़ा दु:खित हो जाऊँगा। हे माता ! यदि मेरे सहित ही वह व्याघ्र हनन करेगा तो मेरी भी वही गति होगी जो कि मातृ-भक्तो की निश्चित होती है। इसलिये मैं तेरे ही साथ अवश्य ही जाऊँगा—इसमें कुछ भी संशय नही है ॥८५॥८६॥ अथवा हे माता ! आप यहीं रहो, वे शपथ जो तुम्हारी हैं मुझे हो जावें क्योंकि जननी से जुदा रहने वाले के जीवित रहने मे क्या प्रयोजन हो सकता है ॥८७॥ जब मैं बिना नाथ वाला रह जाऊँगा तो इस वन मे मेरा दूसरा कौन नाथ होगा ? जो बच्चे केवल अपनी माता के ही दूध पर जीवित रहा करते हैं उन बालकों का माता के समान अन्य कोई भी बन्धु नही होता है ॥ ८८ ॥ बच्चों का माता के सदृश अन्य कोई भी नाथ नहीं होता है और माता के तुल्य अन्य कोई गति भी नहीं है। माता के जैसा स्नेह किसी भी अन्य का कभी नहीं होता है। माता की समीपता के तुल्य छोटे दुधमुँहे बच्चे को अन्य कोई भी सुख नहीं होता है ॥८९॥ हे माता ! इस लोक मे और परलोक मे दोनो ही जगह मे माता के तुल्य कोई दूसरा देव नही है। इसी प्रकार का धर्म प्रजापति ने निर्मित किया है ॥ ९० ॥ जो सवदा पुत्र माता के पास रहते हैं वे परमगति को प्राप्त हुआ करते हैं। इस पर नन्दा ने कहा—हे पुत्र ! यह तो मेरी ही मृत्यु का विधान किया गया है। वहाँ तुम नही आओगे ॥९१॥

न न्यायमन्यजीवाना मृत्युः स्यादन्यमृत्युना ।
अपश्चिममिमम्पुत्र मातृसंदेशमुत्तमम् ॥९२

अत्रातिष्ठस्व मद्वाक्यात्तत.शुश्रूषणं पुन ।
जले स्थले च विचरन्प्रमादं तात मा कुरु ॥६३
प्रमादात्सर्वभूतानि विनश्यंति न संशयः ।
न च लोभेनचर्तव्यविषमस्थं तृण क्वचित् ॥६४
लोभाद्विनाशः सर्वेषामिहलोके परत्र च ।
समुद्रमटवी पुत्र विशति लोभमोहिताः ॥६५
लोभादकार्यमत्युग्रं विद्वानपि समाचरेत् ।
लोभात्प्रमादाद्विश्रंभात्त्रिभिर्नाशोभवेन्नृणाम् ॥६६
तस्माल्लोभं न कुर्वीत न प्रमादं न विश्वसेत् ।
आत्मा हि सतत पुत्र रक्षितव्यः प्रयत्नतः ॥६७

यह मृत्यु का ऐसा ही नियम है जिसको मृत्यु होने को है उसी को वह होती है। अन्य जीवो की मृत्यु अन्य किसी को कभी नही हो सकती है। हे पुत्र ! मेरा अब यह आखिरी एक उत्तम सन्देश है ॥६२॥ तू मेरे वाक्य से यहीं पर ही रहो, और फिर मेरी बात सुनो। हे तात ! जल तथा स्थल मे विचरण करते हुए कभी प्रमाद मत करना ॥६३॥ प्रमाद बहुत बुरा होता है। इस प्रमाद से समस्त प्राणी विनष्ट हो जाया करते हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। कभी लोभ मे अभिभूत होकर विषम स्थल मे रहने वाले तृण को कहीं पर भी नही चरना ॥६४॥ लोभ एक नाशकारी दुर्गुण है। इस लोभ से सबका यहीं और परलोक मे भी विनाश हो जाता है। हे पुत्र ! लोभ से मोहित होने वाले लोग ही गहरे घोर समुद्र समुद्र मे तथा गहन-भीषण वन मे प्रवेश किया करते हैं ॥६५॥ लोभ से अत्यन्त उग्र अकार्य को विद्वान् पुरुष भी कर डाला करते हैं। मनुष्यो के नाश होने के लोभ, प्रमाद और विश्रम्भ ये तीन ही कारण हुआ करते हैं। ६६॥ इसलिये लोभ और प्रमाद कभी नही करना चाहिए तथा विश्वास भी कदापि न करे। हे पुत्र ! अपने आत्मा का सतत रक्षण प्रयत्न के साथ करना चाहिए ॥६७॥

सर्वा सर्वप्रदा नित्यं रक्षध्वं मम बालकम् ।
अनाथं विक्लं दीनं रक्षध्वं मम पुत्रकम् । ६८

मातृशोकाभिसंतप्तं भगिन्यःपालयिष्यथ ।
भगिनीनामयं पुत्रो ह्यर्पितस्त्वसुतो मया ॥९९
पाल्यो बालश्च सर्वाभिः पोष्यः पाल्यश्च पुत्रवत् ।
तस्मादनाथमबलं पुत्रवत्पालयिष्यथ ॥१००
प्रकर्तुमुद्यतं भीम नंदा त्वं सत्यवादिनी ।
शपथैः सत्यवाक्येन वचयित्वा महाभयम् ॥१०१
यद्बाल स्वसुतं त्यक्त्वा सत्यलोभेन गम्यते ।
अत्र गाथा पुरा प्रोक्ता ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥१०२
प्रणयागे समुत्पन्ने शपथैर्नास्ति पातकम् ।
उक्त्वाऽनृतं भवेद्यत्र प्राणिनां प्राणरक्षणम् ॥१०३
अनृतं तत्र सत्यं स्यात्सत्यमप्यनृतं भवेत् ।
कामिनीषु विवाहेषु गवां मुक्तौ तथैव च ॥१०४
ब्राह्मणानां विपत्तौ च शपथैर्नास्ति पातकम् ।
परेषां प्राणरक्षार्थं वदाम्येवानृतं वचः ॥१०५

इसके अनन्तर उस नन्दा धेनु ने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त अन्य समस्त सखियों को सुनाकर उनसे प्रार्थना की थी कि अब आप लोग सब कुछ प्रदान करने वाली हैं। भविष्य में आप लोग नित्य ही मेरे इस बालक की पूर्ण रक्षा करें। यह मेरा दुधमुँहा विचारा बच्चा परम दीन—बेचैन और अनाथ है। आप सब लोग इसकी रक्षा करें ॥९८॥ यह विचारा अपनी माता के वियोग-जन्य शोक से बड़ा ही सन्तापयुक्त है। हे बहिनो ! आप इसका पालन करोगी, यह आप समस्त बहिनों का ही पुत्र है। मैं इस अपने पुत्र को आप सबकी सेवा में समर्पित करती हूँ ॥९९॥ इस बालक को आप ही सबको पालन करना चाहिए और अपने ही पुत्र की भाँति इसका पोषण करें। देखो, यह एक अनाथ बिना माता वाला बच्चा है। इसका पालन-पोषण अपने ही पुत्र की तरह आप सब करेंगी ॥१००॥ इस नन्दा के विनम्र कथन को सुनकर सबने नन्दा से कहा—नन्दा तू तो बहुत ही सत्य बोलने वाली है और इस समय में एक महान् भीषण कार्य करने को उद्यत हो रही है तूने शपथों के द्वारा ही सत्य वचनों से महान्

भय को वञ्चित कर दिया है और सत्य की रक्षा के लोभ से तू अब अपने इस नन्हे से पुत्र को त्यागकर वहाँ पुनः जा रही है। तू महा धन्य है। परन्तु इस विषय में बड़े बड़े ब्रह्मवादी ऋषियों के द्वारा कही हुई एक गाथा है जो पहिले बताई गई थी ॥१०१।१०२॥ जब अपने प्राणों का त्याग उपस्थित हो जावे तो उनकी रक्षा के लिये जो शपथ की जावें उनमें कुछ भी पातक नहीं होता है। अनृत (असत्य) वचन कहकर भी प्राणियों को अपने प्राणों की रक्षा करना चाहिए ॥१०३॥ यहाँ पर झूठ भी सत्य हो जाता है और महा सत्य भी मिथ्या हो जाया करता है। इसी प्रकार से कामनियों के साथ प्रेमालाप में प्रणय की रक्षा करने के लिये, विवाह-सम्बन्धों के जुड़ाने में और गायों के प्राणों की रक्षा के लिये तथा ब्राह्मणों की विपत्ति का निवारण करने के विषय में जो मिथ्या शपथ भी लेनी पड़ें तो अवश्य ही ले लेवे क्योंकि इन उपर्युक्त दशाओं में शपथों के लेने में कुछ भी पाप नहीं होता है ॥१०४॥ इस पर नन्दा ने कहा—आप सबके कथन का मैं आदर करती हूँ और इसका तात्पर्य यही है कि दूसरों की प्राणों की रक्षा के लिये मैं भी मिथ्या भाषण किया करती हूँ ॥१०५॥

नात्मार्थमुत्सहे वक्तुं जीवितार्थे कथञ्चन ।
एक एवाश्नुते गर्भे मरणे भरणे तथा ॥१०६
भुङ्क्ते चैव शुभाशुभमत्र सत्यं वदाम्यहम् ।
सत्ये प्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः ॥१०७
उदधिः सत्यवाक्येन मर्यादाम् न विलङ्घते ।
विष्णवे पृथिवी दत्त्वा बलिः पातालमाश्रितः ॥१०८
छद्मनापि बलिर्बद्धः सत्यवाक्यं न चात्यजन् ।
प्रवर्धमानः शैलेन्द्रः शतशृङ्गः समुत्थितः ॥१०९
सत्येन सुस्थितो विन्ध्यः प्रबन्ध नातिवर्तते ।
स्वर्गापवर्गनरका सत्ये चापि प्रतिष्ठिता ॥११०
यस्तु लोपयते वाचमशेषं तेन लोपितम् ।
योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ॥१११

किन्तु मैं अपने जीवन की रक्षा करने के लिए किसी प्रकार भी मिथ्या

बोलने के लिये उत्साह नहीं कर सकती हूँ। एक ही यह प्राणी गर्भ में सश्लिष्ट होता है और वही अकेला मरण तथा मरण के सुख-दुःखों का भोग किया करता है। इसलिये मैं तो सदा सत्य ही बोलना चाहती हूँ। ये समस्त लोक सत्य में ही प्रतिष्ठित हैं और धर्म भी सत्य में प्रतिष्ठित है ॥१०६।१०७॥ यह महान् सागर अपने सत्य वाक्य से ही मर्यादा का लङ्घन नहीं किया करता है। देखो, असुरों के राजा बलि ने विष्णु को जो वामन बनकर उसे छलने के लिये आये थे, सम्पूर्ण राज्य के वैभव के सहित समस्त पृथ्वी दे दी थी और स्वयं अवसान में पाताल लोक में निवासार्थ चला गया था किन्तु उसने कहे हुए वचनों की रक्षाकर सत्य का परिपालन किया था। छल से उस राजा बलि को बाँध लिया गया था किन्तु महान् घोर कष्टों को सहन करके भी सत्य का त्याग नहीं किया था। प्रवर्धमान शैलों का राजा सौ शिखरों वाला होकर उठ खड़ा हुआ था। ॥१०८।१०९॥ सत्य से ही यह विन्ध्याचल सस्थित होकर रह गया है और विन्ध्य ने प्रबन्ध का अतिवर्जन नहीं किया है। ये स्वर्ग, अपवर्ग और नरक सभी कुछ सत्य वचन में ही तो प्रतिष्ठित हो रहे हैं ॥११०॥ जो अपने कथित वचनों का लोप कर दिया करता है उसने सभी कुछ का लोप कर दिया है—ऐसा समझना चाहिए। जो अपने आपको अन्यथा बना लेता है वह अन्यथा ही प्राप्त किया करता है ॥१११॥

दृष्ट्वागोपीजनं सर्वं परिक्रम्य च गोकुलम् ।
नन्दा सम्प्रस्थिता देवान्वृक्षाश्चापृच्छ्यसापुनः ॥११२

चरमाणस्य कर्तव्यं सानुक्रोशैस्तु रक्षणम् ।
सन्दिश्य नदा प्रीस्यैव पुत्रस्नेहवशं गता ॥११३

शोकाग्निना च सन्दीप्ता विच्छिन्ना पुत्रदर्शने ।
वियुक्ता चक्रवाकीव लतेव पतिता तरोः ॥११४

अन्धेव दृष्टिरहिता प्रस्खलती पदे पदे ।
अगच्छत्सापुनस्तत्र यत्रासौ पिशिताशनः ॥११५

आस्ते विस्फूर्जितमुपस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयावहः ।
तावत्तस्या सुतो वत्स ऊर्ध्वपुच्छोऽतिवेगवान् ॥११६

आगत्यमातुरग्रेऽसौ मृगेंद्रस्याग्रतोऽभवत् ।
आगत तु सुत दृष्ट्वा मृत्यु तमपतः स्थितम् ॥११७
व्याघ्र दृष्ट्वा तु सा धेनुरिद वचनमब्रवीत् ।
भो भो मृगद्रागताह सत्यधर्मव्रते स्थिता ॥११८

इसके पश्चात् उस नन्दा ने समस्त गोपी जनों से भेंट की थी और फिर उस सम्पूर्ण गोकुल की परिक्रमा की थी । फिर वह नन्दा सब देवगण तथा वहाँ के वृक्षों से आदेश प्राप्तकर सम्प्रस्थित हो गई थी ॥११२॥ उसने पुनः प्रार्थना की कि आप सब दयापूर्वक चरण करते हुए मेरे वत्स का संरक्षण करना । इस तरह से नन्दा प्रीति से सन्देश देकर अपने पुत्र के स्नेह में वशीभूत हो गई थी ॥११३॥ वह नन्दा पुत्र के वियोग से उत्पन्न शोक रूपी अग्नि से एकदम सतप्त हो रही थी और अपने पुत्र के देखने में विच्छिन्न हो गई थी । वह चक्रवाकी की भाँति जुदा होती हुई वृक्ष की लता के समान नीचे गिर पड़ी थी । ॥११४॥ एक अन्धे के समान वह दृष्टि से हीन होकर कदम-कदम पर प्रस्खलित हो रही थी । इस तरह गिरती-पड़ती वह वहाँ पर ही चली गई थी जहाँ वह मांसभोजी रहता था ॥११५॥ वहाँ पर अपना मुख खोले हुए तीक्ष्ण दाढ़ों वाला महान् भयानक वह व्याघ्र स्थित था । इसी बीच में उस नन्दा का पुत्र, वत्स ऊपर को अपनी पूँछ उठाये हुए अत्यन्त वेग से युक्त वहाँ पर ही आ गया था ॥११६॥ वह वत्स वहाँ पहुँचकर अपनी माता के सामने और उस बाघ के आगे हो गया था । उस आये हुए अपने पुत्र को और उसके सामने ही उस मृत्यु स्वरूप व्याघ्र को देखा था ॥११७॥ उस व्याघ्र को देखकर उस धेनु ने यह वचन कहा—हे मृगेन्द्र ! मैं अपने सत्य धर्म व्रत में स्थित होने वाली आपके समक्ष में उपस्थित हो गई हूँ ॥११८॥

कुरु तृप्ति यथाकाममस्तत्र्यासेन साम्प्रतम् ।
सतर्पयस्व भूतानि पिब त्व शोणित मम ॥११६
मृतायां तु मयि त्व भो भक्षयेम तु बालकम् ।
स्वागत तव कल्याणि धेनुके सत्यवादिनि ॥१२०
न हि सत्यवता किंचिदशुभ भवति क्वचित् ।
त्वयोक्त धेनुके पूर्व सत्य प्रत्यागमे पुनः ॥१२१

तेन मे कौतुकं प्राप्तं प्राप्तागच्छेत्कथपुनः ।
तव सत्यपरीक्षार्थं प्रेषितासि मया पुनः ॥१२२
अन्यथा मां समासाद्य जीवंती यास्यसे कथम् ।
यच्च नः कौतुकं जातं सत्यस्यान्वेषणं मम ॥१२३
तस्माददेन सत्येन मुक्ताऽसि च मयाधुना ।
भगिनी भवती मह्यं भागिनेयः सुतस्तव ॥१२४
दत्तोपदेशस्य शुभे मम पापिष्ठकर्मणः ।
सत्ये प्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः ॥१२५
सत्येन गौः क्षीरधारां प्रमुंचति हविः प्रियाम् ।
स वै धन्यतमो गोपो यस्त्वत्क्षीरेण जीवति ॥१२६

हे मृगेन्द्र ! अब आप मेरे माँस से अपनी इच्छा के अनुसार अपनी तृप्ति कर लीजिये । अपने भूतों को सन्तृप्त करें और मेरे रुधिर का पान करें ॥११९॥ जब मुझे मारकर आप खा लेवें तो मेरे मर जाने के पश्चात् आप मेरे इस पुत्र का भी भक्षण कर लेवें । नन्दा के इस निवेदन को सुनकर द्वीपी बोला—हे सत्य बोलने वाली धेनुके ! हे कल्याणी ! तेरा स्वागत है ॥१२०॥ जो सत्य के पूर्ण पालन करने वाले होते हैं उनका कभी भी कहीं कुछ अशुभ नहीं हुआ करता है । हे धेनुके ! तूने पुन. यहाँ आगमन करने के विषय में पहिले बिल्कुल सत्य वचन कहे थे ॥१२१॥ इससे मेरे हृदय में बड़ा ही कौतुक हो रहा है कि तू यहाँ से जाकर भी पुनः कैसे यहाँ वापिस लौटकर आ गई है । मैंने तेरे सत्य की परीक्षा लेने के लिये ही यहाँ से भेज दिया था ॥१२२॥ अन्यथा मुझको प्राप्त कर तू जीवित रहते हुए कैसे चली जाती । जो मुझे इस समय में कौतुक हुआ है वह मेरा एक सत्य का अन्वेषण ही है ॥१२३॥ इसलिये अब तेरे इस सत्य के पूर्ण पालन करने के कारण मेरे द्वारा तू मुक्त की जाती है । तू अब आज से मेरी भगिनी हो गई है और यह तेरा पुत्र अब मेरा भानजा हो चुका है ॥१२४॥ हे शुभे ! तूने तो मुझ जैसे महान् पाप कर्म करने वाले को बड़ा उपदेश प्रदान किया है कि सत्य में ही ये समस्त लोक प्रतिष्ठित हैं और धर्म भी सत्य में प्रतिष्ठित है ॥१२५॥ सत्य से ही गौ हवि की प्रिय क्षीर की धारा

का प्रमुखन किया करती है। वह गोप परम धन्य एवम् महान् भाग्यशाली है जो तुझ जैसी सत्यपालिका धेनुके दूध से जीवन धारण किया करता है।१२६।

तत्करिष्याम्यहं कर्म येन मुच्येय किल्विषात् ।
मया जीवसहस्राणि भक्षितानि शतानिच ॥१२७
गतिं कां मिहगच्छामि दृष्ट्वा गोः सत्यमीदृशम् ।
अहं पापो दुराचारो नृशंसोजीवघातकः ॥१२८
कांस्तुलोकान्गमिष्यामि कृत्वा कर्म सुदारुणम् ।
गमिष्ये पुण्यतीर्थानि करिष्ये पापशोधनम् ॥१२९
पतिष्ये गिरिमारुह्य प्रवेक्ष्ये वा हुताशनम् ।
धेनोऽद्य यन्मया कार्यं तप पापाद्विशुद्धये ॥१३०
तदा दिशस्व सक्षेपान्न कालो विस्तरस्य तु ।
तप कृते प्रशसति त्रेतायां ज्ञानमेव च ॥१३१
द्वापरे यज्ञमित्याहुर्दानमेकं कलौ युगे ।
सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम् ॥१३२

द्वीपी व्याघ्र ने अन्त मे कहा था कि मैं अब ऐसा ही कर्म करूंगा, जिससे मैं किये हुए पापो से छुटकारा पा जाऊँ। मैंने सैकडो और सहस्रो जीवो को मारकर खा लिया है।।१२७।। इस ससार मे मैं किस गति को प्राप्त होऊँगा। मैंने इस गौ के इस प्रकार के सत्य-परिपालन को देख लिया है। मैं तो महान् पापी, दुष्ट आचार वाला, अत्यन्त क्रूर और जीवो के घात करने वाला हूँ ।।१२८।। मैंने ऐसे-ऐसे महान् दारुण कर्म किये हैं कि मैं किन लोको मे मरकर जाऊंगा ? अब तो पुण्य तीर्थो का अटन करूंगा और किये हुए अपने पापो का शोधन करूंगा ? ।।१२९।। मैं पर्वत पर चढकर उससे नीचे गिरूंगा अथवा अग्नि मे प्रवेश करूंगा ? हे धेनो ! मुझे अपने किये हुए पापो के शोधन करने के लिये जो कुछ भी करना चाहिए उसे तुम सक्षेप मे मुझे बतादो क्योकि विस्तार से कथन करने का अब अधिक समय नही है ।।१३०।। इस प्रकार व्याघ्र के द्वारा कहे जाने पर उस धेनु ने कहा—कृतयुग मे तो तपश्चर्या का करना ही सर्वोत्तम उपाय समझा जाता है। त्रेतायुग मे ज्ञान का

अर्जन करने से कल्याण होता है ।।१३१।। द्वापर में यज्ञादि के कर्मों के करने से उद्धार होता है और कलियुग में तो केवल दान से ही आत्म कल्याण हो जाता है और सम्पूर्ण प्रकार के दानों में यही एक दान सबसे उत्तम एवम् परमश्रेष्ठ होता है ।।१३२।।

अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम् ।
चराचराणां भूतानामभयं यः प्रयच्छति ।।१३३
स च सर्वभयान्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ।
नास्त्यहिंसासमदानं नास्त्यहिंसासमं तपः ।।१३४
यथा हस्तिपदेऽन्यत्पदं सर्वं प्रलीयते ।
सर्वे धर्मास्तथा व्याघ्र प्रलीयते ह्यहिंसया ।।१३५
योगवृक्षस्य छाया या तापत्रयविनाशिनी ।
धर्मज्ञाने च पुष्पाणि स्वर्गमोक्षौ फलानि च ।।१३६
दुःखत्रयाभितप्तस्य छाया योगतरोः स्मृता ।
न बाध्यते पुनर्दुःखं प्राप्य निर्वाणमुत्तमम् ।।१३७
इत्येतत्परमं श्रेयः कीर्तितं ते समासतः ।
ज्ञातं चैव त्वया सर्वं केवलं मां तु पृच्छसि ।।१३८

संसार में समस्त प्राणियों को अभय का दान देना चाहिए । इस अभय के दान से उत्तम अन्य कोई भी दान नहीं है । चर और अचर भूतों को जो सर्वदा अभय का दान दिया करता है वह प्राणी सभी भयों से छुटकारा पाकर परम ब्रह्म की प्राप्ति का लाभ लिया करता है । अहिंसा के समान अन्य कोई भी दान इस लोक में नहीं है और प्राणियों की हिंसा न करने के सदृश अन्य कोई तप नहीं होता है ।।१३३।१३४।। जिस प्रकार से हाथी के पैर के चिह्न में अन्य सभी जीवों के पदचिह्न आ जाया करते हैं उसी भाँति हे व्याघ्र ! सम्पूर्ण धर्म अहिंसा में ही आजाया करते हैं ।।१३५।। योग रूपी वृक्ष की जो छाया है, वह आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन तीनों प्रकार के तापों का विनाश करने वाली है । इस वृक्ष के धर्म और ज्ञान पुष्प हैं तथा स्वर्ग की प्राप्ति एवम् मोक्ष ये दोनों इस वृक्ष के फल होते हैं ।।१३६।। उपर्युक्त तीनों

प्रकार के तापों से सन्तप्त प्राणी को शान्ति प्रदान करने के लिये योग रूपी वृक्ष की छाया ही बतलाई गई है। निर्वाण पद की प्राप्ति करके यह प्राणी फिर दुःखो से बाधित नही किया जाता है ॥१३७॥ यह ही जीवो के लिये परम श्रेय है जो कि मैंने आपके सामने अति संक्षेप मे बतला दिया है। आप तो इस सबको स्वयं ही जानते हैं। मुझसे तो आप वैसे ही केवल पूछ रहे हैं ॥१३८॥

अहं मृगया पुरा शप्तो व्याघ्ररूपेणसंस्थितः ।
तत प्राणिवधात्सर्वमशेषममविस्मृतम् ॥१३९
त्वत्सम्पर्कोपदेशाभ्यां सञ्जातस्मरणमम ।
त्वचाप्यनेनसत्येनगमिष्यसिपरां गतिम् ॥१४०
तदहं त्वा पुनः पृच्छे प्रश्नमेकं हृदि स्थितम् ।
साग्र वर्षशत जात चिंतयानस्य मे शुभे ॥१४१
भवत्या भाग्ययोगेन कदाचित्सर्वगंशोभने ।
कृतधर्मस्य सस्थानं सता मार्गेण प्रतिष्ठितम् ॥१४२
किंतेऽभिधान कल्याणि ब्रूहि मेऽज्ञस्य सुव्रते ।
मम नन्देति सज्ञा तु कृता नन्देन स्वामिना ॥१४३
साप्रत भक्षयामीति ह्यतिष्ठः केन हेतुना ।
नन्देति श्रुत्वा तन्नाममुक्तशापप्रभञ्जनः ॥१४४
पुनर्नृपत्वमापन्नो बलरूपसमन्वितः ।
एतस्मिन्नन्तरे धर्मस्ता ज्ञात्वा सत्यवादिनीम् ॥१४५
द्रष्टु समागतस्तत्र प्राब्रवीच्च पयस्विनीम् ।
तव सत्यप्रसादद्दृष्टो धर्मोऽहमिह चागत ॥१४६

इसके अनन्तर द्वीपी ने कहा—मैं पहिले भी व्याघ्र के रूप में संस्थित था और मुझे एक मृगी ने शाप दे दिया था। इसके पश्चात् प्राणियों के वध करने से मुझे यह सभी कुछ विस्मृत हो गया था ॥१३९॥ अब तुम्हारे सम्पर्क प्राप्त होने से और उपदेश से मुझे उसका स्मरण हो गया है। इस सत्य के परि-पालन से तू भी परमगति को प्राप्त होवेगी ॥१४०॥ मैं तुझसे फिर एक प्रश्न पूछता हूँ क्योंकि यह मेरे हृदय मे जिज्ञासा स्थित है। हे शुभे! इस तरह चिन्तन करते

हुए मुझे एक सौ वर्ष से अधिक समय होगया है ॥१४१॥ भक्ति से, भाग्य के योग से कदाचित धर्म का संस्थान सत्पुरुषों के मार्ग में स्वर्ग को प्रतिष्ठित किया गया है। हे कल्याणि ! हे सुव्रते ! तेरा नाम क्या है—यह मुझे तू बतलादे क्योंकि मैं तेरे नाम को भी अभी तक नहीं जानता हूँ। इस तरह से उस व्याघ्र के पूछने पर नन्दा ने कहा—मेरा नाम नन्दा है जो कि मेरे स्वामी नन्द ने रक्खा है ॥१४२।१४३॥ अभी भक्षण करता हूँ-ऐसा कहकर आप किस कारण से रुक गये हैं ? नन्दा—यह नाम सुनकर उसके नाम से वह राजा प्रभञ्जन मुक्त शाप वाला होगया था ॥१४४॥ शाप से मुक्ति हो जाने पर वह बल और रूप—सौन्दर्य से समन्वित होकर पुनः नृपत्व को प्राप्त होगया था। इसी बीच में धर्म उस धेनु को सत्य बोलने वाली जानकर उसे देखने के लिये वहाँ पर आया था और उस पयस्विनी से कहा—तेरे सत्य बोलने के व्रत से बहुत ही प्रसन्न होकर मैं धर्म यहाँ पर आया हूँ ॥१४५।१४६॥

नन्दे वृणीष्व भद्रं ते वरं वरतमं हि यत्।
एवमुक्ता हि सा देवी नन्दा तं प्रार्थयद्वरम् ॥१४७
तवानुभावात्ससुता गच्छामि पदमुत्तमम्।
भवेदिदंशुभ तीर्थं मुनीनां धर्मदायकम् ॥१४८
मन्नाम्ना च सरिदियं नन्दा नाम सरस्वती।
वरप्रदानाद्देवेश तदेतत्प्रार्थितं मया ॥१४९
सानरक्षणाद्गता देवी स्थानं सत्यवतां शुभम्।
प्रभञ्जनोऽपि तद्राज्यं संप्राप्तः प्रागुपार्जितम् ॥१५०
नन्दा येन गता स्वर्गं नन्दां प्राप्य सरस्वतीम्।
तेनाख्यया बुधैस्तस्याः प्रोक्ता नन्दा सरस्वती ॥१५१

फिर धर्म ने उस धेनु से कहा—हे नन्दे ! तेरा कल्याण हो, तुझे जो भी अभीष्ट हो वह परम श्रेष्ठ वरदान मुझसे माँग ले। इस प्रकार से धर्म के द्वारा कहे जाने पर उस देवी नन्दा ने वर की प्रार्थना की थी ॥१४७॥ नन्दा ने कहा—आपके अनुग्रह से मैं अपने पुत्र के सहित उत्तम पद को प्राप्ति करूँ और यह स्थल एक परम शुभ तीर्थ स्थान बन जावे जोकि मुनियों को धर्म

प्रदान करने वाला होवे ।। १४८ ।। मेरे ही नाम से यह नदी नन्दा नामवाली सरस्वती वरदान से हो जावे । हे देवेश ! यही मेरी प्रार्थना है जिसे मैंने इस समय कर दिया है ।। १४९ ।। पुलस्त्य मुनि ने कहा—यह देवी उसी क्षण में सत्यवानों के प्रति शुभ स्थान को वहाँ से चली गई थी । राजा प्रभञ्जन भी पहिले से समुपार्जित अपने राज्य में चला गया था ।।१५०।। जिस सरस्वती को नन्दा नाम प्राप्त कराके स्वर्ग को गई थी उसी नाम से बुध लोगों के द्वारा उसका नन्दा सरस्वती नाम प्रख्यात किया गया था ।।१५१।।

।। वृत्रासुर-वध तथा अगस्त्य उपाख्यान वर्णन ।।

कथयामि समासेन शृणु त्वं सुसमाहितः ।
पूर्वं कृतयुगे भीष्म दानवा युद्धदुर्मदाः ।।१
कालेया इति विख्याता गणाः परमदारुणाः ।
ते तु वृत्रं समाश्रित्य नानाप्रहरणोद्यताः ।।२
समन्तात्पर्यधावन्त महेन्द्रप्रमुखान्सुरान् ।
ततो वृत्रवधे यत्नमकुर्वंस्त्रिदशाः पुरा ।।३
पुरन्दरं पुरस्कृत्य ब्रह्माणमुपतस्थिरे ।
कृताञ्जलीस्तु तान्सर्वान्परमेष्ठीत्युवाच ह ।।४
विदितं मे सुराः सर्वं यद्वः कार्यं चिकीर्षितम् ।
तमुपायं प्रवक्ष्यामि यथा वृत्रं वधिष्यथ ।।५
दधीचिरिति विख्यातो महानृषिरुदारधीः ।
तं गत्वा सहितास्सर्वे वरं च प्रतियाचत ।।६
स वो दास्यति धर्मात्मा सुप्रीतेनान्तरात्मना ।
स वाच्यः सहितैः सर्वैर्भवद्भिर्जयकाङ्क्षिभिः ।।७

पुलस्त्य महर्षि ने कहा—हे भीष्म ! अब मैं आदि संक्षेप में कहता हूँ उसे तुम परम सावधान होकर श्रवण करो । सत्ययुग में पहिले दानव लोग युद्ध करने के लिये ही दुर्मद होगये थे ।।१।। इन दानवों का परम दारुणगण था जो कि 'कालेय'—इस नाम से लोकों में विख्यात था । वे सब वृत्रासुर के

आश्रय में प्राप्त हो गये थे और अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर रहा करते थे ॥२॥ ये सभी अपना धावा कर दिया करते थे तथा इन्द्र आदि प्रमुख देवताओं के ऊपर आक्रमण कर दिया था। इसके पश्चात् देवताओं ने प्राचीन समय में वृत्रासुर के वध के लिये यत्न किया था ॥३॥ अत्यन्त उत्पीड़ित होकर देवगण इन्द्रदेव को अपना नेता बनाकर ब्रह्माजी के पास उपस्थित हुए थे। सब वहाँ हाथ जोड़कर खड़े हुए उन देवगणों से परमेष्ठी ब्रह्माजी ने कहा था ॥४॥ हे देवताओ! मुझे पहिले से ज्ञात होगया है जिस कार्य के लिये आप सब लोग यहाँ पर आये हैं। मैं अब आपको वही उपाय बतलाता हूं जिससे वृत्रासुर का वध हो जावेगा ॥ ५ ॥ एक दधीचि नाम वाले महान् उदार बुद्धि से समन्वित महर्षि हैं। उनके पास आप सभी लोग उपस्थित होकर वरदान प्राप्त करने की याचना करें ॥ ६ ॥ वह महर्षि बहुत ही धर्मात्मा हैं। वह तुमको अवश्य ही वरदान प्रदान कर देंगे। वह अपनी अन्तरात्मा से परम प्रसन्न हो जायेंगे। उस समय में विजय की आकांक्षा रखने वाले आप सबको मिलकर उनसे यह कहना चाहिए ॥७॥

स्वान्यस्थीनि प्रयच्छस्व त्रैलोक्यहितकाङ्क्षया।
स शरीरं समुत्सृज्य स्वान्यस्थीनि प्रदास्यति ॥८
तस्यास्थिभिर्महाघोरं वज्रं संक्रियतां दृढम्।
महच्छत्रुहनं दिव्यं तदस्त्रमशनिः स्मृतम् ॥९
तेन वज्रेण वै वृत्रं वधिष्यति शतक्रतुः।
एतद्वः सर्वमाख्यातं तस्मात्सर्वं विधीयताम् ॥१०
एवमुक्तास्ततो देवा अनुज्ञाप्य पितामहम्।
शतक्रतुं पुरस्कृत्य दधीचेराश्रमं ययुः ॥११
सरस्वत्या परेपारे नानाद्रुमलतावृतम्।
षट्पदोद्गीतनिनदैरुद्घुष्टं समागैरिव ॥१२
त्रिविष्टपसमप्रख्यं दधीच्याश्रममागमन्।
तत्रापश्यन्दधीचिं त दिवाकरसमप्रभम् ॥१३
जाज्वल्यमानवपुषा यथा लक्ष्म्या चतुर्भुजम्।
तस्य पादौ सुरा राजन्नभिवंद्य प्रणम्यच ॥१४

अयाचंत वरं सर्वे यथोक्तं परमेष्ठिना ।
ततो दधीचिः परमप्रीतश्च सुरोत्तमान् ॥१५

ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा—जब वह परम प्रसन्न होकर तुमको वरदान प्राप्त करने को कहें तो उस समय में आप लोग उनसे कहना कि आप अपनी अस्थियाँ तीनों लोकों की भलाई की कामना से हमको प्रदान कर देवें। ऐसी तुम्हारी याचना करने पर वह ऋषि अपने शरीर का त्याग करके अपनी अस्थियाँ तुमको प्रदान कर देंगे ।।८।। उनकी अस्थियों से आप लोग महान् घोर वज्र बनाइये जो कि अत्यन्त दृढ़ होगा । वह महान् शत्रु के हनन करने वाला अति दिव्य अस्त्र वज्र कहा जाने वाला होगा ॥९॥ उस वज्र से इन्द्रदेव वृत्रासुर का वध करेंगे । मैंने यह सभी कुछ आप लोगों को बता दिया है सो अब आप यह सब कार्य सम्पादित करो । १०॥ इसके पश्चात् देवगण को ब्रह्मा के द्वारा ऐसा कहा जाने पर उन देवताओं ने ब्रह्माजी से वायदा किया और आदेश प्राप्त करके वे सब इन्द्र को अपना अगुआ बनाकर महर्षि दधीचि के आश्रम में चले गये थे ।।११।। दधीचि महर्षि का आश्रम सरस्वती नदी के परली पार पर था जो विविध प्रकार के वृक्ष और लताओं से आवृत था। वहाँ पर पुष्पों का मकरन्द पान करने वाले भ्रमरों की गुञ्जा से वह आश्रम शब्दायमान हो रहा था जैसे वहाँ वैदिक लोग सामवेद के मन्त्रों का गान कर रहे हों ।।१२।। वह महामुनि दधीचि का आश्रम स्वर्ग के तुल्य था ऐसे परमोत्तम आश्रम में समस्त देवगण आये थे और वहाँ पर उन्होंने सूर्य के समान प्रभा वाले दधीचि का दर्शन किया था ।।१३।। दधीचि मुनि अपने शरीर की कान्ति से जाज्वल्यमान ऐसे दिखलाई दे रहे थे जैसे लक्ष्मी के सहित चार भुजाओं वाले साक्षात् भगवान् नारायण विराजमान हों। वहाँ पहुँचकर समस्त देवगण ने उनके चरणों की अभिवन्दना की और प्रणाम किया था। फिर जिस प्रकार से ब्रह्माजी ने कहा था उसी रीति से उन महामुनि की सेवा में अपनी याचना की थी। तब तो दधीचि मुनि बहुत ही प्रसन्न हुए और उन सुरों से उन्होंने कहा ।।१४।१५।।

उवाच प्रणतो भूत्वा स्विदं कार्यकरं वचः ।
इन्द्राद्यास्त्वागता देवाः किमर्थं तद्वदन्तु मे ॥१६

पीड्यमानानहं मन्ये हतप्रभसुरोत्तमाः ।
यदर्थं पीडितास्मानस्तद्वदन्तु निराकुलम् ॥१७
त्वदस्थिकृतशस्त्रेण देवास्सन्तु निरामयाः ।
करोमि यद्वो हितमद्य देवाः स्वं वापि देहं त्वहमुत्सृजामि ।
तानेवमुक्त्वा द्विपदांवरिष्ठः प्राणास्ततोऽसौ सहसोत्ससर्ज ॥१८
सुरास्तदस्थीनि सवासवास्ते यथोपयोग जगृहुःस्म तस्य ।
प्रहृष्टरूपाश्र्च,जयाय देवस्त्वष्टारमासाद्य तमर्थमूचुः ॥१९
त्वष्टा तु तेषां वचनं निशम्य प्रहृष्टरूपः प्रयतः प्रयत्नात् ।
चकार वज्रं भृशमुग्रवीर्यं कृत्वा च शस्त्रं तमुवाच हृष्टः ॥२०
अनेन शस्त्र प्रवरेण देव भस्मीकुरुष्वाद्य सुरारिमुग्रम् ।
ततो हतारिः सगणः सुखं त्वं प्रशाधि कृत्स्नं त्रिदिवं दिविष्टः ।
त्वष्टा तथोक्तस्तु पुरंदरश्च वज्रं प्रहृष्ट प्रयतो ह्यगृह्णात् ॥२१

दधीचि ने प्रणत होकर जो भी वचन देवगण से कहे थे वे कार्य को पूर्ण करने वाले थे। दधीचि ने कहा—आप देवराज इन्द्र आदि समस्त देवगण यहाँ पर आये हैं। यह बताइये कि आप लोग किस प्रयोजन से यहाँ उपस्थित हुए हैं ? ॥१६॥ मैं ऐसा समझता हूँ कि आप सब उत्पीडित हैं और आपकी कान्ति क्षीण-सी हो रही है। जिस कारण से आप लोग पीडित हैं उसे शान्ति-पूर्वक बिना किसी व्याकुलता के स्पष्ट मुझे बता दीजिए ॥१७॥ तब देवों ने कहा—हम समस्त देवगण आपकी अस्थियों से निर्मित किये हुए शस्त्र से स्वस्थ एवम् सुखी होवेंगे। इस कथन पर महर्षि दधीचि ने कहा था—हे देवगण! आप लोगों का जिसमें हित होगा वही मैं आज करता हूँ। मैं अपने देह का भी त्याग करता हूँ। पुलस्त्य ऋषि ने कहा द्विपदों अर्थात् मनुष्यों में परम श्रेष्ठ दधीचि ऋषि ने उन देवताओं से इस प्रकार कहकर फिर उसने शीघ्र ही अपने प्राणों का त्याग कर दिया था ॥१८॥ उन समस्त देवताओं ने इन्द्र के सहित उनकी उन अस्थियों को उपयोग के अनुसार ग्रहण कर लिया था। परम प्रसन्न रूप वाले देवों ने अपनी विजय प्राप्त करने के लिये त्वष्टा अर्थात् अस्त्र निर्माण करने वाले के समीप पहुँचकर अपना जो अस्थियों से अस्त्र बनवाने का प्रयोजन

था यह कह दिया था ॥१९॥ त्वष्टा ने भी उनके वचनों को सुनकर परम प्रसन्न होते हुए उस कर्म मे वह प्रयत्नपूर्वक संलग्न था होगया था और उसने बहुत ही उग्र पराक्रम वाले वज्रास्त्र का निर्माण करके प्रसन्न होते हुए उनसे कहा ॥२०॥ हे देव ! इस अति श्रेष्ठ शस्त्र से आप आज ही देवों के उग्र शत्रु को भस्मी भूत कर दीजिए। इसके अनन्तर शत्रु को मार देने वाले आप अपने गणों के सहित देवलोक मे निवास करते हुए सम्पूर्ण त्रिदिव पर शासन कीजिए। त्वष्टा के द्वारा इस प्रकार से कहे गये इन्द्रदेव ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस वज्रास्त्र को बड़े ही प्रयत्नपूर्वक ग्रहण कर लिया था ॥२१॥

ततः सवज्रेण युतो दैवतैरभिपूजितः ।
आससाद ततो वृत्रं स्थितमावृत्य रोदसी ॥२२
ज्ञात्वा बलस्थं त्रिदशाधिप त ननाद वृत्रस्सुमहानिनादम् ।
तस्य प्रणादेन धरादिशश्च ख द्यौर्नगाश्चेति चचाल सर्वम् ॥२३
ततो महेंद्रः परमाभितप्तः श्रुत्वा रव घोरतरं महान्तम् ।
भयेन मग्नस्त्वरित मुमोच वज्र महान्तं खलुतस्य शीर्षे ॥२४
स शक्रवज्राभिहतः पपात महास्वनः काञ्चनमाल्यधारी ।
यथा महाशैलवर पुरस्तात्समन्दरो विष्णुकरात्प्रमुक्तः ॥२५
तस्मिन्हते दैत्यवरे भयार्त शक्रः प्रदुद्राव सरः प्रवेष्टुम् ।
वज्रं च मेने स्वकरात्प्रमुक्तं वृत्र भयाच्चैव हतं न पश्यति ॥२६
सर्वे च देवा मुदिताः प्रहृष्टा महर्षयश्चैनमथो स्तुवन्ति ।
शेषांश्च दैत्यांस्त्वरित समेत्य जघ्नुः सुराः वृत्रवधाभितप्तान् ॥२७
ते वध्यमाना स्त्रिदशैस्तदानीं महासुरा वायुसमानवेगाः ।
समुद्रमेवाविविशुर्भयार्ता प्रविश्य चैवोदधिमप्रमेयम् ॥२८

इसके पश्चात् वह इन्द्रदेव उग्र वज्र से युक्त होकर समस्त देवगण के द्वारा सम्मानित होते हुए इस रोदसी को आवृत करके स्थित होने वाले वृत्रासुर के समीप मे प्राप्त हो गये थे ॥२२॥ वह वृत्रासुर भी त्रिदश के अधिप इन्द्र को बल मे स्थित होने वाला जान गया था और उस वृत्र ने बड़ी भारी गर्जन की ध्वनि की थी। उसकी इस गर्जन की ध्वनि से यह भूमि—समस्त दिशाएँ—

आकाश—द्यौ और पर्वत सब कम्पित होकर हिल उठे थे ।।२३।। उस समय इस महान् घोर ध्वनि को सुनकर देवराज इन्द्र अत्यन्त अभिताप से युक्त हो गया था। वह भय से निमग्न होकर अत्यन्त त्रस्त हो गया था और उसने फिर उसके मस्तक मे वह महान् वज्र छोड दिया था ।।२४।। वह वृत्रासुर जो काञ्चन से निर्मित माला को धारण करने वाला था इन्द्र के छोडे हुए वज्र से अभिहत होकर अत्यन्त घोर शब्द करता हुआ गिर गया। उस समय में गिरता हुआ वह ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कोई महान् शैल सामने मन्दराचल के सहित भगवान् विष्णु के हाथ से छूट गया हो ।।२५।। उस महान् दैत्य के हत हो जाने पर भय से पीडित होकर इन्द्र सर में प्रवेश करने के लिये दौड गया था। उस देवराज ने अपने हाथ से छूटा हुआ वज्र तो समझ लिया था किन्तु भय के कारण उसने वृत्र को मरकर गिरते हुए नही देखा था ।।२६।। सब देवता बहुत ही आनन्द मग्न एव परम प्रसन्न हो गये और महर्षि गण भी बहुत खुश होकर इनका स्तवन कर रहे थे। बचे हुए जो असुर उस समय उस युद्ध स्थल मे थे वे सब वृत्र के वध हो जाने से अभितप्त हो रहे थे। उनको देवो ने एकत्रित होकर शीघ्र ही मार दिया था ।।२७।। उस समय मे देवगण के द्वारा मारे गये वे महासुर जिनका वायु के समान वेग था भय से पीडित होते हुए अथाह समुद्र मे घुसकर उसी मे प्रवेशकर विलीन हो गये ।।२८।।

झषाकुल रत्नसमाकुल च तदास्म मन्त्र सहिता प्रचक्रु ।
तत्रस्म केचिन्मतिनिश्चयज्ञास्तास्तानुपायान्परिचिन्तयन्त ।।२९

भयार्दिता देवनिकायतप्तास्त्रैलोक्यनाशाय मतिप्रचक्रु ।
तेषा तु तत्र क्षयकालयोगाद्घोरामतिश्चिन्तयता बभूव ।।३०

ये सन्ति विद्या तपसोपपन्नास्तेषा विनाश प्रथम च कार्यं ।
लोकाश्च सर्वे तपसा ध्रियन्ते तस्मात्त्वरध्व तपसा क्षयाय ।।३१

ये सन्ति केचिद्धि वसुन्धराया तपस्विनो धर्मविदश्च तज्ज्ञा ।
तेषा वधश्च क्रियता हि क्षिप्र तेषु प्रनष्टेषु जगद्विनष्टम् ।।३२

एव हि सर्वे गतबुद्धिभावा जगद्विनाशे परमप्रहृष्टा ।
दुर्गं समाश्रित्य महोर्मिमन्त रत्नाकरं वारुणमालय स्म ।।३३

समुद्रं ते समासाद्य वारुणं त्वम्भसानिधिम् ।
कालेयास्समपद्यन्त त्रैलोक्यस्य विनाशनेः ॥३४
ते रात्रौ समभिक्रुद्धा बभक्षुस्तांस्तदा मुनीन् ।
आश्रमेषुच ये सन्ति पुण्येष्वायतनेषु च ॥३५

झप मछलियो से घिरे हुए और रत्नो से आकुल उस समुद्र मे सबने एकत्रित होकर मन्त्रणा की थी । वहाँ पर कुछ लोग मति के निश्चय के ज्ञाना उन-उन उपायो का चिन्तन कर रहे थे ॥२६॥ भय से पीड़ित और देवो के समुदाय से सतप्त होने वाले उन्होने त्रिलोकी के नाश कर देने की बुद्धि की थी । वहाँ पर चिन्तन करने वाले उनको कालक्षय के योग से अति घोर बुद्धि हो गई थी ॥३०॥ जो भी कोई विद्या और तप से समन्वित हैं उनका विनाश सबसे पहिले करना चाहिए । समस्त लोक तप से ही धारण किये जाते हैं इसलिये तप के लिये ही शीघ्रता से कार्य करें ॥३१॥ जो कोई भी इस पृथ्वी पर तपस्वीजन हो और धर्म के ज्ञाता पुरुष हो उनका ही वध शीघ्राति शीघ्र कर दिया जावे । उनके नष्ट हो जाने पर यह समस्त जगत् नष्ट हो जायगा । ॥३२॥ इस प्रकार से सभी लोग हीन बुद्धि हो गये थे और सम्पूर्ण जगत् के विनाश के कार्य से बहुत ही प्रसन्न थे । महान् ऊर्मियो से युक्त रत्नो की खान उस वरुण देव के आलय सागर को अपना एक किला समझकर वे सब उसी मे समाश्रित हो रहे थे । ३३॥ जलो के निधि उस वारुण समुद्र को प्राप्तकर वे कालेय तीनो लोको के विनाश करने मे सलग्न हो गये थे ॥३४॥ वे लोग अत्यन्त अभिक्रुद्ध होकर रात्रि मे उस समय उन मुनियो का भक्षण करते थे जो अपने आश्रमो मे और पुण्य आयतनो मे निवास किया करते थे ॥३५ ।

आजग्मु परमोद्विग्नास्त्रिदशा मनुजेश्वर ।
समेत्य समहेन्द्रास्तु भयान्मन्त्र प्रचक्रिरे ॥३६
नारायण पुरस्कृत्य वैकुण्ठमपराजिनम् ।
ततो देवास्समेतास्ते तदोचुर्मधुसूदनम् ॥३७
त्व न स्रष्टाच गोप्ता च भर्ता च जगत प्रभो: ।
त्वयासृष्टं-जगत्सर्वं यच्चेङ्गं यच्चनेङ्गति ॥३८

ते प्रविश्योदधिं घोरं नानाग्राहसमाकुलम् ।
उत्सादनार्थं लोकस्य रात्रौ घ्नन्ति मुनीनिह ।।३६

न तु शक्या.क्षय नेतं समुद्रान्तर्हिता हि ते ।
समुद्रस्य क्षये बुद्धिर्भवद्भि परिचिन्त्यताम् ।।४०

एतच्छ्रुत्वा वचो देवा विष्णुना समुदाहृतम् ।
परमेष्ठिनमासाद्य अगस्त्यस्याश्रम ययु. ।।४१

तत्रापश्यन्महात्मान वारुण दीप्ततेजसम् ।
उपास्यमानमृषिभिर्देवैरिव पितामहम् ।।४२

तेऽभिगम्य महात्मान मैत्रावरुणिमुत्तमम् ।
अप्रमत्त तपोराशि कर्मभि स्वैरनुष्ठितं ।।४३

हे मनुजेश्वर ! उस समय में अत्यन्त उद्विग्न होकर देवता वहाँ पर आये थे और महेन्द्र के सहित सब एकत्रित होकर भय से भीत हुए मन्त्रणा करने लगे ।।३६।। इसके अनन्तर एकत्रित हुए वे सब देवता अपराजित वैकुण्ठ निवासी नारायण के आगे होकर भगवान् मधुसूदन से बोले । हे इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ! आप ही हम सबके सृजन करने वाले हैं । आप ही रक्षक और सबका भरण करने वाले हैं । इस सम्पूर्ण जगत् को जो स्थावर और जङ्गम स्वरूप वाला है आपने ही रचा है ।। ३७।३८ ।। देवगण के द्वारा इस प्रकार से प्रार्थना करने पर भगवान् विष्णु ने कहा—हे समस्त सुरगणो ! मुझे प्रजा के क्षय होने का कारण ज्ञात होगया है । मैं आप सबको भी बतलाता हूँ । आप सब सन्ताप का त्याग करके उसका श्रवण करो । परम दारुण कुछ गण हैं जो 'कालकेय'—इस नाम से प्रसिद्ध हैं ।।३६।। वे वृत्रासुर को मरा हुआ देखकर जो कि इन्द्र ने अपनी बुद्धि के बल से मार डाला था, अपने जीवन की रक्षा करते हुए वरुणदेव के आलय समुद्र में प्रविष्ट हो गये हैं ।। ४० ।। अनेक ग्राहों से घिरे हुए इस घोर उदधि में वे प्रवेश करके लोकों के नाश करने के लिये रात्रि में मुनियों को मारा करते हैं ।।४१।। वे समुद्र के अन्दर छिपे हुए रहते हैं इसलिये उनका क्षय नहीं किया जा सकता है । अब आप लोग इस समुद्र के जल का ही शोषण होकर क्षय हो जावे—ऐसी कोई बुद्धि का चिन्तन

करो ।। ४२ ।। भगवान् विष्णु के द्वारा कहे हुए इस वचन को सुनकर देवगण परमेष्ठी ब्रह्माजी के पास पहुँचकर फिर अगस्त्य मुनि के आश्रम में गये थे ।४३।

नहुषेणाभितप्तानां लोकानां त्वं गतिः पुरा ।
भ्रंशितश्च सुरैश्वर्याल्लोकार्थं लोककण्टकः ।।४४
क्रोधात्प्रवृद्धः सहसा भास्करस्य नगोत्तमः ।
वचस्त्वानतिक्रामन्विन्ध्यःशैलो न वर्धते ।।४५
तमसाच्छादिते लोके मृत्युनाभ्यर्दिता प्रजाः ।
त्वामेव नाथमागम्य निर्वृतिं परमागताः ।।४६
अस्माकं भयभीतानां नित्यमेव भवान्गतिः ।
ततस्त्वद्य प्रयाचामस्त्वां वरं वरदो ह्यसि ।।४७
त्रिदशानांवचः श्रुत्वा मैत्रावरुणिरब्रवीत् ।
किमर्थं समुपायाता वरमत्तः किमिच्छथ ।।४८
एवमुक्तास्तदा तेन देवास्तं मुनिमब्रुवन् ।
इच्छाम एवं वरमद्भुतं वय पिबार्णवं देवमुने महात्मन् ।।४९
एवं त्वयेच्छेमकृते महर्षे महार्णवं पीयमानं समग्रम् ।
ततो विहन्याम च सानुबन्धं कालेयसंज्ञं सुरविद्विषां बलम् ।।५०
त्रिदशानांवचः श्रुत्वा तथेति मुनिरब्रवीत् ।
करिष्ये भवतां काममलोकानांसुखकारकम् ।।५१

यहाँ पर देवों के द्वारा पितामह की भाँति ऋषियों के द्वारा उपासित होने वाले—दीप्त तेज से युक्त महात्मा वरुण का देवगण ने दर्शन प्राप्त किया था । वे सब परमोत्तम महान् आत्मा वाले—प्रमाद से रहित अपने किये हुए कर्मों से तप के समूह मैत्रावरुणि के पास उपस्थित हुए थे ।।४४।४५।। देवगण ने कहा—हे मुनिवर ! पहिले नहुष के द्वारा अभितप्त से संयुत लोकों की आप ही गति हुए थे अर्थात् आपने ही लोकों का उद्धार किया था । लोकों की भलाई के लिये उन लोकों को कष्ट देने वाले कण्टक रूपी दुष्ट का सुरैश्वर्य से भ्रंश किया था ।।४६।। वह भास्कर का नगोत्तम अर्थात् पर्वतों में श्रेष्ठ बहुत बड़ा था और क्रोध से अत्यधिक बढ़ता ही आ रहा था । उस समय उसने आपके वचन

की भी अवहेलना करदी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि अब वह विन्ध्य नहीं बढ़ता है ॥ ४७ ॥ अन्धकार से समाच्छादित इस लोक में सम्पूर्ण प्रजा अत्यन्त ही मृत्यु के द्वारा उत्पीडित हो रही थी। उस समय में नाथ आपको ही प्राप्त करके समस्त प्रजा परम निर्वृति को प्राप्त हुई थी ॥ ४८ ॥ हम लोग जब कभी भी भय से त्रस्त होते हैं उस समय में हमेशा ही आप हमारे उद्धार करने वाले हुआ करते हैं। इसीलिये आज भी हम सब आपकी याचना कर रहे हैं। आप ही परम श्रेष्ठ और रक्षक हैं। अब आप हमको वरदान प्रदान करने वाले हो जावें ॥ ४९ ॥ देवताओं के इस प्रार्थनापूर्ण वचन को श्रवणकर मैत्रावरुणि बोले—हे देवताओ ! आप लोग यहाँ किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये आये हैं और आप लोग मुझसे क्या वरदान चाहते हैं ? ॥ ५० ॥ उस महर्षि के द्वारा इस प्रकार से कहे गये देवगण उस मुनि से बोले—हम लोग आपसे एक अत्यद्भुत वरदान चाहते हैं। हे महात्मन् ! हे देवमुने ! आप इस सागर का पान कर लीजिये। हे महर्षे ! हम लोग आपके द्वारा इस सम्पूर्ण महासागर को पीया हुआ चाहते हैं आपके द्वारा इस प्रकार किये जाने पर फिर हम देवों के शत्रुओं के कालेय संज्ञा वाला जो बल है उसे अनुबन्ध के सहित नष्ट कर देंगे ॥ ५१ ॥

एवमुक्त्वा ततोऽगच्छत्समुद्रं निधिमम्भसाम् ।
तप.सिद्धैश्च मुनिभि.सार्धंदेवैश्च सुव्रत ॥५२
मनुष्योरगगंधर्वा यक्षाः किंपुरुषास्तथा ।
अनुजग्मुर्महात्मानं द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥५३
ततोऽभ्यपश्यत्सहितैः समुद्रं भीमनिःस्वनम् ।
नृत्यन्तमिवचोर्मीभिर्वल्गान्तमिव वायुना ॥५४
हसंतमिव फेनौघैःस्खलन्तं कन्दरेषु च ।
नानाग्राहसमाकीर्णं नानाद्विजगणैर्युतम् ॥५५
अगस्त्यसहिता देवाः सगंधर्वमहोरगाः ।
ऋषयश्च महाभागा. समासेदुर्महोदधिम् ॥५६
समुद्रं स समासाद्य वारुणिर्भगवानृषिः ।
उवाच सहितान्देवानृषींस्तांस्तु समागतान् ॥५७

देवगण के इस वचन को सुनकर मुनि ने 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही किया जायगा—यह कहकर स्वीकार कर लिया था। मुनि ने इसके उत्तर में कहा था— हे देवगण ! मैं आप लोगों का कार्य करूँगा क्योंकि वह आपकी अभिलाषा लोकों को सुख प्रदान करने वाली है ॥५२॥ हे सुव्रत ! इस प्रकार से कहकर फिर वह जलों के निधि समुद्र के समीप चले गये थे। उनके साथ बहुत-से तपस्या में सिद्ध—मुनि और देवगण भी गये थे ॥५३॥ इस परम अद्भुत कार्य को देखने की इच्छा वाले उन महात्मा के पीछे पीछे मनुष्य—उरग—गन्धर्व—यक्ष—किम्पुरुष भी चले गये थे ॥५४॥ इसके अनन्तर सबके साथ उन मुनि ने महान् भयानक शब्द करने वाले ऊर्मियों (लहरों) के द्वारा नृत्य सा करता हुआ और वायु से बलगते हुए समुद्र को देखा था। फेनों के समूह से हास करते हुए की भाँति कन्दराओं में स्खलन करते हुए अनेक प्रकार के ग्राहों से समन्वित और विविध भाँति के पक्षियों से युक्त सागर को उन मुनि ने देखा था ॥५५-५६॥ अगस्त्य मुनि के सहित देवगण, गन्धर्वों के साथ महोरग, ऋषि वृन्द और महाभाग्य वाले सब लोग समुद्र के पास प्राप्त हो गये थे ॥५७॥

पातुकामः समुद्रं च अगस्त्यऋषिसत्तमः ।
एष लोकहितार्थाय पिबामि वरुणालयम् ॥५८

भवतां यदनुष्ठेयंतच्छीघ्रं संविधीयताम् ।
एतावदुक्त्वा वचनं मैत्रावरुणिरव्ययः ॥५९

समुद्रमपिबत्क्रुद्धःसर्वलोकस्य पश्यतः ।
पीयमानं समुद्रं तु दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥६०

विस्मयं परमंजग्मुस्स्तुतिभिश्चाप्यपूजयन् ।
त्वं नस्त्राता विधाता च लोकानां लोकभावनः ॥६१
त्वत्प्रसादात्समुत्सेधमुपगच्छेत्समं जगत् ॥६२

संपूज्यमानस्त्रिदशैर्महात्मा गन्धर्वमुख्येषु नदत्सु चैव ।
दिव्यैश्च पुष्पैरवकीर्यमाणो महार्णवं निःसलिलं चकार ॥६३
दृष्ट्वा कृतं निःसलिलं महार्णवं सुराःसमस्ताः परमप्रहृष्टाः ।
प्रगृह्य दिव्यानि वरायुधानि तान्दानवाञ्जघ्नुरदीनसत्त्वाः । ६४

यह भगवान् वारुणि महर्षि समुद्र के समीप में पहुँचकर आये हुए उन समस्त देवता और ऋषियों से बोले—॥५८॥ ऋषियों में परम श्रेष्ठ अगस्त्य इस समुद्र के पान करने की इच्छा वाले हैं। मैं लोकों के हित सम्पादन करने के ही लिये इस वरुण के आलय सागर का पान करता हूँ। ५६॥ इस समय में आप लोगों को जो भी कुछ करना हो उसे अति शीघ्रता से कर डालना चाहिये। इतना वचन कहकर मैत्रा वरुणि ने सब के आगे सभी लोगों के देखते हुए क्रुद्ध होकर समुद्र का पान कर लिया था। पीये गये उस समुद्र को देख कर इन्द्र के सहित सब देवगण वहाँ उपस्थित थे॥६०।६१॥ सभी लोग परम आश्चर्य को प्राप्त हुए थे और फिर सबने स्तुतियों के द्वारा उनकी अर्चना की थी। आप लोकों पर अनुग्रह करने वाले हैं। आप हमारी रक्षा करने वाले हैं॥६२॥ आपकी कृपा से यह सम्पूर्ण जगत् समुन्नति को प्राप्त हो गया॥६३॥ गन्धर्वों प्रमुखों के द्वारा जयकार की ध्वनि की जाने पर यह महान् आत्मा वाले महर्षि अगस्त्य देवगण के द्वारा भली भाँति पूजित हुए थे। देवाङ्गनाओं के द्वारा दिव्य पुष्पों की आकाश से उन पर वृष्टि की गई थी। इस तरह से उन महर्षि ने उस सागर को पीकर जलशून्य बना दिया था॥६४॥

ते वध्यमानास्त्रिदशैर्महात्मभिर्महाबलैर्वेगयुतैर्नदद्भिः ।
न सेहिरे वेगवता महात्मना वेगं तदाधारयितुं दिवौकसाम् ॥६५

ते वध्यमानास्त्रिदशैर्दानवा भीमनिःस्वनाः ।
चक्रुः सुतुमुलंयुद्धं मुहूर्तमिव भारत ॥६६

ते पूर्वं तपसादग्धा मुनिभिर्भावितात्मभिः ।
यतमाना परं शक्त्या त्रिदशैर्विनिषूदिताः ॥६७

ते हेमनिष्कभरणाः कुण्डलाङ्गदधारिणः ।
निहता बह्वशोभन्त पुष्पिताइव किंशुकाः ॥६८

हतशिष्टास्ततः केचित्कालेयदनुजोत्तमाः ।
विदार्य वसुधां देवीं पातालतलमाश्रिताः ॥६६

निहतान्दानवान्दृष्ट्वा त्रिदशा मुनिपुङ्गवम् ।
तुष्टुवुर्विविधैर्वाक्यैरिदंचैवाब्रुवन्वचः ॥७०

उस महासागर को जल से रहित बनाया हुआ देखकर समस्त देवता अत्यन्त ही प्रसन्न हुए थे। पूर्ण सत्त्व से समन्वित देवों ने अपने दिव्य एवं परम श्रेष्ठ आयुधों को ग्रहणकर उन समुद्र में छिपकर रहने वाले दानवों को मार दिया था ॥६५॥ महात्मा देवगणों के द्वारा वध किये जाने वाले वे दानव उस समय में उनके वेग को रोकने में समर्थ नहीं हो सके थे। वे देवता भी महान् बल से सम्पन्न थे और अत्यन्त वेग से युक्त सिंहगर्जन करने वाले थे। ऐसे देव गण का वेग भी महान् हो था जिसका सहन करना बहुत ही दानवों के लिये कठिन हो रहा था ॥६६॥ हे भारत! जिस समय में वे दानवगण देवों के द्वारा वध किये जा रहे थे वे बड़ा ही भयानक शब्द कर रहे थे और थोड़ी देर तक देवों के साथ उन्होंने महान् घोर युद्ध भी किया था ॥६७॥ वे दानव पहिले तो भावितात्मा मुनियों के द्वारा तप से दग्ध किये गये थे फिर वे प्रयत्नशील देवगण के द्वारा शक्ति से नष्ट किये गये थे ॥६८॥ वे सुवर्ण के निष्क आभरण वाले और कुण्डल तथा अङ्गदों के धारण करने वाले दानव जब निहत होकर भूमि पर पड़े हुए थे तब वे सब खिले हुए पुष्पों से युक्त किंशुक के वृक्षों के समान अत्यधिक शोभित हो रहे थे। ६९। उस समय में जो भी दानव हनन से शेष बच गये थे, जो दनुओं में उत्तम कालेय नाम से प्रसिद्ध थे, वे इस भूमि का विदारण कर पाताल तल में जाकर स्थित हो गये थे। वहीं पर ही उन्होंने अपना आश्रय बना लिया था ॥७०॥

त्वत्प्रसादान्महाभाग लोकैः प्राप्तं महत्सुखम् ।
त्वत्तेजसा च निहताः कालेयाः क्रूरविक्रमाः ॥७१
पूरयस्व महाबाहो समुद्रं लोकभावन ।
यत्त्वया सलिलं पीतं तदस्मिन्पुनरुत्सृज ॥७२
एवमुक्तः प्रत्युवाच भगवान्मुनिपुङ्गवः ।
जीर्णं तद्धि मया तोयमुपायोऽन्यः प्रचिन्त्यताम् ॥७३
पूरणार्थं समुद्रस्य भवद्भिर्यत्नमास्थितैः ।
एवं श्रुत्वा तु वचनं महर्षेर्भावितात्मनः ॥७४
विस्मिताश्च विषण्णाश्च बभूवुः सहिताः सुराः ।
परस्परमनुज्ञाप्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ॥७५

प्रजाःसर्वामहाराज निप्राजग्मर्यथागतम् ।
त्रिदशा विष्णुनासार्द्धं मनुजग्मुः पितामहम् ॥७६
पूरणार्थं समुद्रस्य मन्त्रयन्तःपरस्परम् ।
ऊचुःप्राञ्जलयस्सर्वे सागरस्य हि पूरणम् ॥७७

समस्त दानवों को निहत (मरे हुए) देखकर देवगण मुनियों में प्रद्यु-त्तम अगस्त्य का स्तवन करने लगे थे और अनेक प्रकार के वाक्यों से उनकी स्तुति की थी। फिर देवताओं ने उनसे यह वचन बोले थे—॥७१॥ हे महा भाग! आज आपके ही प्रसाद से समस्त लोकों ने यह महान् सुख प्राप्त किया है। यह आपके ही तेज का प्रभाव है कि बड़े ही भीषण पराक्रम वाले ये कालेय दानव मारे गये हैं। ७२॥ हे महाविप्र! अब आप इस लोक पर कृपा करने वाले इस समुद्र को पूरित कर दीजिये। आपने जो इसके जल का पान कर लिया है उसे पुनः इसी में छोड़ दीजिये। जिससे यह फिर पूर्व की भाँति जल से भरा पूरा दिखलाई देने लगे ॥७३॥ इस तरह से प्रार्थना किये गये मुनि श्रेष्ठ ने उन देवों से कहा था कि वह जल तो मुझे सब पच गया है। अब तो इसका कोई अन्य उपाय ही सोचिये। यदि आप लोग इस सागर को जल से पूरित करना चाहते हैं तो आप कोई भी और यत्न करने में समास्थित हो जाइये। इस तरह भावित आत्मा वाले उस महर्षि के वचन को उन समस्त देवों ने श्रवण किया था ॥६४॥ तब तो समस्त सुरगण बहुत ही आश्चर्य से समन्वित और अत्यन्त विषाद से संयुक्त हो गये थे। उन सबने आपस में अनुज्ञापन करके मुनि श्रेष्ठ को प्रणाम किया था ॥७५॥ हे महाराज! उस समय में सारी प्रजा और विप्रगण जैसे ही वहाँ पर आये थे, चले गये थे। समस्त देवगण भगवान् विष्णु के साथ फिर पितामह के पास चले गये थे। ॥७६॥ सभी देवता उस समुद्र को जल से भरा पूरा करा देने के लिये आपस में मन्त्रणा करते हुए हाथ जोड़कर सबने सागर की पूर्ति के लिये प्रार्थना की थी ॥७७॥

तानुवाच समेतांस्तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
गच्छध्वं विबुधास्सर्वेयथाकामं यथेप्सितम् ॥७८

महताकालयोगेन प्रकृति यास्यतेऽर्णवः ।
ज्ञातीस्तु कारणं कृत्वा महाराजोभगीरथः ॥७६
गङ्गौघेन समुद्रं च पुन मपूरयिष्यति ।
एव ते ब्रह्मणा देवा प्रेषिता ऋषिसत्तमाः ॥८०
उवाच भगवांस्तुष्टस्त्वगस्त्यमृषिसत्तमम् ।
देवकार्यं तु भवता दानवानां विनाशनम् ॥८१
यतस्सतारिता देवास्तेनतुष्टोऽस्मि वै मुने ।
अभिप्रेतो वरो यस्ते याचयस्व ददाभितम् ॥८२
एवमुक्तस्तदागस्त्यः प्रणिपातपुरसरम् ।
इहस्थेन मया देव देवकार्यमिद कृतम् ॥८३
सर्वाश्रमाणां प्रवरो भवत्वेष ममाश्रम. ।
त्वया चोक्तस्तु भगवन्भविता नात्र सशयः ॥८४

उन समस्त समागत हुए देवताओं से पितामह श्री ब्रह्माजी ने कहा था कि हे देवगण ! आप सब लोग अपनी इच्छा के अनुसार अपने-अपने अभीष्ट स्थान पर चले जावे ॥७८॥ महान् काल के योग से यह महासागर अपने ही आप स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो जायगा । महाराज भगीरथ अपने भाइयो तथा पूर्वजों के उद्धार का कारण बनकर ऐसा ही कोई कार्य करेंगे ।७६॥ इस सागर को गङ्गा के प्रवाह मे फिर पूरित कर देंगे। इस प्रकार से हे ऋषियो मे श्रेष्ठ गणो ! पितामह ने उन देवताओ को वापिस भेज दिया था ॥८०॥ फिर भगवान् ने परम प्रसन्न होते हुए अगस्त्य ऋषि श्रेष्ठ से कहा था कि आपने देवताओ का बहुत बडा यह कार्य किया है जिससे कि दानवो का पूर्ण विनाश हो गया है ॥८१॥ हे मुने ! आपने समस्त देवो को संतारित कर दिया है, इससे मैं आप से बहुत ही प्रसन्न एव तुष्ट हो गया हूँ । अब आपको जो भी अपना अभीष्ट वरदान हो वह मुझ से इस समय मे माँग लो । उसे ही मैं आपको दे दूँगा ॥८२॥ इस रीति से जब मुनि से कहा गया तो अगस्त्य मुनि ने प्रणाम करके कहा—हे देव ! मैने यहाँ पर स्थित होकर ही यह देवगण का महान् कार्य सम्पन्न कर दिया है ॥८४॥ इसलिये अब मेरी यही प्रार्थना है

कि यह मेरा आश्रम समस्त आश्रमों से श्रेष्ठतम हो जावे। आप ने जब यह दिया है तो यह अवश्य ही ऐसा ही हो जायगा—इस में लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥८४॥

आश्रमेषु यथोक्तेषु यथोक्तं वै द्विजातयः।
ये वर्तन्ते समन्त्रास्तु तेषा लोकामहोदयाः ॥८५
ये न हिंसन्ति भूतानि कर्मणा मनसा गिरा।
अनृशंसतराः सन्तः सर्वदा च प्रियंवदाः ॥८६
अग्निहोत्ररतानित्यं नित्यं चातिथिपूजकाः।
नित्यं स्वाध्यायवन्तश्च नित्य स्नानपरायणाः ॥८७
मातृवत्स्वसृवच्चैव तथा दुहितृवच्च हु।
परदारान्प्रपश्यन्ति सततं विगतस्पृहाः ॥८८
येऽधिक्षिप्ताः न कुप्यन्ति न हिंसन्ति च हिंसिताः।
समदुःखसुखाः सन्तो महात्मानो जितेन्द्रियाः ॥८९
ते हि सर्वे प्रपश्यन्ति पुरा चेरुर्महीमिमाम्।
समाधिना चिन्तयन्तो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥९०

ब्रह्माजी के वरदान से फिर ऐसा ही प्रभाव हुआ था कि यथोक्त आश्रमों में जो द्विजातिगण थे वे सभी ठीक-ठीक आश्रमों का परिपालन करने वाले थे। जो वहाँ रहते थे वे सब मन्त्रों से युक्त थे और उनके लोक भी महान् दया वाले थे ॥८५॥ वहाँ पर कोई भी मन-वाणी और कर्म के द्वारा प्राणियों की हिंसा नहीं करते थे। सभी लोग नृशंसता से रहित होते हुए सदा परम प्रिय वचन बोलने वाले थे ॥८६॥ समस्त लोग अग्निहोत्र करने में रत रहने वाले थे और नित्य ही अतिथियों की अर्चना किया करते थे। सभी लोग नित्य ही स्वाध्याय किया करते थे और नित्य स्नान करने में तत्पर रहते थे ॥८७॥ सब लोग पराई स्त्रियों को माता, भगिनी और पुत्री के समान देखा करते थे और सर्वदा कोई भी किसी प्रकार की स्पृहा नहीं किया करते थे ॥८८॥ उन पर कोई अधिक्षेप भी कर देता था तो भी वे किसी भी प्रकार कोप नहीं किया करते थे। यदि कोई पुरुष उनके प्रति हिंसा का भाव रखता था तो वे स्वयं

हिंसित होकर भी किसी प्रकार भी बदले मे हिंसा नहीं किया करते हैं। सभी महान् आत्मा वाले, इन्द्रियों को अपने वश मे रखकर उन्हे जीत लेने वाले थे और उनके लिये सुख तथा दुःख दोनों ही समान थे ॥८९॥ वे सब पहिले इस भूमि पर समभाव से देखते हुए विचरण किया करते थे। समाधि से सर्वदा सनातन ब्रह्मलोक का चिन्तन किया करते थे ॥९०॥

अथाभवदनावृष्टि. कदाचिन्महती तदा ।
कृच्छ्रं प्रायोह्यभूत्तत्र सर्वलोक. क्षुधार्दितः ॥९१
ततो निरन्नेलोकेऽस्मिन्नात्मानं ते परीप्सव. ।
मृत कुमारमादाय कृच्छ्रप्रायास्तदापचन् ॥९२
अथ पर्यचरत्तत्र विलश्यमानान्हि तानृषीन् ।
दृष्ट्वा राजा विषादार्त्त. प्रोवाचेद वचन्तदा ॥९३
प्रतिग्रहो ब्राह्मणाना दृष्टा वृत्तिरनिन्दिता ।
तस्मात्प्रतिग्रहान्मत्तो गृह्णीध्वमुनिसत्तमा. ॥९४
वरान्ग्रामान्व्रीहियवान्रत्नानि काञ्चनम् ।
गाश्च धेनूश्च तत्सर्व मा मास पचत द्विजाः ॥९५
राजन्प्रतिग्रहो घोरो मध्वास्वादो विषोपम. ।
तज्जानता नः कस्मात्त्व कुरुषे सम्प्रलोभनम् ॥९६
दशसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजी ।
दशध्वजिसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृप ॥९७
दशसूना सहस्राणि यो वाहयति शौण्डिकः ।
तेन तुल्यस्ततोराजा घोरस्तस्य प्रतिग्रह ॥९८

इसके अनन्तर किसी समय मे यहाँ पर बडी भारी अनावृष्टि हुई थी और वहाँ पर उस समय मे सबका जीवन बहुत कष्टो से परिपूर्ण होगया था तथा सभी लोग भूख से पीडित हो गये थे ॥९१॥ उस समय लोक में अन्न का पूर्णतया अभाव होगया था और ऐसा महान् भीषण समय उपस्थित होगया कि लोग अपने प्राणो की रक्षा की इच्छा रखने हुए अपने ही मृत हुए कुमार को कष्टापन्न होकर पकाने लग गये थे ॥९२॥ वहाँ पर राजा ने क्लेश को प्राप्त हुए

उन ऋषियों को देखकर उनकी परिचर्या की थी और उस समय में विषाद से अत्यन्त आर्त्त होकर उनसे वह यह वचन बोला ॥९३॥ राजा ने कहा—ब्राह्मणों का प्रतिग्रह एक अनिन्दित वृत्ति है—ऐसा देखकर मैं प्रार्थना करता हूँ कि इसलिये हे मुनिश्रेष्ठो ! आप लोग मुझ से प्रतिग्रह को ग्रहण करो ॥९४॥ आप लोग श्रेष्ठ ग्राम, व्रीहि और यव, रस, रत्न, सुवर्ण, गौ और धेनु ये सभी मुझ से प्राप्त करो किन्तु हे द्विजगण ! आप लोग मांस का पाचन मत करो ॥९५॥ ऋषियों ने कहा—हे राजन् ! यह प्रतिग्रह तो महान् घोर मदिरा के या मधु के आस्वाद के समान है किन्तु यह परिणाम में विष के ही तुल्य होता है। इसको भली-भाँति जानने वाले हम को आप क्यों इसका प्रलोभन कर रहे हैं ? ॥९६॥ दश सूनों के समान एक चक्री होता है और दश चक्रियों के तुल्य एक ध्वजी होता है। दश ध्वजियों के बराबर एक वेश्या होती है और दश वेश्याओं के समान एक नृप हुआ करता है। सहस्र दशसूनों का जो वाहन करता है वह शौण्डिक होता है उसके समान राजा कहा गया है। इसलिये राजा का प्रतिग्रह तो महान् घोर होता है ॥९७।९८॥

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति ब्राह्मणो लोभमोहितः।
तामिस्रादिषु घोरेषु नरकेषु स पच्यते ॥९९
तद्गच्छ कुशलं तेऽस्तु सहदानेन पार्थिव।
अन्येषां दीयतामेतदित्युक्त्वा ते वनं ययुः ॥१००
अथ राज्ञः समादेशात्तत्र गत्वाथ मन्त्रिणः।
उदुम्बराणि व्यकिरन्हेमगर्भाणि भूतले ॥१०१
ततो ह्यन्न विचिन्वन्तो गृह्य त्रोदुम्बराण्यपि।
गुरूणि हि विदित्वा तु न ग्राह्याण्यत्रिरब्रवीत् ॥१०२
नास्महे मूढविज्ञाना नास्महे मन्दबुद्धयः।
हैमानीमानि जानीमः प्रतिबुद्धाः स्मज्ञानिनः ॥१०३
इहैवेद वसुप्रीत्यै प्रेत्य वैकुण्ठितोदयम्।
तस्माच्च ग्राह्यमेवैतत्सुखमानन्त्यमिच्छता ॥१०४
शतेन गुणितं निष्कं सहस्रेण समन्वितम्।
यश्चान्यत प्रतीच्छेत्स पापिष्ठां लभते गतिम् ॥१०५

अकिञ्चनत्वं राज्यं च तुलया समतोलयत् ।
अकिञ्चनत्वमधिकं राज्यादपि हितात्मनः ॥११०
अनर्थो ब्राह्मणस्यैष यस्त्वर्थ निचयो महान् ।
अर्थैश्वर्यविमूढो हि श्रेयसो भ्रश्यते द्विजः ।
अर्थसंपद्विमोहाय विमोहो नरकाय च ॥१११
तस्मादर्थमनर्थाख्यं श्रेयोऽर्थीदूरतस्त्यजेत् ।
यस्य धर्मार्थमर्थेहा तस्यानीहा गरीयसी ॥११२

वसिष्ठ मुनि ने कहा—एक तो यहाँ पर तप का संग्रह करता है और दूसरा जिसके पास धन का सञ्चय होता है। इन दोनों में तप का सञ्चय ही विशेषता से युक्त होता है धन का संग्रह तो उसके मुकाबिले में कुछ भी महत्व नहीं रखता है ॥१०७॥ इसलिये सभी प्रकार के संचयों को त्याग दो। ये सभी उपद्रव हैं और इनसे नाश की प्राप्ति हुआ करती है। इस संसार में कोई भी सञ्चय करने वाला पुरुष उपद्रव से रहित नहीं दिखलाई देता है ॥१०८॥ ब्राह्मण जैसे-जैसे धनादिपरिग्रह को ग्रहण नहीं करता है वैसे ही सन्तोष धारण करने से उसका ब्राह्म-तेज बढ़ता है ॥१०९॥ अकिञ्चनत्व अर्थात् पास में कुछ भी न रहना और राज्य के विशाल वैभव को तुला में तोला गया था तो उस समय में हितात्मा का जो अकिञ्चनत्व था वह राज्य के वैभव से अधिक प्राप्त हुआ था ॥११०॥ कश्यप ऋषि ने कहा—जो ब्राह्मण के पास अर्थ का महान् निचय होता है वह ब्राह्मण के लिये एक प्रकार का अनर्थ ही होता है। जो ब्राह्मण ऐश्वर्य से विमूढ हो जाता है वह श्रेय से भ्रष्ट हो जाया करता है। अर्थ की जो सम्पत्ति होती है उससे विशेष मोह उत्पन्न हो जाया करता है और विमोह नरक के लिये हुआ करता है ॥१११॥ इसलिये यह जो अर्थ (धन-दौलत) है वह अनर्थ नाम वाला ही होता है अर्थात् इस अर्थ से अनर्थ की ही उत्पत्ति सर्वदा होती है। जो श्रेय के चाहने वाला हो उसे दूर से ही इस अर्थ को त्याग देना चाहिए। जिसकी केवल धर्म करने के लिये धन को प्राप्त करने की अभिलाषा होती है उसकी अनीहा बड़ी होती है अर्थात् धन की बिल्कुल ही इच्छा न रखना अधिक महत्व वाली हुआ करती है ॥११२॥

ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति शाश्वतान् ।
योऽर्थानिच्छेन्नृपाद्विप्र शोचितव्यो महर्षिभिः ॥११३
न स पश्यति मूढात्मा नरके यातनाभयम् ।
प्रतिग्रहसमर्थोऽपि न प्रसज्येत्प्रतिग्रहे ॥११४
प्रतिग्रहेण विप्राणां ब्राह्मं तेज प्रशाम्यति ।
प्रतिग्रहसमर्थानां निवृत्तानां प्रतिग्रहात् ॥११५
य एव ददतां लोकास्ता एवप्रतिलिप्नताम् ।
विमलंतुर्यथानित्यमम्भस्थससतत विशेत् ॥११६
तृष्णा चैवमनाद्य ता तथा देहगतासदा ।
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यतिजीर्यतः ॥११७
सोऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजत सुखम् ।
इत्युक्त्वा हेमगर्भाणि त्यक्त्वा तानि फलानि वै ॥११८
ऋषयोजग्मुरन्यत्र सर्व एव दृढव्रताः ।
ततस्ते विचरन्तो वै मध्यम पुष्करं गता. ॥११९

दानशील पुरुषों के जो लोक होते हैं वे शाश्वत अर्थात् नित्य होते हैं ? उनको वह व्यक्ति जो धन के प्राप्त करने की इच्छा नहीं करते हैं प्राप्त किया करते हैं। जो विप्र राजा से धन प्राप्त करने की इच्छा किया करते हैं वे महर्षियों के द्वारा शोचनीय होते हैं ॥११३॥ वह ऐसा मूढ आत्मा वाला होता है कि उसे नरक में मिलने वाली यातनाओं का भय भी नहीं दिखलाई दिया करता है। प्रतिग्रह में समर्थ होते हुए भी प्रतिग्रह में प्रसक्ति नहीं करता है ॥११४॥ प्रतिग्रह लेने से विप्रों का जो ब्रह्म तेज होता है वह नष्ट हो जाया करता है। जो प्रतिग्रह के ग्रहण करने की शक्ति रखते हैं और फिर भी प्रतिग्रह लेने से निवृत्त होते हैं जो इस प्रकार के हों उन्हें ही लोक देते हैं और वे ही उसे ग्रहण नहीं किया करते हैं। सप्तर्षियों ने कहा—जिस प्रकार से विमल तन्तु जल में स्थित रहकर ही सदा प्रवेश किया करता है ॥११५॥११६॥ यह तृष्णा आदि और अन्त से रहित होती है और सदा इस देह के साथ ही लगी रहा करती है। यह तृष्णा ऐसी ही होती है कि बुरी बुद्धि वालों के द्वारा यह त्याग करने के

योग्य नहीं होती हैं। यह जीर्ण शरीर हो जाने पर कभी जीर्ण नहीं हुआ करती है ॥११७॥ इस प्रकार से कहते हुए उन्होंने उन मध्य में सुवर्ण वाले उदुम्बरों का त्याग कर दिया था ॥११८॥ वे समस्त ऋषि लोग बहुत ही सुदृढ व्रत वाले थे और वहाँ से किसी अन्य स्थान में चले गये थे। इसके अनन्तर वे विचरण करते हुए मध्यम पुष्कर में पहुँच गये थे ॥११९॥

ददृशुः सहसा प्राप्तं परिव्राजं शुनःसखम् ।
तेनेह सहितास्तत्र गत्वा किञ्चिद्वनान्तरम् ॥१२०
सरः परमपश्यन्त वृतं पद्मैर्जलाशयम् ।
निविष्टाः सरसस्तीरे चिन्तयन्तो गतिंशुभाम् ॥१२१
शुनःसखो मुनीन्सर्वानुवाच क्षुधितांस्तदा ।
सर्वे वदन्तु सहिताः कीदृशी क्षुत्प्रवेदना ॥१२२
तमूचुः सहितास्ते तु परिव्राजं शुनःसखम् ।
शक्तिखड्गगदाभिश्च चक्रतोमरसायकैः ॥१२३
बाधितैर्वेदना या तु क्षुधयासापि निर्जिता ।
श्वासकुष्ठक्षयाष्ठीलैर्ज्वरापस्मारशूलकैः ॥१२४
व्याधिभिर्जनितासापि क्षुधायानाधिकाभवेद् ।
हिरण्याङ्गदकेयूरमुकुटोज्ज्वलकुण्डलाः ॥१२५

वहाँ पर उन्होंने सहसा प्राप्त हो जाने वाले परिव्राज शुनःसख को देखा था। उसी के साथ मिलकर वे किसी दूसरे वन में चले गये थे ॥१२०॥ वहाँ पर कमलों से घिरा हुआ बहुत ही उत्तम एक जल का आशय सरोवर देखा था। वे सब उस सरोवर के तट पर बैठ गये थे और शुभ गति के होने के विषय में चिन्तन करने लगे ॥१२१॥ उस समय में क्षुधा से युक्त और पीड़ित उन समस्त मुनियों से शुनःसख परिव्राजक ने पूछा था—आप लोग सब हित के सहित यह बतलावें कि क्षुधा के कारण उत्पन्न होने वाली वेदना किस प्रकार की होती है ॥१२२॥ उस रीति से पूछे जाने पर उन सब ऋषियों ने मिलकर उस परिव्राजक शुनःसख को उत्तर देते हुए कहा था कि शक्ति खड्ग—गदा—चक्र—तोमर और सायक आयुधों से बाधित किये जाने पर जो वेदना उत्पन्न

होती है उसको भी क्षुधा से होने वाली वेदना ने जीत लिया है अर्थात् उपर्युक्त शस्त्रास्त्रों के द्वारा प्रहार प्राप्त करने से होने वाली वेदना से भी कहीं अधिक वेदना क्षुधा के कारण हुआ करती है। अग्नि—कुष्ठ (कोढ)—क्षय—अष्टोली—ज्वर—अपस्मार (मृगी) और शूल रोगों से जो वेदना मनुष्यों को हुआ करती है वह भी क्षुधा के कारण से होने वाली वेदना से अधिक नहीं होती है। क्षुधा के कारण तो ऐसी विकलता उत्पन्न हो जाती है कि सुवर्ण के निर्मित अङ्गद—केयूर—मुकुट और अत्युज्ज्वल कुण्डल ये समस्त भूषण क्षुधा में अच्छे नहीं लगा करते हैं, वहाँ पर जो भी मनुष्य स्थित होते हैं उन्हें कुछ भी नहीं सुहाया करता है ॥१२३।१२४।१२५॥

क्षुधाया न विराजन्ते तनये सस्थिता नराः ।
यथा भूमिगत तोय रविरश्मिर्विकर्षति ॥१२६
तद्वच्छरीरजानाड्यःशोष्यन्ते जठराग्निना ।
न शृणोति न चाघ्राति चक्षुषा नैव पश्यति ॥१२७
दह्यते क्षीयते मूढ शुष्यते क्षुधयार्दित ।
न पूर्वां दक्षिणा चापि पश्चिमा नोत्तरामपि ॥१२८
नचाधो नैव चोद्ध्वं चक्षुधाविष्टो हि विन्दति ।
मूकत्व वधिरत्व च जडत्वमथपङ्गुता ॥१२६
भैरवत्वममर्याद क्षुधाया सप्रवर्द्धत ।
जनक जननी पुत्रान्भार्या दुहितर तथा ॥१३०
भ्रातर स्वजन वापि त्यजति क्षुधयार्दित ।
न पितॄन्पूजयेत्सम्यग्देव चापि गुरु तथा ॥१३१
ऋषीनुपगताश्चापि क्षधाविष्टो न विन्दति ।
एवमन्नविहीनस्य भवन्त्येतानि देहिनाम् ॥१३२
अन्नात्परमतो लोके न भूत न भविष्यति ।
अन्नमूल जगत्सर्वमन्ने चैव प्रतिष्ठितम् ॥१३३

जिस प्रकार से सूर्य की किरणें भूमि में रहने वाले जल का विकर्षण किया करती हैं, ठीक उसी भाँति जठर में स्थित अग्नि के द्वारा शरीर में

समुत्पन्न नाडियों का शोषण क्षुधा की दशा मे हुआ करता है। जो क्षुधा से समुत्पीडित व्यक्ति होता है वह उस समय में कुछ भी श्रवण नही किया करता है—न वह सूंघता है और न वह कुछ भी देखा करता है। तात्पर्य यह है कि क्षुधा से क्षीण पुरुष की कर्ण, घ्राण और चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ ऐसी शिथिल एवम् शक्तिहीन हो जाती हैं कि अपना कुछ भी कार्य नही कर सकती हैं। क्षुधा से दुःखित मनुष्य एकदम मूढ होकर शोषित, दग्ध और क्षीण होता रहा करता है। उसे क्षुधा के कारण पूर्व—पश्चिम—दक्षिण और उत्तर दिशाओं का भी ज्ञान नही रहता है ॥१२६।१२७ १२८॥ जो पुरुष क्षुधा से आविष्ट होता है उसे ऊर्ध्व भाग और अधो भाग का भी कुछ ज्ञान नही रहा करता है। क्षुधा में गूँगापन—बहिरापन—जडता और पंगुता—भैरवता और मर्यादा से रहित हो जाना काफी बढ जाया करते हैं। जो आदमी भूख से पीडित होता है वह अपने पिता को—माता को—पुत्र को—भार्या को—पुत्री को—भाई को और अपने जनों को भी त्याग दिया करता है। भूखा व्यक्ति अपने पितरों को—देवगणों को तथा गुरुओं को भी भली भाँति समर्चित नही करता है ॥१२९॥ ॥१३०।१३१॥ यदि ऋषिगण भी घर पर आ जावें तो क्षुधा से पीडित पुरुष उनका भी समुचित समादर सत्कार नही किया करता है। इसी प्रकार से अन्न से रहित देहधारियों मे उपर्युक्त बातें सभी उत्पन्न हो जाया करती है। इस लोक मे भी अन्न की बहुत बडी महिमा है। इस संसार मे अन्न से बढकर अन्य कुछ भी नही है—न कभी अन्न से अधिक महत्व वाला कुछ भी पहिले हुआ था और न भविष्य मे भी इससे ज्यादा कुछ वस्तु होगी। यह सम्पूर्ण संसार का मूल एकमात्र अन्न ही है और सभी कुछ अन्न में ही प्रतिष्ठित है। इस अन्न की बडा विशाल महिमा है ॥१३२।१३३॥

देवद्विजसमीपस्थोऽन्नस्य दाता विमुच्यते।
प्रबुद्धो वा प्रमत्तो वा प्रमङ्गादागतोऽपि वा ॥१३४
भक्त्याविरहितो वापि शृण्वन्पापाद्विमुच्यते।
दानेनसमुत्ता विप्रा मुक्तिमोधर्मभाजिनः ॥१३५
यमो दमो वै नियमः प्रोक्तस्तत्त्वार्थदर्शिभिः।
ब्राह्मणाना विशेषेण दमो धर्मः सनातनः ॥१३६

दमस्तेजो वर्द्धयति पवित्रो दम उत्तमः ।
विपाप्मा चैव तेजस्वी पुरुषो दमतो भवेत् ॥१३७
ये केचिन्नियमालोके ये च धर्माश्शुभान्वयाः ।
सर्वयज्ञफल चापि दमस्तेभ्योविशिष्यते ॥१३८
तपो यज्ञस्तथा दान दमादेव प्रवर्तते ।
किमरण्ये त्वदान्तस्य दान्तस्यापि किमाश्रमे ॥१३९

देव—द्विज के समीप मे स्थित रहने वाला, अन्न का दान करने वाला पुरुष विमुक्त हो जाया करता है,चाहे वह प्रबुद्ध अर्थात् ज्ञान से सम्पन्न हो अथवा प्रमत्त हो या प्रसङ्गवश आया हुआ हो ॥ १३४ ॥ भक्ति-भाव से हीन होता हुआ भी श्रवण करता हुआ पापो से विमुक्ति पा जाया करता है । जो विप्रगण दान मे संयुक्त हुआ करते हैं वे अधिक सुख वाले और धर्म के भागी होते हैं ॥१३५॥ तत्व के अर्थो के जानने वाले महानुभावो ने यम—दम और नियम को बतलाया है किन्तु विशेष रूप से ब्राह्मणो मे दम ही एक सनातन धर्म होता है ॥१३६॥ दम तेज की वृद्धि किया करता है और दम परम पवित्र एवम् उत्तम होता है । दम के साधने से पुरुष पापो से रहित तथा अत्यन्त तेजस्वी हो जाया करता है ॥१३७॥ लोक मे जो कुछ भी नियम होते हैं और जो शुभ को प्रदान करने वाले धर्म कार्य होते है तथा सम्पूर्ण प्रकार के यज्ञो का फल जो होता है इन सभी से दम विशेषता रखने वाला होता है अर्थात् दम सबमे श्रेष्ठ होता है ॥१३८॥ सब प्रकार की तपश्चर्या—समस्त यज्ञयागादि और दान ये सभी दम से प्रवृत्त हुआ करते हैं अर्थात् इन सबका दम ही साधन स्वरूप होता है । जो दम से रहित है वह यदि अरण्य मे भी रहकर निवास करने वाला होवे तो उसका वहाँ पर रहना भी व्यर्थ ही होता है । तात्पर्य यह है कि बिना दम के कुछ भी फल नही मिलता है । जो दान्त अर्थात् दमशील है उसको आश्रम मे जाकर रहने की कोई आवश्यकता नही है क्योकि दम करने वाला जहाँ कही भी रहेगा वही उसका फल उसे प्राप्त हो जायगा । तात्पर्य यह है कि दम का रखना परम मुख्य है । १३९॥

यत्र यत्र वसेद्दान्तस्तदरण्य महाश्रम ।

शीलवृत्तसमेतस्य निगृहीतेन्द्रियस्य च ।
आर्जवे वर्तमानस्य आश्रमैः किं प्रयोजनम् ॥१४०
वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥१४१
सुकर्मधर्मार्जितजीवितानां सदा च सन्तुष्य गृहे रतानाम् ।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि धर्मो नियमस्थितानाम्॥१४२
न शब्दशास्त्रे निरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य ।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य न लोकचित्तग्रहणे रतस्य ॥१४३
एकांतशीलस्य दृढव्रतस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ।
अध्यात्मयोगे गतमानसस्य मोक्षो ध्रुवं नित्यमहिंसकस्य ॥१४४
सुखं च दान्तः स्वपिति सुखेन प्रतिबुध्यते । .
समः सर्वेषु भूतेषु मनो यस्य प्रबुध्यते ॥१४५
न रथेन सुखं याति न हयेन न दन्तिना ।
यथात्मना विनीतेन सुखं याति महापथे ॥१४६
न तु कुर्याद्धरिः स्पृष्टः सर्वोवाप्यतिरोपितः ।
अरिर्वानित्यसंक्रुद्धो यथात्मा दमवर्जितः ॥१४७
न यमं यममित्याहुरात्मा वै यमउच्यते ।
आत्मा वै यमितो येन स यमस्तु विशिष्यते ॥१४८
यमो यम इति प्रोक्तो वृथा बुद्धिजतेः जनः ।
आत्मा वै यमितो येन यमस्तस्य करोति किम् ? ॥१४९

दमशील पुरुष जहाँ-जहाँ भी निवास किया करता है वही अरण्य एवं सबसे बड़ा तथा श्रेष्ठ आश्रम जैसा हो जाया करता है। जो व्यक्ति शील और चरित्र से समन्वित होता है तथा जिसने अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रित कर अपने वश में कर लिया है एवं,जो सरल स्वभाव में समास्थित है उस पुरुष को किसी भी विशेष स्थान तथा आश्रमों में रहने की क्या आवश्यकता है ? ऐसा पुरुष तो जहाँ भी रहेगा वहीं उसका कल्याण हो जायगा ॥१४०॥ जिनका स्वभाव राग से युक्त है अर्थात् जिनके मन में काम, क्रोधादि शत्रुओं ने निवास कर

रखा है वे भले ही वन में जाकर सबसे दूर नितान्त एकान्त स्थान में भी निवास क्यों न करें उनको वहां पर भी दोषों का प्रभाव अवश्य ही हो जाता है क्योंकि उनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता है और वे दमशील नहीं होते हैं। जिन पुरुषों ने अपनी पाँचों इन्द्रियों को निगृहीत कर अपने काबू में कर रक्खा है उनका घर में रहते हुए भी पूर्ण तप का साधन बन जाया करता है क्योंकि सबसे मुख्य इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर दम रखना ही होता है। जो व्यक्ति सर्वदा सत्कर्मों में ही अपनी प्रवृत्ति रखता है ऐसे राग से निवृत्ति प्राप्त करने वाले पुरुष को घर ही तपोवन के समान हो जाता है ॥१४१॥ जो पुरुष अच्छे कर्मों के द्वारा किये हुए धर्म से अपनी जीविका का अर्जन करने वाले पुरुष हैं और जो सर्वदा परम सन्तोष रखने की वृत्ति से अपने घर में ही रति रखा करते हैं तथा जिन पुरुषों ने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है एवं जो व्यक्ति घर पर समागत अतिथियों को प्यार करते हैं अर्थात् उनका समुचित सत्कार किया करते हैं ऐसे नियमों में सुस्थित पुरुषों का घर में भी रहकर पूर्ण धर्म का परिपालन हो जाता है ॥१४२॥ शब्द शास्त्र अर्थात् व्याकरण शास्त्र में सदा निरत रहने वाले का मोक्ष अर्थात् जन्म-मरण के आवागमन रूपी भवबन्धन से छुटकारा नहीं होता है। परम सुन्दर आश्रमों में निवास करने वाले की भी मुक्ति नहीं होती है जो अहर्निश अपने ही भोजन तथा आच्छादन (वस्त्र) की चिन्ता एवं प्राप्ति के कार्य में तत्पर रहते हैं उनका भी मोक्ष नहीं होता है। जो दूसरे लोगों के चित्त को अपने मधुर भाषण एवम् कुशल व्यवहारादि से आकर्षित करने के कार्य में अनुराग रखते हैं उनका भी मोक्ष नहीं होता है। ॥१४३॥ जो सदा एकान्त-निवास करने के स्वभाव वाले होते हैं, जिनके व्रत अति सुदृढ होते हैं, जो अपनी समस्त इन्द्रियों की प्रीति रखने के कार्यों से निवृत्ति प्राप्त कर लेते हैं, जो सर्वदा अध्यात्म चिन्तन के योग में अपने मन को लगाने वाले हैं और जो सदा हिंसा के कार्यों से दूर रहते हैं उनका ही निश्चित रूप से अवश्य ही मोक्ष होता है ॥१४४॥ दान्त अर्थात् दमशील पुरुष सुख पूर्वक शयन करता है और दमशील पुरुष सुखपूर्वक ही प्रतिबुद्ध होता है अर्थात् जागृत हो जाता है। जिस मन से समस्त प्राणियों में समभाव रखने वाला होता है वह ही प्रतिबुद्ध हो जाता है ॥१४५॥ महापथ में रथ के द्वारा

भी कोई सुख से नहीं गमन किया करता है—अश्व के द्वारा एवं हाथी के द्वारा भी सुख से गमन नहीं किया जा सकता है, जिस प्रकार से विनीत भाव से युक्त आत्मा के द्वारा महापथ में सुख से गमन किया करता है ॥१४६॥ दम से रहित आत्मा जितना भी अनिष्ट कर देता है वैसा सिंह, स्पर्श किया हुआ अत्यन्त क्रोधित सर्प तथा नित्य ही क्रोध से भरा हुआ शत्रु भी नहीं किया करता है। तात्पर्य यह है कि दम के न होने से महान् अनिष्ट हुआ करता है और ऐसा अमङ्गल होता है जैसा अन्य किसी पर भयानक में भी भयानक से नहीं हो सकता है ॥१४७। यम को यम नहीं कहते हैं प्रत्युत आत्मा ही यम कहा जाता है। जिसने आत्मा को यमित कर लिया है वह यम तो विनिष्ट होता है ॥१४८॥ यम को यम कहा गया है। मनुष्य व्यर्थ ही उससे उद्विग्न होते हैं। जिसने अपनी आत्मा को यमित अर्थात् यम से समन्वित कर लिया है उसका वह यमराज क्या करेगा? अर्थात् कुछ भी नहीं कर सकता है ॥१४९॥

आत्मानमपि जानीयात्परं दोषैस्तुनाक्षिपेत् ।
मन्त्रैर्हीनं क्रियाभिर्वा जन्मनाप्यथवापुनः ॥१५०
दमश्छादयते सर्वं हीनमग पटो यथा ।
अधीयते निरर्थं ते नाभिजानन्ति ये दमम् ॥१५१
श्रुतस्य हि दमो मूलं दमो धर्मः सनातनः ।
यो ह्यात्मनस्तुलयते सुवर्णं तुलया दमम् ॥१५२
स तेन धृतिमान्ख्यातो न तु द्रव्येण मोहितः ।
व्रतानामपि सर्वेषा दम एव परायणम्'॥१५३
यद्यधीते षडङ्गानि वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः ।
दमेन तु विहीनश्च पूज्यत्व नेह गच्छति ॥१५४
'दमेन हीनं न पुनंति वेदा यद्यप्यधीता' सह षड्भिरगैः ।
साङ्ख्यं च योगश्च कुलं च जन्म तीर्थाभिषेकश्च निरर्थकानि ॥१५५

अपनी आत्मा के अन्दर रहने वाले दोषों की समीक्षा भली-भाँति करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि अपने दोषों को समझकर उन्हें हटाना चाहिए। दूसरों के दोषों को देखकर उनके विषय में कभी भी आक्षेप नहीं करना चाहिए

वह जैसा भी हो चाहे मन्त्रों से हीन हो, क्रियाओं से शून्य हो अथवा जन्म से विहीन हो ॥१५०॥ कोई भी किसी प्रकार की हीनता क्यों न हो यदि दम-शीलता है तो वह अकेला दम ही समस्त कमियों को ढक दिया करता है अर्थात् किसी दोष का फिर उस पर कोई बुरा प्रभाव नहीं हुआ करता है, जिस प्रकार से वस्त्र किसी हीन शरीर के अङ्ग को आच्छादित करके प्रकट नहीं होने देता है। जो दम को नहीं जानते हैं वे ही लोग अध्ययन किया करते हैं किन्तु दम के ज्ञान के बिना उनका अध्ययन निरर्थक ही होता है ॥ १५१ ॥ श्रुत अर्थात् शास्त्र का मूल दम ही होता है और दम ही हमेशा से चले आने वाला धर्म है। जो अपनी आत्मा के दम को तुला के द्वारा सुवर्ण में तोलता है ॥१५२॥ वह आदमी धुने वाला उस दम से ख्यात अर्थात् प्रसिद्ध होता है। द्रव्य से कभी मोहित नहीं होता है। समस्त प्रकार के जो वृत्त हैं उनमें दम ही एक परायण होता है ॥१५३॥ जो द्विज वेदों के अर्थ के तत्त्वों को जानने वाला वेदों के छैं अङ्गों का अध्ययन किया करता है। ऐसा द्विज भी यदि दम से हीन है तो चाहे वह षडङ्ग समन्वित वेदों का कितना ही अच्छा ज्ञाता क्यों न हो समाज में कभी भी पूज्य नहीं हो सकता है। तात्पर्य यह है कि दम रहित विद्वान् का भी कभी समाज में समादर नहीं होता है ॥ १५४ ॥ जो दम से हीन व्यक्ति होता है उसको वेद भी पवित्र नहीं किया करते हैं। चाहे छओं निरुक्तादि अङ्गों के सहित उनका भली-भाँति स्वाध्याय किया गया हो। सांख्य शास्त्र—योगदर्शन एवम् योगाभ्यास—सत्कुल—जन्म अर्थात् शुभसुयोग में उत्पत्ति तथा तीर्थों में अभिषेक ये समस्त साधन दम से हीन होने पर निष्प्रयोजन ही होते हैं। तात्पर्य यह है कि इन उपर्युक्त साधना के होने से भी कोई कल्याण नहीं हो सकता है ॥१५५॥

स धर्मनावमारुह्य दुर्गाण्यतितरिष्यति ।
दमाध्यायमिमं पुण्यं सततं श्रावयेद्द्विजः ॥१५६
स ब्रह्मलोकमाप्नोति तस्मान्न च्यवते पुनः ।
श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैतत्प्रधार्यताम् ॥१५७
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।
मातृवत्परदाराश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥१५८

आत्मवत्सर्वभूतानि य पश्यति: स पश्यति ।
पचन वैश्वदेवार्थे परार्थे यच्च जीवितम् ॥१५६
पुत्रार्थं मैथुन यस्य स्वर्गार्थं तस्य जीवितम् ।
एतद्भूवेच्च सर्वस्व धातूनामिव काञ्चनम् ॥१६०
सर्वभूतहित राजन्नधीत्यामृतमश्नुते ।
एव वै धर्मसर्वस्वमुक्त्वा ते तु शुन सखम् ॥१६१

जो द्विज इस परम पुण्य दम के महत्त्व बतलाने वाले अध्याय का निरतर श्रवण कराया करता है वह धर्म रूपी नौका पर समारोहण करके समस्त घोर कष्ट एवम् महापातको से अतितरण कर जाता है ॥ १५६ ॥ दमाध्याय का अध्येता तथा श्रवण कराने वाला विप्र सीधा ब्रह्मलोक की प्राप्ति का लाभ लिया करता है और उसमे फिर कभी भी च्युत नही होता है । इस धर्म के सर्वस्व दमाध्याय को श्रवण करो और सुनकर इसकी भली भाँति धारणा करनी चाहिए ॥१५७॥ सम्पूर्ण कर्म का सर्वस्व सार यही है कि जो अपनी आत्मा के प्रतिकूल कम—वचन अथवा भावना हो उसे कभी भी अ य लोगो के प्रति प्रयुक्त नही करना चाहिए क्योकि जो हमको बुरा प्रतीत होता है, वह दूसरो को भी उसी तरह प्रतिकूल प्रतीत अवश्य ही होगा और उसके मन को बड़ी ठेस लगेगी । आपका सताना बुरा फल देने वाला होगा । एक तो यह बात है और दूसरी बात यह है कि पराई स्त्रियो के प्रति अपनी माता के समान भाव रखना चाहिए । तीसरी बात यह है कि पराये धन को मिट्टी के ढेले के तुल्य समझकर कभी भी उस पर अपनी नीयत न बिगाडनी चाहिए ॥ १५८ ॥ जो समस्त प्राणियो को अपने ही समान देखता है वही वस्तुत देखा करता है । तात्पर्य यह है कि यही सब प्राणियों के विषय मे सोचना-समझना चाहिए जैसा दुःख-सुख हमको होता है वैसा ही प्रत्येक भूतमात्र को हुआ करता है । अपने समान समझने से कोई भी कभी किसी को उत्पीडित न कर सर्वदा सुख ही पहुँचाने का प्रयत्न करेगा । वैश्वदेव कर्म को सम्पादित करने के लिये पाचन करना और दूसरो की भलाई करने के लिय जीवन धारण करना ही सिद्धान्त मे उचित विचार है । अपने ही उदर भरने के हेतु पाक करना तथा केवल गुणों का

उपभोग करने के लिये जीवन रखना मूढ़ता की भावना है ॥१५९॥ जिसकी मैथुन क्रिया ऐन्द्रिक सुखास्वादन के लिये न होकर केवल पुत्रोत्पत्ति के लिये होती है उसका जीवन स्वर्ग के लिये ही होता है। यही धर्म सर्वस्व सार है जिस प्रकार से समस्त धातुओं में सुवर्ण सर्वोत्तम होता है वैसे ही यह सबसे उत्तम धर्म होता है ॥१६०॥ समस्त प्राणियों के हित को पढ़कर हे राजन्! प्रभुनाथ का नाश किया करता है। इस प्रकार से उन्होंने मुनःसख से धर्म के सर्वस्व सार को कहा था ॥१६१॥

तेनैव सहिताः सर्वे निविष्टास्सरसस्तटे ।
सरोऽपश्यन्सुविस्तीर्णं पद्मोत्पलजलावृतम् ॥१६२
तत्रावतारङ्कृत्वा ते बिसानि च कलापशः ।
तटेनिक्षिप्य सरसश्चक्रुः पुण्यां जलक्रियाम् ॥१६३
अथोत्तीर्यजलात्तस्मात्ते समेत्य परस्परम् ।
बिसान्येतान्यपश्यन्त इद वचनमब्रुवन् ॥१६४
केन क्षुधाभितप्तानामस्माकं पापकर्मणाम् ।
नृशंसेनापनीतानि बिसान्याहारकाङ्क्षिणा ॥१६५
ते शङ्कमानास्त्वन्योन्य पर्यपृच्छन्द्विजोत्तमा ।
चक्रुश्च निश्चय सर्वे शपथं प्रति पार्थिव ॥१६६
इष्टमेव द्विजानीना यदिद शपथीकृतम् ।
त्वया कृत बिसस्तैन्य सर्वेषां न शुन सख ॥१६७

उसी के साथ वे सब सरोवर के तट पर निविष्ट हो गये थे। उन सबने उस सरोवर को अत्यन्त विस्तार से युक्त और पद्मोत्पलों से समन्वित, जल से परिपूर्ण देखा था ॥१६२॥ उस सरोवर में भीतर उतरकर कलापशः समस्त बिसों को अर्थात् मृणाल तन्तुओं को तीर पर निक्षिप्त करके उस सरोवर की पुण्य जल क्रिया की थी ॥१६३॥ इसके अनन्तर उस जल से उतरकर वे परस्पर में एकत्रित हो गये थे और इन बिसों को न देखते हुए यह वचन बोले— ॥१६४॥ ऋषियों ने कहा—क्षुधा से अभितप्त—पाप कर्म करने वाले हमारे इन बिसों को किस अत्यन्त क्रूर और आहार की इच्छा रखने वाले ने यहाँ से

और देवों के शत्रु असुरों के विनाश के लिये ऐसी आज्ञा दी थी। इसके पश्चात् सहस्रों दानवों को निर्दग्ध उसके द्वारा किया गया था ॥२।३।४॥ तारक—कमलाक्ष—कालदंष्ट्र—परावसु—विरोचन-सह्लाद ये सब वास करते थे सो प्रयाण कर गये थे ॥५॥ ये सब समुद्र के अन्दर प्रवेश करके इन्होंने वहाँ पर ही सन्निवेश किया था। वे सब शक्तिहीन थे इसीलिये वे अग्नि और मारुत के द्वारा उपेक्षित कर दिये गये थे ॥६॥ तभी से लेकर भुजङ्गों के सहित देवों को, मनुष्यों को और समस्त मुनियों को सम्यक् प्रकार से पीडित करके ये सब फिर समुद्र के जल के अन्दर प्रवेश कर जाया करते हैं ॥७॥

एव युगसहस्रांणि ते वीराः सप्त पञ्च च।
जलदुर्गबलाद्राजन्पीडयन्ति जगत्त्रयम् ॥८
ततः पुनरथो वह्निमारुतावमराधिपः।
आदिदेशाचिरादम्बुनिधिरेष विशोष्यताम् ॥९
यस्मादस्मद्द्विषां चैष शरणं वरुणालयः।
तस्माद्भवद्भ्यामद्यैव शोषमेष प्रणीयताम् ॥१०
तावूचतुस्ततः शक्रं मयशम्बरसूदनम्।
अधर्म एष देवेन्द्र सागरस्य विनाशनम् ॥११
यस्माज्जीवनिकायस्य महतः सक्षयो भवेत्।
तस्मादुपायमन्य तु समाश्रय पुरन्दर ॥१२
यस्य योजनमात्रेऽपि जीवकोटिशतानिच।
निवसन्ति सुरश्रेष्ठ स कथं नाशमर्हति ॥१३
एवमुक्तः सुरेन्द्रस्तु क्रोधसंरक्तलोचनः।
उवाचेदं वचो रोषादमरावग्निमारुतौ ॥१४

इस प्रकार से वे सात और पाँच अर्थात् बारह वीर हे राजन्! सहस्रों युगों तक जल के दुर्ग के बल से तीनों लोकों को पीड़ा दिया करते थे ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर अमरों के स्वामी इन्द्रदेव ने अग्नि और मारुत इन दोनों को पुनः यह आदेश प्रदान किया था कि तुरन्त ही जलों के निधि इस समुद्र को शोषित कर डालो ॥ ९ ॥ इस शोषण करने का यही एक कारण है कि इस सागर ने

हमारे शत्रुओं को शरण दी है । इसीलिये आप दोनों को इस समुद्र का शोषण आज ही कर देना चाहिए ।।१०।। इस प्रकार से आज्ञा देने पर उन दोनों देवों ने मय और शम्बर के हनन कर देने वाले देवराज इन्द्र से कहा था—हे देवेन्द्र ! इस तरह से सागर का विनाश कर डालना बडा ही अधर्म का काय है ।।११।। क्योंकि सागर का शोषण किया जायगा तो तमाम इसके अन्दर निवास करने वाले जीवों के समूह का सक्षय हो जायगा । हे पुरन्दर ! इसलिये इन शत्रुओं के विनाश का कोई अन्य ही उपाय का समाश्रय ग्रहण कीजिए ।।१२।। हे सुरों मे परम श्रेष्ठ ! जिसके एक योजन मात्र परिमाण म भी सैकडो, करोडो जीव निवास किया करते हैं । ऐसा सागर किस प्रकार से नाश करने के योग्य हो सकता है ? ।।१३।। पुलस्त्य ऋषि ने कहा—इस प्रकार से कहे जाने पर सुरेन्द्र क्रोध से सरक्त नेत्रों वाला हो गया था । देवराज ने रोष से अग्नि और मारुत इन दोनों देवों से यह वचन कहा—।।१४।।

न धर्माधर्मसयोग प्राप्नुवन्त्यमरा क्वचित् ।
भवन्तौ तु विशेषेण महात्मानौ च तिष्ठत ।।१५
ममाज्ञानकृता यस्मान्मारुतेन सम त्वया ।
मुनिव्रतपरो भूत्वा परिगृह्य कलेवरम् ।।१६
धर्मार्थशास्त्ररहिता योनि प्रति विभावसो ।
तस्मादेकेन वपुषा मुनिरूपेण मानुषे ।।१७
मारुतेन सम लोके तव जन्म भविष्यति ।
यदा तु मानुषत्वेऽपि त्वया गण्डूषशोषित ।।१८
भविष्यत्युदधिर्वह्ने तदा देवत्वमाप्स्यसि ।
इतीन्द्रशापात्पतितौ तत्क्षणात्तौ महीतले ।।१९
अवाप्नवन्तौदेह च कुम्भाज्जन्मततोऽभवत् ।
मित्रावरुणयोर्वीर्याद्वसिष्ठश्चात्मजोऽभवत् ।।२०
ततोऽगस्त्य उग्रतपा बभूव मुनिसत्तम ।
अस्मद्भ्रातु सर्वभ्राता वसिष्ठस्यानुजो मुनि. ।।२१

इन्द्रदेव ने कहा—देवगण कहीं भी धर्म और अधर्म का सयोग प्राप्त

नहीं किया करते हैं। आप दोनों तो विशेष रूप से महान् आत्मा वाले देव हैं ॥१५॥ मुझे इस बात का ज्ञान नहीं हुआ है। इसी कारण से आप मनुष्य के साथ मुनियों के से प्रश्नों में परायण होकर शरीर को धारण करें ॥ १६ ॥ हे विभावसो ! वह शरीर भी धर्म—अर्थ और शास्त्र से रहित योनि में होवे। इसलिये मनुष्य के रूप में मुनि के रूप वाले एक ही शरीर से मारुत के साथ लोक में तेरा जन्म होगा। जिस समय में मानुष के स्वरूप में भी रहते हुए आपके द्वारा यह समुद्र गण्डूषों के द्वारा शोषित होगा उस समय में हे वह्ने ! आप देवत्व के स्वरूप को प्राप्त कर लोगे। पुलस्त्य मुनि ने कहा—इन्द्रदेव के शाप से उसी समय में वे दोनों महीतल में पतित होगये थे ॥ १७।१८ १९ ॥ उन दोनों ने देह की प्राप्ति की थी और कुम्भ से जन्म हुआ था। मित्रावरुण के वीर्य से वसिष्ठ अवतीर्ण हुआ था ॥ २० ॥ इसके अनन्तर उग्र तपश्चर्या वाले अगस्त्य मुनियों में परम श्रेष्ठ हुए थे। हमारे भाई के वे भाई थे तथा मुनि वसिष्ठ के अनुज थे ॥२१॥

कथं च मित्रावरुणौ पितरावस्य तौ स्मृतौ ।
जन्मकुम्भादगस्त्यस्य यथाभूत्तद्वदाधुना ॥२२
पुरा पुराणपुरुषः कदाचिद्गन्धमादने ।
भूत्वा धर्मसुतो विष्णुश्चचार विपुलं तपः ॥२३
तपसा चास्य भीतेन विघ्नार्थे प्रेषितावुभौ ।
शक्रेण माधवानङ्गावप्सरोगणसंयुतौ ॥२४
यदा च गीतवाद्येन भावहावादिना हरिः ।
न काममाधवाभ्यां च मोहं नेतुमशक्यत ॥२५
तदा काममधुस्त्रीणां विषादमभजद्गणः ।
सक्षोभाय ततस्तेषामूरुदेशान्नराग्रजः ॥२६
नारीमुत्पादयामास त्रैलोक्यस्यापि मोहिनीम् ।
समोहितास्तया देवास्तौ तु चैव सुरावुभौ ॥२७
अप्सराणां समक्षं हि देवानामब्रवीद्धरिः ।
उर्वशीति च नाम्नेयं लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥२८

भीष्म ने कहा—इसके ये दोनों मित्रावरुण कैसे पिता हुए थे ? कुम्भ से जिस प्रकार से अगस्त्य मुनि का जन्म हुआ था यह सब इस समय आप बतलाइये ।।२२।। पुलस्त्य मुनि ने कहा—प्राचीन काल में पुराण पुरुष भगवान् विष्णु ने किसी समय में गन्ध मादन नाम वाले पर्वत पर धर्म का पुत्र होकर बहुत तपश्चर्या की थी ।। २३ ।। इनके तप से भयभीत होकर देवराज ने उसमें विघ्न डालने के लिये अप्सराओं के गण से युक्त माधव और अनङ्ग इन दोनों को भेजा था ।। २४ ।। जब भगवान् हरि काम और माधव के द्वारा गीत वाद्य तथा भाव-हाव आदि से मोह को प्राप्त नहीं किये जा सके थे ।। २५ ।। उस समय में काम—मधु और स्त्रियों का गण अवश्य हो अपनी विफलता पर विषाद को प्राप्त होगया था । इसके उपरान्त नरों के अग्रज ने उनके सक्षोभ के लिये अपने ऊरु भाग से एक नारी की उत्पत्ति की थी जो कि इतनी सुन्दरी थी कि समस्त त्रैलोक्य को भी अपने रूप-लावण्य से मोहित करने वाली थी उसके लोकोत्तर सौन्दर्य की सुषमा से सब देवगण और वे दोनों सुर भी मोहित हो गये थे ।।२६।२७।। उन सब अप्सराओं के और देवों के समक्ष में हरि ने कहा—यह नारी 'उर्वशी'—इस नाम से लोक में प्रसिद्धि प्राप्त करेगी ।।२८।।

तत कामयमानेन मित्रेणाहूयतोर्वशी ।
प्रोक्ता सा रमयस्वेति बाढमित्यब्रवीच्च सा ।।२९
गच्छन्ती तु तत. सूर्यलोकमिन्दीवरेक्षणा ।
वरुणेन वृता पश्चाद्वचन समभाषत ।।३०
मित्रेणाह वृता पूर्वं मम सूर्य.पतिःप्रभो ।
उवाच वरुणश्चित्त मयि सन्यस्य गम्यताम् ।।३१
गताया बाढमित्युक्त्वा मित्रशापमदादथ ।
अद्यैव मानुषे लोके गच्छ सोमसुतात्मजम् ।।३२
भजस्वेति यतो मिथ्याधर्म एप त्वया कृतः ।
जलकुम्भे ततो वीर्यं मित्रेण वरुणेन च ।।३३
प्रक्षिप्तमथ सञ्जातौ द्वावेव मुनिसत्तमौ ।
निमिर्नाम नृपः स्त्रीभिः पुरा द्यूतमदीव्यत ।।३४

तदन्तरऽभ्याजगाम वसिष्ठो ब्रह्मसम्भव ।
तस्य पूजामकुर्वाण शशाप स मुनिर्नृपम् ॥३५

इसके अन तर कामवासना म अभिभूत हुए सूयदेव न उस उवशी को बुलाकर कहा था कि तू मुझे रमण करा दे। इस सूय क कथन पर उसने बहुत अच्छा ऐसा ही करूँगा —यह उत्तर दिया था ॥२९॥ कमल के समान सु दर लोचना वाली वह उवशी सूय लाक म जा ही रही थी माग म वरुण देवता ने उसका वरण किया था। उससे वह बोली—॥३०॥ मुझे पहिले सूय देव न वरण किया है इसलिये हे प्रभा ! मेरा सूर्य ही पति है। इस पर फिर वरुण ने कहा—मुझ म अपना चित्त का त्याग करके चली जा ॥३१॥ बहुत अच्छा'—यह कहकर उसके चले जाने पर मित्र ने शाप द दिया था कि तू आज ही सोम सुता क आत्मज क पास मनुष्यलोक म चली जा। वहाँ जाकर उसका सवन कर क्योकि तूने मिथ्या धम यह किया है। इसक अन तर जल कुम्भ म मित्र (सूय) और वरुण ने अपना वीय प्रक्षिप्त किया था ॥३२।३३॥ इसके पश्चात् दो मुनि श्रेष्ठ समुत्पन्न हुए थे। निमि नाम वाला नृप पहिले स्त्रिया के साथ द्यूत क्रीडा किया करता था ॥३४॥ इसी बीच म ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ वहाँ पर आ गय थ। जब उस राजा ने जो कि द्यूत क्रीडा म सलग्न था उन मुनि की पूजा सत्क्रिया नही,की तो मुनि ने उसे शाप दे दिया था ॥३५॥

विदेहस्त्व भवस्वेति शप्तस्तेनाप्यसौमुनि ।
अन्यो-यशापादुभयोर्विशरीरे तु तजसी ॥२६
जन्मतुस्शापनाशाय ब्रह्माण जगत पतिम् ।
अथ ब्रह्मसमादेशाल्लोचनेष्ववसन्निमि ॥३७
निमिषा स्युश्च लोकाना तद्विश्रामायपार्थिव ।
वसिष्ठोऽप्यभवत्तस्मिञ्जलकुम्भे च पूववत् ॥३८
ततो जातश्चतुर्बाहु साक्षसूत्रकमण्डलु ।
अगस्त्य इति शान्तात्मा बभूव ऋषिसत्तम ॥३९
मलयस्यकदेशे तु वैखानसविधानत ।
[illegible]

ततः कालेन महता: तारकादिनिपीडितम् ।
जगद्वीक्ष्य स कोपेन पीतवान्वरुणालयम् ॥४१
ततोऽस्य वरदास्सर्वे बभूवुः शङ्करादयः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान्वरदानाय जग्मतुः ॥४२

वसिष्ठ ने यह शाप दिया था कि तू विदेह हो जा। इस पर वह मुनि को भी उस नृप के द्वारा शाप दे दिया गया था। परस्पर में एक-दूसरे के शाप से दोनों के बिना शरीर वाले तेज जगत् के पति ब्रह्माजी के समीप में शापों के विनाश करने के लिये गये थे। इसके उपरान्त ब्रह्माजी के आदेश से निमि नृप ने लोचनों में निवास किया था ॥३६।३७॥ हे पार्थिव ! वह लोकों के विश्राम के लिये निमेष होते हैं। वसिष्ठ भी पूर्व की भाँति उस जल कुम्भ में हुये थे ॥३८॥ इसके उपरान्त चार भुजाओं वाला, अक्षसूत्र और कमण्डलु से युक्त परम शान्त स्वरूप से समन्वित ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्य उत्पन्न हुए थे। ३९॥ मलय पर्वत के एक भाग में वैखानस के विधान से विप्रों के द्वारा सवृत भार्या के सहित उसने परम दुष्कर तपस्या की थी ॥४०॥ इसके अनन्तर बहुत काल में तारक आदि से परम उत्पीडित इस जगत् को देखकर उस अगस्त्य महर्षि ने इस समुद्र का पान कर डाला था ॥४१॥ इसके पश्चात् शङ्कर प्रभृति—ब्रह्मा और भगवान् विष्णु सभी इनको वर देने वाले हो गये और वरदान देने के लिये इनके समीप में तब गये थे ॥४२॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते यश्चाभीष्टोऽस्य: वै मुने ।
यावद् ब्रह्मसहस्राणां पञ्चविंशतिकोटय: ॥४३
वैमानिको भविष्यामि दक्षिणाम्बरवर्त्मनि ।
मद्विमानोदयात्कुर्यात्: कश्चित्पूजनं मम ॥४४
स सप्तलोकाधिपतिः पर्यायेण भविष्यति ।
यस्त्वाश्रमं पुष्करे तु मन्नाम्ना परिकीर्तयेत् ॥४५
स चैवपुण्यतां यातु वर एष वृतो मया ।
श्राद्धं येऽत्र करिष्यन्ति पिण्डपूर्वं तु भक्तितः ॥४६
तेषां पितृगणास्सर्वे मया सह दिवि स्थिता: ।
एतत्काल वसिष्यन्ति एषाम्ब वरो मम ॥४७

एवमस्त्विति तेऽप्युक्त्वा जग्मुर्देवा यथागतम् ।
तस्मादर्घः प्रदातव्यो ह्यगस्त्याय सदा बुधैः ॥४८

वहाँ सबने मुनि से कहा—हे मुने ! आपका कल्याण हो, आपको यहाँ जो भी कुछ अभीष्ट हो हमसे वर माँग लो । अगस्त्य मुनि ने कहा—ब्रह्मा सहस्त्रों की जितनी पच्चीस कोटियाँ हैं मैं वैमानिक होकर रहूँ । दक्षिणाम्बर के मार्ग में मेरे विमान के उदय में जो कोई भी मेरा पूजन करे वह पर्याय से सातों लोकों का अधिपति होवेगा । जो पुष्कर में मेरे नाम से आश्रम को परिकीर्तित करेगा वह भी परम पुण्य को प्राप्त होवे—यही वरदान मैं चाहता हूँ । जो यहाँ पर भुक्तिभाव से पिण्डदान पूर्वक श्राद्ध करेंगे उनके समस्त पितृगण मेरे ही साथ दिवलोक में स्थित होते हुए इतने ही समय तक वास करेंगे—यही मेरा वरदान अभीष्ट है ॥ ४३ ॥ से ॥४७॥ ऐसा ही होगा—यह कहकर वे सब देवता जैसे ही आये थे वापिस चले गये । इसलिये सबको ही भगवान् अगस्त्य मुनि के लिये अर्घ अवश्य ही देना चाहिए ॥४८॥

॥ वामनावतार चरित्र वर्णन ॥

मन्ययपृच्छसि भोस्त्वं यत्तच्छृणुत्वं समाहितः ।
यथा पूर्वं पदन्यासः कृतो देवेन विष्णुना ॥१
यज्ञपर्वतमासाद्य शिलापर्वतरोधसि ।
पुरा कृतयुगे भीष्म देवकार्यार्थसिद्धये ॥२
विष्णुना च कृतं पूर्वं पृथिव्यर्थे परन्तप ।
त्रिदिवं सर्वमानीतं दानवैर्बलवत्तरैः ॥३
त्रैलोक्यं वशमानीय जित्वा देवान्सवासवान् ।
दानवा यज्ञभोक्तारस्तत्रासन्बलवत्तरा. ॥४
कृता बाष्कलिना सर्वे दानवेन बलीयसा ।
एवम्भूते तदा लोके त्रैलोक्ये सचराचरे ॥५
परमार्ति ययौ शक्रो निराशो जीविते कृतः ।
स बाष्कलिर्दानवेन्द्रोऽवध्योऽयं ममसंयुगे ॥६

ब्रह्मणो वरदानेन सर्वेषां तु दिवौकसाम् ।
तदहं ब्रह्मणो लोकवृत. सर्वेदिवौकसः ॥७

पुलस्त्य मुनि ने कहा—हे भीष्म ! आपने बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है । अब आप परम सावधान होकर अच्छी तरह श्रवण करो जिस तरह से विष्णु देव ने पूर्व पद का न्यास किया था ॥ १ ॥ हे भीष्म ! पहिले समय में देवताओं के कार्यों की सिद्धि के लिये कृतयुग में विष्णु ने यश पर्वत पर पहुँच कर शिला पर्वत रोध पर पृथिवी के लिये परम दुष्कर तप किया था क्योंकि महाधिक बलशाली दानवों ने सब त्रिदिव को ले लिया था ॥ २।३ ॥ समस्त त्रैलोक्य को अपने वश में लेकर इन्द्र के सहित समस्त देवों को जीतकर वहाँ पर दानव ही यज्ञों के भोग करने वाले होगये थे क्योंकि वे सब अधिक बलवान् थे ॥४॥ अत्यन्त बली वाष्कलि दानव ने सब अपने वश में कर लिये थे । इस चराचर त्रिलोकी में इस प्रकार की उस समय दशा के हो जाने पर इन्द्र अपने जीवन में भी निराश होकर अत्यन्त दुःखित हो गया था और सोचने लगे कि यह दानवेन्द्र वाष्कलि मेरे युद्ध में वध के योग्य होजाना चाहिए ॥५ ६॥ ब्रह्मा के वरदान से समस्त देवताओं का मैं ब्रह्मा लोककृत सब देवगण के द्वारा हो गया था ॥७॥

व्रजामि शरणं देवं गतिरन्या न विद्यते ।
एवं विचिन्त्य देवेन्द्रो वृतः सर्वदिवौकसैः ॥८
जगाम त्वरितो भीष्म यत्र देवः पितामहः ।
ब्रह्मणः स पदप्राप्य वृतस्तैश्च दिवौकसैः ॥९
अब्रवीज्जगतः कार्यं प्रातामापदमुत्तमाम् ।
किं न जानासिवै देव यतो नो भयमागतम् ॥१०
दैत्यैर्यदाहृतं सर्वं वरदानाच्च ते प्रभो ।
कथितं वै मयानर्व वाष्कलेश्च दुरात्मनः ॥११
क्रियता चाविलम्बेन पिता त्वं नः पितामहः ।
तत्त्वं चिन्तयदेवेशाशान्त्ययं जगतस्त्विह ॥१२
तेषां च पश्यतां किञ्चिच्छ्रौतस्मार्तादिका क्रियाः ।
न प्रावर्तन्त हानिस्तु तेऽस्माकं दिने दिने ॥१३

अब मैं देव की शरण में जाता हूँ क्योंकि मेरी अन्य कोई गति नहीं है। इस प्रकार से विचारकर सब देवगण के द्वारा देवेन्द्र वृत हुआ था ॥ ८ ॥ हे भीष्म ! फिर वह शीघ्र ही वहाँ पर चला गया जहाँ पर पितामह देव थे और ब्रह्मा के पद को प्राप्त कर सभी देवताओं के द्वारा वरण किया गया था ॥९॥ जगत् का समस्त कार्य बतलाया कि बड़ी भारी आपत्ति प्राप्त हो गई है हे देव ! क्या आप नहीं जानते हैं कि हमको भारी भय उपस्थित हो गया है ? हे प्रभो ! तुम्हारे वरदान से जो सब दैत्यों ने आहरण कर लिया है मैं दुष्ट वाष्कलि का सभी कुछ कह दिया है ॥१०॥११॥ उसे अब बिना किसी विलम्ब के किये हुए कर दीजिए क्योंकि आप हमारे पिता तथा पितामह हैं। हे देवेश ! यहाँ पर जगत् की शान्ति के लिये किसी तत्त्व वस्तु का चिन्तन करें ॥१२॥ उन सबके देखते हुए ही कुछ भी श्रौत एवं स्मार्त्त क्रियाऐं आदि प्रवृत्त नहीं हुई हैं इसीलिये दिन पर दिन हम सबकी हानि हो रही है ॥१३॥

जानामि वाष्कलिं तं तु वरदानाच्च गर्वितम् ।
अजेयभवतामन्येविष्णुसाध्योभविष्यति ॥१४
निरुध्य सस्थितो ब्रह्मा भावं तत्वमयं तदा ।
समाधिस्थस्य तस्यैवध्यानमात्राच्चतुर्भुजः ॥१५
स्तोकेनैव हि कालेन चिन्त्यमानः स्वयम्भुवा ।
आजगाम मुहूर्तेन सर्वेषामेव पश्यताम् ॥१६
भोभोब्रह्मन्निवर्त्तस्व ध्यानादस्मान्निवारितः ।
यदर्थमिष्यतेध्यानंसोऽहंत्वांसमुपागतः ॥१७
महाप्रसाद एषोऽत्र स्वामिनो हि प्रदर्शनम् ।
कस्यान्यस्यभवेच्चैषाचिन्तायाजगतः प्रभो ॥१८
ममैव तावदुत्पत्तिर्जगदर्थे विनिर्मिता ।
जगदेतत्त्वदर्थीयं तत्त्वतो नास्ति विस्मयः ॥१९
भवता पालनं कार्यं संहर्त्ता रुद्र एव तु ।
एवम्भूते जगत्यस्मिञ्शक्रस्यास्य महात्मनः ॥२०
हृत राज्यं वाष्कलिना त्रैलोक्य सचराचरम् ।
भृत्यस्य क्रियतासाह्यं मन्त्रदानेनकेशवः ॥२१

गृह्य प्रतिगृह तस्य दानवस्य पितामह ।
त बद्ध्वा च ततो यत्नात्कृत्वा पातालवासिनम् ॥२६
दधार दिव्य वर्षाणां महस्रं दिव्यमीश्वरम् ।
ततः समभवत्तस्या वामनोभूतवामनः ॥२७
जातेन येन चक्षू पिदानवानां हृतानिवै ।
जातमात्रे ततस्तस्मिन्देवदेवे जनार्दने ॥२८
नद्यः स्वच्छाम्बुवाहिन्यो ववौ गन्धवहोऽनिलः ।
कश्यपोऽपि मुख लेभे तेन पुत्रेण भास्वता ॥२९
सर्वेषां मानसोत्साहस्त्रैलोक्यान्तरवासिनाम् ।
सञ्जातमात्रे नु ततो जनाधिप जनार्दने ॥३०

भगवान् वासुदेव ने कहा—आपने ही उस वरदान दिया है इसलिये इस समय तो वध करने के योग्य नहीं है । इसलिये यहाँ पर बन्धन से उसे बुद्धि के द्वारा ही साध्य करना चाहिए अर्थात् बुद्धि से ही उसे काबू में लेना है ॥२२॥ मैं वामन (बौना) होऊँगा जो कि समस्त दानवों का विनाश करने वाला हो जाऊँगा । मेरे ही साथ यह भी बाष्कलि के घर में चले ॥२३॥ वहाँ जाकर यह मेरे लिये इस प्रकार से वर की याचना करे कि हे राजन् ! इस वामन विप्र को तीन पैड भूमि प्रदान करदो । यह याचन मेरे द्वारा की हुई होगी । शक्र के द्वारा कहे जाने पर यह दानवों का राजा अपने जीवन को भी दे देगा ॥२४।२५॥ हे पितामह ! उस दानव के द्वारा प्रदान किया हुआ वह भूमि का प्रतिग्रह ग्रहण करके मैं उसका बन्धन कर दूँगा और यत्न द्वारा उसे फिर यहाँ से हटा कर पाताल लोक का निवास करने वाला बना दूँगा ॥ २६ ॥ दिव्य वर्षों के सहस्र ने दिव्य ईश्वर को धारण किया था । इसके अनन्तर उससे वामनोभूत वामन हुआ था ॥२७॥ इसने उत्पन्न होते ही दानवों के चक्षुओं का हरण कर लिया था । उन देवों के भी देव भगवान् जनार्दन के उत्पन्न हो जाने पर ही समस्त नदियाँ अति स्वच्छ वारि के वाहन करने वाली हो गई थी और वायु सुन्दर गन्ध के वहन करने वाला होगया था । उस परम या समान पुत्र को देखकर कश्यप महर्षि को भी अत्यधिक सुख की प्राप्ति हुई थी ॥२८।२९॥

हे जनाधिप ! उन भगवान् जनार्दन के जन्म ग्रहण करने मात्र से ही त्रैलोक्य में निवास करने वाले सभी प्राणियों के मन में एक तरह का अद्भुत उत्साह समुत्पन्न हो गया था ॥३०॥

परमासाद्य य विष्णुं ब्रह्माहं जगतः कृते ।
जातोऽयं भवतामर्थे वामनो यद्यपीश्वरः ॥३१
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च एष एव महेश्वरः ।
एष वेदाश्च यज्ञाश्च स्वर्गश्चैव न संशयः ॥३२
सर्वथा वामनोदेवो देवकार्य करिष्यति ।
एवं चिन्तयतातेषां भाविताना दिवौकसाम् ॥३३
जगाम शक्रसहितो बाष्कलेश्च निवेशनम् ।
दूरादेव च ता दृष्ट्वा पुरी तस्यसमावृत्ताम् ॥३४
पाण्डुरैः खगमागम्यै सर्वरत्नोपशोभितैः ।
शोभिता भवनैर्मुख्यैःसुविभक्तमहापथैः ॥३५

जिस परम विष्णु को प्राप्त करके मैं इस जगत् के लिये ब्रह्मा हूँ । यह यद्यपि ईश्वर ही साक्षात् है तो भी आप सबके कार्य की सिद्धि के लिये वामन होकर समुत्पन्न हुए हैं ॥३१॥ यह ही ब्रह्मा हैं—यही विष्णु हैं और यह महेश्वर है—यही सम्पूर्ण वेद हैं—यही सब यज्ञ हैं और यह ही स्वर्ग हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३२॥ यह वामन देव पूर्णतया देवों के कार्य को सिद्ध कर देंगे—इसी प्रकार से भावितात्मा देवों के चिन्तन करते हुए होने पर वह वामनदेव देवराज इन्द्र के सहित दानवेन्द्र बाष्कलि के निवास स्थान पर पहुँच गये थे । उन्होंने दूर से ही उसकी समान आकार वाली पुरी को देखा था ॥३३।३४॥ उस पुरी में सब प्रकार के रत्नों से उप शोभित आकाश को गमन करने वाले अर्थात् बहुत ऊंचे ऊँचे पाण्डुर वर्ण के भवन बने हुए थे और भली-भाँति से उस पुरी में महा पथ विभक्त हो रहे थे । तात्पर्य यह है कि सभी मार्ग अलग-अलग अच्छे ढङ्ग वाले थे ॥३५॥

इन्द्रं पुरागतं दृष्ट्वा दानवेन्द्राय पार्थिव ।
इदमूचुस्तदा गत्वा दानवा युद्धदुर्मदा ॥३६

गृह्य प्रतिगृह तस्य दानवस्य पितामह ।
त बद्ध्वा च ततो यत्नात्कृत्वा पातालवासिनम् ॥२६
दधार दिव्य वर्षाणां सहस्र दिव्यमीश्वरम् ।
तत. समभवत्तस्या वामनोभूतवामन. ॥२७
जातेन येन चक्षू पिदानवाना हृतानिवै ।
जातमात्रे ततस्तस्मिन्देवदेवे जनार्दने ॥२८
नद्यः स्वच्छाम्बुवाहिन्यो ववौ गन्धवहोऽनिलः ।
कश्यपोऽपि सुख लेभे तेन पुत्रेण भास्वता ॥२९
सर्वेषा मानसोत्साहस्त्रैलोक्यान्तरवासिनाम् ।
सञ्जातमात्रे तु ततो जनाधिप जनार्दने ॥३०

भगवान् वासुदेव ने कहा—भ्र पने ही उस वरदान दिया है इसलिये इस समय तो वध करने के योग्य नही है । इसलिये वहाँ पर बन्धन से उसे वुद्धि के द्वारा ही साध्य करना चाहिए अर्थात् बुद्धि से ही उसे काबू मे लेना है ॥२२॥ मैं वामन (बौना) होऊँगा जो कि समस्त दानवो का विनाश करने वाला हो जाऊगा । मेरे ही साथ यह भी वाष्कलि के घर मे चले ॥२३॥ वहाँ आकर यह मेरे लिये इस प्रकार से वर की याचना करे कि हे राजन् ! इस वामन विप्र को तीन पैड भूमि प्रदान करदो । यह याचन मेरे द्वारा की हुई होगी । शक्र के द्वारा कहे जाने पर वह दानवो का राजा अपने जीवन को भी दे देगा ॥२४।२५॥ हे पितामह ! उस दानव के द्वारा प्रदान किया हुआ वह भूमि का प्रतिग्रह ग्रहण करके मैं उसका बन्धन कर दूँगा और यज्ञ द्वारा उसे फिर यहाँ से हटा कर पाताल लोक का निवास करने वाला बना दूँगा ॥ २६ ॥ दिव्य वर्षों के सहस्र ने दिव्य ईश्वर को धारण किया था । इसके अनन्तर उसमे वामनोभूत वामन हुआ था ॥२७॥ इसने उत्पन्न होते ही दानवो के चक्षुओ का हरण कर लिया था । उन देवो के भी देव भगवान् जनार्दन के उत्पन्न हो जाने पर ही समस्त नदियाँ अति स्वच्छ वारि के वाहन करने वाली हो गई थी और वायु सुन्दर गन्ध के वहन करने वाला होगया था । उस परम भा समान पुत्र को देखकर कश्यप महर्षि को भी अत्यधिक सुख की प्राप्ति हुई थी ॥२८।२९॥

हे जनाधिप ! उन भगवान् जनार्दन के जन्म ग्रहण करने मात्र से ही त्रैलोक्य में निवास करने वाले सभी प्राणियों के मन में एक तरह का अद्भुत उत्साह समुत्पन्न हो गया था ॥३०॥

परमासाद्य य विष्णुं ब्रह्माहं जगतः कृते ।
जातोऽय भवतामर्थे वामनो यदपीश्वरः ॥३१
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च एष एव महेश्वरः ।
एष वेदाश्च यज्ञाश्च स्वगश्चैष न संशयः ॥३२
सर्वथा वामनोदेवो देवकार्यं करिष्यति ।
एवं चिन्तयतातेषा भाविताना दिवौकसाम् ॥३३
जगाम शक्रसहितो वाष्कलेश्च निवेशनम् ।
दूरादेव च ता दृष्ट्वा पुरी तस्यसमावृत्ताम् ॥३४
पाण्डुरे. खगमागम्यै: सर्वरत्नोपशोभितै ।
शोभिता भवनैमु ख्यैःसुविभक्तमहापथैः ॥३५

जिस परम विष्णु को प्राप्त करके मैं इस जगत् के लिये ब्रह्मा हूँ । यह यद्यपि ईश्वर ही साक्षात् है तो भी आप सबके कार्य की सिद्धि के लिये वामन होकर समुत्पन्न हुए हैं ॥३१॥ यह ही ब्रह्मा हैं—यही विष्णु हैं और यह महेश्वर हैं—यही सम्पूर्ण वेद हैं—यही सब यज्ञ हैं और यह ही स्वर्ग हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३२॥ यह वामन देव पूर्णतया देवों के कार्य को सिद्ध कर देंगे—इसी प्रकार से भावितात्मा देवो के चिन्तन करते हुए होने पर वह वामनदेव देवराज इन्द्र के सहित दानवेन्द्र बाष्कलि के निवास स्थान पर पहुँच गये थे । उन्होंने दूर से ही उसकी समान आकार वाली पुरी को देखा था ॥३३।३४॥ उस पुरी में सब प्रकार के रत्नों से उप शोभित आकाश को गमन करने वाले अर्थात बहुत ऊँचे ऊँचे पाण्डुर वर्ण के भवन बने हुए थे और भली-भाँति से उस पुरी में महा पथ विभक्त हो रहे थे । तात्पर्य यह है कि सभी मार्ग अलग-अलग अच्छे ढङ्ग वाले थे ॥३५॥

इन्द्रं पुरागत दृष्ट्वा दानवेन्द्राय पार्थिव ।
इदमूचुस्तदा गत्वा दानवा युद्धदुर्मदाः ॥३६

आश्चर्यमिनि वै कृत्वा इन्द्रोऽभ्येति पुरी तव ।
एकाकी द्विजमुख्येन वामनेन सहप्रभो ॥३७
अस्माभिर्यदनुष्ठेयं साम्प्रत नो वद स्वराट् ।
दानवानब्रवीत्सर्वान्पुरे तिष्ठत संकुलम् ।
प्रवेशयतां देवराज. पूज्यः स तु ममाद्य वै ॥३८
एतस्मिन्नेव काले तु वामनः स च वासव. ।
आगतौ दनुनाथेन प्रेम्णाचैवावलोकितौ ॥३९
कृतार्थं मन्यतात्मान प्रणिपातपुरःसरम् ।
उवाच वचनं राजा दानवानां धुरन्धरः ॥४०
अद्य वै त्रिपु लोकेपु नास्ति धन्यतरो मया ।
योऽहश्रिया वृत:शक्रं पश्यामिगृहमागतम् ॥४१
अर्थित्वकाम्यया यत्तु मामयं याचयिष्यति ।
गृहागतस्य तस्याहं दास्येप्राणानपिध्रुवम् ॥४२
दारान्पुत्रांस्तथागारं त्रैलोक्ये का कथा मम ।
आगत्य संमुख तस्य अङ्कमानीय सादरम् ॥४३
परिष्वज्याभिनन्द्य नं गृह प्रवेशयत्स्वकम् ।
तस्य स्वागतमर्घ्याद्यै कृत्वा पूजा प्रयत्नत. ॥४४

हे पार्थिव ! युद्ध करने मे दुर्मद दानव उस समय मे आगे आये हुए इन्द्र को देखकर दानवो के राजा वक्कलि के समीप मे जाकर यह बोले—॥३६॥ दानवो ने कहा—हे प्रभो ! यह आज बहुत ही अधिक आश्चर्य हो रहा है कि यह देवो का राजा इन्द्र आपकी पुरी मे आ रहा है । यह अकेला ही है केवल इसके साथ मे एक वामन ब्राह्मण है ॥३७॥ अब हम सबको इस समय जो कुछ भी करना चाहिए वह आप हमको आदेश प्रदान कीजिए । ऐसा दानवो के कहने पर उनमे दानवेन्द्र ने कहा—तुम सब पुर मे संकुल होकर स्थित रहो और उस देवराज को हमारे पास प्रविष्ट कर दो क्योंकि आज मेरा पूजा करने का योग है ॥३८॥ इसी समय मे वह वामन देव और देवराज इन्द्र वहाँ पर आ गये थे और दानवो के राजा के द्वारा बड़े ही प्रेम के साथ देखे गये थे ।३९।

उस समय में अपने आपको परम कृतार्थ मानते हुए प्रणिपात पूर्वक दानवों के धुरन्धर राजा ने यह वचन कहा था ॥४०॥ आज तीनों लोकों में मुझसे अधिक अन्य कोई भी धन्य एवम् भाग्यशाली नहीं है जो कि मैं श्री से युक्त होकर भी घर पर आये हुए देवराज का दर्शन कर रहा हूँ ॥४१॥ अर्थी होने की कामना से जो यह मुझसे कुछ भी याचना करेगा तो मेरे घर पर आये हुए इसको मैं अपने प्राण भी निश्चय ही दे दूँगा ॥४२॥ स्त्रियों को, पुत्रों को तथा गौवंश के समस्त अपार को दे डालूँगा, मेरी तो बात ही क्या है—इस प्रकार से विचार करते हुए उसके सम्मुख आकर बहुत ही आदर के साथ अपनी गोद में बिठाकर उसके साथ समालिङ्गन किया और अच्छी तरह अभिनन्दन करके अपने निज घर में उस देवराज का प्रवेश कराया था। फिर उसका स्वागत सत्कार करके अर्घादि से आदर पूर्वक पूजा की थी ॥४३।४४॥

अद्य मे सफलं जन्म पूर्णाः सर्वे मनोरथाः ।
यस्त्वां पश्यामि दानाढ्य स्वयमेव गृहागतम् ॥४५
ख्यातोऽहं दनुमुख्यानां देवराज त्वया कृतः ।
आगच्छता मम गृहं पुण्यता तु परा हि मे ॥४६
जानेऽहं दनुमुख्यानाप्रधानं त्वातुवास्कले ।
नात्याश्चर्यमिदं भाति त्वयि दृष्टेऽसुरोत्तम ॥४७
विमुखा नार्थिनो यान्ति भवतो गृहमागताः ।
अर्थिनां कल्पवृक्षोऽसि दाता चान्यो न विद्यते ॥४८
प्रभाया सूर्यतुल्योऽसि गाम्भीर्ये सागरोपम ।
सहिष्णुत्वे धराचैव श्रियानारायणोपम ॥४९
ब्राह्मणः कश्यपकुले जातोऽयं वामनः शुभे ।
प्रार्थितोऽहमनेनैव भूमेर्देहि पदत्रयम् ॥५०

दानव राज ने फिर कहा—आज मेरा जन्म सफल है और आज मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये हैं क्योंकि मैं आज स्वयं ही चलकर मेरे घर पर आये हुए हे देवराज! आपका दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ ॥४५॥ हे देवराज! आपने ही मुझे दानवों में प्रमुख प्रसिद्ध कर दिया है। आपने स्वयं मेरे घर पर शुभागमन

करके मुझे परम पुण्यवान् बना दिया है ॥ ४६ ॥ देवराज इन्द्र ने कहा—हे बाष्कले ! दानवों में परम प्रधान आपको मैं भली-भाँति जानता हूँ । हे असुरों में परम श्रेष्ठ ! आपके देखने पर मुझे यह कुछ अत्यन्त आश्चर्य नहीं प्रतीत होता है ॥ ४७ ॥ आपका स्वभाव ही ऐसा है कि जो भी कोई याचना करने वाले आपके घर पर आ जाते हैं व कभी भी विमुख होकर वापिस नहीं जाया करते हैं । आप तो याचना करने वालों के लिये तो कल्पवृक्ष के ही समान समस्त मनोरथ पूर्ण करने वाले हैं । आपके तुल्य तो संसार में अन्य कोई दान-दाता विद्यमान ही नहीं है ॥४८॥ प्रभा में तो आप तेजस्वी सूर्यदेव के समान हैं और गम्भीरता में सागर के तुल्य हैं । सहनशीलता तो आप में भूमि के सदृश विद्यमान है तथा श्री—सम्पन्नता ऐसी है कि आप साक्षात् नारायण जैसे हैं । देखिए यह वामन परम शुभ ब्रह्माजी के कश्यप कुल में समुत्पन्न हुआ है । इसने मुझसे याचना की थी कि तीन पद प्रमाण वाली भूमि का दान मुझे दे दो ॥ ४९।५० ॥

ममाग्निशरणार्थाय यत्र कुर्यां मख त्वहम् ।
तदस्य कारणं कृत्वा अर्थितंपा मम प्रभो ॥५१
लोकत्रय मेऽपहृतन्त्वया विक्रम्य बाष्कले ।
निर्वृ त्तिको निर्धनोऽस्मि यद्दित्सेन तदस्ति मे ॥५२
यदि ते रुचितं वीर दानवेन्द्र महाद्युते ।
तदस्मै दीयतां शीघ्रं वामनाय महात्मने ॥५३
देवेन्द्र स्वागत तेऽस्तु स्वस्ति प्राप्नुहि मा चिरम् ।
त्वं समीक्ष स्वधात्मानं सर्वेषां च परायणम् ॥५४
बृहत्तपा मे देवेन्द्र यद्भूमेस्तु पदत्रयम् ।
ब्राह्मणाय्य विशेषेण प्रार्थित तु त्वया विभो ॥५५
दास्ये गमवरानस्य भवतस्तुत्रिविष्टपम् ।
अस्यागजान्भूमिधरा स्त्रियश्चोद्भिन्नचूचुकाः ॥५६

मेरी अग्नि शरणार्थता के लिये जिस स्थान पर मैं मख किया करता हूँ उसी कारण से हे प्रभो ! इसने यह मेरी याचकता ग्रहण की थी ॥५१॥ हे

वात्सले ! आपने तो मेरे तीनों ही लोक अपने बल—विक्रम से अपहरण कर लिये हैं । मैं तो इस समय बिना वृत्ति वाला और एकदम निर्धन हो गया हूँ कि जो कुछ भी मेरी दे देने की इच्छा भी हो तो वह अब मेरे पास कुछ भी नहीं रहा है ॥५२॥ हे दानवेन्द्र वीर ! आप तो महती द्युति वाले हैं । यदि आपको उचित एवम् रुचिकर प्रतीत हो तो इस महान् आत्मा वाले वामन के लिये शीघ्र ही प्रदान कर दीजिए ॥५३॥ वाष्कलि ने कहा—हे देवेन्द्र ! आपका परम स्वागत है । आप शीघ्र ही कल्याण की प्राप्ति करें । आप सबके परायण हैं अपने आपको स्वयात्मा ही देखें ॥ ५४ ॥ किन्तु हे देवेन्द्र ! मुझे बहुत ही अधिक लज्जा हो रही है कि आपने इस ब्राह्मण के लिये केवल तीन पैड भूमि की ही प्रार्थना की है ॥५५॥ मैं इस वामन को बहुत ही श्रेष्ठ ग्राम दूंगा और आपको त्रिविष्टप दे दूंगा । इनके अतिरिक्त बहुत से अश्व—गज—भूमि, धन तथा समुन्नत वक्षःस्थल की सुन्दर स्त्रियाँ भी दूँगा ॥५६॥

पुरोधास्तूशना प्राह दानवेन्द्रं तदा वचः ।
भवाश्राजा दानवेन्द्र ऐश्वर्येऽष्टविधे स्थितः ॥५७
युक्तायुक्तं न जानामि देयं कम्य मया क्वचित् ।
मन्त्रिभिः सुसमालोच्य युक्तायुक्तं परीक्ष्य च ॥५८
प्राप्तं त्रैलोक्यराज्यत्वं जित्वा देवान्सवासवान् ।
वाक्यस्यास्यावसाने च भवान्प्राप्स्यति बन्धनम् ॥५९
य एष वामनोराजन्विष्णुरेव सनातनः ।
नास्य वै भवता देयं पिता ते घातितः स्वयम् ॥६०
अयं ते पितृहा प्रातो मातृहा बन्धुघातकः ।
यशोच्छेदकरस्तुभ्यं भूतश्चैव भविष्यति ॥६१
न चैष धर्मं जानाति शक्रादीनां हिते रतः ।
मायाविनो दानवा ये मायया येननिर्जिताः ॥६२
मायया ब्राह्मणं रूपं वामनं च प्रदर्शितम् ।
अत्र किं बहुनोक्तेन नास्य देयं तु किञ्चन ॥६३
मक्षिकापादमात्रं तु भूमिरस्य प्रतिग्रहः ।
विनाशमेष्यसि क्षिप्रं सत्यं सत्यं मया श्रुतम् ॥६४

उसी समय मे दानवो के पुरोहित जो शुक्राचार्य थे उन्होने दानवेन्द्र से यह वचन कहे थे—हे दानवेन्द्र ! आप राजा हैं और आठ प्रकार के ऐश्वर्यों मे इस समय अधिष्ठित हैं अर्थात् सभी ऐश्वर्य आपको प्राप्त हैं ।।५७। किन्तु आप क्या युक्त है और क्या अयुक्त हैं—यह बिल्कुल भी नहीं जानते हैं । किस समय मे,मुझको किस के लिये,क्या देना चाहिए इसका ज्ञान आपको नहीं है । आपको चाहिए कि अपने मन्त्रियो के साथ भली-भाँति समालोचना करके और युक्त तथा अयुक्त की परीक्षा करके देना चाहिए ।।५८।। इन्द्र के सहित समस्त देवों को जीतकर आपने अपने ही बल विक्रम से यह त्रैलोक्य के राज्य-वैभव को प्राप्त किया है । अब जो दान देने का वचन तो आप दे चुके हैं किन्तु इसके पूर्ण करने के अवसान मे ही आप बन्धन की प्राप्ति करेंगे ।।५६।। हे राजन् ! जो यह वामन (बौना) ब्राह्मण है यह साक्षात् सनातन विष्णु ही है । इसको आपके द्वारा कुछ भी नहीं देना चाहिए क्योंकि इसने स्वयं ही आपके पिता का हनन किया था ।। ६० ।। यही तुम्हारे पिता को मारने वाला है जो यहाँ अब प्राप्त हुआ है, यही माता का हनन करने वाला और बन्धुओ का घात करने वाला है । यह आपके वंश का उच्छेद करने वाला है, सर्वदा से रहा है और भविष्य मे भी रहेगा ।। ६१ ।। यह धर्म की तथा न्याय की बात कुछ भी नहीं समझता है और सर्वदा इन्द्र आदि देवगणो का ही हित करने मे संलग्न रहा करता है। यह बहुत ही मायावी है । इसने अपनी माया से ही समस्त दानवो को निर्जित किया है ।। ६२ ।। इस समय भी माया से ही ब्राह्मण वामन का स्वरूप प्रदर्शित किया है । मैं अब इससे अधिक बहुत क्या कहूँ, संक्षेप मे मेरा कथन यही है कि इसको कुछ भी नहीं देना चाहिए । तीन पैंड तो बहुत है इसे तो मक्खी के चरण के बराबर भी भूमि का दान देना तेरे विनाश का करने वाला हो जायगा और वह भी बहुत ही शीघ्र होगा । मैं यह पूर्णत सत्य सत्य कहता हूँ ।।६३ ६४।।

गुरुणाप्येवमुक्तस्तु भूयो वाक्यमथाब्रवीत् ।
धर्मार्थिना मया सर्वं प्रतिज्ञातं गुरो त्विदम् ।।६५
प्रतिज्ञापालनं कार्यं सतां धर्मः सनातनः ।
यद्यपि भगवान्विष्णुर्नास्ति धन्यतरो मया ।।६६

गृह्य प्रतिग्रह मत्तो यदि देवान्नृभूपति ।
भूयोऽपि धन्यता नीतो देवेनानेन वै गुरा ॥६७

य योगिना ध्यानयुक्ता ध्ययमाना हि दर्शनम् ।
न लभन्ते तथा विप्रास्साऽय दृष्टा मयाद्य वै ॥६८

एतच्छ्रुत्वा गुरुस्तत्र अपयाऽधोमुख स्थित ।
प्रथिता भवता देव दया सर्वा धरा मया ॥६९

अपाकर भवेन्मह्य यदस्य भूपदत्रयम् ।
सत्यमतद्दानवेन्द्र यदुक्त भवता हि म ॥७०
भूम पदत्रयायित्व द्विजेनानन म हृतम् ।
एतावता त्वय चार्थी मयाप्यस्य कृत भवान् ॥७१

दानवों के गुरु शुक्राचार्य के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर दानवेन्द्र ने फिर यह वचन कहा था—हे गुरो ! धर्म के पथों में इसको दान देने की प्रतिज्ञा कर दी है ॥६५॥ की हुई प्रतिज्ञा का पालन करना सत्पुरुषों का सनातन धर्म होता है। यदि यह साक्षात् भगवान् विष्णु ही वामन का स्वरूप धारण करके मेरे पास भूमि की याचना करने के लिए आये हैं तो फिर इस संसार में मुझसे अधिक कोई भी धन्य तथा भाग्यशाली नहीं है ॥६६॥ हे गुरुवर ! यदि मुझसे दान ग्रहण करके भी यह देव को विभूषित कर देवेंगे तो मैं और भी अधिक इस देव के द्वारा धन्यता को प्राप्त कर दिया जाऊँगा ॥६७॥ जिसको ध्यान में निमग्न होकर ध्यान करते हुए भी योगीजन दर्शन न नहीं पा पाते हैं और विप्र लोग भी जिसकी प्राप्ति नहीं किया करते हैं उसी का आज मैंने अपने ही घर पर प्राप्त हुआ दर्शन लिया है—यह तो मेरे ही बड़े सौभाग्य की बात है ॥६८॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—दानवेन्द्र की यह बात सुनकर गुरु शुक्राचार्य लज्जा से नीचे की ओर मुख करके स्थित हो गये। बाद में बलि ने कहा—हे देव ! आपने जो मुझसे भूमि की याचना की है वह सम्पूर्ण भूमि मुझे प्रदान की आपको दी ही है किन्तु यह तीन पैड भूमि का दान मुझे बादल ही लज्जा देने वाला हो रहा है। इन्द्र ने कहा—हे दानवेन्द्र ! आपने जो कुछ भी मुझसे कहा है वह सम्पूर्ण सत्य है ॥६९।७०॥ इस द्विज ने मुझसे केवल तीन पैड ही

भूमि की याचना की थी। यह याचक इतनी ही भूमि का इच्छुक है अतएव मैंने भी आपसे उतनी ही भूमि के दान के लिये निवेदन किया है ॥७१॥

दनुपुत्रो याचितोऽसि वरमेतत्प्रदीयताम् ।
पदत्रयं वामनाय देवराज प्रतीच्छ मे ॥७२
तत्र त्वं सुचिरं कालं सुखी सुरपते वस ।
एवमुक्त्वा बाष्कलिना वामनाय पदत्रयम् ॥७३
तोयपूर्वं तदा दत्तं प्रीयतां मे हरिः स्वयम् ।
दत्ते तु दानवेन्द्रेण त्यक्त्वा रूपं च वामनम् ॥७४
हरिराचक्रमे लोकान्देवानां हितकाम्यया ।
यज्ञपर्वतमासाद्य गत्वाचैव उदङ्मुखः ॥७५
देवस्य वामचरणे निविष्टो दानवालयः ।
तत्र क्रमं स प्रथमं ददौ सूर्ये जगत्पतिः ॥७६
द्वितीयं च ध्रुवे देवस्तृतीयेन च पार्थिव ।
ब्रह्माण्डस्ताडितस्तेन देवेनाद्भुतकर्मणा ॥७७
अंगुष्ठाग्रेण भिन्नेऽण्डे जलं भूरि विनिःसृतम् ।
प्लावयित्वा ब्रह्मलोकान्सर्वांल्लोकाननुक्रमात् ॥७८

मैंने दनु के पुत्र आपसे यही याचना की है। इतनी ही भूमि प्रदान करने का कार्य श्रेष्ठ है और वही आप इस समय प्रदान कर दीजिए। बाष्कलि ने कहा—हे देवराज! वहाँ पर बहुत समय तक सुखी होकर निवास करें ॥७२॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—इस प्रकार से कहकर बाष्कलि ने वामन जिस के लिये जल पूर्वक तीन पद प्रमाण भूमि उस समय में प्रदान कर दी थी और यह कहा था कि श्री हरि भगवान् स्वयं मुझ पर प्रसन्न होवें। दानवेन्द्र के द्वारा इस प्रकार से संकल्प कर भूमि का दान दे देने पर वामन ने अपना यह बौना (वामन) स्वरूप त्याग दिया था ॥ ७३,७४ ॥ फिर हरि ने देवों के हित की कामना से समस्त लोकों को आक्रान्त कर लिया था। यज्ञ पर्वत को प्राप्त कर वहाँ जाकर ही उदङ्मुख होकर स्थित हुए ॥ ७५ ॥ देव के वाम चरण में वह दानवालय गत निविष्ट हो गया था। वहाँ पर उनमें जो कि जगत् के स्वामी हैं

सूर्य में प्रथम क्रम किया था। ७६॥ देव ने द्वितीय पदक्रम ध्रुव में दिया था। हे पार्थिव! तीसरे से उस देव ने अपने अद्भुत कर्म के द्वारा ब्रह्माण्ड को ताडित कर दिया था ॥७७॥ अंगुष्ठ के अग्रभाग से अण्ड के भिन्न हो जाने पर बहुत-सा जल निकल पड़ा था। उस जल ने ब्रह्मलोकों को तथा अनुक्रम से सभी लोकों को प्लावित कर दिया था। ७८॥

स बाष्कलिर्वामनेन उक्त पूरय मे क्रमान्।
अधोमुखस्तदा जात उत्तर नाभ्यविन्दति ॥७९
मौनीभूत तु त दृष्ट्वा पुरोधा वाक्यमब्रवीत्।
स्वाभाविकी दानशक्तिर्न तु सन्तु वय क्षमा ॥८०
यावतीय धरा देव सा दत्ताऽनेन ते प्रभो।
उक्तो बाष्कलिना विष्णुर्यावन्मात्रा वसुन्धरा ॥८१
या सृष्टा भवता पूर्व सा मया न च गोपिता।
अल्पा भूमिर्भवान्दीर्घो न तु सृष्टेरह क्षम ॥८२
इच्छाशक्ति प्रभवति प्रभोस्ते देव सर्वदा।
निरुत्तरस्तदा विष्णुर्मत्वा त सत्यवादिनम् ॥८३
ब्रूहि दानवमुख्य त्व कते काम करोम्यहम्।
मम हस्तगत लोय त्वया दत्त तु दानव ॥८४
तेन त्व वरयोग्योऽसि वराणा भाजन शुभम्।
दास्येऽह भवत काममर्थयिनवृणुष्वह ॥८५
विज्ञप्तो हि तदा तेन देवदेवो जनार्दन।
भक्ति वृणामि देवेश त्वदस्तान्मरण हि मे ॥८६
व्रजामि श्वेतद्वीप ते दुर्लभ तु तपस्विनाम्।
आहैवमुक्ते विष्णुस्ता तिष्ठस्वैक युगान्तरम् ॥८७
वाराहरूपी यदाह प्रवेक्ष्यामि धरातलम्।
तदा हनिष्येऽह त्वा तु मदग्रे

...न से, राजा दशरथ के मरन से घोर भाई

वामन के द्वारा ...न से इन तीनों कारणों से मैं बहुत ही परितप्त हो रहा

पूरा करो। ...द्वारा कथित इस वचन को श्रवण कर उस समय में विप्र श्रेष्ठ

होगया था और इसका कोई भी उत्तर वामन को प्राप्त नहीं हुआ था ॥७६॥ जब वह बाष्कलि मौनी होकर स्थित होगया तो उसको उस स्थिति में स्थित देखकर पुरोहितजी ने यह वचन कहे थे—शुक्र ने कहा—हे प्रभो ! यह दान की तो स्वाभाविकी है जो भी वस्तु जिस रूप में वर्त्तमान है उसी के उसी रूप में दान करने की मेरे यजमान में शक्ति है। हम लोग नई भूमि की रचना करने में तो कुछ भी सामर्थ्य नहीं रखते हैं कि तुरन्त सृजन करके आपको दान दे दिया जावे और शेष की पूर्त्ति करदी जावे। हे देव ! जितनी भी धरा इस दानवेन्द्र मेरे शिष्य के पास थी वह सभी तो इसने आपको देदी है ॥८०॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—उस समय में बाष्कलि के द्वारा भगवान् विष्णु से कहा गया था कि जितनी यह भूमि थी और जिसका सृजन आपने पूर्व में किया था उसमें से तो मैंने कुछ भी छिपा कर नहीं रक्खा है। यह भूमि तो बहुत ही थोड़ी है और आपका स्वरूप इस समय में बहुत दीर्घ है। मैं सृष्टि करने के कार्य में समर्थ नहीं हूँ ॥८१॥ हे देव ! हे प्रभो ! आपकी सर्वदा इच्छा शक्ति ही प्रभव किया करती है। तब तो भगवान् विष्णु निरुत्तर हो गये थे और उसको सर्वथा सत्य बोलने वाला मान लिया था ॥ ८२ ॥ भगवान् विष्णु ने इसके पश्चात् उससे कहा—हे दानवों में परम प्रधान ! अब तुम बोलो कि मैं तुम्हारी कौन-सी कामना को पूर्ण करूँ। हे दानव ! मेरे हाथ में तो सरल करके तुम्हारे द्वारा दिया हुआ जल वर्त्तमान है ॥८३॥ इससे तो तुम अवश्य ही वरदान देने के योग्य हो और परम शुभ वरदान प्राप्त करने के पात्र भी हो। मैं तुम्हारी कामना के अनुसार ही दूँगा जो भी आपका अर्थ हो माँग लो ॥८४॥ उस समय में देवों के देव भगवान् जनार्दन को भली-भाँति जान लिया गया था। बाष्कलि ने कहा—हे देवेश ! मैं तो आपकी भक्ति प्राप्त करने का वरदान ही चाहता हूँ। आपके हाथ में मेरा मरण हो। ... में तो श्वेत द्वीप को जाता हूँ जो कि तपस्वियों को भी परम दुर्लभ स्थान है ॥ ८५ ॥ पुलस्त्य ने कहा—इस प्रकार से

... विष्णु ... कहा—एक युगान्तर पर्यन्त वहाँ तुम रहो। मैं
(वामन) स्वरूप त्याग दिया था।
... में प्रवेश करूँगा उसी समय में
कामना से समस्त लोकों को आक्रान्त कर। ... ॥८६।८७ ८८॥
वहाँ जाकर ही उदङ्मुख होकर स्थित हुए ॥ ७५ ॥ ...
दानवालय सब निविष्ट हो गया था। वहाँ पर उनमें जो कि अग...

॥ पुष्कर तीर्थ का निर्माण कथन ॥

तथान्य ते प्रवक्ष्यामि इतिहास पुरातनम् ।
यथा रामेण वै तीर्थं पुष्कर तु विनिर्मितम् ॥१
चित्रकूटात्पुरा रामो मैथिल्या लक्ष्मणेनच ।
अत्रेराश्रममासाद्य पप्रच्छ मुनिसत्तमम् ॥२
कानि पुण्यानि तीर्थानि किं वा क्षेत्र महामुने ।
यत्र गत्वा नरो योगिन्वियोगं सह वन्धुभिः ॥३
नैव प्राप्नोति भगवन्स्तन्ममाचक्ष्वसुव्रत ।
अनेन वनवासेन राजस्तु मरणेन च ॥४
भरतस्य वियोगेन परितप्ये ह्यह त्रिभिः ।
तद्वाक्य राघवेणोक्तं श्रुत्वा विप्रर्षभस्तदा ॥५
ध्यात्वा च सुचिरं कालमिदं वचनमब्रवीत् ।
साधु पृष्ट त्वया वीर रघूणा वशवर्धन ॥६
मम पित्रा कृत तीर्थं पुष्कर नाम विश्रुतम् ।
पर्वतौ द्वौ च विख्यातौ मर्यादायज्ञपर्वतौ ।
कुण्डत्रय तयोर्मध्ये ज्येष्ठमध्यकनिष्ठकम् ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—अब मैं एक दूसरा बहुत ही पुराना इतिहास तुमको बतलाता हूँ कि जिस प्रकार से राम ने इस पुष्कर नाम वाले तीर्थ का निर्माण किया था ॥ १ ॥ पुराने समय में जबकि श्रीराम अपनी पत्नी मैथिली और छोटे भाई लक्ष्मण के साथ अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचे थे और उन्होंने मुनियों में श्रेष्ठ से पूछा था ॥२॥ श्रीराम ने कहा था—हे महामुने ! परम पुण्य तीर्थ कौन-कौन से हैं तथा पुण्य क्षेत्र कौन है ? हे योगिन् ! जहाँ पर मनुष्य पहुँचकर अपने बन्धुओं के साथ वियोग कभी नहीं प्राप्त किया करता है। हे सुन्दर व्रतों वाले ! हे भगवन् ! वह हमको कृपा करके आप बतला दीजिए। इस घोर, महा कठिन वनवास करने से, राजा दशरथ के मरने से और भाई भरत के वियोग हो जाने से इन तीनों कारणों से मैं बहुत ही परितप्त हो रहा हूँ श्रीराम के द्वारा कथित इस वचन को श्रवण कर उस समय में विप्र श्रेष्ठ

मुनि ने बहुत समय तक ध्यान किया था और फिर इसके उपरान्त यह वचन वे बोले थे—॥ ३ ॥४ ॥ ५ ॥ महर्षि मुनि ने कहा था—हे राघवेन्द्र ! आपने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है। आप तो रघु के वंश की वृद्धि करने वाले हैं ॥ ६ ॥ मेरे पिताजी ने 'पुष्कर'—इस नाम से परम प्रसिद्ध तीर्थ की रचना की थी। मर्यादा और यज्ञ पर्वत—इन दो नामों वाले परम विख्यात पर्वत हैं। उन दोनों पर्वतों के मध्य में ज्येष्ठ—मध्यम और कनिष्ठ ये तीन कुण्ड वर्त्तमान हैं ॥७॥

तेषु गत्वा दशरथं पिण्डदानेन तर्पय ।
तीर्थानां प्रवरं तीर्थश्रेष्ठानामपि चोत्तमम् ॥
अविमोचा च सुरसा वापी रघुकुलोद्वह ॥८
पितृंस्तर्पयामास अद्भिर्देवांश्च सर्वशः ।
स्नानाचमाने रामेण मार्कण्डो मुनिपुङ्गव ॥९
आगच्छच्छिष्यसंयुक्तो दृष्टस्तत्रैव धीमता ।
गत्वा वै सम्मुखं तस्य प्रणिपत्य च सादरम् ॥१०
पृष्टोऽविमोचः कूपः कस्मात्स्याद् दिवि प्रभो ।
सुतो दशरथस्याहं रामो नाम जनैः स्मृतः ॥११
कौतुकवापीतो द्रष्टुमहं प्राप्तोऽविचारणात् ।
तत्स्वाख्यातो चैव कूपो भगवांस्त्वयोत्तमे ॥१२
एवमुक्तस्तु रामेण मार्कण्डः प्रत्युवाच ह ।
साधु राघव भद्रं ते सुष्टु भवता कृतम् ॥१३
तीर्थयात्राप्रसंगेन यत्प्राप्तोऽसीह साम्प्रतम् ।
एतामद्भुतरूपां पश्यस्व वापीं नामविमोचनाम् ॥१४

उन तीनों कुण्डों में जाकर और महाराज दशरथ को पिण्डदान देकर तृप्त करिये। यह समस्त तीर्थों में भी श्रेष्ठ तीर्थ है और सबसे उत्तम है। हे रघुकुल के उद्वहन करने वाले ! वहाँ पर एक अविमोचा सुरसा नाम वाली (बावड़ी) है ॥८॥ वहाँ पर श्रीराम ने अपने पितृगण का तथा देवों का वहाँ के जल के द्वारा सब प्रकार से तर्पण किया था। जब स्नान

कर लिया था उसके अन्त मे श्रीराम ने मुनियो मे श्रेष्ठ मार्कण्डेय मुनि को शिष्यो से सयुक्त वहाँ आते हुए देखा था। उनके सामने जाकर बहुत ही आदर के साथ धीमान् राम ने प्रणाम किया था ॥६।१०॥ श्रीराम ने उन मुनि श्रेष्ठ से पूछा था—हे प्रभो ! वियोग के न देने वाला वह कूप यहाँ किस दिशा में है ? मैं महाराज दशरथ का पुत्र हूँ जिसको कि मनुष्यो के द्वारा 'राम'—यह नाम कहा जाता है ॥११॥ श्रीराम ने कहा था कि मैं तो अत्रिमुनि की आज्ञा से उस सौभाग्य वापी का दर्शन करने के लिये ही यहाँ पर आया हूँ। अब आप कृपाकर वह स्थान और वे दोनों कूप मुझे बतला दीजिये ॥१२॥ इस प्रकार से श्रीराम के द्वारा कहे जाने पर मार्कण्डेय मुनि ने इसका प्रत्युत्तर दिया था। मार्कण्डेय ऋषि ने कहा—हे राघव ! बहुत अच्छा किया, आपका कल्याण हो, आपने बड़ा सुकृत किया है ॥१३॥ आप तीर्थ यात्रा के प्रसग से ही यहाँ पर प्राप्त हुए हैं तो आप मेरे साथ इस समय आइये, मैं आपको उस अवियोग प्रदान करने वाली वापी को दिखलाता हूँ उसे आप देख लीजिये ॥१४।

अवियोगश्च सर्वेश्च कूप एवात्र जायते।
आमुष्मिके चैहिके च जीवतोऽपि मृतस्य वा ॥१५
एतद्वाक्य मुनीन्द्रस्य श्रुत्वा लक्ष्मणपूर्वज ।
सस्मार रामो राजान तदा दशरथ नृप ॥१६
भरत सह शत्रुघ्न भ्रातृनन्याश्च नागरान् ।
एव चिन्तयतस्तस्य सन्ध्याकालो व्यजायत ॥१७
उपास्य पश्चिमा सन्ध्या मुनिभि सह राघव.।
सुष्वाप ता निशा तत्र भ्रातृभार्यासमन्वित ॥१८
विभावर्यवसाने तु स्वप्नान्ते रघुनन्दनः ।
पित्रा माता तथा चान्यैरयोध्याया स्थित. किल ॥१६
विवाहमङ्गले वृत्ते बहुभिर्बान्धवै. सह ।
समासीन· सभार्योऽभ्रातृभिः परिवारित· ॥२०
लक्ष्मणेनाप्येवमेव दृष्टोऽसौ सीतया तथा।
प्रभाते तुमुनीनान्तत्सर्वमेव प्रकीर्तितम् ॥२१

ऋषिभिश्चनथेत्युक्त सत्यमेतद्रघूत्तम ।
मृतस्य दर्शने श्राद्धं कार्यमावश्यकं स्मृतम् ॥२२

य.ी पर मृप ही ऐसा है कि इस लोक मे और परलोक मे जीवित अथवा मृत प्राणी सबके साथ वियोग नहीं होता है ॥ १५ ॥ महामुनीन्द्र मार्कण्डेय के इस वचन को लक्ष्मण के ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम ने सुनकर हे नृप ! उसी समय मे राम ने महाराज दशरथ का स्मरण किया था ॥ १६ ॥ इनके अतिरिक्त भरत—शत्रुघ्न, अन्य भाई—दूसरे नगर के निवासी इन सबका ध्यान करते हुए श्रीराम को सन्ध्या काल हो गया था ॥ १७ ॥ मुनियो के साथ ही श्रीराघव ने पश्चिम सन्ध्या की उपासना करके अपने छोटे भाई और भार्या के साथ उस रात्रि मे वहीं पर ही शयन किया था ॥ १८ ॥ जब रात्रि का अन्त हो गया था उसी समय मे स्वप्नावस्था मे श्री रघुनन्दन अपने पिता-माता तथा अन्यों के साथ अयोध्या मे स्थित थे ॥ १९ ॥ बान्धवों के साथ विवाह-मगल के होने पर वह अपनी भार्या के साथ ऋषियों से परिवृत होते हुए विद्यमान थे ॥२०॥ इसी प्रकार से लक्ष्मण ने भी सीता के सहित देखा था। जब प्रभात काल हो गया तो उस समय में श्रीराम ने मुनियों से यह घटना कही थी ॥२१॥ ऋषियों ने भी 'ठीक ऐसा ही है'—यह कहते हुए कहा—हे रघूत्तम ! यह बिल्कुल सत्य है। मृत पुरुष के दर्शन करने पर श्राद्ध करना परमावश्यक बताया गया है ॥ २२ ॥

स्नात्वा रामो योगवाप्यां मुनींस्तानुपालयन् ।
मध्याह्नाच्चलिते सूर्य कालेकुतपकेतथा ॥२३
आयाताऋषयः सर्वे येरामेणानुमन्त्रिताः ।
तानागतान्मुनीन्दृष्ट्वा वैदेही जनकात्मजा ॥२४
रामान्तकं परित्यज्य व्रीडिताऽन्यत्रसंस्थिता ।
विस्मयोत्फुल्लनयना चिन्तयानाचवेपती ॥२५
ब्राह्मणा नेह जानन्तिश्राद्धकाले ह्युपस्थिताः ।
रामेण भोजिता विप्राः स्मृत्युक्तेन यथाविधि ॥२६
वैदिकश्च कृतास्सर्वा. सत्क्रियायास्समीरिताः ।
पुराणोक्तो विधिश्चैव वैश्वदेविकपूर्वकः ॥२७

भुक्तवत्सु च विप्रेषु दत्वा पिण्डान्यथाक्रमम् ।
प्रेषितेषु यथाशक्ति दत्वातेषुचदक्षिणाम् ॥२८

उस समय में श्रीराम ने योग वापी में स्नान करके उन मुनियों को आमन्त्रित किया था । मध्य ह्न से सूर्य के चलित हो जाने पर और ऐसा समय उपस्थित हो जाने पर जबकि ताप कुछ कम हो गया था, वे सभी ऋषिगण वहाँ आकर उपस्थित हो गये थे जो-जो श्रीराम के द्वारा निमन्त्रित किए गये थे । उन समागत मुनियों को देखकर जनक की पुत्री वैदेही उस समय के समीपस्थ स्थान को त्यागकर लज्जित होती हुई दूसरे स्थान पर आकर संस्थित हो गई थी, उस समय में जानकी के नेत्र विस्मय से उत्फुल्ल हो रहे थे और वह चिन्तित सी होकर काँप रही थी ॥२३।२४।२५॥ श्राद्ध के समय पर उपस्थित होने वाले ब्राह्मण यहाँ नहीं आनते थे । श्रीराम ने उन समस्त ब्राह्मणों को स्मृतियों में कही हुई विधि से भोजन कराया था ॥२६॥ वैदिकी अर्थात् वेद में बताई हुई सभी सत्क्रियाएँ भली भाँति की गई थीं । पुराणों में जो विधि-विधान श्राद्ध के विषय में बताया गया है वह भी वैश्वदेविक पूर्वक किया गया था ॥२७॥ समस्त विप्रों के भोजन कर लेने पर क्रम के अनुसार पिण्डों को देकर सबको यथाशक्ति दक्षिणा देकर उनको सबका वापिस विदाई दे दी थी ॥२८॥

गतेषु विप्रमुख्येषु प्रियारामोऽब्रवीदिदम् ।
किमर्थं सुभ्रु नष्टासि मुनीन्दृष्ट्वा त्विहागतान् ॥२९
तत्सर्वं त्वमिद तत्व मारणा वद मा चिरम् ।
भवितव्य कारणेन तन्न गोप्यनमे कुरु ॥३०
शापितासि मम प्राणैर्लक्ष्मणस्य शुचिस्मिते ।
एवमुक्ता तदा भर्त्रा त्रपयाऽवाङ्मुखी स्थिता ॥३१
विमुञ्चन्ती साऽश्रुपात राघव वाक्यमब्रवीत् ।
शृणुत्व नाथ यद्दृष्टमाश्चर्यमिह यादृशम् ॥३२
राम त्वया चिन्त्यमानो राजेन्द्रस्त्विह चागतः ।
सर्वाभरणसयुक्तो द्वौ चान्यौ च तथाविधौ ॥३३
द्विजाना देहसयुक्त स्त्रयस्ते रघुनन्दन ।
पितरस्तु मया दृष्टा ब्राह्मणाङ्गेषु राघव ॥३४

दृष्ट्वा नृपान्विता चाहमपक्रान्ता तवान्तिकात् ।
त्वया वै भोजिता विप्राः कृतं श्राद्धं यथाविधि ॥३५

जब समस्त विप्रों ने भोजन कर लिया था तो इसके उपरान्त भगवान् श्रीराम ने अपनी प्रिया वैदेही से कहा था—हे सुभ्रु ! यहाँ पर आये हुए इन मुनियों को देखकर आप यहाँ समय क्यों चली गई थी ? ॥२९॥ आप इसका सम्पूर्ण तत्व तथा कारण हमको बतलाइये और इसके बताने में विलम्ब न करो । इसका कोई न कोई कारण तो अवश्य ही होना चाहिए । अब उस कारण को मुझसे मत छिपाओ ॥३०॥ हे शुचिस्मित वाली ! आपको मेरी तथा लक्ष्मण की शपथ है अगर तुम इसे मुझसे छिपाती हो । इस तरह से अपने स्वामी के द्वारा जब जानकी से कहा गया तो वह लज्जा से नीचे की ओर मुख करके स्थित हो गई थी ॥ ३१ ॥ जानकी अपने नेत्रों से आँसुओं का पात करती हुई श्रीराम से यह वचन बोली—हे नाथ ! मैंने यहाँ पर जो भी, जिस प्रकार का आश्चर्य देखा था उसको आप श्रवण कीजिए ॥३२॥ हे राम ! आपके द्वारा स्थान किये जाने पर राजेन्द्र यहाँ पर आये थे । समस्त आभरणों से सुसमन्वित उसी प्रकार के दो अन्य पुरुष भी थे ॥३३॥ हे रघुनन्दन ! द्विजों के देह से संयुक्त वे तीन पितर ब्राह्मणों के अङ्गों में हे राघव ! मैंने देखे थे ॥३४॥ उनको देखकर लज्जा से युक्त होकर आपके समीप में से अलग चली गई थी । आपने उन ब्राह्मणों को भोजन करा दिया है और विधि के अनुसार पूरा श्राद्ध कर लिया है ॥३५॥

वल्कलाजिनसंवीता कथं राजा.पुर मरा ।
भवामि रिपुवीरघ्न सत्यमेतद् दाहृतम् ॥३६
ततु त्वा राघवः प्रीतः प्रिया तां प्रियवादिनीम् ।
अङ्कमानीयसुहृद परिष्वज्यच सादरम् ॥३७
भुक्तो भोज्य तदा वीरो पश्चाद्भुक्ता च जानकी ।
एव स्थितो तदा सा च ता रात्रिं तत्र राघवौ ॥३८
उदिते च सहस्रांशौ गमनाय मनो दधुः ।
प्रययु मुग गत क्रौंचं ज्येष्ठ यावद्य पुष्करम् ॥३६

यह सुनकर राघवेन्द्र अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और उस परम प्रिय भाषण ने वाली अपनी प्रिया को अपनी गोद में बिठाकर आदर और दृढता के साथ का समालिङ्गन किया था ॥ ३६ ॥ उसी समय उन दोनों वीरों ने भोज्य दार्थों का भोजन किया था और इनके भोजन कर लेने के पश्चात् जानकी ने ी भोजन किया था। इस प्रकार से वहाँ पर उन दोनों राम लक्ष्मण ने तथा जानकी ने उस रात्रि में विश्राम किया ॥३७ ३८॥ जब प्रातःकाल में सूर्य उदित हुए थे तो उस समय में इनने गमन करने का मन में विचार किया था। पश्चिम की ओर मुख करके एक कोस पर्यन्त गये थे जहाँ तक कि ज्येष्ठ पुष्कर था ॥३६॥

॥ राम का अगस्त्याश्रम गमन ॥

ततो देवाः प्रयातास्ते विमानैर्बहुभिस्तदा ।
रामोऽप्यनुजगामाशु कुम्भयोनेस्तपोवनम् ॥१
उक्तः भगवता तेन भूयोऽप्यागमनं कृथाः ।
पूर्वमेव सभायां च यो मा द्रष्टुं समागतः ॥२
तदहं देवतादेशात्तत्कार्यार्थे महामुनिम् ।
पश्यामि तं मुनिं गत्वा देवदानवपूजितम् ॥३
दृष्ट्वा च देवान्सम्प्राप्तानगस्त्यो भगवानृषिः ।
अर्घ्यमादाय सुप्रीतः सर्वांस्तानभ्यपूजयत् ॥४
ते तु गृह्य ततः पूजां सम्भाष्य च महामुनिम् ।
जग्मुस्त्रिदशा हृष्टा नाकपृष्ठं सहानुगाः ॥५
सुतां दशरथस्याह भवन्तमभिवादितुम् ।
आगतो वै मुनिश्रेष्ठ सौम्येनेक्षस्व चक्षुषा ॥६
निर्धूतपापस्त्वां दृष्ट्वा भवामीह न संशयः ।
एतावदुक्त्वा तं मुनिमभिवाद्य पुनः पुनः ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इसके अनन्तर वे समस्त देवगण उसी समय में उन बहुत से विमानों के द्वारा रवाना हो गये थे। श्रीराम भी उनके पीछे ही शीघ्र कुम्भयोनि ऋषि के तपोवन को चले दिये थे ॥१॥ कुम्भयोनि भगवान्

दृष्टा अपावित्ता चाहमपक्रान्ता तवान्तिकात् ।
त्वया वै भोजिता विप्राः कृतं श्राद्धं यथाविधि ॥३५

जब समस्त विप्रों ने भोजन कर लिया था तो इसके उपरान्त भगवान् श्रीराम ने अपनी प्रिया वैदेही से कहा था—हे सुभ्रु ! यहाँ पर आये हुए इन मुनियों को देखकर आप यहाँ अलग क्यों चली गई थी ? ॥२९॥ आप इसका सम्पूर्ण तत्त्व तथा कारण हमको बतलाइये और इसके बताने में विलम्ब न करो । इसका कोई न कोई कारण तो अवश्य ही होना चाहिए । अब उस कारण को मुझसे मत छिपाओ ॥३०॥ हे सुचिस्मित वाली ! आपको मेरी तथा लक्ष्मण की शपथ है अगर तुम इसे मुझसे छिपाती हो । इस तरह से अपने स्वामी के द्वारा जब जानकी से कहा गया तो वह लज्जा से नीचे की ओर मुख करके स्थित हो गई थी ॥ ३१ ॥ जानकी अपने नेत्रों से आँसुओं का पात करती हुई श्रीराम से यह वचन बोली—हे नाथ ! मैंने यहाँ पर जो भी, जिस प्रकार का आश्चर्य देखा था उसका आप श्रवण कीजिए ॥३२॥ हे राम ! आपके द्वारा ध्यान किये जाने पर राजेन्द्र यहाँ पर आये थे । समस्त आभरणों से सुसमन्वित उसी प्रकार के दो अन्य पुरुष भी थे ॥३३॥ हे रघुनन्दन ! द्विजों के देह से संयुक्त वे तीन पितर ब्राह्मणों के अङ्गों में हे राघव ! मैंने देखे थे ॥३४॥ उनको देखकर लज्जा से युक्त होकर आपके समीप में मैं अलग चली गई थी । आपने उन ब्राह्मणों को भोजन करा दिया है और विधि के अनुसार पूरा श्राद्ध कर लिया है ॥३५॥

वल्कलाजिनसंवीता कथं राज्ञः पुरः मगः ।
भवामि रिपुवीरघ्न सत्यमेतद् दाहृतम् ॥३६
तच्छ्रुत्वा राघवः प्रीतः प्रियां तां प्रियवादिनीम् ।
अङ्कमानीयमुदृढं परिष्वज्यच सादरम् ॥३७
भुक्त्वा भोज्यं तदा वीरो पश्चाद्भुक्ता च जानकी ।
एवं स्थितौ तदा सा च तां रात्रिं तत्र राघवौ ॥३८
उदिते च सहस्रांशौ गमनाय मनो दधुः ।
प्रत्यङ्मुखं गत क्रोशं ज्येष्ठं यावच्च पुष्करम् ॥३९

यह सुनकर राघवेन्द्र अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और उस परम प्रिय भाषण करने वाली अपनी प्रिया को अपनी गोद में बिठाकर आदर और दृढ़ता के साथ उसका समालिङ्गन किया था ॥ ३६ ॥ उसी समय उन दोनों वीरों ने भोज्य पदार्थों का भोक्षण किया था और इनके भोजन कर लेने के पश्चात् जानकी ने भी भोजन किया था। इस प्रकार से वहाँ पर उन दोनों राम लक्ष्मण ने तथा जानकी ने उस रात्रि में विश्राम किया ॥३७ ३८॥ जब प्रातःकाल में सूर्य उदित हुए थे तो उस समय में इनने गमन करने का मन में विचार किया था। पश्चिम की ओर मुख करके एक कोस पर्यन्त गये थे जहाँ तक कि ज्येष्ठ पुष्कर था ।३६।

॥ राम का अगस्त्याश्रम गमन ॥

ततो देवा प्रयातास्तैर्विमानैर्बहुभिस्तदा ।
रामोऽप्यनुजगामाशु कुम्भयोनेस्तपोवनम् ॥१
उक्त भगवता तेन भूयोऽप्यागमनं कृथा ।
पूर्वमेव सभार्या च यो मां द्रष्टुं समागत ॥२
तदहं देवतादेशात्तत्कार्यार्थे महामुनिम् ।
पश्यामि तं मुनिं गत्वा देवदानवपूजितम् ॥३
दृष्ट्वा च देवान्सम्प्राप्तानगस्त्यो भगवानृषि ।
अर्घ्यमादाय सुप्रीतः सर्वांस्तानभ्यपूजयत् ॥४
ते तु गृह्य तत पूजा सम्भाष्यचमहामुनिम् ।
जग्मुस्ते त्रिदशा हृष्टा नाकपृष्ठं सहानुगाः ॥५
सुतो दशरथस्याहं भवन्तमभिवादितुम् ।
आगतो वै मुनिश्रेष्ठ सौम्येनेक्षस्व चक्षुषा ॥६
निर्धूतपापस्त्वां दृष्ट्वा भवामीह न संशय ।
एतावदुक्त्वा स मुनिमभिवाद्य पुनः पुनः ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इसके अनन्तर वे समस्त देवगण उसी समय में उन बहुत से विमानों के द्वारा रवाना हो गये थे। श्रीराम भी उनके पीछे ही शीघ्र कुम्भयोनि ऋषि के तपोवन को चल दिये थे ॥१॥ कुम्भयोनि भगवान्

ने मुझसे कहा था कि आप फिर भी यहाँ आने की कृपा करें। जो पूर्व में ही सभा में मुझे देखने के लिये आये थे ॥ २ ॥ सो मैं देवता के आदेश से उनके कार्य के लिये उस महा मुनि के समीप में जाकर जो कि देवों और दानवों दोनों से परम पूजित है उस मुनिवर का दर्शन करूँगा ॥३॥ अगस्त्य भगवान् ऋषि ने उन वहाँ प्राप्त होने वाले देवों का दर्शन करके अर्घ्य पात्र हाथ में उठाकर अत्यन्त प्रसन्न एवम् प्रीति संयुत होते हुए उन सबकी पूजा की थी ॥४॥ उन सबने भी अगस्त्य द्वारा की हुई पूजा को स्वीकार करके महा मुनि से सम्भाषण करके वे समस्त देवगण अपने अनुगमन करने वालों के साथ नाक पृष्ठ को चले गये थे ॥५॥ श्रीराम ने निवेदन किया था—हे मुनि श्रेष्ठ ! मैं महाराज दशरथ का पुत्र हूँ इस समय आपका अभिवादन करने के लिये ही यहाँ पर उपस्थित हुआ हूँ। अब आप मुझे अपनी सौम्य दृष्टि से देखने की कृपा करें। ६। मैं इस समय आपका परम पावन दर्शन प्राप्त करके अपने सम्पूर्ण पापों को निवृत्त कर देने वाला होगया हूँ अर्थात् मेरे सभी पाप नष्ट हो गये हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। पुलस्त्य मुनि ने कहा—इतना भर कहकर श्रीराम ने मुनि का बारम्बार अभिवादन किया था ॥७॥

कुशलं भृत्यवर्गस्य मृगाणां तनयस्य च ।
भगवद्दर्शनाकांक्षी शूद्रं हत्वा त्विहागतः ॥८
स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ जगद्वन्द्य सनातन ।
दर्शनात्तव काकुत्स्थ पूतोऽहं मुनिभिः सह ॥९
त्वत्कृते रघुशार्दूल गृहाणार्घं महाद्युते ।
स्वागतं नरशार्दूल दिष्ट्या प्राप्तोऽसि शत्रुहन् ॥१०
इदं चाभरणं सौम्य सुकृतं विश्वकर्मणा ।
दिव्यं दिव्येन वपुषा दीप्यमानं स्वतेजसा ॥११
प्रतिगृह्णीष्व राजेन्द्र मत्प्रियं कुरु राघव ।
लब्धस्य हि पुनर्दाने सुमहत्फलमुच्यते ॥१२
त्वं हि शक्तः परित्रातुं सेन्द्रानपि सुरोत्तमान् ।
तस्मात्प्रदास्ये विधिवत्प्रतीच्छस्व नरर्षभ ॥१३

अथोवाच महाबाहुरिक्ष्वाकूणां महारथः ।
कृताञ्जलिमुंनिश्रेष्ठं स्व च धर्ममनुस्मरन् ॥१४

श्रीराम ने अगस्त्य मुनि से पूछा था—कहिए, आपके भृत्य-वर्ग, वन के मृगगण और आपके पुत्र का कुशल तो है ? इसके पश्चात् उन्होंने कहा था कि शूद्र का हनन करके आपके पवित्र दर्शन की आकांक्षा रखने वाला मैं यहाँ पर आया हूँ । ८॥ अगस्त्य ने कहा—हे सम्पूर्ण जगत् के द्वारा वन्दना करने योग्य ! हे सदा सर्वदा से चले आने वाले ! हे रघुश्रेष्ठ ! आपका स्वागत है । हे काकुत्स्थ ! आज आपके दर्शन प्राप्त कर मुनिगण के सहित मैं पून होगया हूँ ॥६॥ हे रघु के वंश में शार्दूल के समान ! आप तो महान् द्युति से सम्पन्न हैं । आपके लिये जो यह अर्घ्य समर्पित किया जा रहा है,उसे आप अङ्गीकार कीजिएगा । हे नर शार्दूल ! आपका स्वागत है । आप तो शत्रुओं के हनन करने वाले हैं । आज बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि आपने यहाँ पर पदार्पण किया है ॥१०॥ हे सौम्य ! यह एक आभरण है जिसको विश्वकर्मा ने निर्मित किया है । यह दिव्य वपु से अपने तेज के द्वारा दीप्तिमान होकर दिव्य है ॥११॥ हे राजेन्द्र ! आप इसको प्रति ग्रहण करे और मेरा प्रिय करने का अनुग्रह कीजिए । हे राघव ! जो वस्तु लब्ध हुई हो उसका फिर दान कर देने मे महान् फल की प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥ हे नरर्षभ ! आप तो इन्द्र के सहित समस्त सुरश्रेष्ठों को परित्राण करने के लिये समर्थ हैं । इस कारण से मैं इसको विधि के साथ आपको दूंगा आप इसको स्वीकार कीजिए ॥ १३ ॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इसके उपरान्त महान् बाहुओं वाले और इक्ष्वाकुओं मे महारथी भगवान् श्रीराम हाथों को जोड़ते हुए अपने धर्म का अनुस्मरण करते हुए उन मुनियों मे श्रेष्ठ अगस्त्य से बोले—श्रीराम ने कहा—॥१४॥

प्रतिग्रहो वै भगवस्तव मेऽत्र विगर्हितः ।
क्षत्रियेण कथं विप्र प्रतिग्राह्यं विजानता ॥१५
ब्राह्मणेन तु यद्दत्त तन्मे त्व वक्तुमर्हसि ।
सपुत्रो गृहवानस्मि समर्थोऽस्मि महामुने ॥१६
आपदा च न चाक्रान्तः कथं ग्राह्यः प्रतिग्रहः ।
भार्या मे सुचिर नष्टा न चान्या मम विद्यते ॥१७

केवलं दोषभागी च भवामीह न संशयः ।
कष्टां चैव दशांप्राप्यक्षत्रियोऽपि प्रतिग्रहम् ॥१८
न च प्रतिग्रहे दोषो गृहीतपार्थिवैर्नृप ।
भवान्वैतारणे शक्तस्त्रैलोक्यस्यापि राघव ॥१९
तारय ब्राह्मणं राम विशेषेण तपस्विनम् ।
तस्मात्प्रदास्य विधिवत्प्रतीच्छस्व नराधिप ॥२०

हे भगवन् ! आपके द्वारा दिया हुआ यह प्रतिग्रह यहाँ पर मेरे लिये स्वीकार करना तो एक निन्दित कार्य है । हे विप्र ! मैं तो क्षत्रिय हूँ मुझे इसका भली-भाँति ज्ञान है तो फिर आपके द्वारा यह प्रतिग्रह किस प्रकार से ग्रहण कर लेना उचित होगा ? ॥१५॥ ब्राह्मण के द्वारा जो दिया जावे वह क्या मुझे लेना ठीक है ? इसे तो आप ही बताने के योग्य हैं । मैं पुत्र वाला हूँ गृहस्थ हूँ और हे महामुने ! सभी प्रकार से समर्थ भी हूँ ॥ १६ ॥ मैं किसी प्रकार की आपत्ति में भी इस समय में आक्रान्त नहीं हो रहा हूँ तो फिर आपका प्रदान किया हुआ यह प्रतिग्रह मुझे किस तरह ग्रहण कर लेना चाहिए ? मेरी भार्या तो बहुत समय से नष्ट हो गई है अन्य कोई भी भार्या मेरी इस समय में नहीं है ॥ १७ ॥ मैं तो इसको ग्रहण करके केवल दोष का ही भागी बन जाऊँगा इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । यदि किसी कष्ट से परिपूर्ण दशा को प्राप्त करके क्षत्रिय भी प्रतिग्रह को ग्रहण करे तो वह कर सकता है ॥१८॥ कष्टों से दुर्दशा।पन्न ऐसा कर भी लेता है तो उसे कोई दोष नहीं लगता है—ऐसा महर्षि मनु ने बतलाया है । वृद्ध माता-पिता, सती-साध्वी भार्या और शिशु सुत हो तो सैंकड़ों अकार्य करके भी उनका भरण-पोषण करना चाहिए—ऐसा भी मनु ने कहा है । अतएव हे विप्रर्षे ! यह आपका प्रदान किया हुआ प्रतिग्रह मैं नहीं लेना चाहता हूँ । हे सुरपूजित ! आपको मेरे इस निषेधकर देने पर किसी भी प्रकार का कोप नहीं करना चाहिए । अगस्त्य मुनि ने कहा—हे नृप ! जो राजा हैं उनके द्वारा प्रतिग्रह के ग्रहण करने पर भी कोई दोष नहीं होता है । आप तो हे राघव ! इस त्रिलोकी के भी तारण कर देने में पूर्ण समर्थ हैं ।।१९। हे राम ! इस ब्राह्मण को और विशेष करके तपस्वी ब्राह्मण का तारण कीजिए,

हे नराधिप ! इसी कारण से मैं इसको आपके लिये समर्पित करता हूँ। आप इसको विधिपूर्वक अङ्गीकार कीजिए ॥२०॥

क्षत्रियेण कथं विप्र प्रतिग्राह्यं विजानता ।
ब्राह्मणेन यथा दत्तं तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥२१
ततो रामः प्रजग्राह मुनेर्हस्तान्महात्मनः ।
दिव्यमाभरणं चित्रं प्रदीप्तमिव भास्करम् ॥२२
प्रतिगृह्य ततोऽगस्त्याद्राघवः परवीरहा ।
निरीक्ष्य सुचिरं कालं विचार्यं च पुनः पुनः ॥२३
मौक्तिकानि विचित्राणि धात्रीफलसमानि च ।
जाम्बूनदनिबद्धानि वज्रविद्रुमनीलकैः ॥२४
पद्मरागैः सगोमेधैर्वैडूर्यैः पुष्परागकैः ।
सुनिबद्धं सुविभक्तं सुकृतं विश्वकर्मणा ॥२५
दृष्ट्वा प्रीतिसमायुक्तो भूयश्चेदं व्यचिन्तयत् ।
नेदृशानि च रत्नानि मया दृष्टानि कानिचित् ॥२६
अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्नप्राप्यं च महीक्षिताम् ।
कथं भगवता प्राप्तं कुतो वा केन निर्मितम् ॥२७
कुतूहलवशाच्चैव पृच्छामि त्वां महामते ।
करतले स्थिते रत्ने करमध्ये प्रकाशते ॥२८

श्रीराम ने कहा—यह सभी कुछ का ज्ञान रखते हुए क्षत्रिय को हे विप्र ! यह प्रतिग्रह किस प्रकार से ग्रहण करना चाहिए जो कि एक ब्राह्मण के द्वारा दिया जा रहा है। आप ही इस विषय पर व्यवस्था देने के लिये पूर्णतया इस समय में योग्य होते हैं ॥२१॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—जब अपने उद्धार करने के लिये ही अगस्त्य मुनि ने उसे समर्पित करने का अत्यधिक अनुरोध किया तो फिर उस महान् आत्मा वाले मुनि के हाथ से उस प्रतिग्रह को राम ने ग्रहण कर लिया था जो कि एक ऐसा दिव्य आभरण था कि बहुत विचित्र था और ऐसा वह देदीप्यमान हो रहा था जैसे सूर्य ही हो ॥२२॥ शत्रु दल के वीरों के हनन करने वाले श्रीराम ने इसके अनन्तर उसे ग्रहण करके

अगस्त्य ने अधिक समय तक देखा और बार बार विचार किया था ॥२३॥ इस आभरण में आँवले के फलों के समान अति विचित्र मौक्तिक हैं । जाम्बूनद के सदृश हीरा-विद्रुम और नीलम रत्नों से यह निबद्ध हैं ॥२४॥ इसमें पद्मराग मणियाँ—गोमेद—वैदूर्य मणियाँ और पुष्पराग मणियाँ भी बहुत ही सुन्दरता के साथ निबद्ध हैं जो सुस्पष्ट तथा विभक्त हैं । विश्वकर्मा ने इसे बहुत ही अच्छी तरह से निर्मित किया है ॥२५॥ परम प्रीति से समन्वित होकर पुनः श्रीराम ने चिन्तन किया था कि मैंने अभी तक इस तरह के कोई भी रत्न पहिले नहीं देखे थे ॥२६॥ श्रीराम ने कहा—यह आभरण तो अत्यन्त ही अद्भुत है और राजाओं को भी प्राप्त नहीं होने के योग्य है । आपने इसको किस प्रकार से प्राप्त कर लिया है और कहाँ से प्राप्त किया है तथा इसका निर्माण किसने किया है ? ॥२७। हे महामने ! मुझे हृदय में बड़ा भारी कुतूहल हो रहा है । इसी से मैं आपसे यह पूछ रहा हूँ । करतल पर रत्न स्थित हैं और करके मध्य में प्रकाश कर रहे हैं ॥२८॥

शृणु राम पुरावृत्तं पुरात्रेतायुगेमहत् ।
द्वापरे समनुप्राप्ते वने यद्दृष्टवानहम् ॥२९
आश्चर्यं सुमहाबाहो निबोध रघुनन्दन ।
पुरा त्रेतायुगे ह्यासीदरण्यं बहुविस्तरम् ॥३०
समन्ताद्योजनशतं मृगव्याघ्रविवर्जितम् ।
तस्मिन्निष्पुरुषेऽरण्ये चिकीर्षुस्तप उत्तमम् ॥३१
अहमाक्रमितुं सौम्य तदरण्यमुपागतः ।
तस्यारण्यस्य मध्ये तु युक्तं मूलफलैः सदा ॥३२
शाकैर्बहुविधाकारैर्नानारूपं मृकाननैः ।
तस्यारण्यस्य मध्ये तु पञ्चयोजनमायतम् । ३३
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
तत्राश्चर्यं मयादृष्टं सरः परमशोभितम् ॥३४

अगस्त्य मुनि ने कहा—हे राम ! अब आप एक पुरावृत्त सुनो जो पहिले त्रेता युग में घटित हुआ था और महान् था । द्वापर युग के समाप्त होने

पर मैंने जिसको देखा था ॥२६॥ हे महा बाहुओं वाले रघुनन्दन ! इस आश्चर्य को आप समझिये । पहिले त्रेता युग में एक अत्यधिक विस्तार वाला अरण्य था ॥३०॥ चारों ओर उसका सौ योजन का विस्तार था और वह मृग तथा व्याघ्र से रहित था । उस निर्जन अरण्य में उत्तम तपश्चर्या करने की इच्छा रखने वाले मैंने वहाँ जाकर तप करने को उस अरण्य में अपनी उपस्थिति हे सौम्य ! की थी । उस अरण्य का जो मध्यभाग था वह सर्वदा मूल और फलों से समन्वित रहा करता था ॥३१।३२॥ बहुत-से आकार-प्रकार वाले तथा अनेक रूप वाले जंगली शाकों से मध्य में पाँच योजन विस्तार वाला उस अरण्य का भाग था ॥३३॥ हंस-कारण्डवों से आकीर्ण और चक्रवाकों से शोभित वह अरण्य का भाग था । उसमें मैंने यह एक आश्चर्य देखा था कि एक परम शोभित सरवर था ॥३४॥

प्रभाते पुनरुत्थाय सरस्तदुपचक्रमे ।
अथापश्य शवमहमस्पृष्टजरम क्वचित् ॥३५
तिष्ठन्त परया लक्ष्म्या सरसो नातिदूरत ।
तदर्थं चिन्तयानोऽहं मुहूर्तमिव राघव ॥३६
अस्य तीरे न वै प्राणी को वाप्येप सुरर्षभ ।
मुनिर्वा पार्थिवो वापि क्व मुनि पार्थिवोऽपि वा ॥३७
अथवा पार्थिवसुतस्तस्यैव सम्भव कृत ।
अतीतेऽहनि रात्रौ वा प्रातर्वापि मृतो यदि ॥३८
अवश्य तु मया ज्ञेया सरसोऽस्य विनिष्क्रिया ।
यावदेव स्थितश्चाहं चिन्तयानो रघूत्तम ॥३९
अथापश्य मुहूर्तात्तु दिव्यमद्भुतदर्शनम् ।
विमान परमोदार हंसयुक्त मनोजवम् ॥४०
पुरस्तत्र सहस्र तु विमानेऽप्सरसां नृप ।
गन्धर्वाश्चैव तत्सस्या रमयन्ति वर नरम् ॥४१

प्रात काल मे फिर उठकर मैं उस सर के समीप मे पहुँचा था । इसके अनन्तर मैंने वहाँ पर एक शव देखा था जिसमे जरा अवस्था अस्पष्ट थी और

अत्यन्त श्री से समन्वित था और उस सरोवर के निकट ही में वह स्थित था। हे राघव ! उसके विषय में मुहूर्त्त मात्र पर्यन्त ध्यान करता रहा था ॥३५।३६॥ मैंने विचार किया था कि इस सरोवर के तट पर कोई भी प्राणी नहीं है फिर यह कोई श्रेष्ठ देव है, मुनि है अथवा कोई पार्थिव है। मुनि अथवा पार्थिव भी कहाँ से यहाँ पर आया है ॥३७॥ अथवा यह किसी राजा का पुत्र है किन्तु उसका भी इस तरह से यहाँ आना समय कैसे हुआ है। यह गत दिन में, रात्रि में या प्रातःकाल में यदि मृत हुआ है ॥३८॥ मुझे तो अवश्य ही इस सर की विशेष निष्क्रियाँ जाननी चाहिए। हे रघूत्तम ! जब तक मैं वहाँ पर स्थित रहा था ॥३९॥ इसके अनन्तर मैंने मुहूर्त्त मात्र में ही एक परम अद्भुत दिखलाई देने वाला, परम उदार अर्थात् लम्बा-चोड़ा, हयों से युक्त और मन के समान वेग वाला विमान देखा था ॥४०॥ हे नृप ! उस विमान के आगे सहस्र अप्सरायें थीं जो कि विमान में स्थित थीं और इतनी संख्या गन्धर्वों की भी थी जो कि श्रेष्ठ नर को रमण कराते हैं ॥४१॥

गायन्ति दिव्यगेयानि वादयन्ति तथापरे।
अथापश्यं नरं तस्माद्विमानादवरुह्य तु ॥४२
शवमांसं भक्षयन्तं स्नात्वा रघुकुलोद्वह।
ततो भुक्त्वा यथाकामं समांसं बहुपीवरम् ॥४३
अवतीर्य सरः शीघ्रमारुरोह दिवं पुनः।
तमहं देवसङ्काशं श्रिया परमयान्वितम् ॥४४
भोभोस्वर्गिन्महाभाग पृच्छामि त्वां कथं त्विदम्।
जुगुप्सितस्तवाहारो गतिश्चेयं तवोत्तमा ॥४५
शृणुष्वाद्य यथावृत्तं ममेदं सुखदुःखजम्।
कामो हि दुरतिक्रम्यः शृणु यत्पृच्छसे द्विज ॥४६
पुरा वैदर्भको राजा पिता मे हि महायशाः।
वासुदेव इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु धार्मिकः ॥४७
तस्य पुत्रद्वयं ब्रह्मन्द्वाभ्यां स्त्रीभ्यामजायत।
अहं श्वेत इति ख्यातो यवीयान्सुरथोऽभवत् ॥४८

वे अति दिव्य गीतों का गायन कर रहे थे तथा दूसरे लोग वादन कर रहे थे। इसके पश्चात् मैंने उस विमान से अवगेहण करने वाले नर को देखा था ॥४२॥ हे रघुकुल को उद्वहन करने वाले ! उस मनुष्य ने वहाँ स्नान किया था और उस शव के मांस का भक्षण किया था। मांस से युक्त और अत्यन्त मोटे-ताजा उसको इच्छापूर्वक खाकर एवम् सरोवर में अवतरण करके पुनः वह शीघ्र ही दिवलोक में आरोहण करके चला गया था। उस समय में परमोत्तम श्री से सयुत देवता के समान आपसे हे स्वर्गिन् ! हे महाभाग ! मैं कैसे यह पूँछू ? आपका यह आहार तो नितना गर्हित है और आपकी यह गति कैसी उत्तम है ॥ ४२।४३।४४।४५ ॥ श्वेत ने कहा—आज आप श्रवण करो। जिस प्रकार से मुझे यह सुख और दुःख से उत्पन्न होने वाला हुआ है। हे द्विज ! यह काम बहुत ही दुःख से अतिक्रमण करने के योग्य होता है। आप जो मुझसे पूछ रहे हैं उसे सब सुनो ॥४६॥ पहिले समय में मेरा पितामह वैदर्भिक राजा महान् यश वाला था। वह वासुदेव इस नाम से तीनों लोकों में परम धार्मिक ख्यात हुआ था ॥४७॥ हे ब्रह्मन् ! उसके दो स्त्रियों से पुत्र हुए थे। मैं तो श्वेत इस नाम से प्रसिद्ध हुआ और छोटा सुरथ नाम वाला हुआ था ॥४८॥

पितर्युपरते तस्मिन्पौरा मामभ्यषेचयन् ।
तत्राहं कारयन्राज्यं धर्मे चास समाहितः ॥४९
एवं वर्षसहस्राणि बहूनि समुपाव्रजन् ।
मम राज्यं कारयतः परिपालयतः प्रजाः ॥५०
सोऽहं निमित्ते कस्मिंश्चिद्विज्ञायैव द्विजोत्तम ।
मरणं हृदये कृत्वा तपोवनमुपागमम् ॥५१
दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ।
शुभं तु भवनं प्राप्तो ब्रह्मलोकमनामयम् ॥५२
स्वर्गस्थमपि मां ब्रह्मन्क्षुत्पिपासे द्विजोत्तम ।
अबाधेतां भृशं चाहमभवं व्यथितेन्द्रियः ॥५३
ततस्त्रिभुवनश्रेष्ठमवोचं वै पितामहम् ।
भगवन्स्वर्गलोकोऽयं क्षुत्पिपासाविवर्जितः ॥५४

कस्येयं कर्मणः पक्तिः क्षुत्पिपासे यतो हि मे ।
आहारः कश्चमे देव ब्रूहित्वं श्रीपितामह ॥५५

मेरे पिताजी के मृत्युगत हो जाने पर पुरवासियों ने मेरा ही उनके राज्यासन पर अभिषेक कर दिया था। वहाँ पर मैं राज्य का शासन चलाता हुआ परम समाहित होकर धर्म मे सस्थित रहता था ॥ ४६ ॥ इसी प्रकार से शासन चलाते हुए बहुत सहस्र वर्ष हो गये थे और मैं बराबर राज्य का कार्य कर रहा था तथा भली विधि प्रजा का पालन भी करता था ॥५०॥ वही मैं किसी निमित्त से वैराग्यवान् होगया था। हे द्विजो मे परम श्रेष्ठ ! मैंने वैराग्य से ही अपने चित्त मे मरण का निश्चय कर लिया था और मैं फिर इसी तपोवन में आ गया था ॥५१॥ इस महा वन मे दश सहस्र वर्ष पर्यन्त घोर तपश्चर्या करके मैने परम शुभ भवन अनामय ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लिया था ॥५२॥ हे द्विजोत्तम ! हे ब्रह्मन् ! स्वर्ग मे स्थित रहने वाले भी मुझको भूख और प्यास बहुत ही अधिक सताया करती थी और मैं वहाँ पर भी व्यथित इन्द्रियों वाला हो गया था ॥५३॥ इसके अनन्तर मैंने त्रिभुवन में परमार्ति परम श्रेष्ठ पितामह से कहा था—हे भगवन् ! यह तो स्वर्गलोक है जो कि क्षुधा तथा तृषा से रहित हुआ करता है ॥५४॥ मेरे किस कर्म का परिपाक है जो कि क्षुधा और पिपासा मुझे यहाँ पर रहते हुए भी सता रही है ? हे श्री पितामह ! हे देव ! अब मेरा क्या होगा—इसे आप मुझे बतला देवें ॥५५॥

ततः पितामहः सम्यक्चिरं ध्यात्वा महामुने ।
मामुवाच ततो वाक्यं नास्ति भोज्यं स्वदेहजम् ॥५६
ऋते स्वानि तु मासानि भक्षय त्वं तु नित्यशः ।
स्वशरीरं त्वया पुष्टं कुर्वता तपउत्तमम् ॥५७
नादत्तं जायते तात श्वेत पश्य महीतले ।
आग्रहाद्भिक्षमाणाय भिक्षापि प्राणिने पुरा ॥५८
स त्वं प्रपुष्टमहारैः स्वशरीरमनुत्तमम् ।
भक्षयस्व च राजेन्द्र सा ते तृप्तिर्भविष्यति ॥५९
एवमुक्तस्ततो देवं ब्रह्माणमहमुक्तवान् ।
भक्षिते च स्वके देहे पुनरन्यन्न मे विभो ॥६०

क्षुधानिवारणे नैव देहस्यास्य विनोदनम् ।
खादामि ह्यक्षय देव प्रियं मे न हि जायते ॥६१

ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तव देहोऽक्षयः कृतः ।
दिने दिने ते पुष्टात्मा शवः श्वेत भविष्यति ॥६२

यावद्वर्षशतं पूर्णं स्वमांसं खाद भोनृप ।
यदागच्छति चागस्त्यः श्वेतारण्ये महातपाः ॥६३

हे महामुने ! तब तो भली-भाँति चिरकाल पर्यन्त पितामह ने ध्यान किया था और मुझसे कहा था कि अपने देह से उत्पन्न होने वाला तुम्हारा कुछ भी भोज्य नहीं है ॥५६॥ अपने मांसों को छोड़कर आप नित्य ही भक्षण करें। आपने अपने इस शरीर को परमोत्तम तप करके ही उसके प्रभाव से अपने शरीर को परिपुष्ट किया है ॥५७॥ हे श्वेत ! हे तात ! तुम देखलो, इस महीतल में जो दिया नहीं गया है वह नहीं होता है। तुमने बड़े आग्रह से भिक्षा माँगते हुए भिखारी को भी पहिले किसी प्राणी के लिये भिक्षा नहीं दी थी ॥५८॥ ऐसे आपने उत्तम आहारों के द्वारा केवल अपने ही इस अधम शरीर को विशेष रूप से परिपुष्ट किया था। हे राजेन्द्र ! अब आप उस अपने ही शरीर का भक्षण करो। इसीसे तुम्हारी वह तृप्ति होगी ॥५६॥ इस प्रकार से ब्रह्मा के द्वारा कहे जाने पर फिर देव ब्रह्माजी से मैंने कहा था—हे विभो ! अपने देह के खालेने पर फिर कुछ अन्य मेरे लिये खाने का पदार्थ नहीं रहेगा ? ॥ ६० ॥ क्षुधा के निवारण करने के कार्य में इस शरीर का मोदन के बिना नहीं होता है। हे देव ! मुझे तो कुछ ऐसा अक्षय पदार्थ बताइये जिसको मैं खा लिया करूँ। आपने जो यह बताया है यह तो मुझे प्रिय अदय नहीं लगता है ॥६१॥ ऐसा मेरे द्वारा कहे जाने पर ब्रह्माजी ने फिर मुझसे कहा था कि हमने तुम्हारा देह ही अक्षय बना दिया है अर्थात् उसे ऐसा कर दिया है कि वह कभी समाप्त ही नहीं होगा। हे श्वेत ! आये दिन तेरे शरीर का शव पुष्ट स्वरूप वाला हो जायगा ॥६२॥ हे नृप ! जब तक एक सौ वर्ष पूर्ण होंगे तब तक तुम अपने ही मांस का भक्षण करो। महान् तपस्वी अगस्त्य जिस समय में इस श्वेतारण्य में आवें तब तक तुम इसी प्रकार करते रहो ॥६३॥

भगवानतिदुर्धर्षस्तदा कृच्छ्राद्विमोक्ष्यसे ।
स हि तारयितुं शक्तः सेन्द्रानपि सुरासुरान् ॥६४
तं मुनिं कृच्छ्रमन्तप्तश्चिन्तयामि दिवानिशम् ।
कदा वै दर्शनं मह्यं समुनिर्दास्यतेवने ॥६५
एवं मे चिन्तयानस्य गतंवर्पशतन्त्विह ।
सोऽगस्त्यो हि गतिर्ब्रह्मन्मुनिर्मे भविताध्रुवम् ।।६६
न गतिर्भविता मह्यं कुम्भयोनिमृतेद्विजम् ।
श्वेतेत्थं भाषितं राम दृष्ट्वाहारं च कुत्सितम् ॥६७
कृपयापरया युक्तस्तं नृप स्वर्गगामिनम् ।
करोम्यहं सुधाभोज्यं नाशयामि च कुत्सितम् ॥६८
चिन्तयन्नित्यवोचं तमगस्त्यः किं करिष्यति ।
ब्रह्मेतत्कुत्सितं तेननाशयामि महामते ॥६९
ईप्सितं प्रार्थयस्वाद्यमात्मनः प्रीतिकरं परम् ।
सस्वर्गी मां ततः प्राह कथं ब्रह्मवचोऽन्यथा ॥७०

भगवान् अगस्त्य अत्यन्त दुर्धर्ष हैं। उसी समय में तुम इस कष्ट से मुक्त होओगे। वह ही इन्द्र के सहित समस्त सुर और असुरों को तारने में समर्थ हैं ॥६४॥ तब श्वेत ने कहा कि मैं तपस्या के कष्ट से सन्तप्त होने वाले उन्हीं मुनिवर को रात-दिन चिन्तन किया करता हूँ कि किस समय में मुझे वह महामुनि इस वन में दर्शन देंगे ॥६५॥ इसी प्रकार से चिन्तन करते हुए मुझे एक सौ वर्ष यहाँ पर व्यतीत होगये हैं। हे ब्रह्मन् ! वह अगस्त्य मुनीश्वर मेरी गति निश्चय ही होंगे अर्थात् मेरा इस शव भोग के भक्षण के कष्ट से उद्धार करने वाले अवश्य ही होवेंगे ॥६६॥ अन्य कोई भी कुम्भयोनि द्विज के बिना मेरा उद्धार करने वाला नहीं होगा। हे राम ! उसके इस प्रकार के परम कुत्सित आहार को देखकर और उसके इस भाषण को श्रवण कर हे नृप ! परम कृपा से युक्त होते हुए मैं उस स्वर्ग में गमन करने वाले को सुधा का भोजन करने वाला करूँगा तथा उसके इस निन्दित भोजन करने का नाश कर दूँ। इस तरह से चिन्तन करते हुए उससे कहा था—अगस्त्य क्या करेगा ? हे महामते ! मैं तेरे

इस कुत्सित भोजन को नष्ट कर देता हूँ ॥६७।६८।६९॥ तुम अपने अभीष्ट की प्रार्थना करो, हमारा मन परम प्रीति करने वाला है। ऐसा कहने पर उस स्वर्ग में गमन करने वाले ने फिर मुझसे कहा था कि ब्रह्मा का कहा हुआ वचन अन्यथा अर्थात् मिथ्या किस प्रकार से होगा ? ॥७०॥

कर्तुं मुने मया शक्यं न चान्यस्तारयिष्यति ।
ऋते वै कुम्भयोनिं तं मैत्रावरुणसम्भवम् ॥७१
अपृष्टोऽपि मया ब्रह्मन्नेवमूचे पितामहः ।
एवं ब्रुवाणं तं श्वेतमुक्तवानहमस्मि सः ॥७२
आगतस्तव भाग्येन दृष्टोऽहं नात्र संशयः ।
ततः स्वर्गी समां ज्ञात्वा दण्डवत्पतितो भुवि ॥७३
तमुत्थाप्य ततो रामब्रवं किं ते करोम्यहम् ।
आहारात्कुत्सिताद्ब्रह्मं स्तारयस्वाद्यदुष्कृतात् ॥७४
येन लोकोऽक्षय. स्वर्गो भविता त्वत्कृतेन मे ।
ततः प्रतिग्रहो दत्तो जगद्वन्द्यनृपेण हि ॥७५
भवान्मामनुगृह्णातु प्रतीच्छस्व प्रतिग्रहम् ।
इदमाभरणं सोम्य तारणार्थं द्विजोत्तम ॥७६
ब्रह्मर्षे प्रतिगृह्णीष्व प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
इह गाश्च सुवर्णं च धनं वस्त्रमन्वितम् ॥७७
भक्ष्यं भोज्यं च विप्रर्षे ददाम्याभरणं स्वहम् ।
सर्वकामप्रदं तुभ्यं सर्वान्भोगांश्च ते द्विज ॥७८

हे मुने ! मेरे द्वारा किया जा सकता है किन्तु उस मैत्रावरुण से उत्पत्ति वाले कुम्भ योनि के बिना अन्य नहीं तारेगा ॥ ७१ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे द्वारा बिना पूछे हुए ही पितामह ब्रह्माजी ने इस प्रकार से कहा था—इस तरह से कहने वाले उस श्वेत से मैंने कहा था कि वह मैं ही हूँ ॥७२॥ मैं तुम्हारे भाग्य से ही यहाँ आगया और मैं देख लिया गया हूँ—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इसके अनन्तर उस स्वर्ग के निवासी ने मुझको जानकर फिर वह भूमि मेरे आगे दण्ड की भाँति प्रणाम करने के लिये गिर गया था। फिर मैंने उनको भूमि से

उठा लिया था और हे राम ! फिर मैंने उससे कहा था कि बोल, मैं तेरा क्या करूँ ? ॥ ७३ ॥ इस प्रकार से मेरे कहने पर वह राजा बोला—हे ब्रह्मन् ! आज मेरे इस बहुत ही निन्दित बुरे आहार से मेरा उद्धार कर दीजिएगा ॥७४॥ जिससे आपके ही द्वारा इस महान् कार्य के करने से यह स्वर्गलोक मेरे लिये क्षय से रहित हो जावेगा। इसके अनन्तर उस जगत् के द्वारा वन्दनीय नृप ने प्रतिग्रह मुझे दिया था ॥७५॥ उसने मुझसे कहा—आप मेरे ऊपर अनुग्रह कर देवें और यह प्रतिग्रह स्वीकार करें। हे द्विजों में परमोत्तम ! हे सौम्य ! तारण के लिये यह आभरण है ॥७६॥ हे ब्रह्मर्षे ! आप इस मेरे द्वारा समर्पित प्रतिग्रह स्वरूप आभरण को अङ्गीकार कीजिएगा और मेरे ऊपर प्रसाद करने के लिये आप योग्य होते हैं। यहाँ पर हे द्विज ! गौएँ—सुवर्ण—वस्त्रों से समन्वित धन—भक्ष्य पदार्थ और भोज्य पदार्थ सम्पूर्ण कामनाओं के प्रदान करने वाला तथा समस्त भोगों को प्रदान करने वाला यह आभरण आपको देता हूँ ॥ ७७।७८ ॥

तारणे तु भवान्मह्यं प्रसादं कर्तुमर्हति ।
तस्याहं स्वर्गिणो वाक्यं श्रुत्वा दुःखसमन्वितम् ॥७९
कृता मतिस्तारणाय न लोभाद्रघुनन्दन ।
गृहीते भूषणे राम ममहस्तगते तदा ॥८०
मानुषः पौर्विको देहस्तदा नष्टोऽस्यभूपते ।
प्रनष्टे तु शरीरे च राजर्षिः परया मुदा ॥८१
मयोक्तोऽसौ विमानेन जगाम त्रिदिवं पुनः ।
तेन मे शक्रतुल्येन दत्तमाभरणं शुभम् ॥८२
तस्मिन्निमित्ते काकुत्स्थ दत्तमद्भुतकर्मणा ।
श्वेतो वैदर्भको राजा तदाभूद्गतकल्मषः ॥८३

आप तो अब मेरे तारने के कार्य को करने के लिये मेरे ऊपर प्रसाद करने के योग्य होते हैं। इस प्रकार से उस स्वर्ग के निवास करने वाले पुरुष के परम दुःख से समन्वित वचनों को मैंने श्रवण किया था ॥७९॥ हे रघुनन्दन ! उस समय से मैंने उसके उद्धार करने की बुद्धि की थी किन्तु वह किसी मानव

के कारण नहीं किया था। हे राम ! उस समय में उस भूषण के ग्रहण कर लेने पर तथा उसको मेरे हाथ मे आ जाने पर उसी क्षण मे हे भूपते ! उसका पूर्व मे रहने वाला जो मानवीय शरीर था वह नष्ट हो गया था। उस शरीर के नष्ट हो जाने पर वह राजर्षि परम प्रसन्न होगया था ॥८०।८१॥ फिर प्रसन्नता से युक्त उसको मेरे द्वारा आज्ञा दी गई थी और फिर उसी विमान से त्रिदिव को चला गया था। देवराज इन्द्र के समान उसने मुझे वह परम शुभ आभरण प्रदान किया था ॥ ८२ ॥ हे काकुत्स्थ ! उस निमित्त मे अद्भुत कर्म के द्वारा यह आभरण दिया गया है। उस समय में वह वैदर्भिक श्वेत राजा समस्त कल्मषो से छूट गया था और फिर उसमे कोई भी पाप शेष नहीं रहा था। यही परम आश्चर्य से समन्वित एक पुरावृत्त है ॥८३॥

॥ पद्म का अविर्भाव ॥

ततेऽहं कथयिष्यामि यथाभक्ति यथाश्रुति ।
यद्विज्ञातं मया सम्यगृषिमार्गेण सत्तम ॥१
कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम् ।
विश्वावितारं ब्रह्मायं न वेदयति तत्त्वतः ॥२
तत्कर्म विश्वदेवानां तद्रहस्य महर्षिषु ।
स इज्यस्सर्वयज्ञानां स तत्त्वं तत्त्वदर्शिनाम् ॥३
अध्यात्ममध्यात्मविदां नरकं च विकर्मिणाम् ।
अधिदैवं च तद्दैवमधिदैवतसंज्ञितम् ॥४
अधिभूतं च तद्भूतं परं च परमार्थिनाम् ।
स यज्ञो वेदनिर्दिष्टस्तत्तपः कवयो विदुः ॥५
यः कर्त्ता कारको बुद्धिर्यतः क्षेत्रज्ञ एवच ।
प्रणवः पुरुषः शास्ता एकश्चेति विभाव्यते ॥६
प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुवमक्षरमेव च ।
कालः पाकश्च पक्ताश्च द्रष्टा चाधीतमेव च ॥७

पुलस्त्य महर्षि ने कहा—हे भीष्म ! आपकी जो नारायण के श्रवण करने की ऐसी अभिरुचि है वह आपके वंश के अनुरूप ही है। मैंने अपने गुरु

द्वैपायन से जो भी श्रवण किया है उसे आपसे अपनी मति और श्रुति के अनुसार कहता हूँ। मैंने तो हे श्रेष्ठतम् ! ऋषि मार्ग के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया है और भली-भांति जान लिया है ॥१॥ अन्यथा इस विश्व के रक्षक परम नारायण के स्वरूप को कौन ऐसा है जो जान लेने का उत्साह कर सकता है। यह ब्रह्मा भी तत्त्वतः अर्थात् ठीक रूप से नहीं जानते हैं ॥ २ ॥ विश्व देवों का वह कर्म है, महर्षियों मे वह रहस्य है, समस्त यज्ञों का वह यजन करने के योग्य है और तत्त्वों के दर्शन करने वालों का वह तत्त्व है ॥३॥ जो अध्यात्म के ज्ञाता अर्थात् आत्मा के सम्बन्ध मे पूर्ण ज्ञान रखने वाले हैं उनका वह अध्यात्म विषय है। जो कुत्सित बुरे कर्मों के करने वाले पुरुष हैं उनके लिये वह नरक है, वह अधिदैव, दैव और अधिदैवत संज्ञा वाला है ॥४॥ वह अधिभूत, भूत और परमार्थियों का पर है। वेदों के द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ वह यज्ञ है तथा कवि लोग उसे तप ही जानते हैं ॥ ५ ॥ जो कर्त्ता, कारक अर्थात् कराने वाला है क्योंकि वह ही बुद्धि है और वह ही सेवज्ञ है, वह प्रणव, पुरुष और शासन करने वाला और एक ही विभावित होता है ॥ ६ ॥ वह पांचों प्रकार का प्राण है तथा वह ध्रुव और अक्षर है। वह ही काल है, पाक है, यज्ञ है, यजन करने वाला है तथा वह ही अवोत है ॥७॥

उच्यते विविधैर्भावैः स एवायं तु तत्परम् ।
स एव भगवान्सर्वं करोति न करोति च ॥८
सोऽस्मिन्कारयते सर्वं स्थानिना च कृतिः कृता ।
यजामहे तमेवाद्यं स एवोत्थाननिर्वृतः ॥९
यत्सत्यं यदनृतमादिमध्यभूत यच्चान्त्यं निरवधिकं च यद्धि विद्यं ।
यत्किञ्चिच्चरमचर यदस्ति चान्यत्सर्वंतत्पुरुषवरः प्रधानभूतः ॥१०
चत्वार्य्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतयुगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा कुरुनन्दन ॥११
यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधर्मः पादविग्रह ।
स्वधर्मनिरताः शान्ता जायन्ते यत्र मानवाः ॥१२
विप्राः स्थिता धर्मपरा राजवृत्तिस्थिता नृपाः ।
कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवस्तथा ॥१३

तदा सत्यं च सत्वं च धर्मश्चैव विवर्धत ।
सद्भिराचरितो धर्मोयेन लोक-प्रवर्त्तते ॥१४

अनेक प्रकार के भावों के द्वारा वह कहा जाता है और यह ही तत्पर है । वह ही भगवान् सभी कुछ किया करते हैं और कुछ भी नहीं करते हैं ॥८॥ वह ही इस जगत् में सब कुछ कराया करता है और स्थानियों को, की हुई वृत्ति है, हम लोग सभी उसका ही यजन किया करते हैं और वह ही उत्थान से निवृत्त होता है ॥६॥ जो सत्य है, जो मिथ्या है, जो आदि और मध्यभूत है तथा जो अन्त्य है, अवधि से रहित है और जो भविष्य है, जो कुछ भी चर तथा अचर है और अन्य सब है वह ही पुरुषों में परम श्रेष्ठ प्रधानभूत है ॥१०॥ हे कुरु नन्दन ! चार सहस्र वर्षों का कृतयुग कहा गया है। उस कृतयुग की दुगुनी उतने सैंकड़ा सन्ध्या होती है ॥११॥ जिस युग में धर्म चारों पाद वाला होता है और अधर्म का विग्रह एक पाद है । जिस युग में मनुष्य अपने धर्म में निरत रहा करते हैं तथा परम शान्त स्वभाव वाले होते हैं ॥१२॥ विप्र सब धर्म में तत्पर होकर स्थित रहते हैं । जो शूर अर्थात् क्षत्रिय वर्ण वाले हैं वे भी सब अपनी ही राजा से जो वृत्ति नियत है उसी में स्थित रहते थे । वैश्यों का काम शास्त्र में कृषि करना बताया गया है वे उसी काम में सदा अभिरत रहते थे और शूद्र जो थे वे सर्वदा सेवा में संलग्न रहते थे । १३॥ उस समय में सत्य-सत्व और धर्म विशेष रूप से बढ़ रहे थे । सत्पुरुषों के द्वारा धर्म का समाचरण किया जाता था जिससे लोक प्रवृत्त होता था ॥१४॥

एतत्कृतयुगे वृत्त सर्वेषामेव पार्थिव ।
प्राणिना धर्मसज्ञाना नराणां नीचजन्मनाम् ॥१५
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ॥१६
द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः ।
यत्र सत्य च सत्वं च क्रिया धर्मो विधीयते ॥१७
त्रेतायां विक्रृति यान्ति वर्णा लोभेन संयुताः ।
चातुर्वर्ण्यस्य वैकृत्यं क्षान्तिर्दौर्बल्यमेव च ॥१८
एषा त्रेतायुगगतिर्विचित्रा देवनिर्मिता ।

द्वापरं द्विसहस्रं तु वर्षाणां कुरुनन्दन ॥१६
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणयुगमुच्यते ।
तत्राप्यतोवार्थपराः प्राणिनो रजसाहता ॥२०
शठा नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते कुरुनन्दन ।
द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थित ॥२१

हे पार्थिव ! कृतयुग में सभी को इसी प्रकार से बरताव करना होता था। जो कि प्राणी ऐसे थे जिनका नीच जाति में जन्म हुआ था वे भी नर धर्म का पालन करने वाले थे। यह कृतयुग में सबकी धर्म-प्रवृत्ति रहा करती थी ॥१५॥ तीन सहस्र वर्ष का त्रेतायुग कहा जाता है। उस त्रेतायुग की भी उतने ही सौ वर्ष द्विगुनी सन्ध्या होती थी ॥ १६ ॥ त्रेतायुग में जो पाद वाला अधर्म था और तीन पादों वाला धर्म व्यवस्थित था। जिस त्रेतायुग में सत्य, सत्व, क्रिया और धर्म किये जाते थे ॥१७॥ त्रेतायुग में सभी वर्ण लोभ से युक्त होकर विकृति को प्राप्त हो जाते हैं। उस समय में चातुर्वर्ण्य की विकृति, क्षान्ति और दुर्बलता हो गई थी ॥ १८ ॥ इस प्रकार से त्रेतायुग की गति विचित्र ही देव निर्मित थी। हे कुरु नन्दन ! त्रेता के पश्चात् द्वापर युग आता है जो दो सहस्र वर्षों के समय वाला होता है। उस युग की भी उतने ही सौ वर्ष की द्विगुणित सन्ध्या कही गई है। इस द्वापर युग में भी समस्त प्राणी बहुत ही अधिक अर्थ परायण और रजोगुण से समाहत थे ॥१६ २०॥ द्वापर में शठ, निष्कृति युक्त, क्षुद्र मनुष्य उत्पन्न होते हैं। हे कुरु नन्दन ! इस युग में धर्म तो दो पादों से युक्त था और अधर्म तीन चरणों वाला होकर समुत्थित हो गया था ॥२१॥

विपर्ययशतैर्धर्मः क्षयमेति कलौ युगे ।
ब्रह्मण्यभावश्च्यवते तथास्तिक्य विवर्ज्यते ॥२२
व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते कलौ वै युगपर्यये ।
तदा वर्षसहस्रं तु वर्षाणा द्वे शते तथा ॥२३
सन्ध्यया सहसङ् ख्यातः क्रूरः कलियुगस्तथा ।
यत्राधर्मश्चतुष्पादो धर्मः पादपरिग्रहः ॥२४
कामिनस्तापसाः क्षुद्रा जायन्ते यत्र मानवाः ।
न चावसायिकः कश्चिन्न साधुर्न च सत्यवाक् ॥२५

नास्तिका ब्राह्मणा भक्ता जायन्ते तत्र मानवाः ।
अहंकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबन्धनाः ॥२६
विप्राः शूद्रसमाचारास्सन्ति सर्वे कलौ युगे ।
आश्रमाणां विपर्यासः कलौ सम्प्रति वर्त्तते ॥२७
वर्णानां चैव सन्देहो युगान्ते कुरुनन्दन ।
एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या पूर्वनिर्मिता ॥२८

इसके अनन्तर कलियुग आता है इसमें तो सैंकड़ों विपरीत कृत्यों से धर्म पूर्णतया क्षीण हो जाया करता है । ब्रह्मण्य भावना की तो एकदम च्युति हो जाती है और आस्तिकता भी नहीं रहा करती है ॥ २२ ॥ इस बिल्कुल विपरीत कलियुग में समस्त व्रत और उपवास छोड़ दिये जाते हैं । इस युग का समय एक सहस्र वर्ष होता है तथा दो सौ वर्ष की युग-सन्ध्या होती है । सन्ध्या के साथ सहचा किया गया यह कलियुग अत्यन्त ही क्रूर युग होता है । इस युग में अधर्म चार चरणों से युक्त रहता है और धर्म केवल एक ही पाद वाला रहा करता है ॥ २३।२४ ॥ इस कलियुग में जो तपस्या करने वाले पुरुष होते हैं वे भी कामवासना से समन्वित होते हैं और सभी मानव अत्यन्त क्षुद्र मनोवृत्ति वाले उत्पन्न हुआ करते हैं । इस कलियुग में न तो कोई व्यवसायिक होता है और न कोई साधुवृत्ति वाला सत्यभाषी ही होता है ॥२५॥ कलियुग में ब्राह्मण लोग ईश्वर की सत्ता को नहीं मानने वाले नास्तिक हो जाते हैं । इस युग में जो मानव भक्त होते हैं वे बड़े अहङ्कारी होते हैं और स्नेह के बन्धन को क्षीण कर देने वाले हो जाते है अर्थात् कलियुग में मनुष्यों में बिल्कुल स्नेह की भावना रहती ही नहीं है ॥ २६ ॥ यह कलियुग का समय ऐसा होता है कि सभी विप्र इसमें शूद्र के समान आचरण करने वाले हो जाया करते हैं । कलियुग में चारों आश्रमों में विपरीतता उत्पन्न हो जाया करती है ॥२७॥ हे कुरु नन्दन ! इस युग के अन्त में तो वर्णों का भी सन्देह होता है । यह युग की आख्या बारह सहस्र वाली पूर्व निर्मित है ॥२८॥

सहस्रयुगपर्यन्तं तदहर्ब्राह्ममुच्यते ।
ततोऽह्नि गते तस्मिन्सर्वेषामेव जीविनाम् ॥२९

शरीरनिवृ॑त्ति दृष्ट्वा काल सहारबुद्धिमान् ।
देवताना च सर्वेषा ब्राह्मणाना महीपते ॥३०
दैत्याना दानवाना च यक्षराक्षसपक्षिणाम् ।
गन्धर्वाणामप्सरसा भुजङ्गाना च पार्थिव ॥३१
पर्वताना नदीना च पशूना चैव सत्तम ।
तिर्यग्योनिगताना च क्रिमीणा दशिना तथा ॥३२
सर्वभूतपति पञ्च भूत्वा भूतानि भूतकृत् ।
जगत्सहरणार्थाय कुरुते वैशस महत् ॥३३
भूत्वा सूर्यश्चक्षुपी आददानो भूत्वा वायु प्राणिना प्राणिजातम् ।
भूत्वा वह्निर्निर्दहन्सर्वलोकान्भूत्वा मेघो भूय उग्रोऽभ्यवर्षत् ॥३४

एक सहस्र युग पर्यन्त ब्रह्मा का दिन कहा जाता है। उस ब्रह्माजी के दिन के समाप्त हो जाने पर समस्त जीवधारियों के शरीर की निवृ॑त्ति को देखकर सहार की बुद्धि रखने वाला काल, हे महीपते ! सब देवताओ—समस्त ब्राह्मणो, दैत्यो दानवो और यक्ष—राक्षस तथा पक्षियो, गन्धर्वों अप्सराओ, भुजङ्गो, पर्वत—नदी—पशुओ, तिर्यग्योनियो मे रहने वालो—क्रिमियों, दशियो के भूतो के करने वाला, समस्त भूतो का स्वामी, भूतो को पाँच करके इस जगत् के सहार करने के लिये महान् वैशस करता है ॥ २९ से ३३ ॥ चक्षुओ का आदान करने वाला सूर्य होकर प्राणियो का प्राणिजात वायु होकर समस्त लोको को निदग्ध करते हुए वह्नि होकर और उग्र मेघ होकर वर्षा की थी ॥३४॥

भूत्वा नारायणो योगी सर्वमूर्तिविभावसु ।
गभस्तिभि प्रदीप्ताभि सशोपयति सागरान् ॥३५
तत पीत्वार्णवान्सर्वान्नदीकूपाश्च सर्वत ।
पर्वताना च सलिल सर्वमादाय योगवित् ॥३६
भूत्वा चैव सहस्राचिर्मही भित्वा रसातले ।
रमते जलमादाय पवित्रसमनुत्तमम् ॥३७
मूर्त्तामूर्त्त तदन्यच्च यदस्ति प्राणिपु ध्रुवम् ।
तत्सर्वमरविन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तम ॥३८

वायुश्च बलवान्भूत्वा विधुन्वानोऽखिलं जगत् ।
प्राणापान समासाद्य वायुनाक्रमते हरिः ।।३६
ततो देवगणाना च सर्वेषा चैव देहिनाम् ।
पञ्चेन्द्रियगुणास्सर्वे भूतान्येव च यानि च ।।४०
घ्रेयं घ्राण शरीर च पृथिवी संश्रिता गुणाः ।
लोकयात्रा भगवता मुहूर्तेन विनाशिता ।।४१

सर्व मूर्त्ति योगी नारायण विभावसु होकर अपनी अत्यन्त तीव्र एवम् प्रदीप्त किरणों से सागरों का शोषण करता है ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर समस्त समुद्रों को तथा सर्वत्र नदियों और कूपों को पान करके योग का ज्ञाता पर्वतों के सम्पूर्ण जल को लेकर फिर वह सहस्र किरणों वाला होकर इस मही का भेदन करके रसातल में उत्तम रस का पान करके जल को लेकर रमण करता है ।।३६।३७।। मूर्त्त–अमूर्त्त में वह प्राणियों मे ध्रुव अन्य जो भी है उस सबको अरविन्द के समान नेत्रों वाले पुरुषोत्तम ग्रहण कर लेते हैं ॥ ३८ ॥ वह वायु अत्यधिक बलवान् होकर इस सम्पूर्ण जगत् को कँपाता हुआ हरि प्राणापान का समासादन कर वायुओं को आक्रमण करता है ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर सब देवगणों को और समस्त देहधारियों को सब पाँचों इन्द्रियों के गुण और जो भूत हैं, घ्रेय—घ्राण—शरीर—पृथिवी में संश्रित गुण, भगवान् ने एक मुहूर्त्त मात्र मे सब लोकयात्रा का विनाश कर दिया था ।।४०।४१।।

जिह्वा रसश्च स्नेहश्च संश्रिताः सलिले गुणा ।
रूपचक्षुर्विभागश्चनेत्र ज्योति. श्रितागुणा. ।।४२
स्पर्श प्राणश्च चेष्टा च पवन संश्रिता गुणाः ।
शब्दः श्रोत्रे च श्रवणं गगन संश्रिता गुणाः ।।४३
मनोबुद्धिश्च चित्त च क्षेत्रज्ञ चेति संश्रिताः ।
परेण परमेष्ठी च हृषीकेशमुपाश्रिताः ।।४४
ततो भगवतस्तस्य रश्मिभिः परिवारिताः ।
वायुना परिनुन्नाश्च भूमिशाखामपाश्रिताः ।।४५
तेषा संहरणोद्भूतः पावकः शतधाज्वलन् ।
प्रदहन्नखिलं विश्वं वृत्तः मवर्त्तकोऽनल: ।।४६

सपर्वतद्रुमान्गुल्माल्लतावल्लीस्तृणानि च ।
विमानानि च दिव्यानि पुराणिविविधानि च ॥४७
यानि चाश्रयणीयानि सर्वाण्यप्यदहद् भृशम् ।
भस्मीकृत्य तु तान्सर्वांल्लोकगुरोर्गुरु ॥४८
स भूतिं धारयामास युगान्ते लोकसंभवाम् ।
सहस्रवृष्टि शतधा भूत्वा कृष्णो महाघन ॥४९
दिव्यतोयेन हविषातर्पयामास मेदिनीम् ।
तत क्षीरनिकाशेन स्वादुना परमाम्भसा ॥५०

सलिल में सश्रित गुण जिह्वा—रस—स्नेह तथा ज्योति में सश्रित गुण रूप—चक्षु—विपाक और नेत्र हैं ॥४२॥ पवन में सश्रय रखने वाले गुण स्पर्श प्राण और चेष्टा हैं। आकाश का समाश्रय करने वाले शब्द—श्रोत और श्रवण हैं ॥ ४३ ॥ मन—बुद्धि और चित्त व क्षेत्रज्ञ का समाश्रय करने वाले होते हैं। पद के द्वारा परमेष्ठी ने हृषीकेश का उपाश्रय किया था। इसके पश्चात् उस भगवान् की रश्मियों से परिवारित और वायु के द्वारा परिलुप्त भूमि शाखा को उपाश्रित हुए थे ॥ ४४।४५ ॥ उनके सहार करने से उत्पन्न होने वाला पावक सैकड़ों प्रकार से जलता हुआ इस सम्पूर्ण विश्व को प्रदग्ध करता हुआ सवर्त्तक अनल हो गया था ॥४६॥ उस महान् ज्वाला वाले अनल ने पर्वत, द्रुम, गुल्म, लता, वल्ली, तृण, विमान, दिव्य अनेक पुर और जो भी आश्रय करने के योग्य स्थल थे उन सभी को अच्छी तरह से जला दिया था। लोकों के गुरु के भी गुरु ने उन सम्पूर्ण लोकों को भस्मीभूत कर दिया था ॥४७।४८॥ लोकों के जला देने पर जो विभूति हुई थी उस लोक सम्भव भस्म को युग के अन्त में उस प्रभु ने धारण कर लिया था। इसके उपरान्त महान् कृष्ण वर्ण वाला मेघ होकर जो कि सैकड़ों स्वरूप वाला था सहस्र वृष्टि करने वाला हुआ था ॥४९॥ उस वर्षा के दिव्य जल से हवि के द्वारा इस भूमि को अत्यन्त स्वादु उत्तम जल जो कि क्षीर के तुल्य था उससे सतृप्त किया था ॥५०॥

शिशिरेण च पुण्येन महो निर्वाणमागमत् ।
तेन तोयेन सम्पृक्ता पयस्साधर्म्यतो धरा ॥५१

एकार्णवजलीभूता सर्वसत्त्वविवर्जिता ।
महासत्त्वान्यपि विभुं प्रविष्टान्यमितौजसम् ।।५२
नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मेजगतिसंवृते ।
संशोषमात्मना कृत्वा समुद्राणां च देहिनः ।।५३
दग्ध्वा सङ्कोच्य च तथा स्वपित्येकः सनातनः ।
पौराणां रूपमास्थाय स्वपित्यमितविक्रमः ।।५४
एकार्णवजले व्यापी योगी योगमुपासित ।
अनेकानि सहस्राणि युगान्येकार्णवाम्भसि ।।५५

उस शिशिर और पुण्य के यह मही निर्वाण को प्राप्त हुई थी और उस समय में यह धरा पद्म के साधर्म से उस जल के द्वारा सम्पृक्त हो गई थी ।।५१।। उस काल मे एकमात्र सागरमयी यह भूमि थी जिसमे कोई भी किसी प्रकार सत्त्व शेष नही रह गया था । जो बडे बडे महा सत्त्व थे वे भी उस अमित ओज वाले विभु में प्रवेश कर गये थे ।। ५२ ।। सब समुद्रो का और देहधारियो का अपने द्वारा भली-भांति शोषण करके सूर्य—पवन और आकाश सब विनष्ट होकर इस सूक्ष्म जगत् मे संवृत हो गये थे ।। ५३ ।। सबको दग्ध करके और सकुचित करके वह सनातन प्रभु अकेला एक ही फिर शयन किया करता है। अमित विक्रम वाला विभु पौरो के रूप मे आस्थित होकर शयन करते हैं ।।५४।। एकमात्र सागर मे व्यापक योगी फिर योग की उपासना में संलग्न होते हैं और इस तरह से उसी एक सागर के जल मे योग निद्रा में व्यस्त उस विभु को अनेकों सहस्र युग व्यतीत हो जाया करते है ।।५५।।

श्रूयता तु तदा विप्रो मार्कण्डेयः कुतूहलात् ।
गीर्णो भगवतातेन कुक्षावासोत्महामुनिः ।।५६
बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसः ।
अटस्तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवी तीर्थगोचरः ।।५७
आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायतनानि च ।
देशाराष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च ।।५८
जपहोमपराः शान्तास्तपोभिरमलाःस्मृताः ।
मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिर्गतः ।।५९

निष्क्रामन्त न चात्मान जानीते देवमायया ।
निष्कम्य तस्य उदरादेकार्णवमथोजगत् ॥६०
सर्वतस्तमसाच्छन्न मार्कण्डेयोऽन्ववेक्षत ।
तस्योत्पन्न भय तीव्र व्यत्यय चात्मजीवितम् ॥६१
सुप्त न्यग्रोधशाखाया बालमेक निरीक्ष्य च ।
तथैवकार्णवजले नीहारेणावृतान्तरे ॥६२
अव्यक्तक्रीडिते लोके सर्वभूतविवर्जिते ।
स मुनिर्विस्मयाविष्ट कौतूहलसमन्वित. ॥६३
बालमादित्यसङ्काश न शक्नोत्यभिवीक्षितुम् ।
सोऽप्यचिन्तयदकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ ॥६४

अब तुम यह श्रवण करो कि कुतूहल से उन भगवान् के द्वारा जीर्ण किये हुए मार्कण्डेय विप्र उस समय उनकी कुक्षि मे थे ॥ ५६ ॥ उसी घर तेज वाले उस ऋषि की बहुत से सहस्र वर्षों की आयु है, वह तीर्थों के प्रसङ्ग से सर्वत्र पर्यटन करते रहा करते हैं और समस्त पृथ्वी के तीर्थों में गोचर हुआ करते हैं ॥५७॥ परम पुण्यमय आश्रम और देवों के आयतन, देश, राष्ट्र अति विचित्र अनेक पुर, जप तथा होम करने मे परायण, परम शान्त और तप के द्वारा अमल कहे गये हैं । इसके उपरान्त उन भगवान् के मुख से वह मार्कण्डेय महामुनि धीरे से बाहिर निकल आये थे ॥५८॥५६॥ देव माया के का ण बाहिर निकलते हुए अपने आपको उ होने नही जाना था और भगवान् के उदर से बाहिर निकलकर इस सम्पूर्ण जगत् को एक सागरमय ही देखा ॥ ६० ॥ यह सारा जगत् अन्धकार से समाच्छन्न था—ऐसा म र्कण्डेयजी ने उस समय म इसे देखा । उस मार्कण्डेय को बहुत तीव्र भय उत्पन्न हुआ और उनका अपना जीवन व्यत्यय युक्त होगया था ॥६१॥ उस समय म उन्होंने एक वट की शाखा म उस एकार्णवी भूत जल में, जो कि नीहार से समावृत अ तर वाला था, शयन करते हु॰ एक बालक को देखा था ॥६२॥ सम्पूर्ण भूतों से विवर्जित और अव्यक्त से क्रीड़ा युक्त इस लोक में उसको देखकर उस मुनि को अत्यन्त विस्मय हुआ था और वह विशेष कौतूहल से समन्वित होगये थे ॥६३॥ वह वट के पत्र के पर

शयन करने वाला बालक-इतना तेजस्वी था जैसे कोई सूर्य ही हो। उसको दृष्टि से देख नहीं सकते थे। उन मुनि ने एकान्त स्थल में सलिल की सन्निधि में समाविष्ट होकर ध्यान किया था ॥६४॥

पूर्वं दृष्टमिदं मेने शङ्कितो देवमायया।
अगाधे सलिले शेते मार्कण्डेयः सुविस्मयः ॥६५
पूर्ववृत्तमथो द्रष्टुमव्रजत्त्रस्तलोचनः।
स तस्मै भगवानाह स्वागतं बाल भो इति ॥६६
बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः।
मार्कण्डेय न भेतव्यमागच्छस्व ममान्तिकम् ॥६७
को नाम्ना कीर्तयति मां कुर्वन्परिभवं मम।
दिव्यवर्षसहस्राख्यं धर्षयश्चैव मे वयः ॥६८
न ह्येष च सदाचारो देवेष्वपि ममोचितः।
मां ब्रह्मापि हि सस्नेहो दीर्घायुरिति भाषते ॥६९
कस्तपो घोरमासाद्य ममाद्य त्यक्तजीवितः।
मार्कण्डेयेति मामुक्त्वा मृत्युमीक्षितुमर्हसि ॥७०

एवं प्रक्षुभितः क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः ।
तदैनं भगवान्भूयो बभाषे मधुसूदनः ॥७१
अहते जनको वत्स हृषीकेशः पितागुरुः ।
आयुःप्रदाता पौराणः किं मां त्वं नोपसर्पसि ॥७२

इच्छामि तत्त्वतो ज्ञातुमिमां मायां तवानघ ।
यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान् ॥७३

किं संज्ञश्चैव भगवाँल्लोके विज्ञायसे प्रभो ।
तर्कयेऽहं महात्मानं को ह्यन्यः स्थातुमर्हसि ॥७४

अहं नारायणो ब्रह्मन्सर्वभूतविनाशनः ।
अहं सहस्रशीर्षास्यः सहस्रपदसंयुतः ॥७५

आदित्यवर्णः पुरुषो मुखे ब्रह्ममयो ह्यहम् ।
अहमग्निर्हव्यवहः सप्तसप्तभिरन्वितः ॥७६

अहमिन्द्रपदः शक्र ऋतूनां परिवत्सरः ।
अहं योगिषु साङ्ख्याख्यो युगान्तावर्त एव च ॥७७

अह सर्वाणि सत्त्वानि दैवतान्यखिलानि च ।
भुजगानामहं शेषस्तार्क्ष्योऽहं सर्वपक्षिणाम् ॥७८

उस समय में वह महामुनि मार्कण्डेय क्रोध से इस प्रकार प्रक्षुब्ध होगये थे। तब तो भगवान् मधुसूदन पुनः इनसे कहने लगे—श्री भगवान् ने कहा—हे वत्स! मैं ही तुम्हारा जनम देने वाला हृषीकेश पिता एवम् गुरु हूँ। मैं ही तुमको आयु के प्रदान करने वाला हूँ। मैं परम पुराण पुरुष हूँ। क्या आप इस समय मेरे समीप में नहीं आ रहे हो? और क्या कारण है जो तुम मेरे निकट नहीं आते हो? ॥७१।७२॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे अनघ! मैं तत्त्व स्वरूप से आपकी इस माया को जानना चाहता हूँ कि इस एकमात्र सागर के जल के मध्य में स्थित होकर शेष की शय्या पर बालक के स्वरूप शयन कर रहे हैं ॥७३॥ हे प्रभो! आप लोक में किस नाम से जाने जाते हैं? मैं तो आपको कोई महान् आत्मा वाला ही सोचता हूँ क्योंकि अन्य कौन इस अवस्था में स्थित हो सकता है। ७४॥ श्री भगवान् ने कहा-हे ब्रह्मन्! समस्त भूतों का विनाश

करने वाला मैं नारायण हूँ। मैं सहस्र शीर्ष और मुख वाला तथा सहस्र पदों से समन्वित हूँ ॥७५॥ मैं आदित्य के वर्ण वाला पुरुष हूँ। मैं मुख में ब्रह्ममय हूँ। मैं ही अग्नि हूँ जो हव्य वहन करने वाला और सप्त-सप्त अर्चियों से युक्त होता है ॥७६॥ मैं इन्द्र पद वाला ऋतुओं का परिवत्सर शक्र हूँ। मैं योगियों में साख्य नाम वाला युगान्तावर्त्त हूँ ॥७७॥ मैं ही सम्पूर्ण सत्व स्वरूप वाला हूँ और समस्त दैवतमय हूँ। भुजगों में शेष हूँ तथा समस्त पक्षियों में गरुड़ मेरा ही स्वरूप है ॥७८॥

कृतान्तः सर्वभूतानां विज्ञेयः कालसंज्ञितः ।
अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥७९
अयं दयापरो धर्मः क्षीरोदोऽहं महार्णवः ।
यत्सत्यं तत्परं त्वेकः अहमेव प्रजापतिः ॥८०
अहं साङ्ख्यमहं योगो ह्यहं तत्परमं पदम् ।
अहमिज्या क्रिया चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः ॥८१
अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं जलम् ।
आकाशोऽहं समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश ॥८२
अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः ।
अहं पुराणं परमं तथैवाहं परायणम् ॥८३
भविष्ये चापि सर्वत्र भविष्यत्सर्वसङ्ग्रहः ।
यत्किञ्चित्पश्यसे विप्र यच्छृणोषि च किञ्चन ॥८४

समस्त प्राणियों का कृतान्त काल संज्ञा वाला मुझे ही समझो। मैं ही धर्म हूँ, तप हूँ जो सब आश्रमों में निवास करने वालों के हृदय में रहा करता है ॥७९॥ मैं ही दया में परायण धर्म हूँ तथा यह महार्णव क्षीरोद भी मैं हूँ। जो सत्य है वह पद है और एक है वह मैं ही प्रजापति हूँ ॥८०॥ मैं ही साख्य हूँ और योग भी मेरा ही स्वरूप है। मैं ही उससे भी जो परम पद है वह भी हूँ। इज्या—क्रिया और समस्त विद्याओं का स्वामी भी मैं ही हूँ ॥८१॥ मैं ही ज्योति हूँ, मैं ही वायु हूँ और मैं ही जल हूँ। मैं आकाश हूँ, समस्त समुद्र, नक्षत्र और दशों दिशाएँ भी सब मेरा ही स्वरूप है ॥८२॥ मैं वर्ष—सोम—

पर्जन्य और रवि हूँ। मैं परम पुराण तथा मैं ही परायण हूँ ॥८३॥ भविष्य में सर्वत्र होने वाला सब का संग्रह हूँ, जिस किसी को भी तुम देखते हो, हे विप्र ! जो कुछ भी तुम श्रवण करते हो वह सभी कुछ मैं ही हूँ ॥८४॥

यच्चानुभवसे लोके तत्सर्वं मामनुस्मर।
विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृजेऽद्यापि च पश्यमाम् ॥८५
युगे युगे च रक्षामि मार्कण्डेयाखिलं जगत्।
तदेतत्कथितं सर्वं मार्कण्डेयावधारय ॥८६
शुश्रूषुरपि धर्मेषु कुक्षौ चर सुखं मम।
मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवाश्च ऋषिभिः सह ॥८७
व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छ मुरद्विषम्।
अहमेकाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्च पितामहः ॥८८
परस्त्रिवर्ग ओंकारः परमात्मप्रदर्शनः।
एवमादिपुराणं च वदते मां महामते ॥८९
वक्त्रमाहृतवानीशो मार्कण्डेयमथो हरिः।
ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः ॥९०
यदक्षय विविधमुपाश्रितं तु तन्महार्णवे व्यपगतचन्द्रभास्करे।
शनैश्चरन्प्रभुरथ हंसव्रतः सिसृजञ्जगद्विहरति कालपर्यये ॥९१

इस लोक में जो भी कुछ तुम अनुभव करते हो वह सब मुझको ही समझ लेना चाहिए। मैंने ही पहिले इस सम्पूर्ण विश्व का सृजन किया था और आज भी अब मैं इसका सृजन करता हूँ, आप मुझको देखें ॥८५॥ हे मार्कण्डेय ! इस समस्त जगत् की मैं युग युग मे रक्षा किया करता हूँ। हे मार्कण्डेय ! यह सभी कुछ तुमको बता दिया है। अब इसका ठीक अवधारण कर लो ॥८६॥ धर्मों में शुश्रूषा करने वाला होता हुआ भी मेरी कुक्षि मे सुखपूर्वक विचरण करो। ब्रह्मा भी मेरे ही शरीर में स्थित है और सब देवगण भी ऋषियों के साथ वहाँ पर स्थित रहते है ॥८७॥ व्यक्त—अव्यक्त योग—मुर शत्रु का नाशक मुझको जान लो। मैं हूँ एकाक्षर मन्त्र हूँ और तीन अक्षर वाला पितामह हूँ ॥८८॥ हे महान् मति वाले ! पर—त्रिवर्ग—ओङ्कार परमात्म प्रदर्शन मैं ही

है। इस प्रकार से मुझको ही आदि पुरुष तथा परम पुरुष कहते हैं ॥ ८९ ॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—उन ईश्वर हरि ने इसके उपरान्त मार्कण्डेय मुनि को अपने मुख से समाहृत कर लिया था और फिर वह मुनियों में परम श्रेष्ठ भगवान की कुक्षि में प्रविष्ट होगये थे ॥ ९० ॥ जो क्षय नहीं होने वाला है और अनेक स्वरूपों से उपाश्रित होता है इस महार्णव में जिसमें चन्द्रमा और सूर्य भी व्यपगत होगये हैं वह प्रभु हंस संज्ञा वाला धीरे-धीरे विचरण करते हुए इस जगत् को सृजन करते हुए काम पर्य्यंय में विहार किया करते हैं ॥९१॥

अथचैवं शुचिर्भूत्वा चचार स तु वै तपः ।
छादयित्वाऽऽत्मनो देहं पयसाम्बुजसम्भवः ॥९२
ततो महात्मातिबलोमर्त्यलोकविसर्जने ।
महतां चैव भूतानां विश्वो विश्वमचिन्तयत् ॥९३
तस्य चिन्तयमानस्य नियते संस्थितेऽर्णवे ।
निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति सक्षये ॥९४
ईषत् संक्षोभयामास सोऽर्णवं सलिलं गतः ।
अथान्तरादणुः सूक्ष्ममर्थाच्छिद्रमभूत्पुरा ॥९५
शब्दं प्रति ततो भूतो मारुतश्छिद्रसम्भवः ।
सलब्ध्वान्तरमक्षोभ्यं व्यवर्धत समीरणः ॥९६
नभस्वता बलवता वेगाद्विक्षोभितोऽर्णवः ।
तस्यार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नम्भसि मज्जतः ॥९७
कृष्णवर्त्मा समभवत्प्रभुर्वैश्वानरो महान् ।
ततः संशोषयामास पावकः सलिलं बहु ॥९८

इसके अनन्तर परम शुचि होकर उसने तपस्या का समाचरण किया था। कमल से समुत्पन्न होने वाले ने जल से अपने देह का समाच्छादन किया था ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर महान् आत्मा वाले अति बलवान् विश्व स्वरूप ने मर्त्यलोक के विसर्जन करने में महान् भूतों के विश्व के विषय में चिन्तन किया था ॥ ९३ ॥ इस रीति चिन्तन करते हुए उसको नियत और संस्थित सागर में जहाँ कि न तो आकाश ही था और इस सूक्ष्म जगत् का भी उसमें भली-भाँति

यत्पद्मं सा रसा देवी पृथिवी परिकथ्यते ।
ये पद्मकेशरा मुख्यास्तान्दिव्यान्पर्वतान्विदुः ॥१११
हिमवन्तं च नीलं च मेरुं निषधमेवच ।
कैलासं शृङ्गवन्तं च तथाद्रिं गन्धमादनम् ॥११२
पुण्यं त्रिशिखरं चैव कान्तं मन्दरमेवच ।
उदारं पिञ्जरं चैव विन्ध्यमस्तं च पर्वतम् ॥११३
एत एव गणानां च सिद्धानां च महात्मनाम् ।
आश्रयाः पुण्यशीलानां सर्वकामफलप्रदाः ॥११४

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इसके अनन्तर योगाभ्यास करने वालो मे परम श्रेष्ठ—अत्यधिक वर्चस वाले, सब ओर मुखों वाले, लोकों की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा का सृजन किया गया था ॥१०८॥ उस हिरण्मय पद्म मे जो बहुत से योजनो के विस्तार वाला था तथा सब के तेज और गुणों से परिपूर्ण था एवं पार्थिव लक्षणों से वृत था पृथिवी रूप पुराभूत उत्तम वह पद्म हुआ था जिसको महर्षिगण नारायण से समुद्भूत बतलाते हैं ॥१०९।११०॥ जो वह पद्म था वही रसा देवी पृथिवी परिकल्पित की जाती है । जो उस पद्म में केशर मुख्य थे उनको दिव्य पर्वत कहते हैं ॥१११॥ उन दिव्य पर्वतो के नाम बतलाये जाते हैं जो उस दिव्य नाभि से समुत्थित पद्म के केशर थे । हिमवान्—नील—मेरु–निषध-कैलास–शृङ्गवान्–गन्धमादन—पुण्य त्रिशिखर—कान्त मन्दर—उदार पिञ्जर और विन्ध्य ये पर्वत हैं ॥११२।११३॥ ये पर्वत समस्त कामनाओ के फलो के प्रदान करने वाले और सिद्धगण—महात्मा तथा पुण्यशीलों के आश्रय होते हैं अर्थात् इन्ही पर्वतो पर महापुरुष सिद्ध लोग अपना आश्रम बनाया करते हैं और तपश्चर्या किया करते हैं ॥११४॥

एतेषामन्तरे द्वीपो जम्बूद्वीप इतिस्मृतः ।
जम्बूद्वीपस्य संस्थानं यज्ञिया यत्र च क्रियाः ॥११५
तेभ्योयद्द्रवते तोयं दिव्यामृतरसोपमम् ।
दिव्यतीर्थशताधाराः सरस्यः सर्वतः स्मृताः ॥११६
यान्येतानीह पद्मस्य केसराणि समन्ततः ।
असंख्येयाः पृथिव्यां ते विविधाश्चैवपर्वताः ॥११७

यानि पर्णानि पद्मस्य भूरि पूर्वाणिपार्थिव ।
ते दुर्गमाः शलचिलाम्लेच्छदेशा प्रकीर्तिताः ॥११८
यान्यधोभागपत्राणि-तानि वासास्तु भागशः ।
दैत्यानामसुराणा च पन्नगाना च पार्थिव ॥११६

इन पर्वतों के मध्य में जो द्वीप है वही जम्बूद्वीप नाम से कहा गया है। जम्बूद्वीप वह सस्थान है जहाँ पर यज्ञ सम्बन्धी क्रियाएँ निष्पन्न हुआ करती हैं ॥११५॥ इन पर्वतो से जो जल प्रवित होकर बहता है वह दिव्य अमृत रस के समान होता है। दिव्य तीर्थों की सैकड़ो धाराएँ सर-सी (नदियाँ) सभी ओर कही गयी हैं ॥११६॥ इन प्रमुख केशरो के अतिरिक्त जो अन्य उस पद्म की केशर हैं वे चारो ओर मे प्रगणित है और वे इस पृथिवी तल में विविध पर्वतो के रूप मे विद्यमान हैं ॥ ११७ ॥ जो उस दिव्य पद्म के पत्र हैं वे हे पार्थिव ! बहुत अधिक हैं और वे सब शलचिलम्लेच्छो के दुर्गम देश कहे गये हैं ॥११८॥ जो उस पद्म के अधोभाग मे पत्र हैं वे हे पार्थिव ! भागशः दैत्यो मे—असुरो के और पन्नगो के निवास स्थान हैं ॥११६॥

तेषा मध्येऽन्तर यत्तु तद्रसातलसज्ञितम् ।
महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः ॥१२०
पद्मस्य चान्तरे पद्म एकार्णवगता मही ।
चतुर्दिश.सु सङ्ख्याताश्चत्वारः सलिलाकराः ॥१२१
एवनारायणस्यार्थे मही पुष्करसम्भवा ।
प्रादुर्भावोऽप्यय तस्मान्नाम्ना पुष्करसज्ञितः ॥१२२
एतस्मात्कारणाद्यज्ञे पुराणैः परमर्षिभिः ।
यज्ञियैर्वेददृष्टान्तैर्यज्ञैर् पचितिः कृता ॥१२३
एव भगवता तेन विश्वं व्याप्यधराचिता ।
पर्वताना नदीना च रचना चैव निर्मिता ॥१२४
विश्वस्य यश्चाप्रतिमप्रभावः प्रभाकराभो वरुणोऽमितद्युति ।
शनैं स्वयम्भूर्व्यसृजत्सुपुप्सं पद्मनिधि महार्णवे ॥१२५

उन पद्म के पत्रो के मध्य में जो अन्तर है वही रसातल नाम वाला

स्थान है। महान् पातक से युक्त कर्मों को करने वाले मनुष्य जहाँ पर जाकर मज्जित हुआ करते हैं ॥१२०॥ और पद्म के अन्तर में एकार्णवगता पृथिवी है। वहाँ चारों दिशाओं में चार सङ्ख्या वाले जलाशय हैं ॥१२१॥ इस प्रकार से नारायण के लिये पुष्कर से समुत्पन्न होने वाली मही है। इस तरह इसके प्रादुर्भाव के नाम से ही इसकी पुष्कर—यह संज्ञा हुई है ॥१२२॥ इसी कारण से ही यज्ञ में परम प्राचीन, याज्ञिक, वेदों के अन्त पर्यन्त द्रष्टा परम ऋषियों के द्वारा यज्ञों के से यूपचिति की गई थी ॥१२३॥ इसी प्रकार से उन भगवान् ने विश्व को व्याप्त करके इस धरा को चित किया है और पर्वतों की तथा नदियों की रचना का निर्माण भी किया है ॥१२४॥ जो इस सम्पूर्ण विश्व का अप्रतिम प्रभाव है, प्रभाकर की प्राभा वाला है, वरुण की अपरिमित द्युति से सम्पन्न है, उस स्वयम्भू ने, स्वय जो जगन्मय है उस महार्णव में पद्मनिधि सुपुष्प जगत् का विशेष सृजन किया था ॥१२५॥

॥ तारकोत्पत्ति वर्णन ॥

वंशक्षयकरा देवा. सर्वेपामेव दानवाः।
अस्माकं जातिधर्मेण विरूद्ध वैरामक्षयम् ॥१
वय तपश्चरिष्यामः सुराणां निग्रहाय तु।
स्वबाहुबलमाश्रित्य सर्वं एवन संशयः ॥२
तच्छ्रुत्वा समतं कृत्वा परियान् पर्योगिरिम्।
निराहार. पञ्चतपा पत्रभुग्वारिभोजन ॥३
शतं शतं समाना तु तपास्येतान्यथाकरोत्।
एवं तु कर्शिते देहे तपो राशित्वमागते ॥४
ब्रह्माऽऽगत्याह दैत्येन्द्रं वरं वरय सुव्रत।
स वव्रे सर्वभूतेभ्यो न मे मृत्युर्भवेदिति ॥५
तमुवाच ततो ब्रह्मा देहिना मरणं ध्रुवम्।
यतस्ततोऽपि वरय मृत्युं यस्मान्न शङ्कसे ॥६
ततः सञ्चिन्त्य दैत्येन्द्रः शिशोर्वै सप्तवासरात्।
वव्रे महासुरो मृत्युं मोहितोह्यवलेपत. ॥७

दानवों में परम श्रेष्ठ तारक ने समस्त असुरों से कहा—हे समस्त असुरो ! आप सब महान् बल—विक्रम से सम्पन्न है। अब आप सब लोग मेरे वचनों का श्रवण करो। हे दानवो ! ये जो सब देवता लोग हैं वे सभी हमारे वंशों का क्षय करने वाले हैं और इनके साथ जाति के धर्म से ही हमारा अक्षय वैर विशेष रूप से समारूढ़ हो गया है ॥ १ ॥ अब हम सबको इन सुरों के निग्रह करने के लिये तपश्चर्या करनी चाहिए और हम सबको अपने ही बाहु-बल का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। इसमें बिल्कुल भी संशय नहीं है ॥२॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—तारक के इन वचनों का श्रवण करके समस्त दानवों ने परस्पर में सम्मति की और फिर उन सबके साथ वह परियात्र नाम वाले पर्वत पर चला गया था। वहाँ पर उसने अपने आहार का त्याग कर दिया था और पाँचों तपों को करने लगा था। पत्तों को और जल को ही आहार के स्थान में ग्रहण करता था ॥३॥ उसने वहाँ पर सौ सौ वर्ष तक इस प्रकार की तपस्या की थी। इस रीति से देह के कर्शित हो जाने पर वह उसके तप की एक महान् राशि सञ्चित हो गई थी ॥४॥ जब तारकासुर की तपस्या अत्यधिक मात्रा में हो गई तो ब्रह्माजी ने वहाँ उसके पास आकर कहा—हे सुव्रत ! तुम वरदान माँग लो। ब्रह्माजी के इस वचन पर उसने यह वरदान माँगा था कि प्राणियों से मेरी मृत्यु न होवे ॥५॥ इस वरदान की याचना करने पर ब्रह्माजी ने कहा था कि जो भी कोई देहधारी होते हैं उनका मरण तो निश्चित ही है। इसलिये इस अटल नियम को सोचकर ऐसा ही वरदान प्राप्त करो जिनसे तुमको अपनी मृत्यु की शंका हो उनसे तुम्हारी मृत्यु न होवे ॥६॥ इसके अनन्तर अच्छी तरह विचार करके उस दैत्येन्द्र ने सात दिन के शिशु से मृत्यु का वरण माँगा था। वह महान् असुर घमण्ड के कारण उस समय मोहित होगया था ॥७॥

जगामोमित्युदाहृत्य ब्रह्मा दैत्यो निजं गृहम्।
अथाह मन्त्रिणस्तूर्णं बलं मे सम्प्रयुज्यताम् ॥८
यदि वो मत्प्रियं कार्यं निग्राह्याः सुरसत्तमाः।
निगृहीतेषु मेप्रीतिर्जायतेचातुलाऽसुरा ॥६
तारकस्य वचः श्रुत्वा ग्रसनो नाम दानवः।
सेनानीर्दैत्यराजस्य सज्जं चक्रे बलं च तत् ॥१०

प्रतस्थेऽमरयुद्धाय बहुपत्तिपदाकिकम् ।
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्देवदूताऽसुरालये ॥११
दृष्ट्वा तद्दानवबल जगामेन्द्रस्यशंसितुम् ।
स गत्वा तु सभा दिव्या महेन्द्रस्यमहात्मनः ॥१२
शशममध्ये देवाना तत्कार्यंसमुपस्थितम् ।
तच्छ्रुत्वा देवराजस्तु निमीलितविलोचनः ॥१३
बृहस्पतिमुवाचेद वाक्य काले महाभुजः ।
सम्प्राप्नोति विमर्दोऽय देवाना दानवैः सह ॥१४

'ग्रोम्' ग्रर्थात् ऐसा ही होगा—यह कहकर ब्रह्माजी ग्रोर दैत्येन्द्र दोनो ही ग्रपने-ग्रपने निवास स्थान पर चले गये थे। इसके अनन्तर ग्रपने गृह पर पहुँचकर उसने ग्रपने मन्त्रियो म कहा था कि बहुत शीघ्र सेना को सम्प्रयुक्त करो ॥८॥ यदि ग्राप लोग सब मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो सबको यही करना चाहिये कि समस्त सुरगणो को निगृहीत कर लेना है। इन सब देवगणो के निगृहीत हो जाने पर मुझे अतुलनीय प्रसन्नता होगी ॥९॥ तारक के इस वचन को सुनकर दैत्यराज की सेना का नायक सेनानी जो ग्रसन नामधारी दानव था उसने ग्रपनी सेना को सुसज्जित कर दिया था ॥१०॥ फिर वह देवों के साथ युद्ध करने के लिये बहुत पदाति ग्रोर पताकाग्रो वाली सेना रवाना हो गई थी। इसी बीच में देवो के दूत वायु ने ग्रसुरो के घर मे यह सब सग्राम की सुसज्जा को देखा था ग्रोर उस दानवो के दल के विषय मे वह इन्द्र को कहने के लिये गया था। वह महात्मा महेन्द्र की दिव्य सभा मे पहुँच गया ग्रोर उसने समस्त देवों के मध्य में उस समुपस्थित कार्य को कह सुनाया था। यह सब सुनकर देवराज इन्द्र ने ग्रपने नेत्र मूँद लिये थे ग्रोर महान् भुजाग्रो वाले उसने उस समय में सुरगुरु बृहस्पति से यह वचन कहे थे। इन्द्र ने कहा—ग्रब दानवों के साथ देवो का यह विमर्द ग्रर्थात् क्रमश सम्प्राप्त होगया है। ११-१४॥

कार्यंकिमत्र तद्ब्रूहि नीत्युपायोपबृंहितम् ।
यतच्छ्रुत्वा तु वचन महेन्द्रस्य गिरापतिः ॥१५
इत्युवाच महाभागो बृहस्पतिरुदारधीः ।
सामपूर्वा श्रुता नीतिश्चतुरङ्गा पताकिनी ॥१६

जिगीषतां सुरश्रेष्ठ स्थितिरेषा सनातनी ।
सामभेदस्तथादान दण्डश्चाङ्गचतुष्टयम् ॥१७
न सान्त्वगोचरेलुब्धा नभेद्यास्त्वेकधर्मिणः ।
न दानमात्र संसिद्ध्यैप्रसह्यँचापहारिणाम् ॥१८
एकोऽप्युपायो दण्डोऽत्र भवतां यदि रोचते ।
एवमुक्तः सहस्राक्ष एवमेतदुवाचह ॥१६
कर्त्तव्यतां च सञ्चिन्त्य प्रोवाचामरससदि ।
अवधाने न मे वाक्यं शृणुध्व नाकवासिनः ॥२०
भवन्तो यज्ञभोक्तारो दिव्यात्मानो हि सान्वयाः ।
स्वे महिम्नि स्थिता नित्यं जगतः पालने रताः ॥२१

इस विषय मे अब क्या करना चाहिए वह नीति के उपाय से यूंहित कोई उपाय आप बतलाइये । इन्द्र के इस वचन को श्रवण कर वाणी के स्वामी महाभाग और उदार बुद्धि वाले बृहस्पति ने यह कहा—॥१५॥ सुरगुरु बोले—चतुरङ्गिणी सेना है और सबसे पूर्व साम का साधन अपनाना चाहिए—यह नीति बतलाई गई है । हाथी—घोड़े—रथ और पैदल चारों प्रकार के साधन जिस सेना मे होते हैं उसे ही चतुरङ्गिणी कहा जाता है ॥१६॥ हे सुरश्रेष्ठ जीतने की इच्छा वालों की यह सनातनी अर्थात् सदा से चली आने वाली स्थिति होती है । साम—भेद—दान और दण्ड—ये चार नीति के अङ्ग होते हैं । समझा-बुझाकर शान्ति से काम निकाल लेना साम है । आपस मे फूट पैदा करके सिद्धि करना भेद होना है । कुछ दे दिवाकर कार्य सम्हालना दान है और जब तीनों उपाय विफल हो तो अन्त मे दण्ड नीति अपनानी चाहिए ॥ १७ ॥ ये लुब्ध हैं अतः साम से कोई कार्य नही बनेगा । ये सभी एक ही धर्म वाले हैं अतः भेदन के योग्य भी नही हैं । बलात् अपहरण करने वाले इनके विषय दान भी सिद्धि करने के लिये पर्याप्त उपाय नही बनता है । यहाँ तो केवल इन चारो में से एक दण्ड ही उपाय है यदि आपको रुचिकर प्रतीत होता हो । इस तरह से कहे जाने पर इन्द्र ने इस प्रकार से यह कहा और कर्त्तव्यता का संचिन्तन करके देवों की सभा मे बोला । इन्द्र ने कहा—आप समस्त स्वर्ग में निवास करने

वाले देवगण बहुत ही ध्यान पूर्वक मेरे वचनों को सुने ॥ १८।१६।२० ॥ आप सब लोग यज्ञों के भोक्ता हैं और यश के सहित दिव्यात्मा हैं। अपनी महिमा में नित्य ही स्थित हैं और जगत् के पालन में सर्वदा रति रखने वाले हैं ॥२१॥

क्रियतासमरोद्योग. सैन्यं सयोज्यतामम ।
अह्नियन्ताच शस्त्राणि पूज्यन्ताशस्त्रदेवता: ॥२२
वाहनानि विमानानि योजयध्वं ममेश्वरा. ।
यम सेनापति कृत्वा शीघ्रमेव दिवौकसः ॥२३
सहस्रदृग्वग्दितपादपल्लवस्त्रिविष्टपेऽत्यंभत पाकशासनः ।
तुरङ्गमातङ्गकुलौघसङ्कुला सीतातपत्रध्वजशालिनी च ।
बभूव सा दुर्जयपत्तिसन्तता विभाति नानायुधयोधदुस्तरा ॥२४
ततोऽश्विनौ च मरुतः ससाध्याः सपुरन्दराः ।
यक्ष राक्षस गन्धर्वा दिव्यनानास्त्रपाणयः ॥२५
जघ्नुर्दैत्येश्वर सर्वे सम्भूय तु महाबलाः ।
न चैवास्त्राण्यमज्जन्त गात्रे वज्राचलोपमे ॥२६
अथोरथादवप्लुत्य तारकोदानवाधिपः ।
जघान कोटिशो देवान्करपार्ष्णिभिरेवच ॥२७
हतशेषाणि सैन्यानि देवानाविप्रदुद्रुवुः ।
दिशो भूतानि सन्त्यज्य रणोपकरणानिच ।
दृष्ट्वा तान्विद्रुतान्देवास्तारको वाक्यमब्रवीत् ॥२८

देवराज इन्द्र ने देवगण से कहा था कि अब तो संग्राम करने का उद्योग आप सभी लोग कर लेवें और मेरी जो सेना है उसे संयोजित कीजिए। समस्त शस्त्रों का आहूत करें तथा उन शस्त्रों के देवताओं की अर्चा करिये ॥२२॥ मेरे ईश्वर देवगणो ! सब वाहन और विमानों को योजित करो। यमराज को अपनी सेना का अधिपति बनाओ और यह सब कार्य सम्पन्न करने में शीघ्रता करो ॥२३॥ उस समय में सहस्र नेत्रों वाला इन्द्रदेव जिसके चरण पल्लव वन्दनीय हैं, उस त्रिविष्टप (स्वर्ग) में अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुआ था। उसकी सेना भी अश्व—हाथी आदि के समूहों से संकुल थी और सीतात पत्र और ध्वजों की

शोभा वाली थी। दुर्जय पैदल सैनिकों से विस्तृत और अनेक प्रकार के आयुधों वाले योधाओं से अत्यन्त दुस्तर वह सेना शोभित हो रही थी ॥ २४ ॥ इसके पश्चात् अश्विनीकुमार—मरुत—साध्यगण और पुरन्दर के सहित यक्ष-राक्षस-गन्धर्व जो कि अनेक प्रकार के अस्त्र अपने हाथों में ग्रहण किये हुए थे, सभी महान् बल वालों ने मिलकर दैत्येश्वर पर प्रहार किया था किन्तु उसके वज्र के पर्वत की भाँति शरीर में अस्त्रों का कुछ भी प्रभाव नहीं होता था ॥२५।२६॥ इसके अनन्तर दानव दल के स्वामी तारकासुर ने स्वयं रथ से नीचे उतर कर पाष्णियों से ही करोड़ों देवों का हननकर दिया था ॥२७॥ मरने से भी कुछ भी थोड़े-बहुत देवों के सैनिक शेष बच गये थे वे दिशाओं में भग गये थे और भूतों को तथा रक्षा करने के सम्पूर्ण उपकरणों को भी वहाँ पर संग्राम स्थल में ही छोड़कर चले गये थे। उस समर स्थल को त्यागकर भागने वाले देवों से तारकासुर ने यह वाक्य कहा था ॥२८॥

मावधिष्टसुरान्दैत्या बध्वाङ्गाय च मन्दिरे।
शीघ्रमानीयदर्शयन्ताम्बद्धा पश्यत्वयं सुरान् ॥२९
लोकपालास्ततो दैत्यो बद्ध्वा चेन्द्रमुखाग्रणे।
सरुन्द्रान्सुदृढैः पाशैः पशुपाल. पशूनिव ॥३०
[illegible] भूयो रथमास्थाय जगाम स्वकमालयम्।
सिद्धगन्धर्वसङ्घुष्टं विपुलाचलमस्तकम्।
स्तूयमानो दितिसुतैरप्सरोभिः सुसेवितः ॥३१

तारक बोला—हे दैत्यो ! अब इन सुरों को मत मारो और शीघ्र ही मेरे मन्दिर में लाकर मुझ बद्ध व बद्ध वाले को इन्द्र दिखलाओ। मैं सुरों को देखूँ ॥२९॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—इन्द्र जिनमें प्रधान था ऐसे रुद्रों के सहित समस्त लोकपालों को बँधवाकर जैसे कोई पशुओं का पालक पशुओं को सुदृढ़ पाशों से बाँध लेता है उसी भाँति दैत्य ने उन सबको बँधवा दिया था। वह फिर अपने रथ में बैठकर अपने निवास स्थान को चला गया था ॥३०॥ वहाँ पर वह सिद्धगण और गन्धर्वों के समुदाय के द्वारा सघुष्ट होता हुआ विशाल पर्वत के समान मस्तक वाला दैत्यराज दिति के पुत्र देवों के द्वारा और अप्सराओं के द्वारा भली भाँति सुसेवित होकर समासीन हो रहा था ॥३१॥

।। सर्वदेव कृत ब्रह्मस्तोत्र ।।

प्रादुरासीत्प्रतीहारः शुभ्रचीनांशुकाम्बरः ।
सजानुभ्यां मही गत्वापिहितास्यश्च पाणिना ।।१
सवाचानाविलं वाक्यमल्पाक्षरपरिष्कृतम् ।
दैत्येन्द्रमर्कवृन्दाभं बिभ्रतं भास्करं वपुः ।।२
कालनेमि. सुरान्बद्ध्वा प्रादाय द्वारितिष्ठति ।
स विज्ञापयति स्थेय क्वबन्दिनिचयैः प्रभो ।।३
तन्निशम्याब्रवीद्दैत्यः प्रतीहारस्य भाषितम् ।
यथेष्टं स्थीयतामेभिर्गृह मे भुवनत्रयम् ।।४
केवलं वासव त्वेक मुण्डयित्वा विमुच्यताम् ।
सितवस्त्रपरिच्छन्नशुनः पादेनचिह्नितम् ।।५
एवं कृते ततो देवा दूयमानेन चेतसा ।
जग्मुर्जगद्गुरुं द्रष्टुं शरणं कमलोद्भवम् ।।६
विनिर्विण्णास्तमासाद्य शिरोभिर्धरणीगताः ।
तुष्टुवुः सुष्ठु वर्णाढ्यं वचोभिःकमलमासना ।।७

पुलस्त्य महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर वहाँ पर शुभ्र और चीनांशुक वस्त्रों के धारण करने वाला प्रतीहार उपस्थित हुआ था। वह अपने हाथ में मुख को ढककर जानुओं के द्वारा भूमि पर चलकर अनाविल वाक्य जिसमें बहुत ही कम अक्षर परिष्कृत हो रहे थे सूर्य के समुदाय की आभा वाले और भास्कर वपु को धारण करने वाले दैत्यराज से कहने लगा कि कालनेमि सुरों को बाँधकर ले आया है और द्वार पर खड़ा हुआ है। उसने प्रार्थना की थी कि हे प्रभो! उसे अब बन्दी बनाये हुए देवों के समूह को लेकर किस स्थान पर रहना चाहिए ।।१।२।३।। प्रतीहार के इस कथन को श्रवण कर उस दैत्यराज ने आज्ञा दे दी थी कि जहाँ भी इच्छा हो रहे क्योंकि अब तो ये तीनों ही भुवन मेरा ही घर है ।।४।। केवल एक इन्द्र का मुण्डन कराकर उसे छोड़ दो उसको श्वेत वस्त्रों से परिच्छिन्न कर दो और श्वान के पाद से उसको एक चिह्न लगाकर छोड़ दो ।। ५ ।। इस प्रकार से किये जाने पर फिर देवगण बहुत ही

दु:खित चित्त से युक्त होते हुए कमल से उत्पन्न होने वाले जगत् के गुरु ब्रह्माजी को शरण समझकर उनसे मिलने को गये थे ॥६॥ परमन्न हो वैराग्य से युक्त होने वाले उन देवताओं ने ब्रह्माजी के पास पहुँचकर अपना-अपना मस्तक भूमि पर रख दिया था और उन कमलासन ब्रह्माजी को सुन्दर वर्णों से समन्वित वचनों के द्वारा वे वहाँ पर स्तुति करने लगे थे ॥७॥

विरेमुरमराः स्तुत्वा ब्रह्माणमितिकारणम् ।
तस्थुर्मनोभिरिष्टार्थं सम्प्राप्ति प्रार्थनास्ततः ॥८
एवं स्तुतो विरिञ्चिस्तु प्रसाद परम गतः ।
अमरान्वरदोऽप्याह वामहस्तेन निर्दिशन् ॥९
पुरुहूतमुखाः सबला निमिषा विजिताः प्रसभं किल दैत्यशतैः ।
क्रतवो विहिता भवता स्थितये जगता च महाद्भुतचित्रगुणा ॥१०
अपि यज्ञकृतः श्रुतकामफला विहिता ऋषयस्तत एव पुरः ।
अपि नाकमभूत्किल यज्ञभुजां भवतां विनियोगवशात्सततम् ॥११
अपहृत्य विमानगणं सकृतो दनुजेन महाकरभूमिसमः ।
कृतवानसि सर्वगुणातिशय यमनोपमहीधरराजतया ॥१२
अवध्यस्तारको दैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः ।
यस्य वध्यस्सनाद्यापि जातस्त्रिभुवने पुमान् ॥१३
मया स वरदानेन छन्दयित्वा निवारितः ।
तपस साम्प्रत राजा त्रैलोक्यदहनात्मकः ॥१४
स तु वध्यं वध दैत्यस्त्रिजगुन सप्तरात्रमरात् ।
सनु सप्तदिनो बालः शङ्कराद्योभविष्यति ॥१५

पुनरपि मुनि ने कहा—ब्रह्माजी की स्तुति करके देवगण विरत होगये थे और परम मन में प्रसन्न अभीष्ट अर्थ की प्रार्थना करते हुए वहाँ पर स्थित हो गये थे ॥८॥ इस प्रकार से स्तवन किये जाने पर ब्रह्माजी परम प्रसन्न हुए थे और फिर बाँये हाथ से निर्देश करते हुए ब्रह्माजी उन देवगणों से बोले ॥९॥ आप लोग सब उदास क्यों हैं ? ऐसा ब्रह्माजी के द्वारा पूछे जाने पर समस्त देवों से प्रेरित होकर वायु ने कहा—सैकड़ों दैत्यों ने बलात् इन्द्र जिसमें प्रमुख

हैं ऐसे सबल समस्त देवों को विजित कर दिया है। आपने जगतो के हित-सम्पादन के लिये और स्थिति के लिये महान् अद्भुत एवम् अति विचित्र गुणों वाले यज्ञों को बनाया है। इनके भी पूर्व यज्ञों को करने वाले तथा श्रुत कामनाओं के फलों से युक्त ऋषियों की रचना की थी। आपके विनियोग के वश से यज्ञों के भोग करने वालो का स्वर्ग निरन्तर रहने का स्थान रहता था। उस स्वर्ग को दानव ने महान् कर वाली भूमि के समान कर दिया है और सब विमानों का उसने अपहरण कर लिया है। जिस स्वर्ग को आपने समस्त भूमि के राज्यों से भी अधिक समस्त गुणों के अतिशय होने वाला बनाया था ॥१०॥ ॥११।१२॥ देवगण का यह भाषण श्रवण करके ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा—वह तारक असुर तो आप समस्त देवों तथा असुरों से भी वध करने के योग्य नहीं है। जिसके द्वारा उसका वध किया जा सकता है वह पुरुष तो अभी तक इस त्रिभुवन में समुत्पन्न ही नहीं हुआ है ॥ १३ ॥ मैंने ही उसे ऐसा वरदान देकर छन्दित करके निवारित कर दिया है। तपस्या के प्रभाव से इस समय में वह राजा इस त्रिलोकी को दहन करने के स्वरूप वाला है ॥१४॥ उस दैत्य ने मुझसे ऐसा ही वरदान प्राप्त किया था कि सात दिन का एक कोई शिशु सुत ही उसका वध करने वाला होवे। वह सात दिन का बालक भगवान् शंकर से ही होगा ॥१५॥

तारकस्य निहन्ता स भास्कराभो भविष्यति ।
साम्प्रतं चाप्य पत्नीकः शङ्करो भगवान्प्रभुः ॥१६

हिमाचलस्य दुहितामाच देवी भविष्यति ।
तस्याः सकाशाद्य. सनुररण्या. पावकोयया ॥१७

जनिष्यति स त प्राप्य तारको न भविष्यति ।
मयाऽभ्युपायः कथितोययँप हि भविष्यति ॥१८

शेषं चाप्यस्य विभवं विभजध्वमनन्तरम् ।
स्तोककाल प्रतीदाध्वं निर्विशङ्केन चेतसा ॥१९

इत्युक्तास्त्रिदशास्तेन साक्षात्कमलयोनिना ।
जग्मुस्ते प्रणिपत्येश यथायोगं दिवौकसः ॥२०

ततो यातेषु देवेषु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
निशां सस्मार भगवांस्तां देवीं पूर्वसम्भवाम् ॥२१
ततो भगवती रात्रिरुपतस्थे पितामहम् ।
तां विविक्ते समालोक्य ब्रह्मोवाच विभावरीम् ॥२२

इस महान् बली तारक दैत्य का निहनन करने वाला वह बालक भास्कर के समान आभा से युक्त होगा। भगवान् प्रभु शङ्कर इस समय में साध्य-दर्शीक हैं ॥१६॥ हिमाचल की पुत्री जिस समय में देवी का स्वरूप प्राप्त करेगी उसी के सकाश में जो पुत्र समुत्पन्न होगा वह ऐसे ही होगा जिस तरह से अरणी के द्वारा अग्नि उत्पन्न हुआ करती है ॥१७॥ वह जब लोक में समुत्पन्न हो जायगा तो फिर यह दानवेन्द्र तारक नहीं बच सकेगा। मैंने आपको यह उपाय बतला दिया है जो कि इसी रीति से होगा ॥१८॥ प्राप्त होने के योग्य के शेष विषय का बाद में विमर्श कर लेना। आप लोग सब निर्विशङ्कित चित्त से थोड़े समय तक प्रतीक्षा करें ॥ १९ ॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—उन साक्षात् कमलयोनि के द्वारा इस प्रकार से उन समस्त देवगणों से कहा गया था तब वे फिर सब देवता भगवान् ब्रह्माजी को प्रणाम करके यथायोग्य स्थान को चले गये थे ॥ २० ॥ इसके उपरान्त उन देवगणों के चले जाने पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने निशा का स्मरण किया था जो कि देवी पूर्व से ही समुत्पन्न हुई थी ॥ २१ ॥ इसके बाद में वह भगवती रात्रि पितामह के समक्ष में समुपस्थित हुई थी। उस विभावरी को एकान्त स्थान में देखकर ब्रह्माजी ने उससे कहा—॥२२॥

विभावरि महत्कार्यं देवानां समुपस्थितम् ।
तत्कर्तव्यं त्वया देवि शृणु कार्यविनिश्चयम् ॥२३
तारको नाम दैत्येन्द्रः सुरासुरविनिर्जितः ।
तस्याभावाय भगवाञ्जनयिष्यति शङ्करः ॥२४
सुतं स भविता तस्य तारकस्यान्तकः किल ।
शङ्करस्याभवत्पत्नी सती दक्षसुता तु या ॥२५
सा पितुः कुपिता देवी कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ।
भविता हिमशैलस्य दुहिता लोकभाविनी ॥२६

विरहेण हरस्तस्या मत्वा शून्यं जगत्त्रयम् ।
स तस्यहिमशैलस्य कन्दरे सिद्धसेविते ॥२७
प्रतीक्षमाणस्तज्जन्म किञ्चित्काल निवत्स्यति ।
तयोः सुततपसाभंवितायोमहान्सुतः ॥२८
भविष्यति स दैत्यस्य तारकस्य विनाशकः ।
जातमात्रा च सा देवी स्वल्पसंज्ञेव भामिनी ॥२६

ब्रह्माजी ने कहा—हे विभावरि ! इस समय में देवताओं का एक बहुत बड़ा कार्य उपस्थित होगया है । हे देवि ! वह कार्य अब तुमको करना है । तुम मुझसे उस कार्य का जो भी निश्चय है उसका श्रवण कर लो ॥२३॥ एक तारक नाम वाला दैत्यों का राजा है । वह सुरों का महान् शत्रु है और अनिर्जित हो गया है । उस दैत्येन्द्र के नाश करने के लिये भगवान् ईश्वर एक पुत्र समुत्पन्न करेंगे ॥ २४ ॥ वह उनका पुत्र होगा जो इस तारकासुर का अन्त करने वाला निश्चय ही होगा । जो प्रजापति दक्ष की पुत्री है वह सती भगवान् शंकर की पत्नी हुई थी ॥ २५ ॥ वह सती किसी कारण विशेष के होने पर देवी अपने पिता दक्ष से कुपित हो गई थी वही फिर पर्वतों के राजा हिमवान् की होने वाली पुत्री थी जो लोकों को अत्यन्त करुणा से देखने वाली थी ॥ २६ ॥ जब सती ने अपना शरीर त्याग दिया था तो भगवान् शंकर इस त्रैलोक्य को बिल्कुल ही शून्य समझने लगे थे । उस समय में सिद्धों के द्वारा सेवित एक हिमवान् पर्वत की कन्दरा मे वह शिव कुछ समय तक सती के जन्म की प्रतीक्षा करते हुए निवास करेंगे । उन दोनों के भली-भाँति किये हुए तप से जो एक महान् प्रभावशाली सुत समुत्पन्न होगा वही शिव-पार्वती का पुत्र इस दैत्येन्द्र तारक का विनाश करने वाला होगा । वह देवी पार्वती उस पुत्र के समुत्पन्न होते ही स्वल्प सज्ञा वाली भामिनी की भाँति होगी ॥२७।२८।२६।

विरहोत्कण्ठिता गाढं हरसङ्गमलालसा ।
तयो सुततपसोः संयोगः स्याच्छुभावहः ॥३०
ततस्ताभ्यां तु जनितः स्वल्पो वाक्कलहोभवेत् ।
ततस्तु संनयो भूयस्तारकस्य च दृश्यते ॥३१

तयोः संयुक्तोस्तस्मात्सुरतासक्तिकारणे ।
विघ्न त्वया विधातव्य यथा ताभ्यां तथा शृणु ॥३२
गर्भस्थमेव तन्मातुः स्वेन रूपेण सज्ञया ।
ततो विहस्य शर्वस्तां विपण्णो नर्मपूर्वकम् ॥३३
भर्त्सयिष्यति तां देवी ततः सा कुपिता सती ।
प्रयास्यति तपश्चर्तु ततः सा तपसा युता ॥३४
जनयिष्यति त शर्वादमितद्यु तिमण्डलम् ।
सम्भविष्यति हन्ताऽसौ सुरारीणामसशयम् ॥३५

इधर शिव के विरह से पार्वती भी भगवान् शंकर से मिलने के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रही थी । पार्वती के हृदय में हर के साथ सगम करने की बहुत अधिक लालसा थी । भली-भाँति तप करने वाले उन दोनों का सयोग बहुत ही अधिक शुभावह होगा ॥३०॥ इसके अनन्तर उन दोनों का थोड़ा-सा वाक्कलह होगया था । इससे तो फिर तारक दैत्य के विनाश में सशय होगया था ॥ ३१ ॥ सुरत क्रीडा की आसक्ति कारण से जब उन दोनों का सयोग हो तो तुमको विघ्न कर देना चाहिए । उनमें जिस प्रकार से हो, उनका श्रवण करो ॥३२॥ उनको माता के गर्भस्थ को ही अपने रूप से सज्ञा के द्वारा करे । इसके पश्चात् शिव उनको हँसकर नर्म विनामपूर्वक विषादयुक्त हो गये थे ॥३३॥ वह कुपित होती हुई सती फिर उस देवी को भर्त्सना देगी और इसके पश्चात् तप से युक्त होती हुई वह तपश्चर्या करने को चली जायगी ॥ ३४ ॥ अपरिमित द्युति के मण्डल वाले उसको शिव से वह जन्म देगी और वह सुरो के शत्रुओं का निःसन्देह हनन करने वाला समुत्पन्न होगा ॥३५॥

त्वयापि दानवा देवि हन्तव्या लोकदुर्जयाः ।
यावत्सुरेश्वरी देहसङ क्रान्तगुणमत्त्वशा ॥३६
तत्सङ्गमेन तावत्त्व दैत्यान्हन्तु न शक्यसे ।
एव कृते तपस्तप्त्वा त्वयासर्वं करिष्यति ॥३७
समाप्तनियमा देवि यदा चोमा भविष्यति ।
तदा स्वमेव मारूप शैलजा प्रतिपत्स्यते ॥३८

तदा त्वयापि सहिता भवानी सा भविष्यति ।
रूपांशेनतुसंयुक्तात्वमायास्त्व भविष्यसि ॥३६
एकाऽनंशेति लोकस्त्वा वरदे पूजयिष्यति ।
भेदैर्बहुविधाकारैः सर्वगाकामसाधिनाम् ॥४०
ओंकारवक्त्रा गायत्री त्वमिति ब्रह्मवादिभिः ।
आक्रान्तैरूर्जिताकारा राजभिश्चमहाभुजैः ॥४१
त्वभूरिति विशा माता शूद्रैः शैवेति पूजिता ।
क्षान्तिर्मुनीनामक्षोभ्यादयानियमिनामपि ॥४२
त्व महोपायसन्देहो नीतिर्नयविसर्पिणाम् ।
परिचितिस्त्वमर्थानात्वमीहाप्राणिहृच्छया ॥४३

हे देवि ! लोक में दुर्जय दानव आपके द्वारा भी हनन करने के योग्य हैं । आप तो सम्पूर्ण सुरो की ईश्वरी हैं । सभी देवो के देहो से गुणों के सचय को संक्रान्त करने वाली हैं ॥३६॥ केवल उसके सङ्गम मात्र से आप दैत्यों का हनन नहीं कर सकती हैं । ऐसा करने पर तपश्चर्या करके आप सभी कुछ कर-देंगी ॥३७॥ हे देवि ! सब अपने नियमों को समाप्त कर देने वाली जिस समय में आप होगी और उमा हो जायगी उसी समय मे वह शैलजा अपने ही रूप को प्राप्त हो जायगी ॥ ३८ ॥ उस समय मे आपके भी साथ वह भवानी हो जायगी आप उमा के रूपांश से सयुक्त होकर रहेगी ॥३६॥ हे वरदे ! लोक तुमको एकानंशा है—ऐसा कहकर पूजित करेगा । अनेक प्रकार के आकार वाले भेदो मे आप सवत्र गमन करने वाली और समस्त कामो का साधन करने वाली होगी ॥ ४० ॥ जो ब्रह्मवादी पुरुष हैं उनके द्वारा आप ओंकार के मुख वाली गायत्री हैं । महान् भुजाओं वाले आक्रान्त राजाओं के द्वारा आप ऊर्जित आकार वाली हैं ॥ ४१ ॥ वैश्यो को आप भू—माता हैं और शूद्रो के द्वारा शैवा इस नाम से आप पूजित होगी । मुनियो को आप क्षान्ति स्वरूप वाली हैं और नियमो को धारण करने वालो को अक्षोभ्य दया के स्वरूप से युक्त हैं ॥४२॥ आप महान् उपाय का सन्देह हैं और नयविसर्पियों को आप नीति हैं । अर्थों की आप परिचिति है और प्राणियो के हृदय मे शयन करने वाली ईहा हैं ॥४३॥

त्वं मुक्तिस्सर्वभूतानां त्वं गतिः सर्वदेहिनाम् ।
रतिस्त्व रतचित्तानां प्रीतिस्त्व हृदि देहिनाम् ॥४४
त्वं कीर्ति. सत्यभूताना त्व शान्तिर्दुष्कर्मणाम् ।
त्व भ्रान्ति सर्वभूताना त्व गति. क्रतुयाजिनाम् ॥४५
जलधीना महावेला त्व च लीला विलासिनी ।
प्रियकण्ठग्रहानन्ददायिनी त्व विभावरी ॥४६
इत्येनेकविधैर्देवी रूपैर्लोकेत्वमर्चिता ।
ये त्वा स्तोष्यन्ति वरदे पूजयिष्यन्ति चापि ये ।
ते सर्वकामानाप्स्यन्ति नियता नात्र सशय. ॥४७
इत्युक्ता तु निशादेवी तथेत्युक्त्वा कृताञ्जलि· ।
जगाम त्वरिता तूर्णं गृह हिमगिरेर्महत् ॥४८
तत्रासीना महाहर्म्यरत्नभित्तिसमाश्रयाम् ।
ददर्श मेनामापाण्डुच्छविवक्त्रसरोरुहाम् ॥४९

हे देवि ! आप समस्त प्राणियों की मुक्ति हैं और सब देहधारियो की आप गति हैं । जिनका चित्त रत होता है उनकी रति आप ही का स्वरूप है । देहधारियो के हृदय में जो प्रीति होती है वह भी आपका स्वरूप ही है ॥४४॥ सत्य का समाश्रय ग्रहण करने वाले प्राणियों की आप कीर्ति हैं और दुष्कर्म करने वालो की शान्ति हैं । समस्त भूतो की आप भ्रान्ति हैं तथा जो क्रतुओं के द्वारा यजन वाले पुरुष हैं उनकी आप गति हैं ॥ ४५ ॥ जलधियो की आप महावेला हैं । आप विलास करने वाली लीला के स्वरूप वाली हैं । अपने प्रियतम के कण्ठ को ग्रहण करने से अति आनन्द को प्रदान करने वाली आप विभावरी के स्वरूप वाली है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार से अनेक भाँति के रूपो मे देवी आप लोक मे समचित होती हैं । हे वरदान प्रदान करने वाली ! जो मनुष्य आपका स्तवन करेंगे और जो पुरुष आपकी अर्चना करेंगे वे सम्पूर्ण अपनी कामनाओ को प्राप्त कर लेंगे—यह सर्वथा नियत है इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥४७॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—इस प्रकार से कही गयी निशा देवी ने 'तथास्तु'—ऐसा ही होगा—यह कहकर वह शीघ्र ही हिमवान् का जो

गृह था वहाँ पर स्वगयुक्त होती हुई हाथ जोड़कर चली गई थी ॥४८॥ वहाँ पर उसने महान् हर्म्य (भवन) में बैठी हुई और रत्नों द्वारा निर्मित भीत का आश्रय ग्रहण करने वाली तथा थोड़ी पाण्डु वर्ण की छवि से संयुत मुख कमल वाली हिमवान् शैलराज की पत्नी मेना को देखा था ॥४९॥

किंचिदाकुलता प्राप्ते मेनानेत्राम्बुजद्वये ।
आविवेश मुखे रात्रिः सुखमद्भुतमङ्गमा ॥५०
उन्मादाय जगन्मातु. क्रमेण जठरान्तरे ।
आविवेशातुलं जन्म मन्यमाना कदा तु यं ॥५१
अरञ्जयद्गृह देव्या गुहारण्ये विभावरी ।
ततो जगत्यानिर्वाणहेतुर्हिमगिरिप्रिया ॥५२
ब्राह्मे मुहूर्ते सुभगे प्रासूयत गुहारणिम् ।
तस्या तु जायमानाया जन्तवः स्थाणुजङ्गमाः ॥५३
अभवन्सुखिनः सर्वे सर्वलोकनिवासिनः ।
नारकाणामपि तदा सुखं स्वर्गसमं महत् ॥५४
तस्मिन्महोत्सवे प्राप्ते दिव्याः प्रसूतपाणयः ।
सागरास्सरितश्चैव समाजग्मुश्च सर्वशः ॥५५
हिमशैलोऽभवल्लोके तदा सर्वैश्चराचरैः ।
ससेव्यश्चाधिगम्यश्च साश्रयश्चाचलोत्तमः ॥५६
अनुभूयोत्सवं देवा जग्मु स्वान्निलयांस्तदा ।
देवनागेन्द्रगन्धर्व शैल लीलावती गणं ॥५७
हिमशैलसुतादेवी त्वहम्पूर्विकयातत. ।
क्रमेणवृद्धिमानीता विद्याञ्चानलसंबुधैः ॥५८

मेना के दोनों नेत्र कमलों को कुछ आकुलता प्राप्त होने पर अद्भुत सङ्गम वाली रात्रि ने सुखपूर्वक उसके मुख में प्रवेश प्राप्त कर लिया था ॥५०॥ क्रम से जठर के अन्दर जगन्माता के उन्माद के लिये किस समय में यह अतुल जन्म होगा—ऐसा मानती हुई प्रवेश किया था ॥५१॥ देवी के गुहारण्य में विभावरी ने गृह रञ्जित कर दिया था। इसके अनन्तर जगत् में आनिर्वाण हेतु

हिमवान् गिरि की प्रिया ने परम सुभग ब्राह्म मुहूर्त में गुहारणि का प्रसव किया था। उसके जन्म ग्रहण कर लेने पर चर-अचर समस्त जन्तुगण और सब लोकों के निवास करने वाले परम सुखी हुए थे। उस समय में नरकों में भी, जहाँ पर सर्वदा अति तीव्र यातनाएँ रहा करती है, स्वर्ग के ही तुल्य महान् सुख समुत्पन्न होगया था ॥५२।५३।५४॥ उस समय में देवी के जन्म पर होने वाले महोत्सव में सभी ओर से परम दिव्य अपने हाथों को फैलाये हुए सागर और सरिताएँ वहाँ पर आये थे ॥ ५५ ॥ उस समय में हिमवान् शैललोक में समस्त चरों और अचरों के द्वारा भली भाँति सवन करने के योग्य—अधि॰ गमन करने की योग्यता वाला—आश्रय से सम्पन्न और सब पर्वतों में अत्युत्तम होगया था ॥५६॥ देवगण ने भी वहाँ पर उपस्थित होकर उस महोत्सव के आनन्द का अनुभव किया था और इसके पश्चात् वे अपने अपने निलय स्थानों को लौटकर चले गये थे। देव—गन्धर्व—नागेन्द्र और शैल लीलावती के गणों के द्वारा वह हिमवान् पर्वतराज की पुत्री देवी का अहम्पूर्विका के साथ क्रम से ध्यान किया गया था और आलस्य रहित होकर बुधजनों ने भी उस विद्या को अपनी बुद्धि में ग्रहण किया था ॥५७।५८॥

क्रमेण रूपसौभाग्यप्रबोधैर्भुवनत्रये ।
सम्पूर्णलक्षणा जाता हिमालयसुता तथा ॥५९
एतस्मिन्नन्तरे शक्रो नारद देवसमतम् ।
देवर्षिमथ सस्मार कार्यसाधनतत्पर ॥६०
स तु शक्रस्य विज्ञाय काङ्क्षित भगवांस्तदा ।
आजगाम मुदा युक्तो महेन्द्रस्य निवेशनम् ॥६१
त तु दृष्ट्वा सहस्राक्ष समुत्थाय महासनात् ।
यथार्हेण तु पाद्येन पूजयामास वासवः ॥६२
शक्रप्रणिहिता पूजा प्रतिगृह्य यथाविधि ।
नारद कुशल देवमपृच्छत्पाकशासनम् ॥
पृष्टे च कुशले शक्र प्रोवाच वचन प्रभु ॥६३

क्रम से रूप—लावण्य और सौभाग्य तथा प्रबोध के द्वारा तीनों भुवनों

वह हिमवान् शैलराज की पुत्री सम्पूर्ण सुलक्षणों वाली समुत्पन्न हुई थी ॥५९॥ इसी बीच में देवराज इन्द्र ने देवों के वन्दित देवर्षि भगवान् नारदजी का कार्य साधन में तत्पर होते हुए स्मरण किया था ॥६०॥ उन देवर्षि ने भी उस समय में इन्द्रदेव की इच्छा को समझकर बडे ही आनन्द के साथ महेन्द्र के घर पर समागमन किया था ॥ ६१ ॥ समागत भगवान् श्री नारदजी को देखकर देवराज अपने सिंहासन से उठकर उनके स्वागत करने के लिये खडे हो गये थे और फिर इन्द्रदेव ने यथोचित अर्घ्यपाद्य आदि के द्वारा उनका पूजन किया था ॥ ६२ ॥ देवराज के द्वारा की हुई अर्चना को यथाविधि अङ्गीकार करके नारदजी ने पाकशासन इन्द्रदेव से सर्व प्रथम उनका क्षेम-कुशल पूछा था। जब कुशल प्रश्न समाप्त हो गया तो इन्द्रदेव ने नारदजी से यह वचन कहे थे ॥६३॥

कुशलस्य.ङ्कुरस्तावत्संवृत्तो भुवनत्रये ।
तत्फलोद्भवसम्पत्तो त्वं मया विदितो मुने ॥६४
वेत्स्येव तत्समस्त त्व तथापि परिचोदितः ।
निर्वृ ति परमा याति निवेद्यार्थं सुहृज्जने ॥६५
तद्यथा शैलजा देवी योगं यायात्पिनाकिना ।
शीघ्रं तथोद्यमः सर्वैरस्मत्पक्षैर्विधीयताम् ॥६६
अवगम्यार्थमखिलं तत आमन्त्र्य नारदः ।
शीघ्रं जगाम भगवान्हिमशैलनिकेतनम् ॥६७
तत्र द्वारे स विप्रेन्द्रश्चित्रवेत्रलताकुले ।
वन्दितो हिमशैलेन निर्गतेन पुरो मुनिः ॥६८
स ह प्रविश्य भवन भुवो भूपणता गतम् ।
निवेदिते स्वय हैमे हिमशैलेन विस्तृते ॥६९
महासने मुनिवरो निषसादातुलद्युतिः ।
यथार्हमर्घ्यं पाद्यं च शैलस्तस्मै न्यवेदयत् ॥७०

इन्द्रदेव ने कहा—इस समय में तीन भुवनों में कुशल होने का अंकुर तो समुत्पन्न हो गया है। हे मुने ! उस अंकुर से जो फल होगा उसकी उत्पत्ति

समाप्ति में मैंने आपको ही समझा है ।। ६४ ।। वैसे तो आप सभी कुछ भली-भांति जानते ही है तो भी मैं आपको प्रेरित करने की धृष्टता करता हूँ । ऐसा नियम है कि अपने सुहृतजनों से प्रयोजन का निवेदन कर देने पर निवृ ति की प्राप्ति हो जाया करती है ।। ६५ ।। वह यह है कि हिमवान् की पुत्री देवी भगवान् शिव के साथ योग को प्राप्ति करे ऐसा ही हमारे पक्ष वाले सबको प्रयत्न शीघ्र ही उद्यम करना चाहिए ।। ६६ ।। पुलस्त्य महामुनि ने कहा—देवर्षि नारदजी ने सम्पूर्ण अर्थ को जानकर और इन्द्रदेव के इस आमन्त्रण को स्वीकार करके वह फिर तुरन्त ही हिमवान् शैलराज के घर पर चले गए थे ।।६७।। विश्व वेश्मता से घिरे हुए वहाँ द्वार पर विप्रेन्द्र नारदजी की वन्दना की गई थी और शैलराज हिमवान् स्वयं मुनि का स्वागत करने के लिये निकल कर बाहिर आ गये थे ।।६८।। इसके अनन्तर देवर्षि नारदजी ने इस भूमि के भूषण स्वरूप हिमवान् के घर में प्रवेश किया था । हिमवान् शैलराज के द्वारा निवेदित किये हुए परम विशाल हिम के आसन पर अनुपम कान्ति वाले मुनिवर सस्थित होगए थे । फिर शैलराज ने यथोचित विधान के सहित अर्घ्य-पाद्य मुनिवर को समर्पित किया था ।।६९।७०।।

मुनि. स प्रतिजग्राह तमर्घ्यं विधिवत्तदा ।
गृहीतार्घ्यम्मुनिश्रेष्ठमपृच्छत्स्थलक्षणया गिरा ।।७१
कुशल तपस. शैल शनै फुल्लाननाम्बुज ।
मुनिरप्यद्रिराजानमपृच्छत्कुशलं तदा ।।७२
अहो धर्मोचितस्तेऽस्ति संनिवेशो महागिरे ।
पृथुत्व मनसा तुल्य कन्दराणा तवानघ ।।७३
गुरुत्व ते गुणौघाना स्थावरादतिरिच्यते ।
प्रसन्नता च तोयस्य मुनिम्यश्चाधिका तव ।।७४
न लक्षयाम शैलेन्द्र कुत्रविनयता स्थिता ।
नानातपोभिर्मुनिभिर्ज्वलनार्कसमप्रभै· ।।७५
इत्युक्तवति देवर्षौ नारदे सादर गिरा ।
हिमशैलस्य महिषी मेना मुनिदिदृक्षया ।।७६

अनुयाता दुहित्रा तु स्वल्पालिपरिचारिका ।
लज्जा प्रणयनम्राङ्गी प्रविवेश निकेतनम् ॥७७

उस समय में मुनिवर ने विधिपूर्वक उस निवेदित अर्घ्य को अङ्गीकार किया था। जब मुनिवर अर्घ्य ग्रहण कर लिया तो शैलराज ने अपना मुख कमल विकसित करते हुए अति श्लक्ष्ण वाणी के द्वारा धीरे-धीरे तपश्चर्या का क्षेम कुशल मुनिवर से पूछा था। मुनिवर ने भी इसी भाँति अद्रिराज से कुशल-क्षेम पूछा था ॥ ७१ ॥ श्री नारदजी ने कहा—हे महान् गिरिराज ! आपका यह सन्निवेश धर्म के उचित ही है। हे अनघ ! आपके मनकी विशालता कन्दराओं के ही समान है ॥ ७२ ॥ आपका गौरव जो आपके गुणों के समूह का है वह स्थावर में भी अत्यधिक है। आपके जल की प्रसन्नता मुनियों के प्रसाद से भी ज्यादा है ॥७३।७४॥ हे शैलेन्द्र ! अनेक भाँति के तप करने वाले मुनियों से जो कि जाज्वल्यमान सूर्य के समान प्रभाव वाले हैं अविनयता कहाँ पर स्थित है—यह हम नहीं देख पा रहे हैं ॥ ७५ ॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—आदर के सहित वाणी के द्वारा नारद मुनि ने जब ऐसा कहा तो इस पर हिमवान् पर्वत राज की महिषी मेना ने मुनिवर के दर्शन करने की इच्छा से उस निवेतन में प्रवेश किया था जिसके साथ में उसकी दुहिता भी थी और वह थोड़ी बहुत सहेली एवम् परिचारिकाओं से समन्वित थी तथा लज्जा एवम् प्रणय से विनम्र अङ्गों वाली थी ॥६७-७७॥

यत्रस्थितो मुनिवरः शैलेन सहितो वशी ।
स दृष्ट्वा तेजसो राशिं मुनिं शैलप्रिया तदा ॥७८
ववन्दे गूढवदना पाणिपद्मकृताञ्जलिः ।
तां विलोक्य महाभागां देवर्षिरमितद्युतिः ॥७९
आशीर्भिरमृतोद्गाररूपाभिस्तां व्यवर्द्धयत् ।
ततो विस्मितचित्ता तु हिमवद्गिरिपुत्रिका ॥८०
शरीरलक्षणानां च परिज्ञानाय कौतुकात् ।
स्त्रीस्वभावात्स्वदुहितुश्चिन्तां हृदि समुद्वहन् ॥८१
ज्ञात्वा तदिङ्गितं शैलो महिष्या हृदयेन तु ।
अनुदीर्णाकृतिर्मेने रम्यमेतदुपस्थितम् ॥८२

चोदितः शैलमहिषीसख्या मुनिवरस्ततः ।
स्मिताननो महाभागो वाक्यं प्रोवाचनारदः ॥८३
न जातोऽस्याः पतिर्भद्रे लक्षणैश्च विवर्जितः ।
उत्तानहस्ता सततं चरणैर्व्यभिचारिभिः ॥८४
सुच्छायास्या भविष्येयं किमन्यद्बहुभाष्यते ॥८५
श्रुत्वैतत्सम्भ्रमाविष्टो ध्वस्तधैर्यो हिमाचलः ।
नारदं प्रत्युवाचाथ साश्रुकण्ठो महागिरिः ॥८६

जिस स्थान पर शैलराज के साथ वहाँ मुनिवर नारदजी सन्निविष्ट थे वहाँ पर उन तेज की राशि महामुनि को उस समय में शैलप्रिय मेना ने देखा था और गूढ़ वदन वाली उसने अपने कर कमलों की अञ्जलि बाँधकर उनको प्रणाम किया था। उस महान् भाग वाली मेना को देखकर अमित द्युति वाले देवर्षि ने अमृतोद्गार स्वरूप वाले आशीर्वादों से उनका विशेष वर्धन किया था। तब हिमवान् गिरि की पुत्री का चित्त अत्यन्त ही विस्मययुक्त होगया था ॥७८।७९ ८०॥ उस देवी ने अद्भुत स्वरूप से समन्वित नारद मुनि का दर्शन किया था और ऋषिवर ने भी अपनी स्नेह सयुत मधुर वाणी से उस देवी से कहा था कि हे वत्से ! यहाँ आओ ॥ ८१ ॥ स्त्री स्वभाव वश अपनी पुत्री के शरीर के लक्षणों का कौतुक से परिज्ञान प्राप्त करने के लिये मेना के हृदय में चिन्ता हो रही थी ॥ ८२ ॥ शैलराज ने भी अपनी महिषी के हृदय की बात को इङ्गित से जान लिया था क्योंकि उस समय मेना अनुदीर्ण प्रकृति वाली हो रही थी। यह बहुत ही सुन्दर समय उपस्थित हो गया था ॥८३॥ इसके पश्चात् शैलराज की महिषी की सखी के द्वारा तब मुनिवर को प्रेरित किया गया था। महाभाग नारदमुनि मुख पर मुस्कराहट करते हुए बोले—॥८४॥ नारदजी ने कहा—हे भद्रे ! इस पुत्री का पति तो उत्पन्न ही नहीं हुआ है और लक्षणों से यह विवर्जित है। व्यभिचारी चरणों से यह उत्तान हस्तों वाली है। इसकी यह सुच्छाया होने वाली है। इससे अधिक और क्या कहा जावे ॥८५॥ यह सुनकर हिमाचल सम्भ्रम से समाविष्ट हो गया था और उसका धैर्य छूट गया था। उस समय अश्रुपात करते हुए गद्गद कण्ठ वाले हिमवान् ने नारदजी से कहा था ॥८६॥

तत्रापि श्रेयसी ह्याशा मुने न प्रतिभाति नः ।
शरीरलक्षणाश्चान्ये पृथक्फलनिवेदिनः ॥८७
इत्युक्त्वाविरते शैले महादुःखविचारिणि ।
स्मितपूर्वमुवाचेद नारदो देवपूजितः ॥८८
हर्षस्थाने च महति त्वया दुःख निरुच्यते ।
अपरिच्छिन्नवाक्यार्थो मोहयासि महागिरे ॥८९
इमां शृणु गिर मत्तो रहस्यपरिनिश्रिताम् ।
समाहितो महाशैलमयोक्तस्य विचारणाम् ॥९०
न जातोऽस्याः पतिर्देवश यन्मयोक्तं हिमाचल ।
सनजातोमहादेवो भूतभव्यभवोद्भवः ॥९१
शरण्यः शास्वतः शास्ता शङ्करः परमे वरः ।
ब्रह्मरुद्रेन्द्रमुनयो गर्भजन्मजरार्दिताः ॥९२

शैलराज ने कहा—हे मुने ! इसमे भी हमको कोई अच्छी कल्याण कारिणी आशा नहीं प्रतीत होती है क्योंकि अन्य जो लक्षण हैं वे तो पृथक् फल बताने वाले ही होते हैं ॥ ८७ ॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इतना कहकर शैलराज के विरत हो जाने पर तथा महान् दुःख का विचार करने पर उस समय मे देवो से पूजित नारद मुनि मुस्कराते हुए बोले—॥८८॥ श्री महामुनि नारदजी ने कहा—इस अति महान् हर्ष के स्थान मे आप इतने दुःख पूर्ण होकर यह क्या कह रहे हैं ? हे महागिरे ! मेरे इस वाक्य का अर्थ तो अपरिच्छिन्न है । आप तो इससे इस समय मे मोह को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ८९ ॥ रहस्य से परिनिश्रित मेरी वाणी को मुझसे आप श्रवण करें । हे महाशैल ! मैंने जो कुछ भी कहा है उसका विचार करने मे समाहित होइये ॥९०॥ हे हिमाचल ! मैंने यही तो कहा था कि इसका पति उत्पन्न नहीं है सो इसका अर्थ ठीक ही है । क्योंकि भूत भव्य भव का उद्भव जिससे होता है वह महादेव कभी उत्पन्न नहीं हुए हैं ॥९१॥ परमेश्वर भगवान् शकर तो सबके शरण अर्थात् रक्षक हैं—सदा-सर्वदा रहने वाले हैं—सब पर शासन करने वाले हैं । बाकी अन्य ब्रह्मा-रुद्र—इन्द्र और समस्त मुनिगण गर्भ, जन्म एवम् जरा से अर्दित होने वाले होते हैं ॥ ९२ ॥

तस्य ते परमेशस्य सर्वे क्रीडनका गिरे ।
ब्रह्माण्डतस्तदिच्छातः सम्भूतो भुवनप्रभुः ।।६३
विष्णुर्युगे युगे जातो नानाजातिर्महातनुः ।
मन्यसे मायया जातं विष्णुं चापि युगेयुगे ।।६४
आत्मनो नविनाशोऽस्ति स्थावरान्तेऽपिभूधर ।
संसारे जायमानस्य म्रियमाणस्यदेहिनः ।।६५
नश्यते देह एवात्र नात्मनो नाश उच्यते ।
ब्रह्मादिस्थावरान्तोऽयं संसारो यः प्रकीर्तितः ।।६६
स जन्ममृत्युदुःखार्त्तो ह्यनिशं परिवर्त्तते ।
महादेवोऽचलः स्थाणुर्नजातो जनकोऽजरः ।।६७
भविष्यति पतिः सोऽस्या जगन्नाथोनिरामयः ।
यदुक्तं च मया देवी लक्षणैर्वर्जितातव ।।६८

हे गिरिवर ! उस परमेश के तो वे सब खिलौने ही हैं । उसी की इच्छा से भुवनों का प्रभु ब्रह्मा अण्ड से समुत्पन्न हुआ था ।।६३।। विष्णु तो युग-युग में नाना जाति वाला और महान् तनु वाला उत्पन्न हुआ ही है और युग-युग में माया के द्वारा समुत्पन्न हुए विष्णु को आप भी मानते हैं । हे भूधर ! स्थावरान्त में भी इस आत्मा का तो विनाश होता ही नहीं है । जो इस संसार में जन्म ग्रहण किया करता है और मरता है उस देही का भी आत्मा तो नित्य ही होता है ।।६४-६५।। यहाँ पर देह का ही नाश होता है । आत्मा का नाश तो कभी कहा ही नहीं जाता है जो यह ब्रह्मा से आदि लेकर स्थावर के अन्त पर्यन्त है वह सब संसार कहा गया है ।।६६।। यह आत्मा जन्म-मृत्यु के दुःख से अत्यन्त आर्त होता हुआ निरन्तर परिवर्तन को प्राप्त होता रहता है । महादेव तो अचल स्थाणु हैं । वह कभी उत्पन्न नहीं हुए हैं और न वह जनक हैं तथा वे जरा से रहित हैं ।।६७।। वही महादेव इस पुत्री के पति होंगे जो इस सम्पूर्ण जगत् के नाथ हैं और आमय से रहित हैं अर्थात् सर्वदा स्वस्थ हैं । मैंने जो कहा है वह आपकी देवी लक्षणों से वर्जिता है ।।६८।।

एषा भार्या जगद्भर्तुर्वृषाङ्कस्य महीधर ।
जननी सर्वलोकस्य सम्भूता भूतभाविनी ।।६६

शिरेय पावनार्थेव त्वत्क्षेत्रे पावनद्युतिः ।
तद्यथा शीघ्रमेवैषा योगं यथात्पिनाकिन. ॥१००
तथाविधेय विधिवस्त्वया शैलेन्द्रसत्तम ।
अस्त्यत्र हि महत्कार्यं देवाना हिमभूधर ॥१०१
एव श्रुत्वा तु शैलेन्द्रो नारदात्सर्वमेव हि ।
स्वमात्मान पुनर्जात मेने मेनापतिस्तदा ।
उवाच चापि सहृष्टो नारद तु हिमाचलः ॥१०२
दुस्तरान्नरकाद्घोरादुद्धृतोऽस्मित्वया विभो ।
पातालदहमुद्धृत्य सप्तलोकाधिप कृत. ॥१०३
हिमाचलोऽस्मि विख्यातस्त्वया मुनिवराधुना ।
हिमाचलाच्छतगुणा प्रापितोऽस्मि समुन्नतिम् ॥१०४

हे महीधर ! यह आपकी पुत्री तो इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् वृषाङ्क की भार्या होगी और यह समस्त लोकों की जननी प्राणियों पर पूर्ण कृपा करने वाली समुत्पन्न हुई है ॥९९॥ पावन द्युति वाली यह शिवा आपके क्षेत्र में सबको परम पावन करने के लिये ही आई है। सो अब अत्यन्त शीघ्र ही यह भगवान् पिनाक धारी शिव के साथ योग प्राप्त करेगी ॥१००॥ हे शैलेन्द्रो मे परम श्रेष्ठ ! हे हिमधर ! यह आपकी आत्मजा इस प्रकार की ही उत्पन्न हुई है। सो आप विधि-विधान के साथ इस योग को सम्पन्न करें। इसमें तो देवगण का बहुत ही महान् कार्य होगा ॥१०१॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—इस तरह से देवर्षि श्री नारदजी से शैलराज हिमवान् ने सम्पूर्ण वृत्तान्त श्रवण करके मेना के पति ने अपने आपको पुन इस संसार में उत्पन्न हुआ माना था। और फिर परम प्रसन्नता से युक्त होकर हिमाचल ने श्री नारद मुनि से कहा— ॥१०२॥ हिमाचल बोले—हे विभो ! इस समय मे आपने तो मुझे बहुत ही दुस्तर घोर नरक से उद्धार कर बचा लिया है और पाताल के दह से उद्धृत करके सातों लोको का स्वामी बना दिया है। ॥१०३॥ हे मुनिवर ! इस समय मे आपके ही प्रसाद से मैं लोक मे हिमाचल हूँ—ऐसा प्रसिद्ध हो गया हूँ। मैं हिमाचल से सौ गुनी समुन्नति को प्राप्त हो गया हूँ ॥१०४॥

इत्युक्तवति शैलेन्द्रे स तदा हर्षनिर्भरः ।
उवाच नारदो वाक्यं कृतं सर्वमिति प्रभो ॥१०५
सुरकार्ये स एवार्थस्तवापि सुमहत्तर ।
इत्युक्त्वा नारदः शीघ्रं जगाम त्रिदिवं ततः ॥१०६
स गत्वा देवभवनं महेन्द्रं सन्ददर्श ह ।
ततोऽनुरूपे स मुनिरुपविष्टो महासने ॥१०७
पृष्टः शक्रेण प्रोवाच गिरिजासश्रया कथाम् ॥१०८
यन्मह्यमुक्तं कर्तव्यं तन्मया कृतमेव हि ।
किं तु पञ्चशरस्येषु गोचरत्वमपेक्षितम् ॥१०९
इत्युक्तो देवराजस्तु मुनिना कार्यदर्शिना ।
चूताङ्कुरास्त्रं सस्मार भगवान्पाकशासनः ॥११०
सस्मृतस्तु तदा क्षिप्रं सहस्राक्षेण धीमता ।
उपतस्थे रतियुत स विलासो झषध्वजः ।
प्रादुर्भूतं च तं दृष्ट्वा शक्रः प्रोवाच मन्मथम् ॥१११
उपदेशेन बहुना किं त्वां प्रति रतिप्रिय ।
मनोभवोऽसितेन त्वं वेत्सि भूतमनोगतम् ॥११२
तथयानुक्रमं तु त्वं कुरु नाकसदां प्रियम् ।
शङ्करं योजय क्षिप्रं गिरिपुत्र्या मनोभव ॥११३
सयुक्तो मधुनानेन गच्छ रत्या सहायवान् ।
इत्युक्तो मदनस्तेन शक्रेण स्वार्थसिद्धये ॥
प्रोवाच पञ्चबाणोऽथ वाक्यं भीतः शतक्रतुम् ॥११४

पुलस्त्य महामुनि ने कहा— इतना इस रीति से शैलेन्द्र के कहने पर वह देवर्षि हर्ष से पूर्ण हो गये थे और फिर नारदजी ने यह वाक्य कहा था कि हे प्रभो ! मैंने तो सभी कुछ कर दिया है ॥१०५॥ देवों के कार्य में बहुत बडा आपका प्रयोजन भी होगा—इतना कहकर नारद ऋषि शीघ्र ही वहाँ से त्रिदिव को चले गये थे ॥१०६॥ फिर नारदजी ने देवों के भवन में महेन्द्र को देखा था और फिर वहाँ पर अपने स्वरूप के अनुरूप आसन पर वह मुनि सस्थित

हो गये थे। इन्द्रदेव के द्वारा पूछने पर नारद मुनि ने गिरिजा में सभी रखने वाली सम्पूर्ण कथा वह सुनाई थी। नारद मुनि ने कहा—जो आपने मुझसे कहा था कि यह मुझे करना है वह मैंने सभी कुछ पूर्ण कर दिया है किन्तु अब पाँच बाणों वाले कामदेव के बाणों के लक्ष्य होने का कार्य आवश्यक है ॥१०७-॥१०८॥ पुलस्त्य ने कहा—कार्यदर्शी मुनि नारद के द्वारा इस रीति से कहे गये इन्द्रदेव ने उसी समय में आम्राङ्कुर के अस्त्र वाले कामदेव का स्मरण किया था ॥१०९॥ महेन्द्र के द्वारा याद करते ही उसी समय में शीघ्र अपनी पत्नी रति के सहित, विलासयुक्त, मीन की ध्वजा धारण करने वाला मन्मथ वहाँ पर उपस्थित हो गया था और प्रादुर्भाव करने वाले उस अनङ्ग देव को देखकर इन्द्रदेव ने उससे कहा—॥११०॥ महेन्द्र बोले—हे रति-प्रिय ! आप तो स्वयं ही बहुत निपुण हैं अतएव आपको अत्यधिक उपदेश देने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। आप तो मनोभव अर्थात् मन में ही जन्म लेने वाले हैं इसलिये आप स्वयं प्राणियों के मन में समुद्‌गत हुई बात को स्वयं ही भली-भाँति से जानते हैं ॥१११॥ इस समय में आप कुछ उस प्रकार का अनुक्रम कीजिये जो स्वर्गवासी देवगण का परम प्रिय हो। हे मनोभव ! आप भगवान् शङ्कर को शीघ्र ही हिमवान् की पुत्री के साथ योजित कर दो ॥११२॥ इस बसन्त ऋतुराज के साथ संयुक्त होकर रति की सहायता वाले आप शीघ्र ही वहाँ चले जाओ। इस तरह से इन्द्र के द्वारा मदन को प्रेरित किया गया था जो कि अपने स्वयं की सिद्धि के लिये ही यह प्रेरणा दी थी। उसे सुनकर कामदेव अत्यन्त भयभीत होता हुआ इन्द्र से कहने लगा था ॥११३॥११४॥

अनया देवसामग्र्या मुनिदानवभीमया ।
दुःसाध्यश्शङ्करो देवः किं न वेत्सि जगत्प्रभो ॥११५

तस्य देवस्य वेत्थ त्वं कारणं पदमव्ययम् ।
प्रायःप्रसादे कोपेऽपि सर्वं हि महतांमहत् ॥११६

सर्वोपभोगसारं हि सौन्दर्यं स्वर्गसम्भवम् ।
विशेषं काङ्क्षता शक्र सामान्याद्भ्रंशनंफलात् ।
श्रुत्वैतद्वचनं शक्रस्तमुवाचामरैर्युतः ॥११७

वयं प्रमाणं ते तत्र रतिकान्त न संशयः ।
सन्देशेन विना शक्तिरयत्कादस्य नेष्यते ॥
कस्यचिन्न क्वचिद्दृष्टं सामर्थ्यं न तु सर्वतः ॥११८

इत्युक्तः प्रययौ कामः सखायं मधुमाश्रितः ।
रतियुक्तो जगामाशु प्रस्थं तुहिनभूभृतः ॥११९

स तु प्राप्याकरोच्चिन्तां कार्यस्योपायपूर्विकाम् ।
महात्मानो हि निष्कम्पा मनस्तेषां सुदुर्जयम् ॥१२०

तदादावेव संक्षोभ्य नेत्थं तस्य जयो भवेत् ।
संसिद्धिः प्रायशश्चैव पूर्वं संशोध्य मानसम् ॥१२१

कामदेव ने कहा—हे जगत्प्रभो ! इन मुनि और दानवों के लिये ही परम भीषण देव सामग्री से भगवान् शङ्कर देव बहुत ही दुःसाध्य हैं अर्थात् इस साधन-सामग्री से शङ्कर के मन में विकार उत्पन्न कर देना बहुत ही कठिन काम है। यह तो साधारण मुनि और दानवों को ही काबू में ले आने वाली सामग्री है। क्या आप इसे नहीं जानते हैं? ॥ ११५ ॥ उस परम देव का कारण और अव्यय पद भी आप अच्छी तरह से जानते ही हैं, बहुधा महान् पुरुषों के प्रसाद और कोप में भी सब महान् ही परिणाम हुआ करते हैं ॥११६॥ समस्त उपभोगों का सार स्वर्ग में सम्भव होने वाले ऐश्वर्य को विशेष रूप से चाहने वालों का सामान्य फल मैं अदा हो जाता है। इस कामदेव के द्वारा कहे हुए वचन को सुनकर देवों से संयुक्त इन्द्र ने कहा—॥११७॥ शक्र बोला—हे रतिकान्त ! वहाँ पर तेरे लिये हम प्रमाण स्वरूप हैं। सन्देश के बिना अयत्न से इसकी शक्ति इष्ट नहीं होती है। किसी की सामर्थ्य कहीं पर ही देखी जाती है ॥११८॥ पुलस्त्य ने कहा—इस प्रकार से सम्प्रेरित हुआ कामदेव अपने मित्र मधु का आश्रय ग्रहणकर रति के सहित हिमाचल के प्रस्थ पर तुरन्त ही वहाँ से चला गया था ॥११९॥ वह कामदेव वहाँ पर पहुँच तो गया था किन्तु उसने कार्य का उपाय पूर्व वाली चिन्ता मन में की थी क्योंकि महादेव के हृदय में विकार उत्पन्न कर देना कोई आसान कार्य नहीं था। उसने मन में सोचा था कि महान् आत्मा वाले यह पुरुष तो निष्कम्प होते हैं। और

उनका मन भी आसानी से जीत लेने के योग्य नहीं हुआ करता है प्रत्युत उसका जीत लेना अत्यन्त ही कठिन काम है ।।१२०।। जो आरम्भ में ही संक्षोभ किया जावे तो इस प्रकार से उनके मन पर जय प्राप्त करना कदापि सम्भव नहीं होगा । प्रायः पहिले मानस का संशोधन करके ही ससिद्धि हुआ करती है ।१२१।

स तस्य हृदये शुद्धे नाम शाली महाशरः ।
पपात परुषः प्रांशुः पुष्पवाणो विमोहनः ।।१२२
ततः करणसन्दोहे विद्धे तु हृदये भवः ।
बभूव भूतपोऽकम्प्य धैर्योऽपि मदनोन्मुखः ।।१२३
ततः प्रभुत्वाद्भावानामावेशं स्वमपश्यत ।
वाक्य बहु बभाषेऽस्य प्रत्यूहप्रसवात्मकम् ।।१२४
ततः कोपानलोद्भूतघोरहुङ्कारभीषणे ।
बभूव वदने नेत्र तृतीयमनलाकुलम् ।।१२५
रुद्रस्य रौद्रवपुषो जगत्संहारभैरवम् ।
तदन्तिकस्थे मदने व्यस्फारयत धूर्जटिः ।।१२६
तन्नेत्र विस्फुलिङ्गे न क्रोशता नाकवासिनाम् ।
गमितोभस्मता तूर्णं कन्दर्पः कामदर्पकः ।।१२७
स तु त भस्मसात्कृत्वा हरनेत्रोद्भवोऽनलः ।
व्यजृम्भत जगद्दग्धुं ज्ञात्वा हुङ्कारघस्मरम् ।।१२८

उस कामदेव ने उसके हृदय के शुद्ध हो जाने पर शाली नाम वाला एक महान् शर फेंका था जो कि शर अत्यन्त ही कठोर—प्रांशु और विशेष रूप से मोहन करने वाला पुष्प वाण था ।।१२२।। करण सन्दोह हृदय के विद्ध हो जाने पर भूतों के पति भगवान् भव अकम्प, धैर्यशाली और मदन की ओर उन्मुख हो गये थे ।। १२३ ।। इसके अनन्तर प्रभुत्व होने के कारण से उन्होंने अपने आवेश को देखा था । इसके पश्चात् विघ्नों के प्रसव रूप बहुत से वाक्य वे बोले थे ।।१२३।१२४।। इसके उपरान्त क्रोध की अग्नि से उत्पन्न जो महान् घोर हुङ्कार थी उससे उनका मुख अत्यन्त भीषण होगया था उस मुख में तीसरा जो नेत्र था वह उस कोप की अग्नि से आकुल होगया था ।।१२५।। भगवान्

रुद्र के रौद्रता से परिपूर्ण शरीर से जगत् के संहार करने के लिये महान् भैरव जो यह तीसरा नेत्र था उसको अपने समीप में स्थित कामदेव पर धूर्जटि (शिव) ने खोलकर देखा था ॥१२६॥ खुले हुए उस तीसरे नेत्र के अग्नि कणों से आक्रोश करते हुए स्वर्ग वासियों के समक्ष में ही काम के दर्प रखने वाला कन्दर्प तुरन्त ही भस्मता को प्राप्त कर दिया गया था। १२७। भगवान् हर के नेत्र से उत्पन्न अग्नि ने उस कामदेव को भस्म के तुल्य दग्ध करके हुङ्कार की ध्वनि को जानकर इस सम्पूर्ण जगत् को वध करने के लिये वह सचेष्ट हुआ था ॥१२८॥

विलोक्य हरहुङ्कारज्वालाभस्मीकृतं स्मरम् ।
विललाप रतिः क्रूरं बन्धुना मधुना सह ॥१२९
ततोविलप्य बहुशो मधुना परिसान्त्विता ।
जगाम शरणं देवमिन्दुमौलिं त्रिलोचनम् ॥१३०
भविष्यति च कामोऽयं काले प्रान्तेऽचिरादयं ।
अनङ्ग इति लोकेषु स विख्यातिं गमिष्यति ॥१३१
इत्युक्ता शिरसावन्द्य गिरीशं कामवल्लभा ।
जगामोपवनं चान्यद्रतिस्तुहिनपर्वते ॥१३२
रुरोद चापि बहुशो दीना रम्ये स्थले स्थले ।
मरणव्यवसायापि निवृत्ता च शिवाज्ञया ॥१३३

भगवान् हर की हुङ्कार की ज्वाला से भस्मीभूत हुए कामदेव को देखकर उसकी पत्नी रति कामदेव के बन्धु मधु के साथ विलाप करने लगी थी ॥ १२९ ॥ इसके अनन्तर बहुत विलाप करके बसन्त ने उस रति को सान्त्वना दी थी और फिर इन्दु को मस्तक में धारण करने वाले भगवान् त्रिलोचन देव की शरण में चली गयी थी ॥ १३० ॥ भगवान् शंकर ने अपनी शरणागति में समुपस्थित उसको देखकर कहा था कि यह काम शीघ्र ही प्रान्त काल के उपस्थित होने पर जीवित हो जायगा और फिर यह आज से ही लोकों में 'अनङ्ग' इस नाम से ही प्रसिद्धि को प्राप्त करेगा ॥१३१॥ शिव के द्वारा इस प्रकार से कही गई कामदेव की पत्नी रति ने शिर से शिव को प्रणाम किया था और

फिर वह रति हिमवान् पर्वत के अन्य उपवन को चली गई थी ॥ १३२ ॥ वह रति अत्यन्त दीन हीन होकर जो भी कोई रम्य स्थल मिलता था वहीं-वहीं पर रुदन किया करती थी। उस रति ने तो अपने पति काम के भस्मीभूत हो जाने पर स्वयं ही मरने का निश्चय कर लिया था किन्तु भगवान् शिव की आज्ञा से ही वह अपने उस निश्चय से निवृत्त हो गई थी ॥१३३॥

अथ नारदवाक्येन चोदितो हिमभूधरः ।
कृताभरणसंस्कारां कृतकौतुकमङ्गलाम् ॥१३४
स्वर्गपुष्पकृतापीडां शुभ्रचीनांशुकाम्बराम् ।
सखीभ्यां संयुतां शैलागृहीत्वा स्वसुतां ततः ॥१३५
जगाम सुभगे योगे तदासम्पूर्णमानसः ।
स काननान्युपाक्रम्य वनान्युपवनानि च ॥१३६
ददर्श रुदतीं नारीमप्रतर्क्यां महौजसम् ।
न रूपेणेदृशी लोके रम्येषु वनसानुषु ॥१३७
कौतुकेन परामृष्टस्तांदृष्ट्वा रुदतीं गिरिः ।
उपसृप्य ततस्तस्या निकटं सोऽप्यपृच्छत ॥१३८
कासि कस्यासि कल्याणि किमर्थं चापि रोदिषि ।
नैनदल्पमहं मन्येकारणंलोकसुन्दरि ॥१३९
सा तस्य वचनं श्रुत्वा उवाच मधुना सह ।
रुदन्ती शोकवचनं श्वसन्ती दैन्यवर्धनम् ॥१४०

इसके अनन्तर देवर्षि नारदजी के वचन से प्रेरित होकर भूधर हिमवान् आभूषणों के द्वारा किये हुए संस्कारों से समन्वित—कौतुक मङ्गलमय सूत्र से युक्त—स्वर्गीय पुष्पों की माला के द्वारा शोभित चोटी वाली—शुभ्र चीनांशुकों से समावृत और सखियों के सहित अपनी पुत्री को अपने साथ में लेकर उस समय में सम्पूर्ण चित्त वाला होकर सुन्दर योग में चल दिया था। उसने काननों, वनों और उपवनों को उपक्रमित किया था। उसी यात्रा में हिमवान् ने प्रतर्कना के अयोग्य महान् ओज से सम्पन्न रोती हुई नारी को देखा था। वह ऐसी सुन्दरी थी कि लोक में सुरम्य वन की शिखरों में ऐसी अन्य कोई नारी

नही थी ।।१३३।१३४।१३५।१३६।१३७।। उस रुदन करती हुई नारी को देखकर शैलराज ने कौतुक से ही विचार किया था कि इसका परिचय प्राप्त किया जावे। इसके उपरान्त वह उसके समीप में पहुँचकर उससे पूछने लगे ।।१३८।। हिमवान् ने कहा—हे कल्याणि ! आप कौन हैं और किस की पत्नी है तथा यहाँ आप किस हेतु से रुदन कर रही हैं ? हे लोक सुन्दरि ! मैं आपके इस करुण क्रन्दन का कोई सामान्य कारण नहीं समझता हूँ अर्थात् आपके रोने का कोई विशेष कारण अवश्य ही होना चाहिए। १३९।। उस रति ने उस शैलराज के वचन को सुनकर मधु के साथ दीनता के बढ़ाने वाले श्वासों को लेती हुई और शोक के वचनों को कहकर रुदन करती हुई वह बोली ।।१४०।।

कामस्य दयिता भार्या रतिं मां विद्धि सुव्रत ।
गिरावस्मिन्न भगवान्गिरिशस्तपसिस्थितः ।।१४१
तेन प्रत्यूहरुष्टेनक्रोधाद्विस्फार्यलोचनम् ।
विमुच्याग्निशिखाज्वालाकामोभस्मावशेषितः ।।१४२
शरीरं परिरक्षिष्ये किञ्चित्कालं महाद्युते ।
इत्युक्तस्तु तया रत्या शैल सम्भ्रमभीषणम् ।।१४३
पाणावादाय तनया गन्तुमैच्छत्स्वकपुरम् ।
भाविनोऽवश्यभावित्वाद्विभीभूतभाविनी ।
लज्जमाना सखिमुखैरुवाच पितरं गिरिम् ।।१४४
दुर्भगेन शरीरेण किममानेन कारणम् ।
कथं च तां दशां प्राप्तश्शङ्करो मे पतिर्भवेत ।।१४५
तपोभिः प्राप्यतेऽभीष्टं नासाध्यन्तु तपस्यतः ।
दुर्भगत्व वृथालोके विहिते सति साधने ।।१४६
तपसि भ्रष्टसन्देहा तत स्वार्थजिगीषया ।
एवन्तपः करिष्येऽहं यामीत्युक्तवती सुताम् ।
उवाच वाचा शैलेन्द्रो गद्गदस्वरवर्णया ।।१४७

रति ने कहा—हे सुव्रत ! कामदेव की प्यारी भार्या मुझको रति समझिये। इस पर्वत में भगवान् गिरीश तपश्चर्या में संस्थित है ।। १४१ ।। उन

भगवान् शिव ने विघ्न होने के कारण रुष्ट होकर क्रोधावेश में अपने तृतीय नेत्र को खोल दिया था। फिर उस नेत्र से अग्नि की शिखा की ज्वालाओं को विमुक्त करके कामदेव मेरे पति को तुरन्त ही भस्मावशेषित कर दिया था॥ १४२॥ हे महान् द्युति वाले! मैं इस अपने शरीर को कुछ समय पर्यन्त रक्षित रक्खूँगी। इस रीति से उस रति के द्वारा कहे जाने पर वह शैलराज भीषण सम्भ्रम से युक्त हो होगया था॥ १४३॥ फिर अपनी तनया का हाथ पकड़कर वापिस अपने ही नगर में जाने की इच्छा की थी। होने वाली बात अवश्य ही होती है इस कारण से समस्त भूतों पर कृपा करने वाली पार्वती ने अपनी सखियों के द्वारा पिता शैलराज से कहा—॥१४४। शैल पुत्री ने कहा—मेरे इस भाग्य हीन शरीर से क्या प्रयोजन होगा? क्या कारण है और क्यों भगवान् शङ्कर उस दशा को प्राप्त होगये हैं। इस प्रकार से ऐसी दशा में वे मेरे पति कैसे होंगे?॥१४५॥ मैं समझती हूँ कि तप के द्वारा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हो जाया करती है और तपश्चर्या करने वाले के लिये कोई भी वस्तु असाध्य नहीं है। साधनों के करने पर यह जो दुर्भाग्य की बात कही जाती है वह सब व्यर्थ ही है। तात्पर्य यह है कि साधनों द्वारा अभीष्ट सिद्धि अवश्य हो जाती है और दुर्भाग्य की चर्चा तो साधनों के न करने वाले ही व्यर्थ में कहा करते हैं।१४६॥ जो तप में दृढ़ सन्देह वाले हैं वे अपने अर्थ को प्राप्त करने की इच्छा से तप ही किया करते हैं। इस प्रकार से मेरा यह निश्चय है कि मैं अब तप ही करूँगी तथा मैं जारही हूँ, इस रीति से कहने वाली अपनी पुत्री से शैलेन्द्र गद्गद स्वर एवम् वर्णों वाली वाणी से बोला॥१४७॥

उमेति चापलं पुत्रि नक्षमतावकं वपुः।
सोढुं क्लेशानुरूपस्य तपसः सौम्यदर्शने॥१४८
भाविन्यपि च कार्याणि पदार्थानि सदैव तु।
भाविनोऽर्था भवन्त्येव बहवोऽनिच्छतोऽपि हि॥१४९
तस्मान्न तपसा तेऽस्ति बाले किञ्चित्प्रयोजनम्।
भवनं चैव गच्छामि चिन्तयिष्यामि तत्र वै॥१५०
इत्युक्ता तु यदानैव गृहमन्वेति शैलजा।
ततोऽद्रिश्चिन्तयाविष्टः स्वसुतां प्रशशंस च॥१५१

ततोऽन्तरिक्षे दिव्या च वागभूद्भुवनत्रये ।
उमेति चापलं पुत्रि त्वयोक्ता तनया यत ॥१५२
उमेति नाम तेनास्या भुवनेषु भविष्यति ।
सिद्धिमूर्तिमतीश्चैषासाधयिष्यति चिन्तितम् ॥१५३
इति श्रुत्वा तु वचनं स तदाकाशमण्डले ।
अनुज्ञाय सुता शैलो जगमाशु स्वमन्दिरम् ॥१५४

हिमवान् ने कहा—हे पुत्रि ! यह तो तेरी चपलता है । हे उमे ! तेरा यह अतिशय मृदुल एवम् मनोहर शरीर तपश्चर्या करने में सक्षम नहीं है । हे सौम्य दर्शन वाली ! क्लेश सहन करने के अनुरूप तप करने वाला शरीर ही दूसरा होता है जो उन समस्त क्लेशों को सह लेता है ॥१४८॥ जो कार्य और पदार्थ होने वाले होते हैं वे सदा ही होने वाले अर्थ में अवश्य ही हुआ करते हैं । उनमें बहुत से ऐसे भी कार्य हुआ करते हैं कि उनको नहीं चाहते हैं तो भी वे अवश्यम्भावी होने के कारण हो ही जाया करते हैं । १४९॥ हे बाले ! इसलिये तुझे तपस्या करने का कोई भी प्रयोजन नहीं है । अब तो अपने भवन को ही चलते हैं वह पहुँचकर विचार करेंगे ॥१५०॥ इस तरह निषेध पूर्वक कही हुई भी वह शैलजा जब वापिस घर पर उन अपने पिता के साथ नहीं गई तो वह शैलेन्द्र हिमवान् बड़ी भारी चिन्ता से समाविष्ट हो गये थे और उन्होंने अपनी पुत्री के इस कार्य की प्रशंसा की थी ॥१५१। इसके अनन्तर उसी समय में आकाश में तीनों भुवनों में परम दिव्य आकाशवाणी हुई थी कि तूने हे उमे ! यह तेरी चपलता है—यह जो पुत्री से कहा था इसीलिये इस तुम्हारी पुत्री का उमा—यह नाम तीनों भुवनों में होगा । यह तो तेरी पुत्री सिद्ध मूर्त्ति है और यह अपने अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त करेगी । उस समय में आकाश मण्डल में जो यह वचन कहे गये थे उनका श्रवण करके उस शैलराज ने अपनी पुत्री को तपस्या करने की आज्ञा प्रदान करदी थी और आप स्वयं अपने निवास स्थान को चला गया था ॥१५२।१५३।१५४॥

शैलजापि ययौ शैलमगम्यमपि दैवतैः ।
सखीभ्यामनुयाता तु नियता नगराजजा ॥१५५

शृङ्गं हिमवतः पुण्यं नानाधातुविभूषितम् ।
दिव्यपुष्पलताकीर्णं भ्रमरोद्घुष्टपादपम् ॥१५६
त्यक्त सूर्यस्य रुचिभिर्भिन्नसहतपल्लवम् ।
तत्राम्बराणि सन्त्यज्य भूषणानि च शैलजा ॥१५७
सवीतावल्कलैर्दिव्यर्दर्भनिर्मितमेखला ।
त्रिःस्नाता पाटलाहारा बभूव शरदाशतम् ॥१५८
शतमेकेनजीर्णेन पर्णेनावर्त्तयत्तदा ।
निराहारा शतं साऽभूत्समाना तपसोनिधिः ॥१५९
ततउद्वे जिताः सर्वे प्राणिनस्तपसोऽग्निना ।
ततः सस्मार भगवान्मुनीन्सप्त शतक्रतुः ॥१६०
ते समागम्य मुदिताःसर्वे समुदितास्तथा ।
पूजितास्ते महेन्द्रेण पप्रच्छुस्तत्प्रयोजनम् ॥१६१

पुलस्त्य महर्षि ने कहा—वह शैल कुमारी देवताओं के द्वारा भी अति अगम्य उस शैल पर चली गई थी । वह नगराज की पुत्री अपने निश्चय पर दृढ थी और उसके साथ दो सखियाँ भी गई थीं ।। १५५ ।। वह हिमवान् का शिखर परम पुण्यमय स्थल था जहाँ पर अनेक प्रकार की धातुओं की शोभा थी। वह स्थान परम दिव्य पुष्प और लताओं से समाकीर्ण था और वहाँ वृक्षों पर पुष्पों के मकरन्द का आस्वादन करने के लिये भौंरे उद्घोष कर रहे थे । १५६॥ वह स्थल लता पादपों के पत्रों से ऐसा सहत हो रहा था कि सूर्य की किरणों का प्रकाश भी वहाँ नहीं पहुँचता था । वहाँ पर पहुँचकर शैलजा ने समस्त अपने भूषण और वस्त्रों का त्याग कर दिया था ॥१५७॥ उस शैलेन्द्र कुमारी ने दिव्य वल्कलों से अपने शरीर को सवृत किया था और दर्भ की मेखला निर्मित करती थी । वह तीन बार स्नान किया करती थी और पाटलों का आहार करती थी। इस प्रकार से उसे तपस्या करते हुए एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे ।। १५८ ॥ इसके पश्चात् उसने एक सौ वर्ष पुराने पत्तों के आहार करके व्यतीत किये थे। फिर इसके उपरान्त एकसौ वर्ष तक बिल्कुल बिना आहार वाली होकर तपस्वी के समान रही थी ॥ १५९ ॥ उस समय उसकी तपश्चर्या की अग्नि से समस्त

प्राणी उद्वेजित हो गये थे। इसके पश्चात् इन्द्रदेव ने सातों मुनियों का स्मरण किया था ॥ १६० ॥ वे सप्तर्षिगण परम आनन्दित एवम् अत्यन्त प्रसन्न होते हुए वहाँ पर आ गये थे। इन्द्रदेव ने उनकी पूजा की थी। इसके अनन्तर उन ऋषियों ने उनके वहाँ पर स्मरण करके बुलाने का प्रयोजन इन्द्रदेव से पूछा था ॥१६१॥

किमर्थं हि सुरश्रेष्ठ सस्मृतास्तु वयं त्वया ।
शक्रः प्रोवाच शृण्वन्तु भगवन्तः प्रयोजनम् ॥१६२
हिमाचले तपो घोरं तप्यते भूधरात्मजा ।
तस्याभिमतयोगेन भवन्तः कर्तुमर्हथ ।
तपः समापनं देव्या जगदर्थं त्वरान्विताः ॥१६३
तथेत्युक्त्वा ततः शैलं सिद्धसङ्घातसेवितम् ॥१६४
ऊचुरागम्य मुनयस्तामथो मधुराक्षरम् ।
पुत्रिकस्ते व्यवसितं कामं कमललोचने ॥
तानुवाच ततो देवी सादरं गौरवान्मुनीन् ॥१६५
तपस्यन्तो महाभागा प्रोह्य मौनमवाद्शाम् ।
वन्दनायनियुक्ताग्नीर्गाचियत्यविकल्पितम् ॥ ६६
सुप्रसन्नमुखा यूयं गृहीत्वासनमादितः ।
उपविष्टाः श्रमं मुक्त्वा ततः प्रक्ष्यथ मामनु ॥१६७
इत्युक्तास्ते ततश्चक्रुस्तथासनपरिग्रहम् ।
साधत्वान्विधिवत्पूर्वं पूजयित्वा विधानतः ॥१६८
उवाचादित्यसङ्काशा मुनीन्सप्तर्षीन्द्रुनं ।
त्यक्त्वाव्रतात्मकमौननत्राचविधिवन्मुनीन् ॥
भगवन्तोऽपि मौनान्ते तस्याः सप्रर्थयाऽप्यथ ।
गौरवाधारता प्राप्ता पप्रच्छुस्तां पुनस्तया ॥१६६

सप्तर्षियों ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! आपने किस प्रयोजन के लिये इन सबका स्मरण किया है ? देवराज ने कहा था कि आप सब महानुभाव उस आगमन का प्रयोजन सुनिये ॥१६२॥ इन्द्रदेव ने कहा—इस समय में हिमवान्

शैलराज की पुत्री हिमालय पर्वत पर अत्यन्त घोर तपश्चर्या कर रही है उसका जो धर्मिष्ठ प्रयोजन उस तपस्या का है उसका योग आप लोग ही करने के योग्य होते हैं। जगत् के कल्याण के लिये ही देवी के तप का समापन करिये। आप लोग शीघ्रता से युक्त होकर इस कार्य को करें ॥१६३॥ 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही करेंगे यह कहकर वे सप्तर्षि सिद्धों के समुदाय के द्वारा संसेवित उस शैल पर गये और मुनियों ने उस तप करती हुई देवी से बहुत ही मधुर वचनों से कहा था। हे पुत्रि ! हे कमल के समान लोचनों वाली ! इस अत्यन्त घोर तपश्चर्या करने की क्या कामना है जिसका आपने निश्चय किया है ? ऐसा प्रश्न मुनियों के द्वारा किये जाने पर उस देवी ने गौरव से बहुत ही आदर के साथ उनको उत्तर दिया था ॥१६४।१६५॥ देवी ने कहा—हे महाभागो ! आप सब तपस्वी हैं, आप जैसे महापुरुषों की वन्दना करने के लिये अपना मौन व्रत त्याग कर मेरी नियुक्त बुद्धि अविकल्पित की याचना करती है अर्थात् मेरी याचना ऐसी है जिसका दूसरा कोई भी विकल्प नहीं है ॥ १६६ ॥ आप सब सुप्रसन्न मुख वाले होते हुए सबसे प्रथम आसन को ग्रहण करें। फिर उन आसनों पर संस्थित होकर आप समागमन के श्रम का त्याग कीजिए। इसके अनन्तर फिर मुझसे जो भी कुछ पूछना हो उसे पूछिये ॥ १६७ ॥ इस तरह से उस देवी के कहे जाने पर उन ऋषियों ने आसन का ग्रहण किया था। उस देवी ने सबसे पूर्व उन महर्षियों का विधि के साथ पूजन किया था ॥ १६८ ॥ उन भगवान सप्तर्षियों ने भी उसके मौन के अन्त में गौरव की आधारता को प्राप्त हुई उससे फिर पूछा था ॥१६९॥

सापि गौरवगर्भेण मनसा चारुहासिनी ।
मुनीन्सर्वास्तथालोक्य प्रोवाचप्रोह्यवाग्यमम् ॥१७०
भगवन्तो विजानीथ प्राणिना मनसेप्सितम् ।
शरीरादिभिरत्यर्थं ऊदर्थ्यन्ते हि देहिन ॥१७१
केचित् निपुणास्तत्र घटन्तेविविधोद्यमैः ।
उपायैर्दुर्लभान्भावान्प्राप्नुवन्ति ह्यतन्द्रिता ॥१७२
अपरे तु परिच्छिद्य नानाकारानुपक्रमान् ।
देहान्तरार्थं सारम्भमाश्रयन्ति हि तद्व्रतम् ॥१७३

ममत्वाकाशसम्भूतकुसुमस्रग्विभूषितम् ।
विन्ध्यशृङ्ग स्प्रष्टुकामो हस्तः प्रसरते मुहुः ॥१७४
अहं किल भव देवं पतिं प्राप्तुं समुद्यता ।
प्रकृत्यैव दुराराध्य तपस्यन्त च सम्प्रति ॥१७५
सुरासुरैरनिर्णीतं परमार्थक्रियाश्रयम् ।
साम्प्रतं चापि निर्दग्धो मदनो वीतरागिणा ।
कथमाराधयेदीशं मादृशी तादृशं शिवम् ॥१७६

उस देवी ने भी मन्दर में गौरव रखने वाले मन से सुन्दर हास करने वाली होती हुई उन समस्त मुनियों को उस प्रकार से प्रश्न करने वाले देखकर अपने वाणी के संयम का त्याग करके कहा था ॥१७०॥ आप लोग तो प्राणियों के मन की इच्छा को जानने हैं। ये देहधारी शरीरादि के द्वारा अत्यधिक कद-र्थित हुआ करते हैं ॥ १७१ ॥ उनमें कुछ लोग तो बहुत कुशल होते हैं जो कि अनेक प्रकार के उद्यमों के द्वारा सम्पन्न होते हैं और उपायों से निस्तन्द्र होकर दुर्लभ भावों की भी प्राप्ति कर लिया करते हैं अर्थात् उन निपुण पुरुषों के उपाय पूरी लगन के साथ ऐसे ही होते हैं। कठिन से भी कठिन वस्तु की भी प्राप्ति उन्हें हो ही जाया करती है ॥१७२॥ दूसरे ऐसे भी लोग हैं जो नाना भाँति के उपक्रमों को करके भी देहान्तर के लिए आरम्भ के सहित उस फल का समाश्रय लिया करते हैं। इस प्रकार से ये दो तरह के मनुष्य होते हैं। ॥१७३॥ मेरा तो यह हाथ विन्ध्याचल की अत्युच्च चोटी के स्पर्श करने की कामना रखकर बार बार प्रसन्न होता है जो कि [illegible] में [illegible] कुसुमों

इत्युक्ता मुनयस्ते तु स्थिरतां मनसस्ततः ।
ज्ञातुमस्या वचःप्रोचुः प्रक्रमात्प्रकृतार्थकम् ।।१७७
द्विविधं तु सुखं तावत्पुत्रिलोकेविभाव्यते ।
शरीरस्यास्य संयोगश्चेतसश्चापिनिर्वृतिः ।।१७८
प्रकृत्या तु स दिग्वासा भीमो भस्मास्थिभूषणः ।
कपाली भिक्षुको नग्नो विरूपाक्षोऽस्थिरक्रियः ।।१७९
प्रमत्तोन्मत्तकाकारोबीभत्सोकृतसङ्ग्रहः ।
यस्या न तेन चास्त्यर्थोमूर्तानिर्यनकाङ्क्षितः ।।१८०
यदि स्वस्य शरीरस्य सुखमिच्छसि शाश्वतम् ।
तत्कथं ते महादेवाद्भूतभाजो जुगुप्सितात् ।।१८१
इत्युक्तवत्सु कुपिता मुनिवर्येषु शैलजा ।
उवाच क्रोधरक्ताक्षी विस्फुरद्दशनच्छदा ।।१८२
असद्ग्रहस्य का नीतिर्व्यमनस्य क्व यन्त्रणा ।
विपरीतार्थबोद्धारः सत्पथे केन योजिताः ।।१८३
एवं मांवित्थदुष्प्रज्ञामस्थानासद्ग्रहप्रियाम् ।
न मां प्रति विचारोऽस्तियदहङ्कारमानिनी ।।१८४

पुलस्त्य महर्षि ने कहा—इस रीति से उस देवी के द्वारा कहे गये उन मुनियों ने उसके मन की स्थिरता का ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रक्रम से प्रकृत अर्थ वाले वचन उससे कहे थे ।। १७७ ।। महर्षियों ने उस देवी से कहा—हे पुत्रि ! इस लोक में दो प्रकार का सुख होता है । एक तो इस शरीर का संयोग प्राप्त करना और दूसरा चित्त की भी निर्वृति का लाभ करना है ।। १७८ ।। वैसे देखा जावे तो वह शिव तो प्रकृति से ही ऐसे हैं कि वह निरन्तर नग्न रहा करते हैं—उनकी आकृति भयानक है—वे सर्वदा अपने शरीर पर भस्म धारण किया करते हैं और मृत पुरुषों को हड्डियाँ ही उनके शरीर का भूषण हैं । वे मुण्डों की माला पहिनने वाले हैं—भिक्षाचरण किया करते हैं— नग्न रहते हैं—विगत रूप वाले नेत्रों से युक्त और अस्थिर क्रिया वाले रहते हैं ।। १७९ ।। जैसे कोई प्रमत्त या उन्मादयुक्त हो वैसा ही उनका आकार है । वे तो बहुत ही

वीभत्स तथा संग्रह न करने वाले देव हैं। ऐसे उनको पति के स्वरूप में चहना तो बिल्कुल ही एक साक्षात् मूर्त्त अनर्थ की ही आकांक्षा करना है ॥ १८० ॥ हे देवि ! यदि तुम सर्वदा स्थिर रहने वाले अपने शरीर के सुख को प्राप्त करने की इच्छा रखती हो तो महादेव को पति रूप में प्राप्त करने से कदापि वह प्राप्त नहीं हो सकता है जो कि महादेव सदा भूतों के साथ रहते हैं और अत्यन्त निर्धन हैं। उनसे कैसे वह शारीरिक सुख मिल सकता है ? ॥ १८१ ॥ पुनः इस मुनि ने कहा— जब उन सप्तर्षियों ने उस देवी से इस तरह कहा तो वह शैल पुत्री उन मुनियों पर अत्यन्त कोपित हो गई थी और क्रोध से लाल आँखों को करते हुए अपने ओष्ठ और दशनों को विस्फूर्त करके उसने उनसे कहा-॥१८२॥ शैल पुत्री बोली—असद् के ग्रहण करने की क्या नीति है और व्यसन की यन्त्रणा कहाँ पर है ? आप लोग तो बिल्कुल विरुद्ध अर्थ के जानने वाले हैं। आप लोगों को सत्पथ पर किसने योजित किया है ? ॥ १८३ ॥ आप लोग अनुचित एवं असद् वस्तु की प्राप्ति की इच्छा वाली तथा दुष्ट बुद्धि से युक्त इस तरह मुझको समझते हैं। आप लोग मेरे प्रति कुछ भी विचार प्रकट न करें क्योंकि मैं तो अपने अभीष्ट लक्ष्य के प्राप्त करने के अभिमान वाली हूँ ॥ १८४ ॥

जाते लोकविधाने तु सत्य तत्कार्यमुत्तमम् ।
प्राय. प्रालेयशैलस्य शङ्कातरकाल रूपिणः ॥१८५
सत्यमुत्कण्ठिताः सर्वे ये ये कार्यार्थमुद्यताः ।
तेपारत्रम्ततेयेतामि किन्तु नामसहात्मनाम् ॥१८६
लोकयात्रानुगन्तव्या विशेषेणविवक्षितैः ।
यतस्तद्धममेधन्ते तत्प्रामाण्य परे धृताः ॥१८७
इत्युक्त्वा मुनयो जग्मुस्त्वरितातुहिनाचलम् ।
तत्र ते पूजितास्तेन हिमशैलेन सादरम् ।
ऊचुर्मुनिवराः प्रीता स्वल्पक तु त्वरान्विता ॥१८८
देवो दुहितर साक्षात्पिनाकी तव मार्गते ।
तच्छीघ्र पावयात्मानमाहुत्येवानलेहुतम् ॥१८९
कार्यं हि तत्र देवाना सुचिर परिवर्तते ।
जगदुद्धारणार्थाय विधातव्यः समुद्यमः ॥१९०

सप्तर्षियों ने कहा—इस लोक में विधान में जो कार्य उत्तम है वही सत्य होता है। बहुधा हिमवान् शैल की शङ्का उस समय के अनुरूप ही है। हम सब लोग तो सत्य के लिये उत्कण्ठित हैं जो कि यहाँ पर कार्य करने के लिये इस समय में समुद्यत हुए हैं। उन महान् आत्मा वालों के चित्त ऐसा कार्य करने को शीघ्रता किया करते हैं। १८५।१८६॥ विशेष रूप से विवक्षितों के द्वारा लोकयात्रा का अनुगमन करना चाहिए जिससे धर्म की वृद्धि होती है और इसका प्रमाण तो वे ही महापुरुष हैं जिन्होंने महाव्रत धारण कर रखा है ॥१८७। पुलस्त्य मुनि ने कहा—इतना कहकर वे मुनिगण शीघ्रता से तुहिनाचल के समीप में चले गये थे। वहाँ पर हिमवान् शैलराज के द्वारा वे परम समादर के साथ पूजित हुए थे। उन मुनिवरों ने त्वरा से युक्त होते हुए प्रसन्नता के साथ थोड़ा-सा ही उस हिमवान् से कहा था।१८८। मुनियों ने कहा—साक्षात् भगवान् पिनाकी देव आपकी पुत्री को चाहते हैं सो अग्नि में हुत की हुई आहुति की भाँति आप अति शीघ्र अपने आपको पावन करिये। इससे देवों का कार्य चिरकाल में परिवर्तित होता है। यह वस्तु ऐसा है जिसमें समस्त जगत् का उद्धार होता है अतः इसे निष्पन्न करने के लिये अति शीघ्र उद्यम आपको करना चाहिए ॥१८९।१९०॥

इत्युक्तस्तु तदा शैलो हर्षविह्वलशान्मुनीन् ।
असमर्थोऽभवद्वक्तुमुत्तरं प्रार्थयन्निव ॥१९१
ततो मेना मुनीन्वन्द्य प्रोवाच स्नेहविक्लवा ।
दुहितुस्तान्मुनीस्त्वेव वचनं स्वयमर्थवत् ॥१९२
यदर्थं दुहितुर्जन्म नेच्छन्त्यपि महाफलम् ।
तदेवोपस्थितं सर्वं प्रक्रमेणैव साम्प्रतम् ॥१९३
कुलजन्मवयोरूपविभुत्वैस्सहितोऽपियः ।
वरस्तस्यापिनाहूय सुता देया ह्ययाचतः ॥१९४
दिग्वासा जटिलः शूली दग्धकामोऽपि कामदः ।
स तु मत्सुतया घोरः कथं नाम उपास्यते ॥१९५
ऐश्वर्यमवगच्छस्व शङ्करस्य सुरासुराः ।
आराध्यमानपादाब्जयुगलाश्च मुनिवृताः ॥१९६

यस्योपयोगि यद्रूप तेन तत्प्रार्थ्यते चिरम् ।
घोर तपस्यते बाला तेन रूपेण निर्वृता ॥१६७
यत्सा व्रतानि दिव्यानि नयिष्यति समापनम् ।
तदनावहिता तावदस्मास्वेव भविष्यति ॥१६८

पुनरत्य मुनि ने कहा—इस तरह जब मुनियों के द्वारा वह शैलराज कहा गया था तो वह इतना प्रसन्न होगया था कि उस हर्ष के आवेश से प्रार्थना करते उनको उत्तर देने में भी असमर्थ हो गया था अर्थात् प्रसन्नता के आधिक्य के कारण हिमवान् से कुछ भी बोला न जा सका था ॥१६१॥ इसके अनन्तर शैलराज की पत्नी मेना ने मुनियों की वन्दना की थी और पुत्री के वह स्नेह से विकल होती हुई उन मुनियों से बोली और स्वयं ही अर्थवान् वचन कहे ॥१६२॥ मेना ने कहा—जिस कार्य की निष्पत्ति के लिए मेरी पुत्री का यह जन्म हुआ है मैं उसी महान् फल की इच्छा करने वाली हूँ। वह ही इस समय में सब कुछ प्रक्रम में उपस्थित हो गया है ॥ १६३ ॥ कुल, जन्म, अवस्था, रूप और विभुत्व से जो युक्त हो ऐसा ही वर हो तो उसका समाह्वान करके भी बिना याचना किये ही अपनी पुत्री को उसे दे देना चाहिए ॥१६४॥ दिशाओं के वसन धारण करने वाला अर्थात् नग्न—जटाजूट धारण करने वाला—त्रिशूलधारी—कामदेव को भस्म कर देने वाला भी कामनाओं को प्रदान करने वाला शिव है। ऐसा महान् घोर शङ्कर है किन्तु मेरी पुत्री के द्वारा वही न मालूम क्यों उपासित किया जा रहा है ? ॥१६५॥ मुनियों ने कहा—आप उनके ऐश्वर्य को समझो। समस्त सुर और असुर उन शङ्कर के चरण युग की आराधना करने वाले हैं और उस आराधना से वे परम आनन्द एवम् शान्ति प्राप्त किया करते हैं। १६६॥ जिसको जो रूप उपयोगी होता है उसी रूप से वह चिरकाल पर्यन्त प्रार्थित किया जाता है। वह आपकी बाला उसके घोर स्वरूप की ही प्रार्थना कर रही है और उसी उनके स्वरूप से उसे सुनिर्वृत्ति प्राप्त होती है ॥१६७॥ वह अपने दिव्य व्रतों की समाप्ति करेगी वैसे ही हम वहाँ पर सावधानता से स्थित हैं यह सब हमारे ही ऊपर सम्पन्न होगा ॥१६८॥

द्रष्टुं वयमिहायाता शङ्कर गुणनायकम् ।
त्रिलोचन विजानीहि सुरकार्यप्रचोदिता ॥१६९

त्वमेव नो गतिस्तत्र यथाकालानतिक्रमः ।
स्यात्प्रार्थनैषा प्रायेण प्रतीहारमयी प्रभो ॥२००
इत्युक्तो मुनिभिः सोऽथ गौरवात्तानुवाचह ।
स वनस्यापरां सन्ध्यां कर्तुं मन्दाकिनीं गतः ॥२०१
क्षणेन भाविता विप्रास्ततो द्रक्ष्यथ शूलिनम् ॥२०२
इत्युक्ता मुनयस्तस्थुर्यत्नात्कार्यं विचक्षणाः ।
गम्भीराम्बुधरं प्रावृट्तृषिताश्चातका यथा ॥२०३
तथा क्षणेन निष्पन्नसमाचारक्रियाविधिम् ।
वीरासनकृतोद्देशं मृगचर्मनियामितम् ॥२०४
ततो विनीतो जानुभ्यामवलम्ब्य मही मुदा ।
उवाच वीरको देवं प्रणयैकसमाश्रयम् ॥२०५

ऋषियों ने कहा—हम सब यहाँ पर भगवान् शंकर का दर्शन करने के लिये ही उपस्थित हुए हैं जो गुणों के नायक हैं। ऋषियों ने शंकर से मिलने के लिये हिमाचल के शिखर पर पहुँचकर यह कहा कि हम सब तो देवताओं के कार्य के लिये ही प्रेरित होकर यहाँ पर उपस्थित हुए हैं। अतएव भगवान् शंकर की सेवा में यह हमारा निवेदन कर दीजिए ॥१९९॥ ऋषियों ने वीरक से कहा था कि हमारी तुम ही एक गति हो, ऐसा ही करें जिससे काल का अतिक्रमण न हो। हे प्रभो ! यह प्रतीहारमयी हमारी प्रायः प्रार्थना है ॥२००॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—मुनियों के द्वारा जिस समय में उस वीरक से इस भाँति कहा गया तो फिर वीरक गौरव से उन मुनियों से बोला—वीरक ने कहा—इस समय में भगवान् शङ्कर अपरा संध्या करने के लिये मन्दाकिनी पर गये हुए हैं ॥२०१॥ एकक्षण के पश्चात् ही हे विप्रगण ! आप सब लोग भगवान् शूली के दर्शन प्राप्त कर लेंगे ॥२०२॥ इस तरह से कहे जाने पर पुलस्त्य मुनि ने कहा कि वे सब मुनिगण वहाँ पर स्थित हो गये थे क्योंकि ये सब यत्नपूर्वक अपना कार्य करने में बहुत ही कुशल थे। वे सब लोग उस समय इस भाँति भगवान् शङ्कर के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे थे जिस तरह वर्षा ऋतु में तृषित चातक गम्भीर मेघ की प्रतीक्षा किया करते हैं ॥२०३॥ इसके पश्चात् क्षणभर में ही

भली-भाँति आगार की क्रिया विधि को निष्पन्न कर लेने वाले, वीरासन से संस्थित, मृग के चर्म को लपेटे हुए तथा प्रणय के एकमात्र आश्रय वाले देव से भूमि पर अपने दोनों घुटनों को टेककर परम विनीत भाव से प्रसन्नता के साथ वीरक ने निवेदन किया था ॥२०४।२०५॥

सम्प्राप्ता मुनयः सप्त द्रष्टुं त्वां दीप्ततेजसम् ।
विभो समादिशद्रष्टुं ततो ध्यानमिहार्हसि ॥२०६
इत्युक्तो धूर्जटिस्तेन वीरकेण महात्मना ।
भ्रूभङ्गसंज्ञया तेषां प्रवेशाज्ञां ददौ तदा ॥२०७
मूर्द्धकम्पेन तान्सप्त वीरकोऽपि महामुनीन् ।
आजुहाव विदूरस्थान्दर्शनाय पिनाकिनः ॥२०८
त्वरावद्धजटास्ते च लम्बकृष्णाजिनाम्बराः ।
विविशुर्वेदिकां दिव्यां गिरिशस्य विभोस्ततः ॥२०६
बद्धपाणिपुटाक्षिप्तनाक पुष्पोत्करास्ततः ।
पिनाकिपादयुगलं वन्द्य नाकनिवासिनः ॥२१०
ततः स्निग्धेक्षिताः सन्तो मुनयः शूलपाणिना ।
गिरीश तु ततो दृष्ट्वा ते समं तुष्टुवुर्मुदा २११

वीरक बोला—हे विभो ! दीप्त तेज वाले आपका दर्शन प्राप्त करने के लिये सात मुनि आये हुए हैं। आप दर्शन प्रदान करने की आज्ञा देवें और आप इस ओर अपना ध्यान देने के योग्य होते हैं ॥ २०६ ॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—जब महात्मा वीरक ने भगवान् धूर्जटि से इस तरह कहा तो शंकर ने अपनी भ्रू-भङ्ग की संज्ञा से उस समय उनके प्रवेश की आज्ञा प्रदान कर दी थी ॥ २०७ ॥ फिर वीरक ने भी अपने मस्तक को कम्पित करने के संकेत से बिना कुछ शब्दों के समुच्चारण किये हुए अधिक दूरी पर समास्थित उन मुनियों को भगवान् पिनाकी के दर्शन प्राप्त करने के लिये आह्वान किया था ॥२०८॥ उन मुनियों ने भी शीघ्रता से अपनी जटाओं को बाँधकर लम्बे कृष्ण मृग चर्म के अम्बरों को धारण किये हुए विभु गिरीश की दिव्य वेदिका में प्रवेश किया था ॥२०६॥ उन मुनियों के दोनों हाथों की अञ्जलि बँधी हुई थी और उनमें

स्वर्गीय पुष्पों की राशि भरी हुई थी अर्थात् दोनों हाथों में स्वर्ग के पुष्प लिये हुए थे जिन पुष्पों को स्वर्गवासियों के वन्दनीय शङ्कर के चरण युगल में उन्होंने समर्पित कर दिया था ॥२१०॥ भगवान् शूलपाणि के द्वारा वे सब मुनिगण स्नेह भरी दृष्टि से देखे गये थे। उन्होंने भी गिरीश के दर्शन प्राप्त करके परमानन्द के साथ शिव का स्तवन करना आरम्भ कर दिया था ॥२११॥

अहो कृतार्था वयमेव साम्प्रतं सुरेश्वरैर्वन्दितपादपल्लवम् ।
विलोकयामो गुणगौरवर्द्धिभिः समादिशो कार्यमशेषरक्षणम् ॥२१२
ततः प्रहस्य सर्वज्ञ उवाच मुनिसत्तमान् ॥२१३
भवता यद्धृदि गतं कार्यं तत्कुरुताधुना ॥२१४
इत्युक्ता मुनयस्तूर्णं यत्रयत्र च शैलजा ।
बभाषिरे विभागज्ञा गिरिजां गिरिगह्वरे ॥२१५
रम्यं प्रियमनोहारि मा रूपं तपसा दह ।
प्रीतस्ते शङ्करः पाणिमेव प्रतिग्रहीष्यति ॥२१६
वयमर्थितवन्तस्ते पितरं पूर्वमागताः ।
पित्रा सह गृहं गच्छ वयं यामः स्वमन्दिरम् ॥२१७

मुनिगण ने कहा—अहो भाग्य हमारा है, हम सब लोग आज सुरेश्वरों के द्वारा वन्दित आपके चरण युगल को देखने का सुअवसर प्राप्त कर रहे हैं। अब आप गुणों के गौरव को बढ़ाने वाले वचनों के द्वारा सबकी रक्षा करने के कार्य के लिए आज्ञा प्रदान कीजिए ॥२१२॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इसके अनन्तर सब कुछ ज्ञाता भगवान् शंकर हँसकर उन समस्त मुनियों से बोले ॥ २१३ ॥ भगवान् शंकर ने कहा—आप लोगों के हृदय में रहने वाला जो भी कुछ कार्य है उसे अब करिये ॥ २१४ ॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—जब इस भाँति भगवान् शङ्कर ने मुनियों को आदेश दे दिया तो वे समादिष्ट होकर शीघ्र ही वहाँ पर पहुँचे जहाँ पर शैलजा तपश्चर्या कर रही थी और विभाग के ज्ञाता उन्होंने गिरि की कन्दरा में देवी गिरिजा से कहा था ॥२१५॥ ऋषियों ने कहा—हे देवि ! अब आप अपने इस परम रम्य, प्रिय और मनोहारी रूप को इस प्रकार की कठिन तपश्चर्या से नष्ट मत करो। भगवान् शंकर अब आप पर प्रसन्न हो गये हैं

और वे आपका पाणिग्रहण करेंगे ।। २१६ ।। हमने पहिले ही आकर आपके पिताजी से भी प्रार्थना करदी है सो अब आप पिताजी के साथ अपने घर को चली जाओ और हम भी सब अपने निवास स्थान को जा रहे हैं ।।२१७।

इत्युक्ता तपसः सत्यं फलमस्तीति चिन्त्य सा ।
स्वरमाग्गा ययौ वेश्म पितुर्दिव्यं सुशोभितम् ।।२१८
सा तत्र रजनी मेने वर्षायुतसमां सती ।
हरदर्शनसञ्जातसमुत्कण्ठा हिमाद्रिजा ।।२१६
ततो मुहूर्त्ते ब्राह्मे तु तस्याश्चक्रु सुहृत्क्रियाम् ।
नानामङ्गलसन्दोहान्यथावत्क्रमपूर्वकम् ।।२२०
अभवन्मुनयो नागा यथागन्धर्वकिन्नराः ।
शङ्करस्यापि विबुधागन्धमादनपर्वते ।।२२१
सज्जमण्डनसम्भारास्तस्थुर्निर्मलमूर्त्तयः ।
शर्वस्याथ जटाजूटे चन्द्रखण्ड पितामहः ।।२२२
बबन्ध प्रणयोदारविस्फारितविलोचनः ।
कमलमालां विपुला चामुण्डा मूर्ध्निबध्नती ।।२२३
उवाच गिरिशं काली पुत्र जनय शङ्कर ।
यो दैत्येन्द्रकुल हत्वा मां रक्तैस्तर्पयिष्यति ।।
वायवश्चवपुस्तीक्ष्ण हिमगिरिप्रभम् ।
वृप विभूपयामासुर्हरयान मनोजवम् ।।२२४

पुलस्त्य मुनि कहा—इस प्रकार से मुनियों के द्वारा कही गई उस गिरिजा ने तपस्या का फल बिल्कुल सत्य है—ऐसा विचार किया और फिर प्रसन्नता से सयुत होती हुई वह अपने पिता के अत्युत्तम एवम् शोभा से सम्पन्न घर में तपोभूमि से गई थी ।। २१८ ।। वहाँ पर उस सती ने उस रात्रि को दश हजार वर्ष के तुल्य माना था क्योंकि उस हिमाद्रि की पुत्री को तो भगवान् शिव के दर्शन प्राप्त करने को अत्यन्त उत्कण्ठा उत्पन्न हो रही थी ।। २१६ ।। इसके अनन्तर ब्राह्म मुहूर्त्त मे उसकी सुहृत्क्रिया की थी और उचित रीति से क्रम-पूर्वक अनेक प्रकार के मङ्गल कार्यों के समूह भी किये गये थे ।।२२०।। इधर

छत्रैश्चामरजालैश्च भूषणैश्च विलेपनैः ।
अभिषिक्तो विधानेन यथावत्षण्मुखः प्रभुः ॥१२
सुतामस्मै ददौ शक्रो देवसेनेति विश्रुताम् ।
पत्न्यर्थं देवदेवेशो ददौ विष्णुरथायुधम् ॥१३
यक्षाणां दशलक्षाणि ददावस्यधनाधिपः ।
ददौहुताशनस्तेजो ददौवायुश्च वाहनम् ॥१४

उस बालक के स्कन्द, विशाख, षड्वक्त्र और कार्तिकेय ये नाम प्रसिद्ध हैं। चैत्र मास के बहुल पक्ष में पञ्चदशी तिथि में महान् बल सम्पन्न और सूर्य के समान प्रभा वाले विशाल शरों के वन में उत्पन्न हुए थे। शुक्ल पक्ष में पञ्चमी तिथि में उसी प्रकार से वे पावक—मनस्क हुए थे। बालकों में से एक को सन्ध्या में ही भूति के लिये किया था। फिर उसी षष्ठी तिथि में प्रभु गुह का अभिषेक किया गया था ॥८।९ १०॥ उन भगवान् षण्मुख प्रभु का अभिषेक विधि पूर्वक समस्त देवगण—ब्रह्मा उपेन्द्र, इन्द्र, भास्कर के द्वारा गन्ध, माल्य, शुभ धूप, क्रीडनक, छत्र, चामरों का समूह, भूषण और विलेपनों से किया गया था ॥११।१२॥ देवराज इन्द्र ने अपनी पुत्री देव सेना नाम से प्रसिद्ध होने वाली को इस षण्मुख प्रभु को दे दिया था। देवदेवेश ने अपनी कन्या को पत्नी के स्वरूप में इनको प्रदान की थी। भगवान् विष्णु ने आयुध दिया था ॥१३॥ धन के स्वामी कुबेर ने इनको दश लाख यक्षों की सेना प्रदान की थी। हुताशन देव ने तेज दिया था तथा वायु ने वाहन प्रदान किया था ॥१४॥

ददौक्रीडनकं त्वष्टा कुक्कुटं कामरूपिणम् ।
एवं सुरास्तु ते सर्वे परिवारमनन्तकम् ॥१५
ददुर्मुदितचेतस्काः स्कन्दायादित्यवर्चसे ।
जानुभ्यामवनौ स्थित्वा सुरसङ्घास्तमस्तुवन् ।
स्तोत्रेणानेन वरद षण्मुख मुरुप्रदाः सुराः ॥१६
कं वः कामं प्रयच्छामि भवन्तो ब्रूत निर्वृताः ।
यद्यप्यसाध्यं कृत्यं नो हृदये चिन्तितं चिरम् ॥१७
इत्युक्तास्तु सुरास्तेन प्रोचुः प्रणतमौलयः ।
सर्वएव महात्मानं गुहं मुदितमानसाः ॥१८

दैत्येन्द्रस्तारको नाम सर्वामरकुलान्तकृत् ।
बलवान्दुर्जयस्तीक्ष्णो दुराचारोऽतिकोपनः ॥१६
तमेव जहि दुर्धर्षं दैत्यं सर्वविनाशनम् ।
उपस्थितः कृत्यशेषो ह्यस्माकं च भयावह ॥२०
हिरण्यकशिपुश्चोग्रो ह्यवध्यो देवतागणैः ।
यज्ञघ्नः पापकर्मा वै येन ब्रह्मापि तापितः ॥
एतौ हरस्व भद्रं ते तावकं च महाबलम् ॥२१

त्वष्टा देव ने कामरूपी कुक्कुट क्रीडनक प्रदान किया था । इस प्रकार से वे समस्त सुरगण उसका अनन्त परिवार था ॥ १५ ॥ भगवन् सूर्य के सदृश वर्चस वाले भगवान् स्कन्द के लिये सब देवताओं ने बहुत ही प्रसन्न चित्त से युक्त होकर ये वस्तुएँ प्रदान की थीं । सब देवता भूमि पर घुटनों से स्थित होकर उससे बोले और सुरों ने मुख्यतया वरद प्रभु का स्तोत्र के द्वारा स्तवन भी किया था ॥ १६ ॥ कुमार ने कहा—मैं आपकी किस कामना को पूर्ण एवम् सफल करूँ । आप सब लोग सुनिवृंत होते हुए मुझे बतलादो । चाहे वह कार्य असाध्य ही क्यों न हो, आपने जिसको चिरकाल से हृदय में सोच रक्खा हो उसे ही मुझसे कह दो ॥ १७ ॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इस तरह से स्कन्द के द्वारा जब देवगण से कहा गया तो समस्त देवताओं ने अपना मस्तक उनके आगे झुका दिया था और फिर बहुत ही अधिक प्रसन्न मन वाले होकर महान् आत्मा वाले भगवान् गुह से बोले ॥१८॥ देवों ने कहा—हे भगवन् ! तारक नाम वाला एक दैत्यों का राजा है । वह समस्त देवताओं के कुल का विनाश करने वाला है । वह बहुत ही अधिक बलवान्, दुर्गम, अत्यधिक तीक्ष्ण और बहुत ज्यादा क्रोध वाला है ॥१६॥ उसी दुष्ट दुर्धर्ष और सम्पूर्ण देवों के नाशक दैत्य का आप वध कर दीजिए । हम लोगों का अत्यन्त भयावह यही एक कृत्य शेष है जो कि इस समय उपस्थित है ॥२०॥ हिरण्यकशिपु भी अत्यन्त उग्र और देवगणों के द्वारा अवध्य है । वह यज्ञों के नाश करने वाला और पाप कर्मों के करने वाला है । वह ऐसा भीषण दैत्य है कि जिसने ब्रह्माजी को तापित कर दिया था । इसका अपहरण कीजिए क्योंकि आपका तो महान् बल है ॥ २१ ॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सर्वामरपदानुग ।
जगाम जगतां नाथ स्तूयमानोऽमरेश्वरैः ॥२२
तारकस्य वधार्थाय जगतां कण्टकस्य च ।
ततश्चप्रेषयामास शक्रो लब्धसमाश्रय. ॥२३
दूतं दानवसिंहस्य परुषाक्षरवादिनम् ।
स तु गत्वाऽब्रवीद्दैत्यमभयो भीमदर्शनम् ॥२४
शक्रस्त्वामाह देवशो दैत्यकेतु दिवस्पतिः ।
तारकासुर तच्छ्रुत्वा घटयस्व यथेच्छया ॥२५
यज्जगज्ज्वलनोद्दीप्तं किल्विषं च त्वया कृतम् ।
तस्याहं सादकस्तेऽद्य राजाऽस्मि भुवनत्रये ॥२६
श्रुत्वैतदद्भुत वाक्यं कोपसरक्तलोचनः ।
उवाच दूत दुष्टात्मा नष्टप्रायविभूतिकः ॥२७
दृष्टं ते पौरुष शक्र शतशोऽथ महारणे ।
निस्त्रपत्वान्न ते शान्तिर्विद्यते शक्र दुर्मते ॥२८

पुलस्त्य ने कहा—इस रीति से देवों के द्वारा प्रार्थना करने पर ऐसा ही किया जायगा—यह षण्मुख ने कहा था। उस समय समस्त देवता उनके चरणों में गिरकर प्रणाम करने लगे थे। इस तरह देवेश्वरों के द्वारा स्तुत होकर यह जगत् का स्वामी चला गया था ॥२२॥ उसने जगत् के कण्टक स्वरूप दुःख-दायी तारक के वध करने के लिये गमन किया था। इसके अनन्तर षण्मुख का समाश्रय प्राप्त करके इन्द्र ने दानवों में सिंह के समान तारक के पास एक दूत को भेज दिया था जो बहुत ही कठोर भाषण करने वाला था। वह दूत उसके पास पहुँचा और निर्भय होकर उसने दैत्य से कहा—॥२३।२४॥ दूत बोला—स्वर्गलोक के स्वामी देवराज इन्द्र ने दैत्यकेतु आपके समीप में यह सन्देश कहलाकर भेजा है कि हे तारकासुर! अब आप अपनी पूर्ण शक्ति का इच्छा-पूर्वक प्रयोग कर लीजिए ॥२५॥ आपने इस सम्पूर्ण जगत् को ताप दग्ध करके जो अत्यन्त उद्दीप्त पाप किया है मैं उसका सादक हूँ और आज ही उस पाप का फल मैं दूँगा क्योंकि इन तीनों भुवनों का राजा हूँ ॥२६॥ पुलस्त्य ने कहा—

दूत के द्वारा कथित इस अद्भुत वाक्य को सुनकर वह तारक क्रोध से लाल नेत्रों वाला हो गया था और अपनी सम्पूर्ण विभूति को प्रायः नष्ट करने वाला वह दुष्ट आत्मा वाला दूत से बोला—॥२७॥ तारकासुर ने कहा—उस इन्द्र का मैंने एकबार नहीं सैकड़ों बार संग्राम भूमि में पौरुष देख लिया है। हे दुष्ट बुद्धि वाले इन्द्र ! तू तो बहुत ही निर्लज्ज है और अभी तक भी तुझे शान्ति नहीं हुई है, इसका कारण तेरी लज्जाशून्यता ही है ॥२८॥

एवमुक्ते गते दूते चिन्तयामास दानवः ।
नालब्धसंश्रयश्शक्रो वक्तुमेवमिहार्हति ॥२९
जातः स्कन्दोऽपुना शर्वाज्जायते समुपाश्रयः ।
निमित्तौघास्तदा दुष्टान्सोऽपश्यन्नाशवेदिनः ॥३०
पांसुवर्षमसृक्पात गगनादवनीतले ।
वामनेत्रप्रकम्पं च वक्षशोषं मनोभयम् ॥३१
स्वकानां ववत्रपद्मानां म्लानतां च व्यलोकयत् ।
दुष्टांश्च प्राणिनो रौद्रान्सोऽपश्यद्दुष्टवादिनः ॥३२
तदचिन्त्यैवदितिजोन्यस्तचित्तोऽभवत्क्षणात् ।
यावद्गजघटाघण्टाघनत्कारखोत्कटाम् ॥३३
तद्वत्तुरङ्गमङ्घातहेषोत्साहविभूषिताम् ।
सैन्यस्सेनान्तरोदग्रध्वजराजैर्विराजिताम् ॥३४
विमानैश्चाद्भुताकारैश्चलितामलचामरैः ।
विभूषणपिनद्धां च किन्नरोद्गीतनादिताम् ॥३५

पुलस्त्य मुनि ने कहा—ऐसा कहने के पश्चात् दूत के चले जाने पर उस दैत्येन्द्र ने विचार किया था कि बिना किसी बड़ी शक्ति का समाश्रय पाये यह इन्द्र इस प्रकार से निडर होकर कहने के योग्य नहीं हो सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् शंकर से इस समय में स्कन्द का जन्म हो गया है और वही इस इन्द्र का समाश्रय हो सकता है ॥२९॥ उस समय में नाश के ज्ञापन करने वाले अत्यन्त दुष्ट निमित्तों के समूहों को उस तारकासुर ने देखा था ॥३०॥ आकाश से धूलि की वर्षा और भूमि पर रक्त का पात उस समय में होने लगा

था। उस तारक के वाम नेत्र प्रकम्पित होने लगे तथा उसके मुख में शुष्कता आ गई थी और मन मे महान् भय समुत्पन्न हो गया था ॥ ३१ ॥ उसने अपने मुख पर पद्मों मे म्लानता देखी थी। तारक दैत्येन्द्र ने दुष्ट प्राणियों को अत्यन्त रौद्र रूप वाले और दूषित भाषण करने वाले देखा था ॥३२॥ इन सब बुरे कुशकुनों की तथा बुरे निमित्तों की कुछ भी परवाह न करके एक ही क्षण मे व्यस्त चित्त वाला होगया था। जितने भी उसकी सेना मे हाथी थे उनके समूहों के घण्टाओं की ध्वनि से उत्कट उसकी सेना वहाँ उसने देखी थी ॥३३॥ इसी भाँति वह सेना अश्वों के समुदाय की हिनहिनाहट के उत्साह मे समन्वित हो गई थी। सेनान्तर के उदग्र ध्वजराजों से संयुत सैनिकों से भी वह सुशोभित हो रही थी ॥३४॥ अद्भुत आकार वाले और जिनमे निर्मल चमर डुराये जा रहे थे ऐसे विमानों से उसकी सेना समन्वित थी। बहुत से भूषणों से पिनद्ध उसकी सेना थी और उस सेना मे किन्नरों के द्वारा गाये हुए गीतों की ध्वनि की गूँज छायी हुई थी ॥३५॥

नानानाकतरुत्फुल्लकुसुमापीडधारिणीम् ।
विशोकाक्षपरिस्फारचर्म निर्मलदर्शिनीम् ॥३६
विद्युत्पुष्टद्युतिधरा नानावाद्यविनादिताम् ।
सेना नाकसदादैत्यः प्रासादस्थोव्यलोकयत् ॥३७
सचिन्तयामास तदा किञ्चिद्विभ्रान्तमानसः ।
अपूर्वः को भवेद्योद्धा योमयान विनिर्जितः ॥३८
ततश्चिन्ताकुलो दैत्यः शुश्राव कटुकाक्षरम् ।
सिद्धवन्दिभिरुद्घुष्टमिद हृदयदारुणम् ॥३९
श्रुत्वैतत्तारकः सर्वमुद्घुष्ट देववन्दिभिः ।
सस्मार ब्रह्मणो वाक्य वधबालादुपस्थितम् ॥४०
स्मृत्वा धर्मौघविध्वंसी सदा वीरपदानुग. ।
मन्दिरान्निर्जगामाशु शोकग्रस्तेन चेतसा ॥४१
कालनेमिमुखादैत्या सन्त्रस्ता भ्रान्तचेतसः ।
स्वेष्वनीकेषु च तदात्वराविस्मितचेतसः ।
हिरण्यकशिपुं प्राह दानवानां धुरन्धरः ॥४२

अनेक प्रकार के स्वर्ग के वृक्षों के विकसित पुष्पों के आपीड को धारण करने वाली वह तारक की सेना थी। विशोकास्त्र के परिस्फार, चर्म से निर्मल दिखाई देने वाली थी। विद्रुत की पर्ण पृष्ठ द्युति को धारण करने वाले—विविध प्रकार के वाद्यों से निनादित हँसती हुई सेना को स्वगव सियों के प्रसाद में स्थित उस दैत्येन्द्र तारक ने देखा था ॥३६॥ उस समय उस सुविशाल अपनी सेना को सुसज्जित देखकर उस दैत्यराज ने कुछ विशेष रूप से भ्रान्त मन वाला होकर चिन्तन किया था कि ऐसा कौन अपूर्व योधा है जो मेरे द्वारा नहीं जीता जा सकता हो ॥३७॥ इसके अनन्तर फिर चिन्ता से व्याकुल हुए उस दैत्येन्द्र ने यह अति कटु अक्षरों वाले—हृदय को दारुण लगने वाले और सिद्धगण तथा वन्दिगण के द्वारा उद्घुष्ट वचन सुने थे जो कि भगवान् स्कन्द के जय-जयकार को सूचित कर रहे थे ॥३८॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—उस तारक असुर ने इस देवगण तथा वन्दिगण के द्वारा उद्घोषित किये हुए वचनों का श्रवण करके फिर ब्रह्माजी के उन वचनों का स्मरण किया था जो वरदान प्रदान करने के समय में किसी सात दिन के बालक से वध होने के विषय में कहे गये थे ॥ ३९ ॥ सर्वदा जिसके वीर लोग पदानुगमन करने वाले रहते हैं ऐसे धर्म के समूह का विध्वंस करने वाला वह तारक असुर शोक से ग्रस्त चित्त से सयुन होकर अति-शीघ्र ही अपने मन्दिर से निकल गया था ॥४०॥ कालनेमि जिनमें प्रधान था ऐसे सभी दैत्यगण बहुत ही भयभीत और भ्रान्त चित्त वाले हो रहे थे। अपनी-अपनी सेनाओं में समास्थित होकर उस समय में त्वरा (शीघ्रता) से विस्मित चित्त वाले होते हुए वहाँ पर समुपस्थित थे। दानवों में धुरन्धर हिरण्यकशिपु से वाला ॥४१।४२॥

अपाकर भवेन्मह्य वलादस्मात्पलायनम् ।
यद्यह हन्तवे यामि सोऽपि कमलाश्रित ॥४३
हत्वाऽह बालकचैन दुस्स्पर्श स्यामकारणम् ।
यात धावत गृह्णीत योजयध्ववरूथिमीम् ॥४४
कुमार तारको दृष्ट्वा बभाषे भीषणाकृति ।
कि बाल योद्धुकामोऽसि क्रीड कन्दुकलीलया ।
यैरसि त्व विसृष्टोऽत्र सङ्गरे ते हि भीरव. ॥४५

बालत्वादय ते बुद्धिरेव स्वल्पार्थदर्शिनी ।
कुमारोऽपि तमग्रस्थं बभाषे हर्षवत्तमम् ॥४६

भृगुतारकशास्त्रार्थ इह नैव निरूप्यते ।
शस्त्रैरर्था न दृश्यन्ते समरे निर्भरं भये ॥४७

शिशुत्व मावमस्थामे शिशुः कष्टो भुजङ्गमः ।
दुष्प्रेक्षो भास्करो बालस्तथाहद्दुर्जयः शिशुः ।
अल्पाक्षरो न मन्त्र कि सस्फुरो दैत्य दृश्यते ॥४८

तारकासुर ने कहा—इस वर्तमान समय मे इस सेना से मेरा भाग जाना तो मेरे लिये अत्यन्त ही लज्जाजनक होगा । यदि मैं उस हनन करने वाले के सम्मुख जाता हूँ तो वह भी कमलाश्रित है । मैं इस बालक को मारकर बिना ही किसी कारण के दुःस्पश हो जाऊँगा ? जाओ, दौड़ो, पकड़ लो और सेना को योजित करो ॥४३॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—उस तारकासुर ने जब कुमार को देखा था तो उस समय मे वह अत्यन्त ही भीषण आकृति वाला होकर कुमार से बोला—तारक ने कहा—हे बालक ! क्या तू मुझ से युद्ध करने की इच्छा वाला होकर इस रणभूमि मे उपस्थित हुआ है ? अभी तो तू बहुत ही छोटा बच्चा है । गेंद के खेल से अपना दिल बहला । जिन लोगो ने तुझ छोटे से बालक को यहाँ पर युद्ध करने के लिये भेज दिया है, वे तो इस संग्राम मे स्वयं बहुत ही भयभीत रहने वाले हैं ॥४४ । तू अभी बहुत ही छोटा बच्चा है इसलिये बचपन के कारण होने से ही तेरी बुद्धि इस प्रकार से स्वल्प अर्थ को ही देखने वाली है । इसके पश्चात् आगे स्थित और अत्यन्त हर्षयुक्त उस दैत्येन्द्र से कुमार ने भी कहा था । ४५॥ कुमार बोले—हे तारक ! सुनिये, इस समय मे शास्त्रों के अर्थ नहीं निरूपित किये जाते हैं, यह तो संग्राम स्थल है इस समर-भूमि मे भय मे निर्भर व्यक्ति को शास्त्रों से अर्थ नहीं दिखलाई दिया करते हैं । ॥४६॥ हे दैत्यराज ! आप मुझे छोटा-सा एक शिशु मत समझो । यह शिशु अत्यन्त कष्टप्रद भुजङ्गम है । भास्कर भी बड़ी कठिनाई से जिसको देख सकता है ऐसा मैं दुर्जय शिशु बालक हूँ । क्या अल्प अक्षरों वाला मन्त्र नहीं होता है ? हे दैत्य ! वह भी स्फुरणत्व से युक्त दिखलाई दिया करता है ॥४७,४८॥

कुमारे प्रोक्तवत्येवं दैत्यश्चिक्षेप मुद्गरम् ।
कुमारस्तं तु चिच्छेद चक्रेणामोघवर्चसा ॥४९
ततश्चिक्षेप दैत्येन्द्रो भिन्दिपालमयोमयम् ।
करेण त च जग्राह कार्तिकेयोऽमरारिहा ॥५०
गदां मुमोच दैत्याय समुत्थाय खरस्वनाम् ।
तया हतस्ततो दैत्यश्चकम्पेऽचलराडिव ॥५१
मेने च दुर्जयं दैत्यस्तदा बालं सुदुःसहम् ।
चिन्तयामास बुद्धयावै प्राप्तःकालो ममंतयः ॥५२
कम्पितं च समालोक्य कालनेमि पुरोगमाः ।
सर्वे दैत्येश्वराः जघ्नुः कुमारं रणदारुणम् ॥५३
स तैः प्रहारैरस्पृष्टस्तथा क्लेशैर्महाद्युतिः ।
[illegible] बालो बलिभिर्वेगैरयुध्यद्दानवै रणे ॥५४
रणशौण्डाश्च दैत्येन्द्राःपुनर्जघ्नुःशिलीमुखैः ।
कुमारं समरे दैत्याः बलिनो देवकण्टकाः ॥५५
कुमारस्य व्यथा नाभूद्दैत्यास्त्र निहतस्य तु ।
प्राणान्तकरणं जातं देवानां दानवाहवम् ॥५६
देवान्निपीडितान्दृष्ट्वा कुमारः कोपमाविशत् ।
ततोऽस्त्रैर्दारयामास दानावानामनीकिनीम् ॥५७

पुलस्त्य महर्षि ने कहा—कुमार ने जब इस प्रकार से कहा तो इस कहने पर ही दैत्यराज ने कुमार पर मुद्गर का प्रहार कर दिया था। कुमार ने अपने अमोघ वर्चस वाले चक्र से उस मुद्गर को छिन्न कर दिया था ॥ ४९ ॥ इसके पश्चात् दैत्येन्द्र ने लौह से परिपूर्ण भिन्दिपाल नामक अस्त्र का प्रक्षेप किया था। देवों के शत्रुओं का हनन करने वाले कार्त्तिकेय ने उस भिन्दिपाल अस्त्र को अपने हाथ से ही ग्रहण कर लिया था ॥५०॥ फिर कुमार ने अत्यन्त खरध्वनि वाली गदा को उठाकर उस दैत्य पर उसको छोड़ दिया था। उस गदा के प्रहार से हत हुआ दैत्य एक महान् पर्वत की भाँति काँप उठा था ॥५१॥ इस गदा के प्रहार से चोट खाकर उस तारक दैत्य ने उस समय में उस बालक कुमार को

दुर्जय और दुःसह मान लिया था। उसने फिर तो अपनी बुद्धि में विचार किया था कि अब तो मेरा काम आ ही गया है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥ ५२ ॥ दैत्येन्द्र तारक को कम्पमान देखकर समस्त दैत्यों ने जिनमें कालनेमि प्रमुख था रण में परम दारुण कुमार पर हनन करने के लिये प्रहार किये थे ॥५३॥ किन्तु उन समस्त किये हुए प्रहारों से वह कुमार बालक अस्पृष्ट ही रहे थे अर्थात् उन प्रहारों का स्पर्श भी उनके शरीर से नहीं हुआ था। उन क्लेशों से महान् द्युति वाले वह कुमार वेग वाले और अत्यन्त बलधारी दानवों से उस रणभूमि में युद्ध करने लगे थे ॥५४॥ रण में शौण्ड अर्थात् अत्यन्त तेजस्वी, वीर दैत्येन्द्रों ने फिर कुमार पर बाणों के द्वारा प्रहार किये थे। वे दैत्य समर में अत्यन्त बलशाली थे और देवों के कण्टक अर्थात् दुःख देने वाले थे ॥५५॥ विविध भाँति से अस्त्रों के प्रहारों से भी कुमार को कुछ भी व्यथा नहीं हुई थी और दैत्य बराबर अपने अस्त्रों से उन्हें निहत करते चले जा रहे थे। यह दानवों का महान् युद्ध देवों के प्राणों का अस्त करने वाला ही हुआ था ॥५६॥ देवों को अत्यन्त उत्पीडित देखकर कुमार को बड़ा भारी क्रोध आ गया था। इसके पश्चात् उसने दानवों की सेना को अपने अस्त्रों से विदीर्ण कर दिया था ॥५७॥

तैरस्त्रैर्निष्प्रतीकारैस्ताडितास्सुरकण्टकाः ।
कालनेमिमुखाः सर्वे रणेह्यासन्पराङ् मुखाः ॥५८
विद्रुतेषु च दैत्येषु प्रहतेषु समन्ततः ।
किन्नरोद्गारगीतैश्च ह्यस्यसंन्यस्तचेतनः ॥५९
जघ्ने कुमार गदया निष्टप्तकनकत्विषा ।
शरैर्मयूरं चित्रैश्च चकार विमुखं रणे ॥६०
दृष्ट्वा पराङ्मुखो देवो मुक्तरक्तं स्ववाहनम् ।
जग्राह शक्तिं विमलां रणे कनकभूषणाम् ॥६१
बाहुना हेमकेयूररुचिरेण षडाननः ।
ततोऽब्रवीन्महासेनस्तारकं दानवाधिपम् ॥६२
तिष्ठतिष्ठ सुदुर्बुद्धे यमलोकं विलोकय ।
हतोह्यसि मया शक्त्या स्मरस्वं दैत्यचेष्टितम् ॥६३

बिना प्रतीकार होने वाले उन शस्त्रों से वे सुरों के कण्टक दुःख देने वाले कालनेमि प्रमुख समस्त दैत्य उस संग्राम में पराङ्मुख हो गये थे और हार मान गये थे, क्योंकि जिन-जिन अस्त्र शस्त्रों का वे स्कन्द कुमार पर प्रक्षेप कर प्रहार करते थे उनका उनके शरीर पर स्पर्श तक न होकर कोई भी परिणाम नहीं होता था और वे सभी व्यर्थ चले जाया करते थे ॥५८॥ जब सभी ओर से दैत्य भाग खड़े हुए और मारे गये थे तो किन्नरों के द्वारा गाये गये जो गीत थे उनमें उनका हास्य किया था। उस हास्य से सन्यस्त चेतना वाले उस दैत्येन्द्र ने संतप्त सुवर्ण के समान कान्ति वाली गदा से कुमार पर प्रहार किया था और विचित्र शरों से उस रणभूमि में स्कन्द के वाहन मयूर को विमुख कर दिया था ॥ ५६।६० ॥ स्कन्द देव ने देखा कि उनका अपना वाहन मयूर युद्ध स्थल में पराङ्मुख हो गया है और उसके शरीर से रक्त-पात हो रहा है तो फिर उन स्कन्द देव ने कनक भूषण शक्ति को जो कि विमल थी ग्रहण किया था ॥६१॥ भगवान् षडानन ने हेम के केयूर (अङ्गद) से सुशोभित एवम् परम सुन्दर भुजा से उस शक्ति को लेकर फिर वह महासेन दानवों के अधिप तारकासुर से बोले ॥ ६२ ॥ महासेन प्रभु ने कहा—हे अत्यन्त दुष्ट बुद्धि वाले दैत्यराज ! खड़ा, रह, खड़ा रह, और अब तू यमलोक की ओर अपनी दृष्टि डाल ले। अब तू मेरी इस महती शक्ति से समझ ले, मारा जा रहा है। अब तू अपने दैत्यो द्वारा किये हुए चेष्टितों (कर्मों) का अच्छी तरह से स्मरण करले ॥६३॥

इत्युक्त्वा तु ततः शक्तिं मुमोच दितिजं प्रति।
सा कुमारभुजोत्सृष्टा तत्केयूररवानुगा ॥६४
विभेद दैत्यहृदयं वज्रशैलेन्द्र कर्कशम्।
गतासुः स पपातोर्व्यां प्रलये भूधरो यथा ॥६५
विकीर्णं मुकुटोष्णीषोविस्रस्ताखिलभूषणः।
तस्मिन्विनिहते दैत्ये दानवानां धुरन्धरे ॥६६
नाभूत्कश्चित्तदा दुःखी नरकेष्वपि पापकृत्।
स्तुवन्तः षण्मुखं देवाः प्राक्रीडन्नागतस्मिताः ॥६७
जग्मुः स्वानेवभुवनाचिरस्था संस्तयोत्सुकाः।

ददुश्चापि वरं सर्वे देवास्ते षण्मुखाय तु ।
तुष्टाः सम्प्राप्तसर्वार्थास्त्विह सिद्धैस्तपोधनैः ॥६८
यः पठेत्स्कन्दसम्बन्धां कथामेतां महामतिः ।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स भवेत्कीर्तिमान्नरः ॥६९
बह्वायुः सुभगः श्रीमान्कीर्तिमाञ्छुभदर्शनः ।
भूतेभ्योनिर्भयश्चापि सर्वदुःखविवर्जितः ॥७०
सन्ध्यामुपास्य य पूर्वां स्कन्दस्य चरितं पठेत् ।
सयुक्तः किन्नरैः सर्वैर्महाधनपतिर्भवेत् ॥७१

पुलस्त्य महर्षि ने कहा—इतना कहकर फिर स्कन्द देव ने उस शक्ति को उस दिति के पुत्र पर छोड़ दिया था। उस सुवर्ण के केयूर को धारण करने वाली भुजा से छोड़ी हुई उस शक्ति ने वज्र के पर्वत के तुल्य अत्यन्त कर्कश दैत्येन्द्र के हृदय का भेदन कर दिया था। वह फिर प्राणों के त्याग कर जाने वाला दैत्यराज प्रलय काल में पर्वत की भाँति भूमि पर गिर पड़ा था ॥ ६४।६५ ॥ अब मरकर भूमि पर गिर गया था, तो उसके मस्तक का मुकुट और उष्णीष (पाग) विकीर्ण होगये थे तथा अन्य सम्पूर्ण भूषण भी टूट-फूट-कर इधर उधर फैल गये थे। उस दानवों के महान् धुरन्धर दैत्यराज तारक के मर जाने पर उस समय में कोई पापों के करने वाला नरकों में भी दुःखित नहीं हुआ था। सब देवता लोग हँसते और प्रसन्न होते हुए भगवान् षण्मुख की स्तुति करते हुए वहाँ पर आकर आनन्द से क्रीड़ा करने लगे थे ॥६६॥ फिर वे सब अपने भुवनों को छोड़कर वहाँ पर बड़ी उत्सुकता वाले होकर चले गये थे। वहाँ पर सब देवगणों ने भगवान् षण्मुख के लिये वरदान दिया था। सिद्ध लोग तथा तपस्वीजनों के साथ सभी लोग परम सन्तुष्ट हुए थे और उनके सभी अर्थ निष्पन्न हो गये थे ॥६७॥ देवों ने कहा—जो कोई भी महान् मति वाला पुरुष इस भगवान् स्कन्द से सम्बन्ध रखने तारकासुर के वध की कथा का अध्ययन करेगा या इसका श्रवण करेगा अथवा इस कथा को किसी को श्रवण करायेगा वह मनुष्य अत्यधिक कीर्ति वाला हो जायगा। वह बहुत अधिक आयु वाला, सौभाग्य-सम्पन्न, श्रीमान्—कीर्ति समन्वित, शुभ दर्शन वाला—समस्त प्राणियों

से भय रहित और समस्त प्रकार के कष्टों से रहित हो जायगा। यह ऐसी परम पुण्यमयी कथा है कि इसके भक्तिपूर्वक पढ़ने-सुनने और सुनाने से ये सभी उपर्युक्त फल वाले हो जाते हैं। जो कोई भी मनुष्य अपनी प्रातःकालीन सन्ध्या की उपासना करके इस स्कन्द देव के द्वारा किये गये तारकासुर के वध किये जाने वाले चरित्र की कथा को पढ़ता है। वह समस्त किन्नरों से समन्वित होकर महान् धनपति हो जाता है॥ ६८ से ७१॥

॥ नृसिंहावतार वर्णन ॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि हिरण्यकशिपोर्वधम्।
नरसिंहस्य माहात्म्यं तथा पापविनाशनम्॥१
पुरा कृतयुगे राजन्हिरण्यकशिपुः प्रभुः।
दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत्तपः॥२
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
जलवासी समभवत्स्नानमौनधृतव्रतः॥३
वृतः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च॥४
ततः स्वयम्भूर्भगवान्स्वयमागत्य तत्र हि।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता॥५
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसानेन सुव्रत।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि॥६

भीष्म देव ने कहा—हे भगवन्! अब मैं हिरण्यकशिपु का वध किस प्रकार से हुआ था—यह श्रवण करने की इच्छा करता हूँ। मेरी यह भी इच्छा है कि भगवान् नरसिंह का, पापों को विनष्ट करने वाला माहात्म्य भी आपसे सुनूँ॥१॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—प्राचीन समय में कृतयुग में हे राजन्! दैत्यों के आदि पुरुष प्रभु हिरण्यकशिपु ने महान् तप किया था॥ २ ॥ स्नान और व्रत को धारण करने वाला होकर उस हिरण्यकशिपु ने ग्यारह हजार वर्ष तक जल में ही निवास किया था॥३॥ उसने शम और दम का व्रत धारण किया

था और ब्रह्मचर्य के महाव्रत से युक्त वह रहा था। इस तरह के अत्यन्त दुष्कर तप से और नियमों के धारण करने से उस पर ब्रह्माजी बहुत अधिक प्रसन्न हो गये थे ॥४॥ इसके अनन्तर सूर्य के समान वर्ण वाले भासमान हंस से युक्त विमान के द्वारा भगवान् स्वयम्भू वहाँ पर आये थे, जहाँ वह दैत्यराज हिरण्यकशिपु घोर तपश्चर्या कर रहा था ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे सुव्रत ! मेरे परम भक्त तुम्हारे इस घोर तप से मैं बहुत प्रसन्न होगया हूँ। अब तुम कोई भी वरदान मुझसे प्राप्त कर लो जिससे तुम्हारी यथेष्ट कामना पूर्ण हो जावे—तेरा कल्याण हो ॥६॥

न देवाः सुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसा. ।
न मानुषाः पिशाचाश्च हन्युर्मां देवसत्तम ॥७
ऋषयो मानवाः शापैर्नशपेयुः पितामह ।
यदि मे भगवान्प्रीतो वर एष वृतो मया ॥८
न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ।
न शुष्केण न चार्द्रेण न स्याच्चान्येन मे वधः ॥९
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशन ।
सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश ॥१०
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्ष. किम्पुरुषाधिपः ॥११
एष दिव्यो वरस्तात मया दत्तस्तवाद्भुत ।
सर्वकामप्रदो वत्स प्राप्स्यसि त्वं न संशय ॥१२
एवमुक्त्वा स भगवाञ्जगामाकाशमेव हि ।
वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥१३
ततो देवाश्च गन्धर्वा. ऋषिभि· सह चारणा ।
वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिता. ॥१४

हिरण्यकशिपु ने कहा—हे देवो में परम श्रेष्ठ ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो मैं यह वरदान चाहता हूँ कि मुझे देव, गन्धर्व, सुर, यक्ष, उरग, राक्षस, मनुष्य और पिशाच इनमें कोई भी न मार सकें। हे

पितामह ! ऋषिगण और मुनिवृन्द मुझे किसी प्रकार के शाप न दे सकें। किसी भी शस्त्र-अस्त्र, गिरि और पादप, शुष्क तथा गीले के द्वारा मेरा वध न हो। ७॥ । ८।९॥ मैं ही सूर्य-सोम वायु अग्नि-सलिल-अन्तरिक्ष समस्त नक्षत्र, दश दिशाएँ-क्रोध-काम-वरुण-वासव और यम हो जाऊँ॥ १०॥ मैं धनद जो कि सम्पूर्ण धन का स्वामी है और किम्पुरुषों का अधिपति यक्षराज हो जाऊँ—ऐसा ही वरदान मुझे दीजिए॥११॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे तात! यह वरदान बहुत ही दिव्य है और अत्यन्त अद्भुत है किन्तु मैं तो तुझ पर इतना प्रसन्न हो गया हूँ कि मैंने आज दे ही दिया है। यह वरदान तो तेरी सम्पूर्ण कामनाओं के प्रदान करने वाला होता है। हे वत्स! तू इसे अवश्य ही प्राप्त करेगा। इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है॥ १२॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इस प्रकार से वह भगवान् ब्रह्माजी उस हिरण्यकशिपु से कहकर आकाश में जो वैराज-ब्रह्मर्षिगण के द्वारा सेवित ब्रह्म-सदन है वहाँ पर चले गये थे। इसके अनन्तर समस्त देवता—गन्धर्व और ऋषियों के साथ चारण लोग इस हिरण्यकशिपु को दिये गये वरदान का श्रवण कर पितामह के समीप में समुपस्थित होगये थे॥१३ १४॥

वरप्रदानाद्भगवन्वधिष्यति स नोऽसुर।
तत्प्रसादश्च भगवान्वधोऽप्यविचिन्त्यताम्॥१५
भगवान्सर्वभूतानामादिकर्त्ता स्वयं प्रभुः।
स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिः परः॥१६
सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देव प्रजापतिः।
आश्वासयामास तदा सुशीतैर्वचनाम्बुभिः॥१७
अवश्य त्रिदशास्तेन प्राप्तव्य तपसः फलम्।
तपसोऽन्तेऽस्य भगवान्वधं विष्णु करिष्यति॥१८
तच्छ्रुत्वा विबुधाः वाक्यं सर्वे पङ्कजजाननात्।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्रं जग्मुर्मुदान्विताः॥१९
लब्धमात्रे वरे सोऽथ प्रजास्सर्वा अबाधत।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन गर्वितः॥२०
आश्रमेषु महाभागान्मुनीन्वै शसितव्रतान्।
सत्यधर्मपरान्दान्तान्धर्षयामास दानव॥२१

देते हैं। आप सब लोग पूर्व की भाँति उसी प्रकार से त्रिदिव की प्राप्ति कर लेंगे इस कार्य के होने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। अर्थात् आप सब देवता शीघ्र ही स्वर्ग के स्वामी हो जायेंगे ॥२७॥ इस तरह ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त कर अत्यन्त गर्व में भरे हुए और वध करने के अयोग्य, अमरों के द्वारा गणों के सहित उस दैत्य हिरण्यकशिपु को मैं मार दूँगा ॥२८।२९॥

एवमुक्त्वा तु भगवान्विश्वपो विष्णुरव्ययः ।
हिरण्यकशिपुस्थानं जगाम हरिरीश्वरः ॥३०
तेजसा भास्कराकारः शशी कान्त्येव चापरः ।
नरस्य कृत्वार्धतनुं सिंहस्यार्द्धतनुं तथा ॥३१
नारसिंहेनवपुषा पाणि सङ्गृह्यपाणिना ।
ततोददर्श विस्तीर्णा दिव्या रम्यामनोरमाम् ॥३२
सर्वकामयुता शुभ्रा हिरण्यकशिपोः सभाम् ।
विस्तीर्णायोजनशतं शतमध्यर्द्धमायताम् ॥३३
वैहायसी कामगमा पञ्चयोजनमुच्छ्रिताम् ।
जराशोकक्लमापेता निष्प्रकम्प्यां शिवा सुखाम् ॥३४

पुलस्त्य मुनि ने कहा—इस समस्त विश्व के पालन करने वाले भगवान् अव्यय विष्णु ने इस रीति से उन देवगण को कहकर फिर वह ईश्वर हरि हिरण्यकशिपु के निवास स्थान में चले गये थे। उस समय में वह भगवान् विष्णु तेज से सूर्य के समान आकार वाले थे और शरीर की कान्ति उनकी ऐसी थी मानो वह दूसरे चन्द्रमा ही हो। उन्होंने अपना आधा शरीर तो मनुष्य का-सा धारण किया था और आधा शरीर शेर जैसा बना लिया था। अर्थात् नरसिंह स्वरूपधारी अद्भुत बन गये थे जो कि नर और सिंह दोनों का ही एक मिश्रित स्वरूप था ॥३०॥ उन नरसिंह वपुधारी भगवान् ने अपने हाथ में उसका हाथ पकड़ लिया था और फिर उसकी परम विस्तीर्ण अत्यन्त मनोरम—रम्य एवं दिव्य सभा का निरीक्षण किया था ॥३१॥ उसकी वह सभा सम्पूर्ण कामनाओं से समन्वित थी और अत्यन्त शुभ्र वर्ण वाली थी। हिरण्यकशिपु की उस सभा का विस्तार सौ योजन का था और शतमध्यर्द्ध उसका आयतन था ॥ ३२ ॥

आकाश में अपनी इच्छा एवम् कामना के अनुसार ही गमन करने वाली वह उसकी सभा थी। एक योजन चार कोस का होता है इस प्रमाण से पाँच योजन की उस दैत्यराज की सभा की ऊँचाई थी। जरा (वृद्धता), शोक और क्षमा से वह रहित थी अर्थात् उस सभा में जो भी कोई स्थित रहते थे उन पर जरा और शोक का कुछ भी प्रभाव नहीं होता था। उसकी सभा प्रकम्पन के योग्य नहीं थी अर्थात् उसे कोई भी प्रकम्पित नहीं कर सकता था। हिरण्यकशिपु की सभा परम मङ्गलमयी और सुख प्रदान करने वाली थी ॥३३।३४॥

महाराज महाबाहो दैत्यानामादिसम्भव ।
न श्रुतं नैव मे दृष्टं नारसिंहमिदं वपु ॥३५
अव्यक्तं परमं दिव्यं किमिदं रूपमागतम् ।
दैत्यान्तकरणं घोरं शंसतीव मनो मम ॥३६
अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितस्तथा ।
हिमवान्पारियात्रश्च ये चान्येकुलपर्वताः ॥३७
चन्द्रमास्सहनक्षत्रैरादित्यो रश्मिभिः सह ।
धनदो वरुणश्चैव यमः शक्र शचीपतिः ॥३८
मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
नागायक्षाः पिशाचाश्च राक्षसाः भीमविक्रमाः ॥३९
ब्रह्मा देवा पशुपतिर्ललाटस्थाः भ्रमन्ति हि ।
स्थावराणि च सर्वाणि जङ्गमानि तथैव च ॥४०
भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वदैत्यगणैर्वृतः ।
विमानशतसङ्कीर्णा सर्वा या भवतः सभा ॥४१
सर्वं त्रिभुवनं राजँल्लोकधर्मश्चशाश्वतः ।
दृश्यन्ते नरसिंहेऽस्मिंस्तथेदं निखिलं जगत् ॥४२

प्रह्लाद ने कहा—हे महाराज ! हे महान् बाहुओं वाले ! आप तो दैत्यों के आदि सम्भव हैं अर्थात् दैत्यों में सबसे आदि में आपके जैसे स्वरूप वाले हुए हैं। मैंने तो आज तक न कहीं कभी श्रवण किया है और न मैंने अभी तक आपके जैसे नारसिंह शरीर का अवलोकन ही किया है। यह प्रथम अवसर

ही है जो आधे नर और आधे सिंह के स्वरूप को मैं इस समय मे देख रहा हूँ ॥३५॥ यह आपका परम दिव्य और अव्यक्त क्या रूप आया है ? मेरा मन यह कहता है कि यह आपका स्वरूप जो कि अत्यन्त घोर है समस्त दैत्यों की समाप्ति कर देने वाला है ॥ ३६ ॥ आपके इस स्वरूप में समस्त देव—सागर नदियाँ शरीर में स्थित हैं। हिमवान्—पारियात्र और अन्य कुल-पर्वत भी स्थित हैं ॥ ३७ ॥ समस्त नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा और रश्मियों के साथ सूर्य, धनद, वरुण, पिशाच और भीम पराक्रम वाले राक्षस—ब्रह्मा, देवगण मरुत, गन्धर्व, तप के ही धन वाले ऋषिगण, नाग, यक्ष, यम, शची का पति इन्द्र, पशुपति य स्व आपके ललाट में स्थित होकर भ्रमण किया करते हैं। समस्त स्थावर तथा सब चर—आप जो कि हमारे सबके मंडित हैं और समस्त दैत्यगणों से वृत हैं इनके स्वरूप में स्थित हैं। सकड़ों विमानों से सङ्कीर्ण यह आपकी पूरी सभा सम्पूर्ण त्रिभुवन और हे राजन् ! शाश्वत लोक धर्म सभी कुछ तथा यह पूरा जगत् इन भगवान् नृसिंह के स्वरूप में दिखलाई दे रहा है ॥ ३८ से ४२ ॥

प्रह्लादस्य वच श्रुत्वा हिरण्यकशिपु. प्रभु• ।
उवाच दानवान्सर्वान्गणाश्च सगणाधिप ॥४३
मृगेन्द्रा गृह्यतामेष अपूर्वा तनुमास्थित ।
यदि वा सशय कश्चिद्वध्यता वनगोचर ॥४४
ते दानवगणास्सर्वे मृगेन्द्र भीमविक्रमम् ।
परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुराजसा ॥४५
सिंहनाद विमुच्याऽथ नरसिंहो महाबल ।
बभञ्ज ता सभा सर्वां व्यादितास्यइवान्तक ॥४६
सभाया भज्यमानाया हिरण्यकशिपु स्वयम् ।
चिक्षेपास्त्राणिसिंहस्य रोषव्याकुललोचन ॥४७
सर्वास्त्राणामथश्रेष्ठ दण्डमस्त्र सुदारुणम् ।
कालचक्र तथा घोर विष्णुचक्र तथापरम् ॥४८
पैतामह महात्युग्रं त्रैलोक्यनिर्मित महत् ।
विचित्रामशनिंचैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम् ॥४९

पुलस्त्य मुनि ने कहा—प्रह्लाद के इस वचन को श्रवण करके प्रभु हिरण्यकशिपु जो कि सभी गणों का अधिप था अपने समस्त गणों से और दानवों से बोला ॥४३॥ हिरण्यकशिपु ने कहा—इस मृगेन्द्र को पकड लो जो अपने इस अद्भुत शरीर मे समास्थित होकर आया है। अथवा यदि कोई संशय हो तो इस वन में भ्रमण करने वाले को मार डालो ॥ ४४ ॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—हिरण्यकशिपु के ऐसा कहने पर वे समस्त दानव भीषण पराक्रम वाले मृगेन्द्र पर परिक्षेप करते हुए बहुत ही प्रसन्न हुए थे तथा अपने ओज से भगवान् नरसिंह को त्रास देने लगे थे ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर महान् बलवान् नरसिंह ने सिंहनाद किया था और फैलाये हुए मुख वाले अन्तक की भाँति उस पूरी दैत्यराज की सभा को भङ्ग कर दिया था ॥४६॥ उस अपनी सभा के भङ्ग हो जाने पर हिरण्यकशिपु ने स्वयं ही क्रोध से व्याकुल लोचनों वाला होकर नरसिंह भगवान् पर अस्त्रों का प्रक्षेप किया था ॥ ४७ ॥ उन अस्त्रों में परम श्रेष्ठ एवम् सुदारुण दण्ड अस्त्र था। काल चक्र तथा दूसरा परम घोर विष्णु चक्र था। महत् त्रैलोक्य में निर्मित अत्यन्त उग्र पितामह अस्त्र था। विचित्र अशनि और शुष्कार्द्र अशनि ये दोनों अशनि थे ॥४८।४९॥

हिरण्यकशिपु दैत्या विपण्णाश्शरणं ययुः ।
ततः प्रज्वलित· क्रोधात्प्रदहन्निव तेजसा ॥५०
तस्मिन्क्रुद्धे सुदैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत् ।
आवह. प्रवहश्चैव विवहोऽथ समीरणः ॥५१
परावहस्संवहश्च उद्वहश्च महाबलः ।
तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसिनः ॥५२
इत्येव क्षुभिताः सप्त मरुतो गगनेचराः ।
ये ग्रहास्सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति हि ॥५३
ते सर्वे गगने दृष्टा व्यचरंश्च यथासुखम् ।
अयोगतश्चाप्यचरद्योग निशि निशाचरः ॥५४
सग्रहः सहनक्षत्रैस्ताराप्रतिररिंदम ।
विवर्णता च भगवान्गतो दिवि दिवाकरः ॥५५

कृष्णः कबन्धश्च तदा लक्ष्यते सुमहान्दिवि ।
असृजच्चासिता सूर्यो धूमवत्ता विभावसु ॥५६

उस समय में दैत्यगण एकदम त्रस्त होकर परम विषाद को प्राप्त होगये थे और सबने हिरण्यकशिपु की शरण ली थी। इसके पश्चात् तेज से प्रदग्ध-सा होते हुए वह क्रोध से एकदम प्रज्वलित होगया था ॥ ५० ॥ उस दैत्येन्द्र के इस प्रकार से क्रुद्ध होने पर सम्पूर्ण जगत् अन्धकारमय होगया था। समीरण (वायु) प्रवह—प्रवह और विवह हो गया था ॥ ५१ ॥ महान् बलवान् वायु परावह, सवह, उद्वह और परिवह के स्वरूप वाला होकर उत्पातों के भय का कहने वाला था ॥५२॥ इस प्रकार से सात प्रकार के क्षुभित वायु आकाश में सञ्चरण करने वाले हो रहे थे। जो समस्त लोकों के ग्रह थे वे क्षय में प्रादुर्भूत हुए थे ॥ ५३ ॥ वे सब गगन में यथासुख हृष्ट होते हुए विचरण कर रहे थे। अयोग में निशा में निशाचर भी योग का आचरण कर रहा था ॥ ५४ ॥ हे अरियों के दमन करने वाले ! समस्त ग्रहों के साथ और सब नक्षत्रों के सहित तारापति और दिन में भगवान् दिवाकर विवर्णता को प्राप्त होगये थे ॥ ५५ ॥ उस समय में दिन में महान् कृष्ण कबन्ध दिखलाई दे रहा था। विभावसु सूर्य असित धूमवत्ता का सृजन कर रहा था ॥५६॥

गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परिविष्यते ।
सप्तधूमनिभा घोरा सूर्याः दिवि समुत्थिता ॥५७
सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गगा ।
वामे च दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती ॥५८
शनैश्चरो लोहिताङ्गो लोहिताङ्गसमद्युति ।
सम समधिरोहन्त सर्वे वै गगनेचराः ॥५९
शृङ्गाणिशनकैर्घोरा: युगान्तावर्त्तनग्रहाः ।
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ग्रहै सह तमोनुदः ॥६०
चराचरविनाशाय रोहिणीं नाभ्यनन्दत ।
गृहीतो राहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते ॥६१
उल्का प्रज्वलिताश्चन्द्रे व्यचरन्त यथासुखम् ।
देवानामधिपो देव सोऽप्यवर्षत शोणितम् ॥६२

आकाश में स्थित रहने वाले भगवान् प्रभीसा मे परिविष्ट हो रहे थे। दिव में सात धूम के सदृश सूर्य जिनका महान् घोर स्वरूप था समुदित हो गये थे ।।५७।। अन्तरिक्ष मे स्थित चन्द्रमा के ग्रह श्रृङ्गगामो होकर स्थित थे और वामभाग तथा दक्षिण भाग मे शुक्र और बृहस्पति स्थित हो गये थे ।। ५८ ।। शनैश्चर जो ग्रह था उसका वर्ण लोहित अङ्ग वाला होगया था जो रक्ताङ्ग के समान द्युति वाला था । समस्त गगनेचर ग्रह समरूप से समाधिरोहण कर रहे थे ।। ५६ ।। युगान्त के आवर्त्तन करने वाले ग्रह घोर रूप वाले होते हुए शनैः शनैः श्रृङ्गो को समधिरोहण कर रहे थे और नक्षत्रो के सहित चन्द्रमा समस्त ग्रहो के साथ तम का नोदन करने वाला था ।।६०।। वह सम्पूर्ण चर और अचर के विनाश के लिये रोहिणी का अभिनन्दन नहीं कर रहा था। राहु के द्वारा ग्रहण किया गया चन्द्रमा उल्काओ के द्वारा अभिहन्यमान किया जा रहा था था ।।६१।। प्रज्वलित उल्का चन्द्रमा मे सुखपूर्वक विचरण कर रहे थे । देवो के स्वामी जो देव थे वे भी शोणित (रुधिर) की वर्षा कर रहे थे ।।६२।।

दृश्यन्ते विविधोत्पाताः घोराः घोरनिदर्शनाः ।
एते चान्ये च बहवो घोररूपा समुत्थिता ।।६३
दैत्येन्द्रस्य विनाशाय दृश्यन्ते रणशंसिन ।
मेदिन्यां कम्पमानाया दैत्येन्द्रेण महात्मना ।।६४
महीधराः नागगणाः निपेतुरमितौजस ।
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चतो हुताशनम् ।।६५
चतु.शीर्षाः पञ्चशीर्षा सप्तशीर्षाश्च पन्नगाः ।
वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ।।६६
एलामुख कालियश्च महापद्मश्च वीर्यवान् ।
सहस्रशीर्षः शुद्धाङ्गो हेमतालध्वज प्रभुः ।।६७
शेषोऽनन्तो महानागो ह्यप्रकम्प्यश्च कम्पिता ।
दीप्यन्तेऽन्तर्जलस्थानि पृथिवीधराणि वै ।।६८
सप्तदैत्येन्द्रकोपेन कम्पितानि समन्ततः ।
नानातेजोधराश्चापि पातालतलचारिणः ।।६९

पातालेसहसा क्षुब्धे दुष्प्रकम्प्याः प्रकम्पिताः ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्तदासंस्पृष्टवान्महीम् ॥७०

इस प्रकार से उस समय में अनेक प्रकार के अत्यन्त घोर दिखलाई देने वाले महान् घोर उत्पात जो भी ये बतलाये गये हैं तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से घोर स्वरूप वाले समुत्थित होकर दिखलाई दे रहे थे ॥ ६३ ॥ ये सब उत्पात दैत्येन्द्र के विनाश करने के लिये रण में बतलाने वाले थे जो कि उस समय में दिखलाई दे रहे थे । महान् आत्मा वाले दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु के द्वारा यह भूमि कम्पमान हो रही थी और उस प्रकम्पित भूमि पर बड़े-बड़े ओज वाले जो नागगण एवम् महीधर (पर्वत) थे वे गिर रहे थे जो कि अपने मुखों से विष की ज्वाला से समाकुलित अग्नि का मोचन करते जा रहे थे । ॥६४।६५॥ अब उन नागगणों के नामों का उल्लेख किया जाता है कि उनमें चार शीर्षों वाले थे—पाँच मस्तक वाले थे—सात शिरों वाले थे ऐसे सर्प थे । उनमें वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय, एलामुख, कालिय, वीर्यवान् महापद्म, सहस्र शीर्षों वाला, मुद्गाङ्क, हेमताल ध्वज, शेष, अनन्त और महानाग थे सभी सर्पराज ऐसे थे जो कभी भी कम्पायमान होने योग्य नहीं हैं, किन्तु उस घोर समय में वे भी कम्पित हो उठे थे और जल के अन्दर स्थित हुए तथा पृथिवी के विवरों में स्थित होकर दीप्त हो रहे थे ॥ ६६।६७।६८ ॥ सातों भुवन दैत्येन्द्र के कोप से सभी ओर कम्पित होगये थे । जो अनेक प्रकार के तेज को धारण करने वाले पाताल लोक के तलचारी थे और सदा दुष्प्रकम्प्य अर्थात् कभी नहीं कँपाये जाने के योग्य थे वे भी जिस समय में पाताल लोक में क्षोभ हुआ था तो उसके क्षुब्ध होने पर प्रकम्पित हो गये थे । उस समय दैत्य हिरण्यकशिपु ने मही का स्पर्श किया था ॥६९ ७०॥

गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तथा ।
जीमूतघननिर्घोषो जीमूत इव वेगवान् ॥७१

देवारिर्दितिजो दृप्तो नृसिंहं समुपाद्रवत् ।
स तु तेन तलप्रोद्गतमृगेन्द्रेण महानखैः ।
तदा तुङ्गमहावेन विदार्य निहतो युधि ॥७२

महो च कालश्च शशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्याश्च दिशश्च सर्वा ।
नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गता प्रसाद दितिपुत्रनाशात् ।।७३
ततः प्रमुदिताः देवाः ऋषयश्च तपोधनाः ।
तुष्टुवुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेव सनातनम् ।।७४
यत्त्वया विधृत देव नारसिंहमिद वपु ।
एतदेवार्चयिष्यन्ति परापरविदो जना ।।७५

गदो, शूली, कराल, हिरण्यकशिपु, जीमूत, घननिर्घोष जो कि जीमूत के समान वेगवान् था—देवारि—दितिज और इस इन सबने भगवान् नृसिंह के ऊपर आक्रमण किया था, किन्तु वह हिरण्यकशिपु मृगेन्द्र के द्वारा अपने अत्यन्त तीक्ष्ण महान् नखों से ओङ्कार की सहायता से विदीर्ण करके युद्ध मे मार दिया गया था ।। ७१।७२।७३ ।। उस दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु के नाश से अर्थात् मर जाने से मही, काल, चन्द्रमा, नभ, सब ग्रह, सूर्य, सम्पूर्ण दिशाएँ, नदियाँ, शैल और समस्त महार्णव प्रसाद (प्रसन्नता) को प्राप्त होगये थे ।।७४।। इसके उपरान्त सब देवगण और तप को ही धन समझने वाले ऋषि लोग बहुत ही प्रसन्न हुए थे और दिव्य नामों के द्वारा उन सबने उस सनातन आदि देव की स्तुति की थी । उन्होंने नृसिंह भगवान् से कहा था—हे देव ! आपने इस समय में जो यह नृसिंह स्वरूप वाला शरीर धारण किया है, आपके इस शरीर का परापर के ज्ञाता लोग समर्थन करेंगे ।।७५।।

भवान्ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो देवसत्तम ।
भवान्कर्त्ता विकर्त्ता च लोकाना प्रभवोऽव्यय ।।७६
परा च सिद्धि च पर च सत्व पर रहस्य परम हविश्च ।
पर च धर्म परम यशश्च त्वामाहुरग्र्य परम पुराणम् ।।७७
पर च सत्य परम तपश्च पर पवित्र परम च मार्गम् ।
पर च यज्ञ परम च होत्र त्वामाहुरग्र्य परम पुराणम् ।।७८
पर शरीर परम च ब्रह्म पर च योग परमा च वाणीम् ।
पर रहस्य परमा गति च त्वामाहुरग्र्य परम पुराणम् ।।७९
एवमुक्त्वा तु भगवान्सर्वलोकपितामह ।
स्तुत्वा नारायण देव ब्रह्मलोक गत प्रभु ।।८०

ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरः सु च ।
क्षीरोदस्योत्तर कूल जगाम हरिरीश्वरः ॥८१
नारसिंह वपुर्देवः स्थापयित्वा सुदीप्तिमान् ।
पौराण रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः ॥८२
अष्टचक्रेण यानेन भूतियुक्तेन भास्वता ।
अव्यक्तप्रकृतिर्देवः स्वस्थानं गतवान्प्रभुः ॥८३

ब्रह्माजी ने कहा—हे नृसिंह देव ! आप ही ब्रह्मा—रुद्र और देवों में परम श्रेष्ठ महेन्द्र हैं । आप इन समस्त लोकों के सृजन करने वाले—विकर्ता अर्थात् विघटन करने वाले और प्रभु हैं तथा आप नाश रहित हैं ॥७७॥ आप ही परासिद्धि, परम सत्व, परम रहस्य, परम हवि, परम धर्म, परम यश, अव्यय और परम पुराण कहे गये हैं ॥७७॥ हे देव ! आपको परम सत्य—परम तप—परम पवित्र—परम मार्ग—परम यज्ञ—परम होत्र और आपको ही परम पुराण आदि मे होने वाले कहते हैं ॥७८॥ परम शरीर, परम ब्रह्म, परम योग, परमावाणी, परम रहस्य, परमागति और परम पुराण अव्यय आपको ही कहते हैं ॥७९॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—समस्त लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजी इस प्रकार से नृसिंह देव से प्रार्थना करके और नारायणदेव का स्तवन करके ब्रह्माजी फिर अपने ब्रह्मलोक को चले गये थे ॥८०॥ इसके अनन्तर हर्षातिरेक के कारण तूर्यों के बजाये जाने पर और अप्सराओं के नृत्य किये जाने पर भगवान् हरि ईश्वर क्षीर सागर के उत्तर तट पर चले गये थे ॥८१॥ देव ने अपना नारसिंह शरीर वहाँ पर स्थापित करके फिर सुदीप्तिमान् भगवान् गरुडध्वज अपने पुरान स्वरूप मे समास्थित होकर वहाँ से चले गये थे ॥८२॥ अव्यक्त प्रकृति वाले प्रभु आठ पहिए वाले—विभव से समन्वित देदीप्यमान यान के द्वारा अपने स्थान को चले गये थे ॥८३॥

॥ ब्राह्मण के लक्षण और महिमा ॥

कश्चपूज्यतमो विप्रो ह्यपूज्यो वाऽपि को भवेत् ।
विप्रस्य लक्षणं ब्रूहि याथातथ्य गुरोरपि ॥१

पूज्यः श्रोत्रियको नित्यं सदाचारसमन्वितः ।
सद्वृत्तः कलुषैर्मुक्तस्तीर्थभूतोजनोऽनघः ।।२
जातः कः श्रोत्रियस्तात सत्कुले वाप्यसत्कुले ।
सदसत्कर्म कर्त्ता वा कः पूज्यो भुवि वाडवः ।।३
सच्छ्रोत्रियकुलेजातो ह्यक्रियो नैवपूजितः ।
असत्क्षेत्रकुले पूज्यो व्यास वैभाण्डको यथा ।।४
क्षत्रियाणां कुले जातो विश्वामित्रोऽस्ति मत्समः ।
वेश्यापुत्रो वसिष्ठश्च अन्ये सिद्धाः द्विजादयः ।।५
तस्मात्सच्छ्रोत्रियादीना शृणु पुत्रक लक्षणम् ।
धराया तीर्थभूताना सर्वपापहराय च ।।६
जन्मनाब्राह्मणो ज्ञेय. संस्कारैर्द्विजउच्यते ।
विद्ययायातिविप्रत्व त्रिभि :श्रोत्रिय लक्षणम् ।।७

श्री देवर्षि नारदजी ने कहा—इस लोक में सबसे अधिक पूज्यतम विप्र कौन-सा होता है और अपूज्य कौन-सा विप्र होता है ? नारद मुनिने ब्रह्माजी से पूछा था कि गुरु जी ! विप्र का ठीक-ठीक लक्षण मुझे बतलाइये । १।। ब्रह्माजी ने कहा—जो विप्र श्रोत्रिय हो और नित्य ही सदाचार से समन्वित हो, सत् चरित्र वाला हो, समस्त प्रकार के कलुषों के मुक्त जो अनघ विप्र होता है वह तीर्थ स्वरूप हुआ करता है ।।२।। नारदजी ने कहा—हे तात ! सत्कुल में अथवा असत्कुल में भी कौन श्रोत्रिय समुत्पन्न हुआ है ? सत्कर्म अथवा असत्कर्म का करने वाला कौन है ? और इस भू मण्डल में पूजा के योग्य बाडव कौन है ? श्री ब्रह्माजी ने कहा—जो सत् और श्रोत्रिय कुल में उत्पन्न हुआ हो और क्रिया से हीन हो तो वह कभी भी पूजित नहीं हो सकता है । जो असत्कुल में तथा असत् क्षेत्र में समुत्पन्न हुआ हो वह भी पूज्य हो जाता है जिस तरह व्यास तथा वैभाण्डक पूज्य हो गये है ।।४।। विश्वामित्र महर्षि तो क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे किन्तु उनकी तपश्चर्या की क्रिया ऐसी उच्चस्तर की थी कि वह मेरे समान ही जगत्पूज्य एवम् वन्दनीय हो गये है । वसिष्ठ महामुनि वेश्या से समुत्पन्न पुत्र हैं—और इनके अतिरिक्त अन्य भी द्विज आदि सिद्ध हैं । ५।। इसलिये हे पुत्र !

इस धरा मंडल में सम्पूर्ण प्रकार के पापों के हरण करने के लिये तीर्थ स्वरूप श्रोत्रिय आदि के लक्षण तुम मुझ से श्रवण कर लो ॥६॥ ब्राह्मण तो जन्म से होता है अर्थात् ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न होने से ब्राह्मण कहलाता है किन्तु वह द्विज तभी होता है, जबकि उसके समुचित संस्कार किये जाते हैं। जब उसे विद्या प्राप्त होती है तो उसको विप्रत्व का पद मिलता है। ये तीनों प्रकार के लक्षण प्राप्त होने पर ही श्रोत्रिय कहलाता है। ब्राह्मण कुल में उत्पत्ति—संस्कारों से सम्पन्न और विद्वत्ता का लाभ ये तीनों ही होने पर श्रोत्रिय का लक्षण घटित होना है ॥७॥

विद्यापूतो मन्त्रपूतो वेदपूतस्तथैव च।
तीर्थस्नानादिभिर्मेध्यो विप्रः पूज्यतमः स्मृतः ॥८
नारायणेसदा भक्तः शुद्धान्तःकरणस्तथा।
जितेन्द्रियो जितक्रोधस्समः सर्वजनेषु च ॥९
गुरुदेवातिथेर्भक्तः पित्रोः शुश्रूषणेरतः।
परदारे मनो यस्य कदाचिन्नैव मोदते ॥१०
कामक्रोधादिनिर्मुक्त इन्द्रियैरमितः पुमान्।
परदाराग्न गृह्णाति मनसाऽपि गृहागतान् ॥११

विद्या अर्थात् वेद विद्या से पवित्र, मन्त्रों से अर्थात् सभी प्रकार के सुसंस्कारों के द्वारा पूत और वेद से पवित्र तथा तीर्थों के स्नान आदि से पवित्र विप्र ही परम पूज्य कहा गया है ॥८॥ भगवान् नारायण के चरणों में सर्वदा भक्ति रखने वाला—अत्यन्त शुद्ध अन्तःकरण वाला—इन्द्रियों को अपने वश में रखकर उन्हें जीत लेने वाला—क्रोध पर नियन्त्रण करके कभी भी क्रोध को न करने वाला और समस्त मनुष्यों को समान दृष्टि से देखने वाला अर्थात् सब को प्यार करने वाला जो विप्र होता है वह सबका परम पूज्य होता है ॥९॥ अपने श्री गुरुचरण—देवगण और अतिथियों में जो भक्ति भाव रखने वाला है अपने माता-पिता की सेवा में सर्वदा जो रति रखता है और पराई स्त्री में जिसका मन कभी भी मुदित नहीं होता है वही विप्र सबका पूज्यतम होता है ॥१०॥ जो काम, क्रोध आदि छः शत्रुओं से सर्वदा मुक्त रहता है और जिसके

ऊपर इन्द्रियों का कोई भी प्रभाव नहीं होता है अर्थात् जो पुरुष इन्द्रियों को जीत लेता है तथा पराई स्त्रियों को कभी भी ग्रहण नहीं किया करता है और घर में आकर स्वय समुपस्थित हो जावें तब भी उनकी ओर जिसके मन में भी कोई विकार समुत्पन्न नहीं होता है वही पुरुष सबसे अधिक पूज्यतम होता है ॥११॥ .

गायत्र्या लक्षणं किं वा प्रत्येकाक्षरजंगुणम् ।
कुक्षि चरण गोत्राणा तस्याव्रूहिसुनिश्चयम् ॥१२
छन्दो गायत्रीगायत्र्याः सविता देवता ध्रुवम् ।
शुक्लवर्णा त्वग्निमुखा विश्वामित्रऋषिस्तथा ॥१३
ब्रह्मणःशिरः आरूढा रुद्रविष्णुहृदि स्थिताः ।
उपनयने नियोगः स्यात्साङ्ख्यायनसगोत्रजा ॥१४
त्रैलोक्यचरणा ज्ञेया पृथिवीकुक्षि संस्थिता ।
चतुर्विंशतिस्थाने च पादादौ मस्तकान्तके ॥१५
चतुर्विंशत्यक्षरं न्यस्य ब्रह्मलोक स विन्दति ।
प्रत्यर्णदेवताज्ञात्वाविष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥१६
अपरं च प्रवक्ष्यामि गायत्र्या लक्षण ध्रुवम् ।
सप्त पञ्च तथा ब्रह्मा यजुरष्टादशाक्षरम् ॥१७
ज्वलनादिहकारान्त जले स्थित्वा शतं जपेत् ।
उपपातककोट्या तु तथातिपातकैरपि ॥१८
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्ता यान्ति ममालयम् ।

स्थान में होती है ॥ १५ ॥ इस प्रकार से इसके इन चौबीस अक्षरों का न्यास करने वाला पुरुष ब्रह्मलोक को प्राप्त किया करता है । प्रत्येक वर्ण के देवताओं का ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष ब्रह्म सायुज्य को प्राप्ति करने का लाभ किया करता है ॥१६॥ अब हम दूसरा गायत्री का सुनिश्चित लक्षण बतलाते हैं । सत तथा पञ्च ब्रह्म तथा अष्टादशाक्षर यजु ज्वलन आदि लेकर हुकार के अन्त पर्यन्त जल में संस्थित होकर एक सौ बार जाप करे तो करोड़ों उपपातक तथा अति पातकों से भी मुक्त हो जाता है ॥ १७।१८ ॥ ब्रह्म हत्या आदि के जो महान् पाप होते हैं, उनसे भी मुक्त होकर फिर वह जाप करने वाले पुरुष सीधे मेरे आलय ब्रह्मलोक को ही प्राप्त होते हैं । मन्त्र का आकार[1] यह है—"ॐ अग्ने वाक् पु सि यजुर्वेदेन जुषत् सोमं पिब स्वाहा" ॥१९॥

गायत्री यो जपेन्नित्यं प्राणायाम समन्विताम् ।
प्रत्यक्षरगमरं युक्त्वा स्वाङ्गे विन्यस्यतामपि ॥२०
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो जन्मकोटिकृतादपि ।
ब्रह्मणः पदवी प्राप्य स गच्छेत्प्रकृतेः परम् ॥२१
प्राणायामयुता तस्माद्गायत्री जप नारद ॥२२
प्राणायामाः कथं ब्रह्मन्प्रत्येकाक्षरदेवता ।
तेषां न्यास तथाङ्गेषु वद नाथ यथाक्रमम् ॥२३
गुदंदेशेरवपान स्याद्धृदिप्राणोऽस्तिदेहिन ।
तस्माद्गुदमाकुञ्च्य प्राणेनसहयोजयेत् ॥२४
पूरकेण तथा पुत्र कृत्वा कुम्भकमुत्तमम् ।
प्राणायामंथ कृत्वा गायत्रीं सञ्जपेद्द्विज ॥२५
अनेनैव जपेद्यस्तु महापातकसञ्चय ।
सकृदुच्चारितेनैव क्षयं यात्युपपातकम् ॥२६
प्रतिवर्णस्वरं ज्ञात्वा विन्यसेद्यः कलेवरे ।
स जनो ब्रह्मतामेति फलं वक्तुं न शक्नुमः ॥२७
प्रत्यक्षरस्य यद्दैवं शृणु पुत्र वदाम्यहम् ।
यज्ज्ञात्वा न पुनर्मातुः स्तनं न पिबति द्विज ॥२८

जो पुरुष प्राणायाम पूर्वक अर्थात् प्राणायामों के सहित गायत्री का जाप नित्य ही किया करता है, जिस गायत्री के प्रत्येक अक्षरों के देवताओं का भी स्मरण करते हुए जाप करे तथा उन प्रत्येक अक्षरों का विन्यास भी अपने समुचित अङ्गों पर यथाविधि करके ही गायत्री का जप करना चाहिए ।।२०।। इस रीति से गायत्री का जप करने वाला पुरुष समस्त प्रकार के महान् से भी महान् पापों से विनिर्मुक्त हो जाया करता है, चाहे वे पाप करोड़ों जन्मों में क्यों न किये हों । गायत्री के जाप को करने वाला पुरुष ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त करके प्रकृति से भी पर को चला जाया करता है ।। २१ ।। देवर्षि श्री नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा था—नारद बोले—हे ब्रह्मन् ! अब आप कृपाकर यह बतलाइये कि जो आपने प्राणायामों का बहुत अधिक महत्त्व बतलाया है वे प्राणायाम किस विधि से किये जाते हैं ? और यह भी बतलाइये कि जिस वेद जननी भगवती गायत्री देवी के चौबीस अक्षर हुआ करते हैं, उन अक्षरों के देवता कौन-कौन होते हैं तथा उनका अक्षरों का न्यास अपने शरीर के अङ्गों में किस प्रकार से और किस विधि से किया जाता है ? हे तात ! यह सब क्रम-पूर्वक मुझे बतलाइये ।।२२ २३।। इस रीति से नारद के प्रश्न करने पर ब्रह्माजी ने कहा—मानव के शरीर के जो अङ्ग हैं उनमें गुद देश में तो अपान वायु रहता है और देहधारी के हृदय में प्राण वायु निवास किया करता है । इसलिये गुदा का समाकुञ्चन करके उसको प्राण के साथ योजित करे ।।२४।। उस समय में हे पुत्र ! पूरक के द्वारा फिर उत्तम कुम्भक करे । प्राण वायु को ऊपर खींचने को पूरक और उसे रोककर रखने को कुम्भक कहते हैं । इस रीति से द्विज को चाहिए कि तीन बार प्राणायाम करे और उस प्राणायाम में गायत्री का जाप करता रहे । कुम्भक के पश्चात् जो प्राणायाम में श्वास को शनैः-शनैः छोड़ा जाता है उसका नाम रेचक होता है ।।२५।। इसी रीति से जो जप किया करता है उसके महापातकों का समुदाय भी हो तो सब विनष्ट हो जाया करता है । एक ही बार उच्चारित करने से उपपातक का क्षय हो जाता है ।। २६ ।। प्रत्येक वर्ण और स्वर का ज्ञान प्राप्त करके जो पुरुष अपने शरीरावयवों में उनका विन्यास किया करता है वह मनुष्य तो ब्रह्मा के स्वरूप को ही प्राप्त हो जाता है । उसका और विशेष जो भी फल होता है उसे तो हम वर्णन करने

की शक्ति ही नहीं रखते हैं ।।२७।। गायत्री के प्रत्येक अक्षर के जो देवता होते हैं हे पुत्र ! उनको मैं तुम्हे बतलाता हूँ, तुम श्रवण करो । इन सब गायत्री के अक्षरों के देवताओं का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाला पुरुष फिर इस संसार में जन्म ग्रहण कर माता का स्तन नहीं पिया करता है । तात्पर्य फिर उसका जन्म ही नहीं होता है ।।२८।।

आग्नेयं प्रथमं ज्ञेयं वायव्यं तु द्वितीयकम् ।
तृतीयं सूर्यदैवत्यं चतुर्थं वै (यु) तं तथा ।।२९
पञ्चमं यमदैवत्यं वारुणं षष्ठमुच्यते ।
सप्तमं बार्हस्पत्यं तु पार्जन्यं चाष्टमं विदु: ।।३०
ऐन्द्रं च नवमं ज्ञेयं गान्धर्वं दशमं तथा ।
पौष्णमेकादशं विद्धि मैत्रं द्वादशकं स्मृतम् ।।३१
त्वाष्ट्रं त्रयोदशं ज्ञेयं वासवं तु चतुर्दशम् ।
मारुतं पञ्चदशकं सौम्यं षोडशकं स्मृतम् ।।३२
आङ्गिरसं सप्तदशं वैश्वदेवमतः परम् ।
आश्विनं चैकोनविंशं प्राजापत्यं तु विंशकम् ।।
सर्वदेवमयं ज्ञेयमेकविंशकमक्षरम् ।
रौद्रं द्वाविंशकं ज्ञेयं ब्राह्मं ज्ञेयमतः परम् ।।३३
वैष्णवं तु चतुर्विंशमेता अक्षरदेवताः ।
जपकाले तु सञ्चिन्त्य तासु सायुज्यतां व्रजेत् ।।३४
ज्ञात्वा तु देवतास्तस्य वाङ्मयं विदितं भवेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मणः पदवीं व्रजेत् ।।३५

गायत्री का जो प्रथम अक्षर है उसे आग्नेय ही समझना चाहिए अर्थात् उस प्रथम अक्षर का देवता अग्नि होता है । दूसरा अक्षर वायव्य है अर्थात् गायत्री के दूसरे अक्षर का देवता वायु है । तृतीय अक्षर का देवता सूर्य हैं और चतुर्थ अक्षर का भी सूर्य ही देवता होते हैं ।।२९।। पञ्चम वर्ण का यम देवता है—छठे अक्षर का वरुण देवता है—सप्तम वर्ण का बृहस्पति देवता है—गायत्री के आठवें वर्ण का पर्जन्य देवता है । ३०।। नवम अक्षर का देवता इन्द्र होता

है। दशम अक्षर का गन्धर्व देवता है। एकादश का अक्षर पूषा देवता होता है, बारहवें अक्षर का देवता मित्र होता है। ऐसा बतलाया गया है ॥३१॥ तेरहवें अक्षर का देवता त्वष्टा है। चौदहवें अक्षर का देवता वासव है। पन्द्रहवें वर्ण का मरुत देवता है। सोलहवें वर्ण का देवता सोम होता है ऐसा कहा गया है ॥३२॥ सत्रहवे वर्ण का देवता अङ्गिरा है—अठारहवें वर्ण का विश्वेदेवा देवता है। उन्नीसवें अक्षर का देवता अश्विनीकुमार है। बीसवें वर्ण का देवता प्रजापति होते हैं ॥ ३३ ॥ गायत्री का जो इक्कीसवाँ अक्षर है उसके सभी ऊपर बताये हुए देवता हुआ करते हैं। बाईसवें वर्ण के देवता रुद्र हैं तथा तेईसवें वर्ण के देवता ब्रह्मा होते हैं।३४। गायत्री देवी का जो चौबीसवाँ अक्षर है उसके देवता भगवान् विष्णु होते हैं। इस रीति से चौबीसों अक्षरों के ये देवता हुआ करते हैं। जिस समय मे गायत्री मन्त्र का जाप किया जावे उस समय मे इन अक्षरों के बताये हुए देवों का भी ध्यान करते हुए जप करे। ऐसा करने पर वह जापक उनमे सायुज्यता को प्राप्त किया करता है। गायत्री के देवताओं के ज्ञान को प्राप्त करके जो जप किया करता है उसे सम्पूर्ण वाङ्मय विदित हो जाता है और वह फिर सब पापों से छुटकारा पाकर अन्त मे ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त कर लेता है ॥३५॥

गायत्री विन्यसेत्पूर्वं शरीरे चात्मनो बुधः।
चतुर्विंशतिस्थानेषु आपादमस्तकेषु च ॥३६
तत्कारं विन्यसेद्योगी पादाङ्गुष्ठेविचक्षणः।
सकारं गुल्फदेशे तु विकारं जङ्घयोर्न्यसेत् ॥३७
तुकारं जानुमध्ये च वकारं चोरुदेशतः।
रेकारं गुह्यदेशे तु णिकारं वृषणेन्यसेत् ॥३८
यङ्कारं कटिदेशे तु भकारं नाभिमण्डले।
गोकारं जठरे न्यस्य देकारं स्तनयोर्न्यसेत् ॥३९
वकारं हृदये न्यस्य स्यकारं करदेशतः।
धीकारं वदने न्यस्य मकारं तालुके न्यसेत् ॥४०
हिकारं नासिकाग्रे च धिकारं चक्षुषोर्न्यसेत्।
योकारं तु भ्रुवोर्मध्ये योकारं च ललाटके ॥४१

नः कारं तु मुखे पूर्वे प्रकारं दक्षिणे मुखे ।
चोकार पश्चिमे न्यस्य दकारं चोत्तरे न्यसेत् ।।४२

गायत्री मन्त्र मे चौबीस अक्षर होते हैं और उन चौबीस अक्षरो के पृथक् पृथक् प्रत्येक अक्षर के देवता हुआ करते हैं जिनका वर्णन ऊपर किया गया है। गायत्री जप के समय मे उनका ध्यान करते हुए ही जप करना चाहिए अब उन चौबीसो अक्षरो का अपने अङ्गो में न्यास करने का विधान बतलाया जाता है। बुध पुरुष को सर्व प्रथम अपने शरीर मे उन अक्षरों का न्यास करना चाहिए। पद से लेकर मस्तक पर्यन्त शरीर के चौबीस स्थान हैं, उनमें ही उन चौबीस अक्षरो का विन्यास करे ।।३६।। विचक्षण योगी पुरुष को गायत्री का जो प्रथम अक्षर "तत्"—है। उसका अपने शरीर के चरण अँगूठे मे न्यास करना चाहिए। इसके पश्चात् गायत्री का दूसरा अक्षर "स"—है उसका न्यास गुल्फ मे करे। "वि"--इसका न्यास दोनो जांघो मे करे। ३७।। "तु"—इसका न्यास जानुओ के मध्य मे करे। "व"—का न्यास ऊरु देश मे करना चाहिए। "रे"—का न्यास गुह्य देश मे करे। "णि"—का न्यास दोनो वृषणों मे करना चाहिए ।।३८।। "य"—इस अक्षर का विन्यास शरीर के कटि (कमर) देश में करे। "भ"—इस वर्ण का न्यास नाभि मण्डल मे करना चाहिए। "र्गो"—इसका विन्यास अपन उदर (पेट) मे करे। "दे"—का न्यास स्तनो मे करे ।।३६।। "व"—इस वर्ण का न्यास हृदय मे करना चाहिए। "स्य"—का न्यास कंठो मे करे। धी"—का विन्यास वदन मे कर। "म"–का तालु में विन्यास करना चाहिए ।।४०।। "हि"—इस वर्ण का विन्यास नासिका क अग्रभाग में करे। "धि"—इसका न्यास दोनो नेत्रो मे करे। "यो"—इसका न्यास दोनों भौहों के मध्य में करना चाहिये। दूसरे "यो"–का न्यास ललाट में करे ।।४१।। "नः"—इसका न्यास मुख मे करे अर्थात् मुख के पूर्व भाग मे करना चाहिए। "प्र"—का मुख के दक्षिण भाग में, "चो"—का मुख के पश्चिम भाग मे और "द"—का न्यास मुख के उत्तर भाग मे करना चाहिए ।।४२।।

यात्कारं मूर्ध्नि विन्यस्यसर्वव्यापी व्यवस्थितः ।
एतान्विन्यस्य धर्मात्मा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।।४३

चाहिए। "ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्"—इसका न्यास दोनों हाथों में करे। ॥४६॥ "ॐ आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्"—इससे उदक के केवल स्पर्श करने से ही पाप से पूत होकर भगवान् हरि की सन्निधि में न्यास करने वाला पहुँच जाता है ॥४७। गायत्री का पूरा स्वरूप—'ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम्, ॐ तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्, ॐ आपो ज्योती रसोऽमृत ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्" यह है ॥४८।४९॥ इस प्रकार से समस्त व्याहृतियों से समन्वित-प्रणवों से युक्त, दश ओङ्कारों वाली गायत्री को सन्ध्योपासना करने के समय से प्राणायाम के कुम्भक में तीन बार जाप करे। सूर्योपस्थान में चौबीस अक्षरों वाली सावित्री का जाप करके द्विज महाविद्या से अधिक सम्पन्न हो जाया करता है। और ब्रह्मत्व की प्राप्ति कर लेता है। हे पुत्र! छः कुक्षियों के लक्षणों वाली गायत्री का तुम यत्न पूर्वक श्रवण करो जिसका ज्ञान प्राप्त करके द्विज परम ब्रह्म स्थान को प्राप्त करता है। गायत्री का साधारण स्वरूप—"ॐ तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्" यह होता है ॥५०॥

एव विप्रो न जानाति स एव ब्राह्मणाधमः।
न तस्य क्षीयते पाप्मा भवेद्भूरि प्रतिग्रहः ॥५१
इमा यो वेत्ति गायत्री सर्वबीजसमन्विताम्।
स वेत्ति चतुरो वेदान्योगज्ञान जपत्रयम् ॥५२
य एना नैव जानाति सशूद्रात्परतः स्मृतः।
तस्यान्नस्य विप्रस्य न देय पितृपार्वणम् ॥५३
न स्नानफलद किञ्चित्सर्वंच निष्फलं भवेत्।
विद्यावित्त तथा जन्मद्विजत्वकारणयतः ॥५४
निष्फल सकल तस्य मेध्य पुष्प यथाऽशुचौ।
चतुर्वेदाश्च गायत्री पुरा वै तुलिता मया ॥५५
चतुर्वेदात्परागुर्वी गायत्री मोक्षदा स्मृता।
दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुराकृतम् ॥५६
त्रियुग तु सहस्रेण गायत्री हन्ति किल्विषम्।
गायत्रीमक्षमालाया सायं प्रातश्च यो जपेत् ॥५७

इस प्रकार से जो विप्र नहीं जानता है वह ही अधम ब्राह्मण होता है। इस ब्राह्मण के पापों का कभी क्षय नहीं हुआ करता है और वह जो प्रतिग्रह लेता है उससे वह पाप और भी अधिक हो जाता है ॥५१॥ जो विप्र इस वेद जननी गायत्री को समस्त बीजों से समन्वित होने वाली भली भाँति से जानता वह चारों वेदों का ज्ञान रखता है अर्थात् चारों वेदों के ज्ञान का फल उसे प्राप्त होता है और योग का ज्ञान तथा तीनों जपों का फल उसे मिल जाता है ॥५२॥ जो विप्र इस परादेवी गायत्री का यथार्थ ज्ञान नहीं रखता है वह शूद्र से भी अधिक नीच है—ऐसा बताया गया है। ऐसे अपून अर्थात् पवित्रता से हीन विप्र को कभी भी पितृ पार्वण श्राद्ध नहीं देना चाहिए अर्थात् पितृगण के पार्वण श्राद्ध के योग्य पात्र नहीं होता है ॥५३॥ कोई भी स्नान के फल का प्रदान करने वाला नहीं होता है। उसका सभी कुछ निष्फल होता है क्योंकि द्विजत्व प्राप्त करने के कारण ब्राह्मण कुल में जन्म विद्यारिक्त होता है ॥५४॥ ऐसे संस्कार हीन ब्राह्मण का सभी कुछ निष्फल होता है जिस प्रकार से पवित्र दुग्ध किसी अपवित्र स्थान में पड़ जाने पर बेकार हो जाया करता है। ब्रह्माजी ने नारद से कहा कि मैंने पहिले चारों वेद और गायत्री को तुला में रखकर तोला था ॥५५॥ चारों वेदों से गायत्री गौरव वाली हुई थी जो कि पर मोक्ष के प्रदान करने वाली है। यह वेद जननी गायत्री दश जन्मों में उत्पन्न हुए और सौ जन्म में पहिले किए हुए, तीन युग और सहस्र जन्म में किये हुए भी पाप का नाश कर दिया करती है। इसकी इस प्रकार की महिमा है। जो विप्र नित्यप्रति अक्षमाला से सायङ्काल और प्रातःकाल में गायत्री का जप किया करता है उसको पाप कभी भी नहीं लगता है तथा वह परमार्थ मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है जिससे इस संसार में जन्म मरण का दुःख कभी नहीं होता है ॥५६।५७॥

॥ सदाचार वर्णन ॥

ब्राह्मणस्यसदाचार क्रम ब्रूहि च कर्मणाम्।
इतरेषा च वर्णाना प्रवृत्तमखिलवद ॥१
आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभतेसुखम्।
आचारोत्स्वर्गमोक्ष च आचारोहन्त्यलक्षणम् ॥२

अनाचारो हिपुरुषो लोकेभवतिनिन्दित ।
दु खभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ।।३
नरकेनियतवासो ह्यनाचारान्नरस्य च ।
आचाराच्च परं लोकमाचारं शृणुतत्त्वतः ।।४
गोमयेन गृहेनित्यं प्रकुर्यादुपलेपनम् ।
प्रक्षालयेत्तत पीठं काष्ठं पात्र शिलातलम् ।।५
भस्मना कांस्यपात्र तु ताम्रमम्लेन शुद्धचति ।
शिलापात्र तु तैलेन फाल गोवालकेनतु ।।६
स्वर्णरौप्यादिपात्र तु जलमात्रेणशुध्यति ।
अग्निनालोहपात्रं तु पाकप्रक्षालनेन तु ।।७

देवर्षि नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा—हे भगवन् ! आप मुझे कृपाकर ब्राह्मण का सदाचार क्या होता है और उनके कर्मों का क्रम किस प्रकार का हुआ करता है—यह बतलाइये । ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र जो इतर वर्ण होते हैं उनके विषय मे भी बतलाने का सभी कुछ क्रम कहिए ।।१।। ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! आचार की बहुत बड़ी महिमा है । आचार से पुरुष आयु की अधिकता का लाभ प्राप्त किया करता है । आचार से मनुष्य का सुख मिलता है । यह आचार ही एक ऐसा महत्त्वशाली होता है कि इससे मनुष्य को स्वर्ग तथा मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाती है । आचार बुरे लक्षणों का विनाश कर देता है ।। २ ।। जो पुरुष आचार से हीन होता है वह लोक में निन्दित हो जाता है । आचार शून्य पुरुष को सर्वदा दुःख ही दुःख भोगने पड़ा करते हैं और रोगी तथा छोटी आयु वाला भी हो जाया करता है ।। ३ ।। जो आचार मे रहित मनुष्य होता है उसका नरक मे नियत रूप से वास हुआ करता है । जो आचार से युक्त होता है वह परम श्रेष्ठ लोक की प्राप्ति किया करता है अब तात्त्विक रूप मे तुम आचार का श्रवण करो ।।४।। सर्व प्रथम आचार का अङ्ग जो शुद्धि एवम् शुचिता है उसे बतलाया जाता है । नित्यप्रति घर मे गोमय से उपलेपन करना चाहिए । इसके उपरान्त जल से पीठ—काष्ठ—पात्र और शिला तल का प्रक्षालन करे । पीठादि की शुद्धि जल के प्रक्षालन से ही हो

जाती है ॥ ५ ॥ काँसे के पात्र की शुद्धि भस्म से होती है और ताम्र के पात्र खटाई डालकर शुद्ध किये जाते हैं। शिला के अर्थात् पत्थर के जो पात्र होते हैं उनकी शुद्धि तेल से तथा काम की शुद्धि गोपालों के जरिये से होती है ॥ ६ ॥ स्वर्ण और रौप्य अर्थात् चाँदी के जो पात्र होते हैं उनकी शुद्धि केवल जल के प्रक्षालन से हो हो जाती है। लौहपात्र की शुद्धि अग्नि और पाक प्रक्षालन से हुआ करती है ॥७॥

खननाद्दाहनाच्चैव उपलेपनधावनात् ।
पर्जन्यवर्षणाच्चैव भूरमेध्या विशुध्यति ॥८
तैजसानां मणीनाञ्चसर्वस्याश्ममयस्य च ।
भस्मभिर्मृत्तिकाभिश्च शुद्धिरुक्ता मया पुरा ॥९
शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीत कमण्डलुः ।
आत्मनःव थिताश्शुद्धा न परेषां कदाचन ॥१०
न भुञ्जीतैकवस्त्रेण न स्नायादेकवाससा ।
न धारयेत्परस्यैव स्नानवस्त्र कदाचन ॥११
सस्कारं केशादन्तानां प्रातरेव समाचरेत् ।
गुरूणां च नमस्कारं नित्यमेव समाचरेत् ॥१२
हस्तपादे मुखेचैव पञ्चार्द्रो भोजनचरेत् ।
पञ्चार्द्रकस्तु भुञ्जान शत वर्षाणि जीवति ॥१३
देवताना गुरोराज्ञा स्नातकाचार्ययोरपि ।
नाक्रामेत्कामतश्छाया विप्रस्य दीक्षितस्य च ॥१४

जो अपवित्र एवम् अशुचि भूमि का भाग होता है उसकी शुद्धि कई प्रकार से होती है। खोदकर ऊपर की मिट्टी अलग कर देने से, भूमि पर काष्ठ फूँस आदि डालकर जला देने से, गोमय आदि से लीपने से और धावन से और मेघ के द्वारा वृष्टि हो जाने से अमेध्य भूमि की शुद्धि हो जाती है। उक्त विधानों में से कोई भी एक विधान भूमि का शोधक होता है ॥८॥ मैंने पहिले भी तुमको बता दिया था कि जो पदार्थ तेज से युक्त होते हैं उनकी और मणियों की तथा अश्ममय पदार्थों की शुद्धि भस्म से या मृत्तिका से हो जाती है ॥ ९ ॥ शय्या-

भार्गा—शिखु—वस्त्र—उपवीत और कमण्डलु ये पदार्थ अपने ही शुद्ध कहे गये हैं दूसरो के शुद्ध नही होते हैं। तात्पर्य यह है कि दूसरे के उपर्युक्त पदार्थ कभी सेवन नहीं करने चाहिए। क्योंकि वे अशुचि बनाये गये हैं ॥ १० ॥ एक वस्त्र धारण करके कभी भी भोजन न करे भोजन के अवसर पर दूसरा कोई वस्त्र अवश्य ही शरीर पर होना चाहिए। इसी तरह एक ही वस्त्र धारण करके स्नान भी नही करे। स्नान के समय में भी दूसरा कोई वस्त्र होना आवश्यक है और किसी दूसरे का स्नान वस्त्र कभी भी धारण नही करना चाहिए ॥११॥ मनुष्य को अपने केशों और दाँतों का संस्कार प्रातःकाल के समय में ही करना चाहिए। प्रत्येक का सद् आचार के अनुसार कर्त्तव्य है कि नित्य-प्रति प्रातःकाल में अपने गुरु के चरणों मे नमस्कार करे ॥१२॥ दोनो हाथ, दोनों चरण और मुख इन पाँचो अङ्गो को गीला करके ही भोजन करना चाहिए। जो पुरुष इन पाँचों को भोजन के समय मे भीगा हुआ रखता है वह सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है। तात्पर्य यह है कि इनके भीगे हुए रहने से भोजन करने पर आयु की वृद्धि होती है ॥ १३ ॥ अपने इष्ट देवताओं की, गुरु की और स्नातक तथा आचार्य की आज्ञा का कभी उल्लंघन नही करना चाहिए। किसी भी विप्र की और दीक्षित पुरुष की छाया का स्वेच्छा से आक्रान्त नही करे ॥१४॥

गोगरा दैवत विप्र घृत मधुचतुष्पथम्।
प्रदक्षिण प्रकुर्वीत प्रख्यातांश्च वनस्पतीन् ॥१५
गोविप्रावग्निविप्रौ च विप्रौ द्वौ दम्पती तथा।
तयोर्मध्ये न गच्छेन स्वर्गस्थोऽपि पतेद् ध्रुवम् ॥१६
उच्छिष्टो न स्पृशेदग्नि ब्राह्मणं दैवतं गुरुम्।
स्वशीर्षं पुष्पवृक्षं च यज्ञवृक्षमथापि वा ॥१७
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट उदीक्षेत कदाचन।
सूर्याचन्द्रमसावेव नक्षत्राणि च सर्वश ॥१८
नेक्षेद्विप्र गुरु देव राजानं यतिनां वरम्।
योगिनं देवकर्माणं धर्माणां कथकं द्विजम् ॥१९
नदीनां च प्रतीरे पयुञ्च सरितां तथा।
यज्ञवृक्षस्य मूले च उद्याने पुष्पवाटके ॥२०

शरीरस्य मलत्याग न कुर्याज्जीवने तथा ।
विप्रस्यायतने गोष्ठे रम्ये राजपथेषु च ॥२१

गायो का समुदाय—देवता—विप्र—घृत—मधु और चतुष्पथ को दाहिनी ओर करके चले अथवा इनकी प्रदक्षिणा करके चले तथा जो परम प्रख्यात वनस्पति हो उनको भी प्रदक्षिणा करे ॥ १५ ॥ गौ और विप्र—अग्नि और विप्र—दो विप्र और दम्पती अर्थात् पति पत्नी इनके मध्य में होकर कभी नहीं जाना चाहिए। इनके मध्य में होकर जाने वाला व्यक्ति स्वर्ग में रहने वाला भी हो तो भी उसका पतन हो जाता है यह सुनिश्चित है ॥ १६ ॥ यदि स्वयं उच्छिष्ट अवस्था में हो तो उसे अग्नि, ब्राह्मण, देवता, गुरु, अपना मस्तक, पुष्पों वाला वृक्ष यज्ञ वृक्ष और ऐसा पुरुष जो धार्मिक न हो, इनका कभी भी स्पर्श नहीं करना चाहिए। कुछ भी खान पान करने पर जब तक कुल्ली कर मुँह तथा हाथ, पैरों को नहीं धो लेता है मनुष्य उच्छिष्ट पुरुष किसी भी दशा में निम्नलिखित तीन तेजों का दर्शन न करे। उन तीन तेजों में सूर्य—चन्द्रमा और सभी नक्षत्र हैं ॥१७॥ उच्छिष्ट रहते हुए गुरु देवता, राजा, यतिवर, योगी, देवों के कर्म करने वाले और धर्मों का कथन करने वाले द्विज का भी दर्शन नहीं करना चाहिए । १८॥ अपने शरीर का जो मल है उसका त्याग नदियों के तट पर—सागर के तीर पर—यज्ञ वृक्ष के मूल में—उद्यान के अन्दर—पुष्पों की वाटिका में—जल के मध्य में—विप्र के आयतन में—गोष्ठ में—रम्य स्थल में और राज-पथ में कभी नहीं करना चाहिए ।२०।२१।

न क्षौरं कारयेद्धीर कुजस्याह्नि कदाचन ।
मलं न धारयेद्दन्ते नखं न वदने क्षिपेत् ॥२२
तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत वासरे रविभौमयो ।
स्वगात्रामनयोर्वाद्य गुरोरेकासनादनम् ॥२३
न हरेच्छ्रियस्त्र च देवस्यापि गुरोरपि ।
राज्ञस्तपस्विनां चैव पङ्गोरन्धस्य योषित ॥२४
पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च ।
रोगिणे भारतप्ताय गुर्विण्यै दुर्बलाय च ॥२५

विवादं न च कुर्वीत नृपविप्रचिकित्सकैः ।
ब्राह्मणं गुरुपत्नीं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥२६
पतितं कुष्ठसंयुक्तं चाण्डालं च गवाशिनम् ।
निर्धूतं ज्ञानहीनं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥२७
स्त्रियं दुष्टां च दुर्वृत्तामपवादप्रदायिनीम् ।
कुकर्मकारिणीं दुष्टां सदैव कलहप्रियाम् ॥२८
प्रमत्तामधिकाङ्क्षां च निर्लज्जां बाह्यचारिणीम् ।
व्ययशीलामनाचारां दूरतः परिवर्जयेत् ॥२९

भौमवार के दिन मे धीर पुरुष को किसी भी दशा मे क्षौर कर्म नहीं कराना चाहिये । दाँतों में कभी मैल नहीं रक्खे अर्थात् दाँतो की सफाई सर्वदा रहनी चाहिए । अपने मुँह मे नाखून कभी नहीं लगावे । दाँतो से नखो के काटते रहने का स्वभाव बहुत दूषित होता है जो कि सदाचार के विरुद्ध है । २२॥ रविवार और भौमवार के दिनो मे तैल शरीर पर नहीं लगाना चाहिए । अपने गात्र और अपने पर वाद्य न रखे तथा अपने गुरु चरण के साथ एक ही आसन पर स्थित न होवे ॥२३॥ किसी भी श्रोत्रिय विप्र का धन—देवता का धन—गुरु का धन—राजा—तपस्वी—पगला—अन्धा और स्त्री के धन का हरण नहीं करना चाहिए । ऐसा करना सदाचार के विपरीत होता है ॥ २४ ॥ मार्ग गमन करने के समय मे यदि कोई राजा—ब्राह्मण और गौ सामने से आ जावे तो स्वयं एक तरफ हटते हुए रुककर इनको आने के लिये मार्ग खाली कर देना चाहिए । मार्ग मे कोई रोग से ग्रस्त मनुष्य—बोझ लादकर लाने-ले जाने वाला पुरुष-गर्भिणी स्त्री और शक्तिहीन दुर्बल पुरुष आ जावे तो पहिले इनको गमन करने के लिये मार्ग छोड देना चाहिए ॥२५॥ राजा—विप्र—चिकित्सा करने वाला ब्राह्मण—गुरु की पत्नी इनके साथ किसी भी विषय पर विवाद (बहस) नहीं करना चाहिए । यदि कोई अवसर भी उपस्थित हो तो इनको दूर से ही वर्जित कर देवे ॥२६॥ पतित—कोढ मे युक्त—चाण्डाल—गो-मांस का भक्षण करने वाला—निर्धूत—ज्ञान से हीन पुरुष को भी दूर ही से त्याग देना चाहिए अर्थात् इनके साथ किसी भी तरह का सम्पर्क न रक्खे क्योंकि यह ऐसा

करना सदाचरण के विरुद्ध है ॥ २७ ॥ जो स्त्री दुष्ट प्रकृति वाली हो—बुरे चरित्र वाली हो—अपवाद (अयश—बदनामी) को देने वाली हो—बुरे कर्मों के करने वाली—दूषित—सदा ही कलह से प्यार करने वाली हो—प्रमाद से युक्त रहने वाली—अधिक भङ्ग वाली—लज्जा से रहित—बाह्य चारिणी अर्थात् सर्वदा बाहिर ही संचरण करते रहने वाली हो—अधिक खर्चा करने के स्वभाव वाली और जो आचार से रहित हो ऐसी स्त्री का दूर से ही त्याग कर देना चाहिए क्योंकि ऐसी स्त्री के साथ रहने से सदाचार की सुरक्षा में बाधा होती है ॥२८।२९॥

मलिनां नाभिवन्देत गुरुपत्नीं कदाचन ।
न स्पृशेत्तां च मेधावी स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्धयति ॥३०
वधूं पुत्रस्य भ्रातुश्च स्वपुत्रीं युवतीं ध्रुवम् ।
अग्र्या च गुरुपत्नी च नेष्टोत्स्पर्शं न कारयेत् ॥३१
ताभिः सह कथालाप तथा भ्रूभङ्गदर्शनम् ।
कलहं निष्ठुरां वाणीं सदैव परिवर्जयेत् ॥३२
न दद्याच्च सदापाद तुषाङ्गारास्थिभस्मसु ।
कार्पासास्थिषु निर्माल्योचितिकाष्ठेचितौ गुरौ ॥३३
शुष्कं मीनं न भक्षेत् पूतिगन्धिममेध्यकम् ।
विषमं चान्यदुच्छिष्टं पाकार्थं च परस्य च ॥३४
गम्यानथ्यं नगन्तव्य क्षणमप्यमना सह ।
न तिष्ठेच्च क्षणं धीरो दीपच्छाये कलिद्रुमे ॥३५

अपने गुरु की पत्नी भी यदि मलिनावस्था में हो तो उस दशा में उसकी भी वन्दना नहीं करनी चाहिए । मेधा सम्पन्न पुरुष को उचित है कि उस दशा में गुरु पत्नी का स्पर्श न करे और यदि भूल से स्पर्श हो भी जावे तो स्नान कर लेवे । मलिन दशा में यहाँ रजस्वला होने की अवस्था का तात्पर्य है ॥३०॥ अपनी भी स्त्री यदि मलिना हो तो उसके साथ स्पर्श कभी न करे । गुरु की पत्नी को भी गुरु कहे उसके चरणों का भी उस दशा में ध्यान कर लेवे किन्तु उनका दर्शन नहीं करना चाहिए ॥३१॥ अपने पुत्र की वधू—भाई की

वधू—अपनी पुत्री जो युवती हो—ऐसी ही अन्य कोई युवती—गुरु की पत्नी इनको न तो देखे और न इनका स्पर्श ही करे ।।३२।। इनके साथ कथा लाप—भ्रूमों के भङ्ग का देखना—कलह और लज्जा से रहित वाणी का सदा ही परिवर्जन कर देवे ।। ३३ ।। तुपाङ्गार—अस्थि—भस्म—कपास की अस्थियों में—निर्माल्य—चिता का काष्ठ और गुरु चिति में सदा ही पाद नहीं देवे। शुष्क—दुर्गन्ध से युक्त—अपवित्र—विरस—दूसरे के द्वारा अभिच्छिष्ट की हुई और दूसरे के लिये पाक करने को लाई हुई मीन को कभी नहीं खाना चाहिए ।।३४।। जो असत् पुरुष हो उसके साथ कभी नहीं रहना चाहिए और ऐसे पुरुष के साथ में कहीं पर गमन न करना चाहिए। घोर पुरुष को दीपक की छाया में और कलिद्रुम में एक क्षणमात्र भी नहीं ठहरना चाहिए ।।३५।।

अस्पृश्यैस्सह चालाप पतितै· कुपितैः सह ।
न कुर्यात्क्षणमात्र तु कृत्वा गच्छेन्न रौरवम् ।।३६
कनिष्ठ नाभिवन्देत पितृव्य मातुल तथा ।
उत्थाय चासन दद्यात्कृताञ्जल्यग्रत स्थित ।।३७
तैलाभ्यक्त ततोच्छिष्टमार्द्रवस्त्र च रोगिणम् ।
पारावारगतोद्विग्न वहन्त नाभिवादयेत् ।।३८
यज्ञस्यान्तर्गत नष्ट क्रोडन्तस्त्रीजनै सह ।
वालक्रीडागत चापि पुष्पयुक्त कुशैर्युतम् ।।३९
शिर प्रावृत्य कर्णौ वा अप्सु मुक्तशिखोऽपि वा ।
अकृत्वा पादयो पूजा नाचामेद् दक्षिणामुखः ।।४०
उपवीतविहीनश्च नग्नको मुक्तकच्छक. ।
एकवस्त्रपिधानश्च आचान्तोनैव शुद्धयति ।।४१
मध्यमाभिर्मुख पूर्वनिमृमि समुपस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठदेशिनीभ्या च नासा च तदनन्तरम् ।।४२

जो पुरुष स्पर्श करने के योग्य न हो उनके साथ तथा जो पतित एवं कुपित पुरुष हों उनके साथ कभी भी एकक्षण मात्र के लिये वार्तालाप न करे। जो भी कोई ऐसे पुरुषों के साथ सम्भाषण करते हैं वे रौरव नरक में गिरते

हैं ।। ३६ ।। जो सबसे छोटे पितृव्य (चाचा) और मातुल हो अर्थात् अपनी अवस्था से बहुत ही छोटे हों तो उनके चरणों मे वन्दना नहीं करे। जब भी वे आवें तो गात्रोत्थान उन्हे देवे अर्थात् उन्हे देखकर खड़ा हो जावे और उनके बैठने के लिये आसन देकर हाथ जोड़कर उनके सामने सस्थित होवे—यही उनका पर्याप्त सत्कार सदाचार समन्वित होना है ।।३७।। वन्दनीय पुरुषों मे भी कुछ अवसर ऐसे हैं जबकि वन्दना नहीं करनी चाहिए। जो कोई तैल सेऽभ्यक्त हो अर्थात् जिनके शरीर मे तैल लगा हुआ हो—उच्छिष्ट दशा मे स्थित हो—गीले वस्त्र पहिने हुए हो—रोग से ग्रस्त हो—पारावारगत और उद्विग्न हो तथा कुछ वह न कर रहा हो, ऐसी अवस्थाओं मे अवस्थित पुरुष का अभिवादन नही करना चाहिए। जब शुद्ध स्थिति मे हो जावें तभी अभिवादन करे—यही सदाचार युक्त है ।।३८।। जो यज्ञ के अन्तर्गत हो, नष्ट हो गया हो, स्त्रीजनो के साथ जो क्रीडा कर रहा हो, बाल-क्रीडा मे रत और पुष्पो से युक्त तथा कुशा से समन्वित हो उसका भी अभिवादन न करे ।। ३९ ।। शिर और कानो को आवृत करके जल में स्थित होकर तथा चोटी खोलकर चरणो की पूजा न करके दक्षिण दिशा की ओर मुख करने वाला होकर आचमन नहीं करना चाहिए ।।४०।। यज्ञोपवीत से रहित—नग्न और मुक्त कच्छ वाला तथा वस्त्र पहिने हुए जो आचमन करता है वह कभी शुद्ध नही होता है ।। ४१ ।। पहिले तीन मध्यमा अंगुलियो से मुख का समुप्र स्पर्श करे फिर इसके अनन्तर अंगूठा और देशिनी अंगुलि से नासिका समुप्र स्पर्श करे ।।४२।।

अगुष्ठानासिकाभ्या च चक्षुषी समुपस्पृशेत् ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठतश्श्रोत्रे नाभिमङ्गुष्ठकेन तु ।।४३

तलेन हृदयं न्यस्य सर्वाभिर्मस्तकोपरि ।
बाहूचाग्रेण सस्पृस्य ततः शुद्धो भवेन्नरः ।।४४

अनेनाचमन कृत्वा मानवः प्रयतो भवेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्त स्वर्गं चाक्षयमश्नुते ।।४५

प्राणस्त्रिपुटस्पृङ्क्षया च व्यानोऽपानश्च मुदया ।
समानस्तु समस्ताभिरुदानस्तर्जनीविना ।।४६

नाग कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जय ।
उपप्रीणन्तु ते प्रीता येभ्यो भूमौ प्रदीयते ॥४७
शयन चार्द्रपादेन शुष्कपादेन भोजनम् ।
नान्धकारे च शयन भोजन नैव कारयेत् ॥४८
पश्चिमे दक्षिणे चैव न कुर्याद्दन्तधावनम् ।
उत्तरे पश्चिमेचैव न स्वपेद्धि कदाचन ॥४९
स्वप्नादायु क्षय याति ब्रह्महा पुरुषो भवेत् ।
न कुर्वीत तत स्वप्नशस्त च पूर्वदक्षिणम् ॥५०

इसके उपरान्त अंगुष्ठ और अनामिका से दोनों नेत्रों का सम्पुट स्पर्श करना चाहिए। कनिष्ठिका और अंगुष्ठ से घ्राण में, अंगूठा से नाभि को, तल से हृदय पर न्यास करके फिर सभी से मस्तक के ऊपर न्यास करे और अग्र भाग से दोनों बाहुओं का स्पर्श करके फिर मनुष्य शुद्ध हो जाता है ॥ ४३।४४ ॥ इस उक्त विधि से आचमन करके मनुष्य प्रयत होवे तो समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा पाकर वह स्वर्ग में अक्षय निर्वाण प्राप्त किया करता है ॥४५॥ त्रिपुष्ट अंगुष्ठों से प्राण वायु—मुद्रा से व्यान और अपान वायु—तर्जनी के बिना पाँच समस्तों से समान वायु—नाग कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय जिनके लिए भूमि प्रदान की जाती है ये सभी प्रसन्न और उपप्रीणित होवें ॥४६ ४७॥ भीगे हुए पादों से युक्त होकर शयन करना—सूखे हुए पैरों वाला होकर भोजन करना—अंधेरे स्थान में शयन करना और अन्धकारपूर्ण स्थान में भोजन करना—ये काम कभी भी नहीं करने चाहिए। इनसे हानि होती है और सदाचार के विपरीत है ॥४८॥ पश्चिम दिशा और दक्षिण दिशा की ओर मुख करके कभी दन्तधावन नहीं करे और उत्तर तथा पश्चिम की ओर मुख करके कभी शयन नहीं करना चाहिए ॥ ४९ ॥ इस रीति से सोने में आयु की क्षीणता होती है और जो पुरुष इस रीति से शयन किया करता है वह ब्रह्म हत्या के पाप का भागी होता है। अतएव उक्त विधि से भूलकर भी कभी शयन नहीं करना चाहिए। पूर्व और दक्षिण की ओर शयन करना प्रशस्त बताया गया है ॥५०॥

आयुष्य प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्य दक्षिणामुख ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते उदङ्मुख ॥५१

यद्यत्कृत्वा च देवानां पूज्योनाके भवेन्नरः ।
तत्तद्वद च नो ब्रह्मन्प्रसादो भवधर्मतः ॥५
पञ्चाख्यानं वदिष्यामि शृणुध्वं तत्पूर्वतः ।
पञ्चनामेककं कृत्वा विन्दन्मोक्षं दिवं यशः ॥६
पित्रोरर्चाऽथ पत्युश्च साम्यं सर्वजनेपु च ।
मित्राद्रोहो विष्णुभक्तिरेतेपञ्च महामग्वाः ॥७

भीष्म पितामह ने पुलस्त्य मुनि से कहा—हे विप्रवर ! इस संसार में सदा—सर्वदा सबके द्वारा माना हुआ जो पुण्य सबसे अधिक होता हो और जिसको पहिले होने वाले सभी पूर्व पुरुषों ने किया हो उसके विषय में आप अपनी इच्छा से ही कुछ वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ पुलस्त्य मुनि ने भीष्म के ऐसे प्रश्न के पूछे जाने पर कहा—एकबार व्यास देव के समस्त शिष्यों ने बहुत ही आदर पूर्वक महर्षि व्यासजी के समीप में उपस्थित होकर उन्हें प्रणाम किया था और फिर सब द्विजगण ने उनसे ऐसा ही प्रश्न किया था और इसका उत्तर उनसे पूछा था जैसा आज आप हमसे पूछ रहे हैं ॥२॥ द्विजों ने कहा था—हे भगवन् ! इस लोक में समस्त पुण्यों में भी अत्यधिक श्रेष्ठ पुण्य तथा जो समस्त प्रकार के धर्मों में अत्युत्तम माना जाने वाला हो वह कौन सा है जिसको लोक में मनुष्य करके अक्षय स्वर्ग के निवास का सुख भोगा करते हैं ? आप हम लोगों को यह बतलाइये ॥३॥ ऐसा ही कोई एक क्रतु बतलाइये जिसको बड़े और छोटे सभी लोग कर सकें और सभी के द्वारा साध्य होवे । जिसके सम्पादन करने में कोई विशेष कष्ट न होता है तथा सबके द्वारा प्राप्त करने के भी योग्य हो । इस मर्त्यलोक में निवास करने वाले समस्त वर्णों के लोगों के लिये शुद्ध भी हो ॥ ४ ॥ ऐसे किसी परम श्रेष्ठ पुण्यमय कर्म के विषय में आप इस समय में हम लोगों को बतलाने की कृपा कीजिए जिसको करके मनुष्य स्वर्ग में देवगणों का भी पूज्य हो जावे । हे ब्रह्मन् ! आप प्रसन्न होकर ऐसे संसार में किये जाने वाले धर्म की व्याख्या कीजिए ॥५॥ इस प्रकार के शिष्यों द्वारा किये हुए प्रश्नमयी प्रार्थना को सुनकर महर्षि वेद व्यासजी ने कहा—हे द्विजगण ! मैं पञ्चाख्यान बतलाऊँगा । उसे आप लोग उनको पूर्व से ही सुनें ।

इन पाँचों में से किसी भी एक को करके मनुष्य दिवलोक का निवास—यश की प्राप्ति और मोक्ष का लाभ प्राप्त किया करता है। वे पाँच महान् मख ये हैं—अपने माता-पिता को परम भक्ति-भाव से पूजा, अपने पति की अर्चना, समस्त प्राणियों के साथ समान प्रेमादर पूर्वक व्यवहार, मित्रगण के साथ कभी भी द्रोह न करना और भगवान् विष्णु के चरणों में निष्काम अनन्य भक्ति—ये पाँच सबसे श्रेष्ठ एवम् महान् यज्ञ हैं जिनको सभी लोग बिना किसी कष्ट के कर सकते हैं और सभी धर्मों में इनको माना एवम् किया जा सकता है। इनका परमाद्भुत फल प्राप्त होता है जो अन्य किसी का भी नहीं हो सकता है ॥६.७॥

प्राक्पित्रोरर्चया विप्रा यद्धर्मं साधयेन्नरः ।
न तत्क्रतुशतैरेव तीर्थयात्रादिभिर्भुवि ॥८
पिताधर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः ।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥९
पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया च गुणेन च ।
तस्यभागीरथीस्नानमहन्यहनि वर्तते ॥१०
सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता ।
मातरं पितरं तस्मात्सर्वयत्नेन पूजयेत् ॥११
मातरं पितरं चैव यस्तु कुर्यात्प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥१२
जानुनी च करौ यस्य पित्रोः प्रणमतः शिरः ।
निपतन्ति पृथिव्यां च सोऽक्षयं लभते दिवम् ॥१३

सर्व प्रथम अपने माता-पिता की अर्चना करके विप्र को जिस महान् धर्म की सिद्धि होती है वैसी इस भू-मण्डल में सैंकड़ों यज्ञों के करने से तथा महान् तीर्थों की यात्रा आदि के करने से भी नहीं हो सकती है। अतएव ब्राह्मणों का यही परम कर्त्तव्य है कि माता-पिता की पूजा एवम् शुश्रूषा भक्ति-भाव पूर्वक करें ॥८॥ संसार में पिता ही साक्षात् धर्म का स्वरूप है, पिता की आराधना से धर्म प्राप्त हो जाता है। पिता ही स्वर्ग है अर्थात् पिता की पूजा-सेवा से ही स्वर्गीय सुख प्राप्त हो जाता है। पिता की सेवा कर उन्हें सन्तुष्ट

करना सबसे बड़ी तपश्चर्या है। जब पुत्र पर उसके पिता प्रसन्न हो जाते हैं तो उस पर सभी देवगण प्रसन्न होकर कृपा किया करते हैं ॥ ९ ॥ जिसके पितर सेवा भाव से और गुण-गरिमा से पूर्ण तृप्त एवम् सन्तुष्ट हो जाते हैं उसको प्रतिदिन भागीरथी गङ्गा के स्नान के समान परम पुण्य प्राप्त हुआ करता है ॥१०॥ माता के अन्दर सभी तीर्थ विराजमान रहा करते हैं और पिता समस्त देवों के समान होता है। अतएव सब कुछ का त्याग करके पूर्ण प्रयत्नों से अपने माता-पिता की पूजा एवम् सेवा करनी चाहिए ॥ ११ ॥ जो अपने माता-पिता की प्रदक्षिणा करता है उस पुरुष को सात द्वीपों वाले सम्पूर्ण भू-मण्डल की परिक्रमा के फल प्राप्त करने का लाभ होता है जिसके घुटने—हाथ और सिर अपने माता पिता को प्रणाम करने के लिये पृथ्वी में गिरते हैं वह कभी न क्षीण होने वाले स्वर्ग का निवास प्राप्त करता है ॥१२।१३॥

तयोश्चरणयोर्यावद्रजश्चिह्नानि मस्तके ।
प्रतीके च विलग्नानि तावत्पूत सुतस्तयो ॥१४
पादारविन्दसलिल य पित्रो पिबतसुत ।
तस्य पाप क्षय याति जन्मकोटिशनाजितम् ॥१५

धन्योऽसो मानवो लोके पूतोऽसो सर्वकल्मषात् ।
विनायकत्वमाप्नोति जन्मनैकेन मानव ॥१६
पितरौलङ्घयेद्यस्तु वचोभि पुरुषाधम ।
निरये च वसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१७

पित्रोरनर्चन कृत्वा भुङ्क्ते यस्तु सुताधम ।
कृमिकूपेऽथनरके कल्पान्तमुपतिष्ठति ॥१८
रोगिण चापि वृद्ध च पितरवृत्तिकर्शितम् ।
विकलनेत्रकर्णाम्यांत्यक्त्वागच्छेच्चरौरवम् ॥१९

अन्त्यजातिषु म्लेच्छेषु चाण्डालेष्वपिजायते ।
पित्रोरपोषण कृत्वासर्वपुण्यक्षयोभवेत् ॥२०
नाराध्य पितरौ पुत्रस्तीर्थदेवान्भजन्नपि ।
तयोर्न फलमाप्नोति कीटवद्रमते महीम् ॥२१

जिस समय पुत्र अपने माता पिता के चरणों में भूमि पर सिर रखकर प्रणाम करता है तो उसके मस्तक पर जो रजकण के चिह्न लग जाते हैं और प्रतीक स्वरूप रहा करते हैं वे यही बतलाते हैं कि उतने समय तक के लिये उनका पुत्र पवित्र होगया है ॥१४॥ जो कोई पुत्र अपने माता-पिता के चरणों को धोकर उस जल का पान कर लेता है उसके सैंकड़ों करोड़ों जन्मों के संचित हुए भी पाप क्षीण हो जाया करते हैं ॥१५॥ ऐसा पुरुष बहुत भाग्यशाली और धन्य हैं जो इस लोक में अपने माता पिता की अर्चना तथा भक्ति-भाव समन्वित सेवा के द्वारा समस्त कल्मषों से छुटकारा पाकर पवित्रात्मा बन जाता है। ऐसा मानव तो फिर एक ही जन्म में विनायकत्व पद को प्राप्त कर लेता है ॥१६॥ जो मनुष्य अपने माता-पिता की वाणियों के द्वारा लङ्घन किया करता है अर्थात् वचनों को कहकर निरस्कार करता है वह बहुत ही अधम पुरुष होता है। वह नीच पुरुष जब तक भूत-सम्प्लव होता है तब तक नरक में निवास किया करता है ॥ १७ ॥ जो अधम पुत्र माता-पिता की पूजा न करके स्वयं भोजन कर लेता है वह नरक में कृमियों से पूर्ण कूप में कल्प के अन्त पर्यन्त निवास किया करता है ॥१८॥ जो पुरुष रोगों से ग्रस्त, वृद्ध, जीविका से कर्शित अर्थात् कुछ भी जीविका न रखने वाला नेत्र और कानों से विकल पिता का त्याग कर देता है वह रौरव नरक में जाकर यातना भोगता है ॥१९॥ जो अपने माता-पिता का पोषण नहीं किया करता है वह दूसरे जन्म में अन्त्यज जातियों में—म्लेच्छों में तथा चाण्डालों में जाकर जन्म ग्रहण करता है और उन नीच जघन्य जातियों के दूषित कर्मों को कर तीव्र यातनाएँ भोगता है। ऐसे पुरुष के समस्त पुण्यों का क्षय हो जाता है ॥२०॥ जो अपने माता-पिता की तो कभी आराधना करता नहीं है और देवों का अर्चन तथा तीर्थाटन किया करता है वह पुत्र इन देवार्चन और तीर्थाटन दोनों का कुछ भी फल प्राप्त नहीं किया करता है और एक कीट की भाँति भूमि में रमण किया करता है। माता पिता की सेवा—समर्चा की बहुत बड़ी महिमा है जिसका अतुल पुण्य एवम् प्रभाव मनुष्य को प्राप्त होता है ॥२१॥

॥ तुलाधार चरित ॥

तुलाधारस्य चरित प्रभावमतुल प्रभो ।
वक्तुमर्हस्यशेषेण यदि मय्यस्त्यनुग्रह. ॥१
सत्यभावादलोभाच्च दद्याद्यो वै त्वमत्सरात् ।
नित्यंयज्ञशतंतस्य सुनिष्पन्न सुदक्षिणम् ॥२
सत्येनोदयते सूरो वाति वातस्तथैवच ।
न सिन्धुर्लङ्घयेद्वेला धत्तेकूर्मोधरां तथा ॥३
सत्येन लोकास्तिष्ठन्ति सर्वे च वसुधाधरा. ।
सत्याद् भ्रष्टोऽथ य सत्त्वोऽप्यधोवासी भवेद् ध्रुवम् ॥४
सत्यवाचि रतो यस्तु सत्यकार्यरत. सदा ।
स शरीरेण स्वर्लोकमागत्याच्युततां व्रजेत् ॥५
सत्येन मुनयः सर्वे मां च गत्वा स्थिरास्स्थित. ।
सत्याद्युधिष्ठिरो राजा सशरीरो दिवंगत. ॥६

द्विज ने कहा—हे प्रभो ! आपका यदि मुझ पर पूर्ण अनुग्रह है तो मेरी प्रार्थना है कि आप कृपाकर तुलाधार का चरित्र और उसका अनुपम प्रभाव पूर्ण रूप से वर्णन करने के योग्य होते हैं ॥१॥ भगवान् बोले—सत्य भावना से और लोभ के अभाव से तथा मात्सर्य दृष्टि से रहित होकर तुम जो कुछ भी दान करते हो उसका इतना अधिक फल होता है कि मानो नित्य ही दक्षिणा के सहित सौ यज्ञ उसने पूर्ण कर लिये हैं ॥२॥ सत्य के ही प्रभाव से सूर्य उदित होता है और इस सत्य के प्रभाव से वायु वहन किया करता है । यह सागर सत्य के ही प्रभाव से अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया करता है और सत्य के बल से ही कूर्म इस भूमि को अपने ऊपर धारण किया करता है ॥३॥ सत्य ही की शक्ति से ये समस्त लोक स्थित रहते हैं और सत्य के ही प्रभाव से सब वसुधाधर (पर्वत) संस्थित हैं । जो सत्त्व सत्य से भ्रष्ट हो जाता है वह निश्चित रूप से अधोगामी हो जाया करता है अर्थात् पतन हो जाता है ॥४॥ जो पुरुष सदा सत्य वचन में रति रखने वाला है अर्थात् सर्वदा सत्य भाषण किया करता है और किसी भी दशा में कभी भी मिथ्या वचन नहीं बोलता है,

जो पुरुष सत्यता से समन्वित ही कार्य किया करता है और कभी भी कोई असत् कार्य नहीं करता है, वह पुरुष इसी शरीर से स्वर्गलोक में जाकर सत्पूज्यता को प्राप्त करता है ॥५॥ यह सत्य का ही अनुपम प्रभाव है कि समस्त मुनिगण उसकी शक्ति से मुक्ति प्राप्त करके स्थिर होकर रहा करते हैं। सत्य की सामर्थ्य से ही राजा युधिष्ठिर इसी पाँच भौतिक शरीर से स्वर्गलोक को चले गये थे क्योंकि युधिष्ठिर सर्वदा सत्य व्रत का पालन करने वाले थे। ६॥

सर्वशत्रुगणं जित्वा लोको धर्मेण पालितः ।
प्रकरोच्च मखं शुद्धं राजसूयं सुदुर्लभम् ॥७
चतुरशीतिसहस्राणि ब्राह्मणानां च नित्यशः ।
भोजयेद्रुक्मपात्रेषु राजोपकरणेषु च ॥८
भोजयित्वोपकरणांस्तेभ्योदत्त्वा विसर्जयेत् ।
यदभीष्टं द्विजातीनामतोऽन्यद्दापयेद्धनम् ॥९
अदरिद्रं ततो ज्ञात्वा द्विजव्यूहं परित्यजेत् ।
तथैव स्नातकानां तु सहस्राणि तु षोडश ॥१०
नित्यं सम्भोजयेद्राजा सत्येनैव विमत्सरः ।
प्रतिष्ठस्ते गृहे पूर्वं चिरं तस्य जिगीषया ॥११
जितं तेन जगत्सर्वं प्राणानुग्रहकारणात् ।
सत्येन चासुरो राजा बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥१२
पातालस्थस्य तस्यैव भूयस्तिष्ठामि वेश्मनि ।
निरन्तरं च तिष्ठामि स्वान्तेपुण्यैककर्मणः ॥१३
यद्वा पुरा मया बद्धो दैत्ययोनेर्विमोक्षणात् ।
तत्र चैवामरत्वं हि शक्रत्वं प्रददाम्यहम् ॥१४

राजा युधिष्ठिर ने सत्य के प्रभाव से अपने सब शत्रुओं को जीत लिया था और फिर लोक का धर्म नीति के द्वारा पालन किया था। इसके उपरान्त राजा युधिष्ठिर ने अत्यन्त दुर्लभ और अति शुद्ध राजसूय यज्ञ किया था ॥ ७ ॥ राजा युधिष्ठिर राजा के योग्य उपकरणों में सुवर्ण से निर्मित पात्रों में नित्य ही चौरासी हजार ब्राह्मणों को भोजन कराते थे ॥ ८ ॥ उन ब्राह्मणों को पहिले

भोजन कराकर फिर राजोचित समस्त उपकरण उनको दान में देकर विदा किया करते थे। उन द्विजातियों को जो कुछ अन्य वस्तु भी अभीष्ट होती थी वह भी उनको दिला दिया करते थे और विशेष धन का दान करते थे ॥ ९ ॥ जब यह समझ लिया जाता था कि द्विजों में कोई भी दरिद्र नहीं रहा है तभी उन द्विजों को विदाई करते थे। इसी प्रकार से सोलह सहस्र स्नातकों को भी राजा नित्य प्रति मत्सरता रहित होकर सत्य भाव से ही भोजन कराया करते थे। वे पहिले बहुत समय तक उसको जिगीषा से उसके घर में स्थित रहा करते थे ॥ १०।११ ॥ प्राणियों पर पूर्ण रूप से अनुग्रह करने के कारण से ही उस राजा युधिष्ठिर ने सम्पूर्ण जगत् को जित कर लिया था। सत्य की बहुत महिमा है इसी के प्रभाव से असुर बलि राजा इन्द्र हो जायगा ॥ १२ ॥ वह पाताल में स्थित है। किन्तु उसके सत्य के प्रभाव से मैं वहाँ पर उसके घर में स्थित रहा करता हूँ। वह अपने हृदय में बहुत पुण्य कर्मों के करने की भावना रखता है इसीलिये मैं उसके घर में निरन्तर स्थित रहा करता हूँ ॥ १३ ॥ यद्यपि मैंने उसको दैत्ययोनि से छुटकारा पाने के लिये बाँध लिया था किन्तु उसे सत्लोक में वास दिया है। उसे अमरत्व और इन्द्र का पद मैं दे रहा हूँ ॥ १४ ॥

हरिश्चन्द्रो नृपस्सत्यात्सवाहनपरिच्छदः।
स्वशरीरेण शुद्धेन सत्यलोके प्रतिष्ठितः ॥१५
राजानो बहवश्चान्ये ये च सिद्धा महर्षयः।
ज्ञानिनो यतयश्चैव सर्वे सत्येऽच्युताभवन् ॥१६
तस्मात्सत्यरतो लोके संसारोद्धरणक्षमः।
तुलाधारो महात्मावै सत्यवाक्ये प्रतिष्ठितः ॥१७
लोके तत्सदृशो नास्ति सत्यवाक्यस्य कारणात्।
अश्वमेधसहस्रेण सत्यं तु तुलया धृतम् ॥१८
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते।
सर्वं सत्याद्भवेत्साध्यं सत्यो हि दुरतिक्रमः ॥१९
सत्यवाक्येन सा धेनुर्बहुला स्वर्गगामिनी।
सर्वराष्ट्रं समाधाय पुनरावृत्तिदुर्लभा ॥२०

तयाऽस्य सर्वदा साक्षी मृषा नास्ति कदाचन ।
बह्वर्थमल्पमर्घं च क्रयविक्रयणे सुधी ॥२१
सत्यवाक्यं प्रशस्तं च विशेषात्साक्षिणो भवेत् ।
साक्षिणः सत्यमुक्त्वा च अक्षयं स्वर्गमाययु ॥२२

सत्य के ही प्रभाव से राजा हरिश्चन्द्र अपने समस्त वाहन और परिच्छद के सहित अपने शुद्ध शरीर से ही सत्य लोक में प्रतिष्ठित हुए थे ॥१५॥ बहुत से अन्य राजा, सिद्ध और महर्षिगण तथा ज्ञानी एवं यति गण सत्य के प्रभाव से सत्य लोक मे च्युत न होने वाले होकर प्रतिष्ठित हो गये हैं ॥१६॥ इसलिये ही सत्य मे रति रखने वाला और लोक मे सासारिक बाधाओ से उद्धार करने मे समर्थ महान् आत्मा वाला तुलाधार सत्य वचन मे प्रतिष्ठित हुआ था ॥१७॥ लोक मे उस तुलाधार के समान सत्य वाक्य के कारण से अन्य कोई भी नही है। सो अश्वमेध यज्ञो को सत्य के साथ तुला मे रक्खा गया था ॥१८॥ जिस समय मे तोला गया तो एक सहस्र अश्वमेध से भी अधिक गौरवशाली सत्य ही हुआ था। सत्य पालन मे ऐसी अद्भुत शक्ति है कि इससे सभी कुछ साध्य हो जाया करता है किन्तु यह सत्य ही दुरतिक्रम होता है। १६॥ सत्य वाक्य से वह धेनु बहुला स्वर्ग मे गमन करने वाली हुई थी। सम्पूर्ण राष्ट्र को समाधान करके वह इस लोक मे जन्मवृत्त से रहित हो गई थी ॥२०॥ इस रीति से सत्य सर्वदा इस बात का साक्षी है और मिथ्या कुछ भी नही है। बहुत अर्थ (मूल्य) और अल्प अर्थ तथा क्रय और विक्रय करने मे सुधी-सत्य वाक्य और प्रशस्त विशेष रूप से साक्षी होते हैं, वे सत्य कहकर अक्षय स्वर्ग का निवास प्राप्त किया करते हैं ॥२१।२२॥

वावदूकः सभाप्राप्य सत्यं वदति वाक्यति ।
सयाति ब्रह्मणो गेहं यज्ञैरन्यैश्च दुर्लभम् ॥२३
सभाया यो वदेत्सत्यमश्वमेध फलं लभेत् ।
लोभाद्द्वेषामृषोक्त्वा च रौरवं नरकं व्रजेत् ।.२४
सर्वसाक्षी तुलाधारो जनानां शूरएव च ।
विशेषाल्लोभसन्त्यागान्नाके निर्जरता व्रजेत् ॥२५

कश्चिच्छूद्रो महाभागो न लोभे वर्तते क्वचित् ।
वृत्तिश्शाकेन दुःखेन तया शिलोञ्छतो भृशम् ॥२६
जर्जर वस्त्रयुग्म च कटौगात्रे च सर्वदा ।
सदापि लोभविरहो न परस्व गृहीतवान् ॥२७
तस्य जिज्ञासयैवाह गृहीत्वा वस्त्रयुग्मकम् ।
अवकोटे नदीतीरे स्थितस्सस्थाप्य सादरम् ॥२८

वावदूक (अधिक बोलने वाला) सभा में प्राप्त होकर वाणी का स्वामी सत्य ही बोलता है। ऐसा सत्य वचन बोलने वाला वह ब्रह्मा के लोक को प्राप्त किया करता है जो कि अन्य यज्ञों के द्वारा भी कठिन है ।।२३।। सभा मे उपस्थित होकर जो सत्य वचन बोलता है वह अश्वमेघ यज्ञ के पुण्य फल को प्राप्त किया करता है। किसी लोभ के वशीभूत होकर अथवा द्वेष के कारण से जो सभा मे मिथ्या भाषण करता है वह पुरुष रौरव नरक को प्राप्त किया करता है ।।२४।। सब का साक्षी तुलाधार है और वह जनो मे शूरवीर ही है। विशेष लोभ का भली भाँति त्याग कर देने से वह स्वर्ग मे जाकर देवत्व के पद को प्राप्त हुआ था ।।२५।। कोई महान् भाग्य वाला शूद्र है जो कभी भी लोभ मे लिप्त नहीं होता है। वह अपनी वृत्ति शाक से और शिलोञ्छ से बडे ही दुःख से साथ किया करता है ।।२६।। उसके पास दो वस्त्र हैं जो बहुत ही जर्जर हैं। उनमे से एक तो वह कटि मे धारण किया करता है और दूसरा शरीर पर डाले रहा करता है। ऐसी उसकी आर्थिक दयनीय दशा है तो भी सर्वदा उसमें लोभ का अभाव रहता है और पराये धन को वह कभी ग्रहण नहीं करता था ।।२७।। उसकी इस प्रकार की वृत्ति कहाँ तक सत्यता रखती है—इसके जानने की इच्छा से मैंने दो वस्त्र लेकर नदी के तट पर अवकोट मे जाकर फिर मैं वहाँ आदर के साथ उनको रखकर स्थित हो गया था ।।२८।।

स दृष्ट्वा वस्त्रयुग्म तन्नलोभे कुरुते मन ।
इतरस्य परिज्ञाय तस्मान्नया स्वगृह ययौ ॥२६
ततो विचिन्तयित्वा तु हृदा स्वल्पमिति द्विज ।
उदुम्बर हेमगर्भ मयात्रैव पातितम् ॥३०

कीकटे च नदीतीरे विकोणे जनवर्जिते ।
तस्य या तस्य देशे तु दृष्टं तेन तदद्भुतम् ॥३१
अलं विधानमेतत्तु कृत्रिम चोपलक्ष्यते ।
ग्रहणेवाधुना चास्य अलोभ नष्टमेव मे ॥३२
एतद्विमृश्य शूद्रोऽसौ परित्यज्य गृह गतः ।
स्वस्था देवा मुदा तत्र साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥३३
निर्ग्रन्थिरूपमादाय तस्यान्तिकगृह तथा ।
गत्वाऽह दैवसवादमवदं भूतवर्त्तनम् ॥३४
ततोऽभ्यासप्रसङ्गाच्च जनाना च परिप्लवात् ।
तस्य योषा तदागत्य पप्रच्छ दैवकारणम् ॥३५
ततोऽहमवद तस्य यद्वाचेतोगत द्रुतम् ।
निभृतोऽथ निनादस्य कारण कथित मया ॥३६

उसने उन दोनों वस्त्रों को देखकर यह समझ लिया था कि ये किसी अन्य पुरुष के है। उसके मन मे किञ्चित मात्र भी लोभ उत्पन्न नही हुआ था और वह शान्ति से अपने घर को चला गया था ॥२६॥ हे द्विज ! मैंने हृदय मे सोचा था कि शायद यह बहुत ही स्वल्प मूल्य की वस्तु है ऐसा विचार कर तो नहीं छोड़ गया है, इसलिये मैंने फिर वही पर एक हेम जिसके मध्य मे था ऐसा उदुम्बर गिरा दिया था ॥३०॥ कीकट मे और नदी के तीर पर जनों से रहित विकोण मे उसने उस अद्भुत वस्तु को देखा था। यह विधान पर्याप्त है किन्तु यह बनावटी दिखलाई देता है। उस ने सोचा कि यदि मैं इसे ग्रहण करता हूँ तो इसी समय मे मेरे अलोभ अर्थात् लालच का न करना जो एक अत्यावश्यक धर्म है, वह नष्ट ही हो जायगा ॥ ३१।३२ ॥ इस भाँति से उस शूद्र ने विचार करके उसका त्याग कर दिया और वह अपने घर को चला गया था। देवगण यह देखकर परम स्वस्थ होते हुए परम प्रसन्न हुए और सब "साधु-साधु"—अर्थात् बहुत अच्छा-अच्छा मुँह से कहने लगे ॥३३॥ फिर निर्ग्रन्थि स्वरूप को लेकर मैं उसके घर पर गया और फिर मैंने भूतवर्त्तन दैव सम्वाद उससे कह दिया था ॥३४॥ इसके उपरान्त अभ्यास के प्रसग से और जनों के परिप्लव से

से उसकी स्त्री ने उस समय में आकर इस देवकरण को पूछा था ॥३५॥ इसके अनन्तर जो भी चित्त में था वह मैंने शीघ्र ही उससे कह दिया था और निभृत होते हुए निनाद का जो भी कारण था मैंने बता दिया था ॥३६॥

हृद्गत पतिना तेऽद्य विधिना दत्तमन्नवत् ।
परित्यक्त महाभागे पुनर्नास्तीह ते वसु ॥३७
यावज्जीवति दौविध्य तस्य भक्ता न सशय ।
गच्छमातर्गृहं शून्यम् दृष्ट तत्प्रपृच्छ तम् ॥३८
श्रुत्वा तद्वै शिव मा च वचनपत्युरन्तिके ।
गत्वाप्रोवाचदुवृत्त तच्छ्रुत्वाविस्मयगत. ॥३९
विचिन्त्य तया सार्धमागतोऽस्मीममान्तिकम् ।
निभृत मामुवाचेद क्षपणस्त्वचकीर्तय ॥४०
चाक्षुष चिरमशुद्ध हेलयातृणवत्कथम् ।
त्वया त्यक्त यतस्तात नास्तिभाग्यमकण्टकम् ॥४१
ऐश्वर्यमतुल शौर्यं दीर्यतेभावुक पुन ।
स्ववन्धूनां महददु खमाजन्ममरणान्तिकम् ॥४२
द्रक्ष्यसे चात्मना नित्य मृनाना गतिर्ध्रुवम् ।
तस्मात्तद्गृह्यता तूर्णं भुङ्क्ष्व भोग्यमकण्टकम् ।
ऐश्वर्यमतुल शौर्यं लोकाना विस्मय वरम् ॥४३

हे महाभागे ! अन्न की भाँति विधि के द्वारा प्रदत्त आज तेरे पति ने हृद्गत का त्याग कर दिया था फिर यहाँ पर तेरा धन नहीं है ॥३६॥ जब तक जीवित है यह दौविध्य है अर्थात् दुर्भाग्य है । उसके भक्त हैं—इसमें सशय नहीं है । हे माता ! गृह को जाओ । अलब्ध शून्य गृह को देखकर यह उससे पूछा था ॥ ३८ ॥ उसने यह सब वचन श्रवण कर जो कि एक मङ्गल सम्वाद था उसने अपने पतिदेव के समीप में पहुँचकर दुर्वृत्त कह दिया था । पति को यह सब सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ था ॥३६॥ उसने सभी कुछ सुनकर फिर उसी को साथ ले लिया और मेरे पास उपस्थित होगया निभृत में वह मुझसे बोला—हे क्षपणक ! आप मुझे सब बतलाइये ॥४०॥ क्षपणक बोला—चक्षुओं के समक्ष

जो प्रत्यक्ष था उसे आपने हेलावश होकर तृण की भाँति क्यों त्याग दिया था ? हे तात ! यही कारण है । भाग्य प्रकट नहीं है ॥४१॥ अतुल ऐश्वर्य और और तेरा भ वुक शौर्य क्षीर्ण होता है । अपने बन्धुओं का महान् दुःख जन्म से लेकर मरण पर्यन्त है ॥४२॥ तू नित्य ही अपने द्वारा मृत पुरुषों की जो निश्चित गति है वह देखता है । इसलिये उसे शीघ्र ही ग्रहण करो और अकण्टक भोग्य का उपभोग करो । अतुल ऐश्वर्य और शौर्य लोकों का विस्मय कर है ॥४३॥

अकामाच्च व्रत सर्वमक्रोधात्तीर्थसेवनम् ।
दया जप्यसमा शुद्धं सन्तोषो धनमेव च ॥४४
अहिंसा परमा सिद्धि: शिलोञ्छवृत्तिरुत्तमा ।
शाकाहार. सुधातुल्य उपवास. परन्तप ॥४५
सन्तोषो मे महाभोग्य महादान वराटकम् ।
मातृवत्परदाराश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥४६
परदारा भुजङ्गाभा. सर्वे यज्ञा इद मम ।
तस्मादेन न गृह्णामि सत्य सत्य गुणाकर ॥
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शन वरम् ॥४७
इत्युक्ते तु नरश्रेष्ठ पुष्पवर्ष पपात ह ।
मूर्ध्नि देशे ततो तस्य सर्वदेवेरित द्विज ॥४८
देवदुन्दुभयो नेदुर्नृत्यन्त्यप्सरसा गणा ।
जगुर्गन्धर्वपतयो विमान चापतद्दिवः ॥४९
ऊचुर्देवगणास्तत्र विमानमिदमारुह ।
सत्यलोक समासाद्य भुङ्क्ष्व भोग्य महेन्द्रवत् ॥५०

वह शूद्र बोला— मैंने बिना किसी भी कामना के यह सब व्रत किया है और क्रोध से रहित होते हुए ही तीर्थों का सेवन किया है । जो यह दया है वही मन्त्र-जाप के समान है और शुद्ध सन्तोष ही धन है ॥४४॥ किसी भी प्राणी की मन-वाणी और शरीर से हिंसा न करना सबसे बड़ी श्रेष्ठ सिद्धि है । खेतों में गिरा बीनकर अपने उदर की पूर्ति करना सबसे उत्तम वृत्ति है । शाकों का आहार कर लेना अमृत-पान के तुल्य है और उपवास करना ही

सबसे बड़ा श्रेष्ठ तप है । ४५।। सन्तोष ही मेरा महा भोग्य है और एक वराटक (कौड़ी) ही महान् दान है । पराई स्त्रियों को माता के समान समझना तथा पराये द्रव्य को मिट्टी के ढेले की तरह मानना श्रेष्ठ व्रत है ।।४६।। पराई स्त्री तो भुजङ्ग के समान भयानक हैं—ये ही मेरे समस्त यज्ञ हैं । इसलिये हे गुणाकर ! मैं इनका ग्रहण नहीं करूँगा—यह सर्वथा सत्य है और पुनः सत्य है । कीच को लगाकर फिर उसका प्रक्षालन करने से तो पहिले ही उससे दूर रहकर उस कीच का स्पर्श न करना ही श्रेष्ठ होता है जो फिर उसके प्रक्षालन करने का कभी अवसर ही उपस्थित न होवे ।।४७ । भगवान् ने कहा—हे नरश्रेष्ठ ! उस शूद्र के द्वारा इतना कहने पर आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई थी और हे द्विज ! सब देवों के द्वारा की हुई फूलों की वर्षा उसके मस्तक पर—उस स्थान पर और उसके शरीर पर पड़ी थी । उस समय में देवगण दुन्दुभि बजाने लगे थे । अप्सराएँ नृत्य कर रही थी—गन्धर्व पति गान करने लगे थे । उसी समय में स्वर्ग से एक विमान नीचे आया था ।।४८।४९।। फिर सब देवता उससे बोले कि आप इस विमान पर समारूढ़ होइये और अब इस पर चढ़कर सत्य लोक को प्राप्त करें और वहाँ पर महेन्द्र के समान सम्पूर्ण भोगों का सानन्द उपभोग करें ।।५०।।

।। धात्री और तुलसी माहात्म्य ।।

अपरस्यापि पृच्छामि फलस्य पूततां तरोः ।
सर्वलोकहितार्थाय वद नो जगदीश्वर ।।१
धात्रीफल परं पूत सर्वलोकेषु विश्रुतम् ।
यस्योपाश्रयो नारी मुच्यते जन्मबन्धनात् ।।२
पावनवासुदेवस्य फलप्रीतिकरं शुभम् ।
अस्य भक्षणमात्रेण मुच्यते सर्वकल्मषात् ।।३
भक्षणे च भवेदायुः पाने वै धर्मसञ्चयः ।
अलक्ष्मीनाशनं स्नाने सर्वैश्वर्यमवाप्नुयात् ।।४
यस्मिन्गृहे महासेन धात्री तिष्ठति सर्वदा ।
तस्मिन्गृहे न गच्छन्ति प्रेता दैत्यराक्षसाः ।।५

न गङ्गा न गया चैव न काशी न च पुष्करम् ।
एकैव हि नृणां धात्री सम्प्राप्ते हरिवासरे ॥६
एकादश्या पक्षयुगे धात्रीस्नानं करोति यः ।
सर्वपाप क्षयं याति विष्णुलोके महीयते ॥७

श्री स्कन्द ने कहा—हे जगदीश्वर ! दूसरे तरु के फल की भी पूतता मैं आपसे पूछता हूँ । आप समस्त लोकों के हित—सम्पादन के लिये कृपाकर हमको बतलाइये ॥१॥ ईश्वर ने कहा—धात्री (आँवला) का फल सम्पूर्ण लोकों में सबसे अधिक पवित्र फल होता है—यही प्रसिद्ध है । इसलिये आँवले के वृक्ष के समारोपण करने का बड़ा महत्व होता है । इसके लगाने से नर और नारी सांसारिक जन्म-मरण के दुःखप्रद बन्धन से छुटकारा पा जाया करते हैं ॥२॥ भगवान् वासुदेव को यह धात्री फल परम पावन तथा शुभ और प्रसन्नता देने वाला होता है । इस फल के भक्षण मात्र से मनुष्य सब कल्मषों से मुक्त हो जाता है ॥३ । इसके भक्षण करने से आयु की वृद्धि होती है और इसके रस के पान करने से धर्म का सञ्चय होता है । इसके साथ स्नान करने से अलक्ष्मी का नाश होता है और उसे सब प्रकार के ऐश्वर्य की प्राप्ति हुआ करती है ॥ ४ ॥ हे महामेन ! जिस घर में सर्वदा यह धात्री स्थित रहता है उस घर में प्रेत, दैत्य और राक्षस कभी नहीं जाया करते हैं ॥५॥ हरिवासर के दिन में धात्री के ही एकमात्र हो जाने पर इतना महान् पुण्य होता है कि जितना गङ्गा—गया—काशी और पुष्कर के स्नान से भी नहीं होता ॥६॥ पक्ष युग में अर्थात् दोनों कृष्ण और शुक्ल पक्ष में एकादशी तिथि में जो कोई भी पुरुष धात्री, स्नान किया करता है उसके सभी पाप क्षीण हो जाते हैं और वह विष्णुलोक में अन्त में निवास कर महिमान्वित होता है ॥७॥

धात्रीफलं सदा सेव्यं भक्षणे स्नान एव च ।
नियतपारणे विष्णो. स्नानमात्रेहरेर्दिने ॥८
सयते पारणे चैव धात्र्येकस्पर्शने नरः ।
भुक्त्वा तु लङ्घयेद्यस्तु एकादश्यां सितासिते ॥९
एकेनैवोपवासेन कृतेन तु षडानन ।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥१०

अक्षयं लभते स्वर्गं विष्णुसायुज्यमाव्रजेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धात्रीव्रतं समाचर ॥११
धात्रीद्रवेण सततं यस्य केशाः सुरञ्जिताः ।
न पिबेत्स पुनर्मातुः स्तनं कश्चित्षडानन ॥१२
धात्रीदर्शनसस्पर्शान्नाम्न उच्चारणेऽपि वा ।
वरदः सम्मुखो विष्णुः सन्तुष्टोभवति प्रियः ॥१३
धात्रीफलं च यत्रास्ते तत्रतिष्ठति केशवः ।
तत्रब्रह्मास्थिरापद्मा तस्मात्ता तु गृहेन्यसेत् ॥१४

धात्री का फल (आँवला) सर्वदा सेवन करना चाहिए इसका भक्षण करे और इससे स्नान भी करे । विष्णु के पारण मे नियत रूप से इसका प्रयोग करे और हरि के दिन मे स्नान मात्र में धात्री का प्रयोग करे ॥ ८ ॥ सप्त पारण में और धात्री के स्पर्श मे मनुष्य को इसका प्रयोग करना चाहिए । इसको खाकर जो कृष्ण और शुक्ल पक्ष मे एकादशी के दिन लङ्घन करता है हे षडानन ! ऐसे एक ही उपवास का ऐसा महान् पुण्य होता है कि इससे ही सात जन्मो में किये हुए पाप से मनुष्य मुक्त हो जाता है—इसमे लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥९।१०॥ इसके प्रभाव से अक्षय स्वर्गवास प्राप्त होता है जिसमें वह कभी भी च्युत नही होता है । मनुष्य इसके सेवन के प्रभाव से भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्ति कर लेता है । इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नो से धात्री-व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥११॥ धात्री फल (आँवला) के स्व-रस से जिस पुरुष के केश सुरञ्जित होते है, हे षडानन ! इस केश-रञ्जन का ऐसा विशाल प्रभाव होता है कि वह फिर इस ससार मे जन्म ग्रहण करके माता का स्तन नही पीता है अर्थात् उसकी मुक्ति हो जाती है और जन्म-मरण के आवागमन से हो छुटकारा पा जाता है ॥१२॥ धात्री के दर्शन से, स्पर्श से और केवल इसके नाम के उच्चारण मात्र से ही प्रभु विष्णु अत्यन्त सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर उस व्यक्ति के सम्मुख वरदान देने को प्रस्तुत हो जाया करते हैं ॥१३॥ धात्री का फल जिस स्थान पर रहता है वहाँ पर केशव भगवान् स्थित रहा करते हैं । वहाँ पर ब्रह्मा भी उपस्थित रहते हैं और लक्ष्मी तो

सुस्थिर होकर विद्यमान रहती है। अतएव धात्री फल को सर्वदा अपने घर में रखना ही चाहिए ॥१४॥

अलक्ष्मीर्नश्यते यत्र तत्र धात्री प्रतिष्ठति ।
सन्तुष्टास्सर्वदेवाश्च न त्यजन्ति क्षणं मुदा ॥१५
धात्रीफलेन नैवेद्यं यो ददाति महाधनम् ।
तस्यतुष्टो भवेद्विष्णुर्नान्यैः क्रतुशतैरपि ॥१६
स्नात्वा धात्रीद्रवेणैव पूजयेद्यस्तु माधवम् ।
सोऽभीष्टफलमाप्नोति यद्वा मनसि वर्तते ॥१७
तथैव लक्षणं स्मृत्वा पूजयित्वा फलेन तु ।
सुवर्णशतसाहस्रं फलमेति नरोत्तमः ॥१८
या गतिर्ज्ञानिनां स्कन्द मुनीनां योगसेविनाम् ।
गतिं तां समवाप्नोति धात्रीसेवारतो नरः ॥१९
तीर्थसेवाभिगमने व्रतैश्च विविधैस्तथा ।
सा गतिर्लभ्यते पुंसां धात्रीफलसुसेवया ॥२०
प्रीतिश्च सर्वदेवानां देवीनां नो गणस्य च ।
सम्मुखा वरदा स्नाने धात्रीफलनिषेवणे ॥२१
ग्रहादुष्टाश्च ये केचिदुग्राश्च दैत्यराक्षसाः ।
सर्वे न दुष्टता यान्ति धात्रीफलसुसेवनात् ॥२२
सर्वयज्ञेषु कार्येषु शस्तं चामलकीफलम् ।
सर्वदेवस्यपूजायां वर्जयित्वा रवि सुत ! ॥२३
तस्माद्रविदिने तातसप्तम्यां च विशेषतः ।
धात्रीफलानि सततं दूरतः परिवर्जयेत् ॥२४

जिस स्थान पर धात्री प्रतिष्ठित होता है वहीं पर अलक्ष्मी का नाश हो जाता है। सभी देवता धात्री के रहने से अत्यन्त सन्तुष्ट हो जाया करते हैं और वे मुदित होकर वहीं पर स्थिर रहते हैं तथा एक क्षण को भी उस स्थान का त्याग नहीं किया करते हैं ॥१५॥ जो पुरुष धात्री के फल के साथ नैवेद्य समर्पित करता है वह महाधन है। इससे भगवान् विष्णु परम सन्तुष्ट होते हैं जो कि

अन्य सैकड़ों किये हुए यज्ञों से भी नहीं होते हैं ॥१६॥ धात्री के स्वरस से स्नान करके जो भगवान् माधव की पूजा करता है वह अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति किया करता है जो भी उसके मन में होता है ॥ १७ ॥ उसी प्रकार के लक्षण का स्मरण करके और फल के द्वारा पूजन करके नरों में उत्तम मनुष्य दान-सहस्र सुवर्ण के फल को प्राप्त कर लेता है ॥१८॥ हे स्कन्द ! जो उत्तम गति ज्ञान वाले महा पुरुषों की होती हैं और सद्गति योगाभ्यास करने वाले मुनियों की हुआ करती है वही परम श्रेष्ठ गति धात्री की सेवा में रत रहने वाले मनुष्य की होती है ॥ १९ ॥ तीर्थों के सेवन तथा तीर्थों में अभिगमन करने से और अनेक प्रकार के यज्ञों के करने से जो सुगति प्राप्त होती है वही गति मनुष्यों को धात्री के फलों के सुसेवन से प्राप्त हो जाती है ॥२०॥ समस्त देवगण और सब देवियों की तथा गण की प्रसन्नता इसके सेवन से होती है। धात्री फल के सेवन और स्नान में सब देवी देवता वरदान प्रदान करने को उसके सामने उपस्थित रहा करते हैं ॥ २१ ॥ जो कोई दुष्ट ग्रह और जो उग्र राक्षस तथा दैत्य हैं वे सभी धात्री फल के सुसेवन करने से दुष्टता नहीं किया करते हैं ॥२२॥ सब प्रकार के यज्ञों में और समस्त शुभ कार्यों में प्रशंसा की का फल प्रशस्त माना जाता है। हे सुत ! केवल रविदेव को छोड़कर अन्य सभी देवताओं के पूजन में धात्री फल की बहुत बड़ी महिमा बताई गई है ॥ २३ ॥ इसीलिये हे तात ! रविवार के दिन में और सप्तमी तिथि में विशेष रूप से धात्री के फलों को सदा दूर से ही त्याग देना चाहिए ॥२४॥

सर्वेभ्य.पत्रपुष्पेभ्य.सत्तमा तुलसीशिवा ।
सर्वकामप्रदा शुद्धा वैष्णवी विष्णुसुप्रिया ॥२५
भुक्तिमुक्तिप्रदामुख्या सर्वलोकपरा शुभा ।
यामाश्रित्यगताःस्वर्गमक्षय मुनिसत्तमाः ॥२६
हितार्थं सर्वलोकानां विष्णुना रोपिता पुरा ।
तुलसीपत्रपुष्प च सर्वधर्मप्रतिष्ठितम् ॥२७
यथाविष्णो प्रियालक्ष्मीर्यथाऽहं प्रिय एव च ।
तथैव तुलसीदेवी चतुर्थो नोपपद्यते ॥२८

तुलसीपत्रमेकं तु शतहेमफलप्रदम् ।
नान्यैः पुष्पैस्तथा पत्रैर्नान्यैर्गन्धानुलेपनैः ॥२९
तुष्यते दैत्यहा विष्णुस्तुलस्याश्च दलैर्विना ।
अनेन पूजितो येन हरिर्नित्य पराशया ॥३०

भगवान् ईश्वर ने कहा—समस्त प्रकार के पत्र और पुष्पों में तुलसी पत्र सबसे श्रेष्ठ है। यह तुलसी मानव की सम्पूर्ण कामनाओं के प्रदान करने वाली होती है। यह परम शुद्ध है वैष्णवी है और भगवान् विष्णु की अत्यन्त प्रिय होती है ॥२५॥ तुलसी भगवान् की भक्ति और संसार से मुक्ति दोनो ही को देने वाली है और इनके प्रदान करने में इसका मुख्य स्थान माना जाता है। समस्त लोकों में यह परा एवम् अति शुभ मानी जाती है। इस तुलसी का समाश्रय ग्रहण करके श्रेष्ठ मुनिगण अक्षय स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥२६॥ पहिले समय में समस्त लोकों के हित सम्पादन करने के लिये ही भगवान् विष्णु ने इस तुलसी का आरोपण किया था। तुलसी पत्र और पुष्प में सभी धर्म प्रतिष्ठित होते हैं ॥२७॥ जिस प्रकार से विष्णु की प्यारी लक्ष्मी है और जिस भाँति मैं उनका प्रिय हूँ उसी प्रकार से यह तुलसी देवी है। चौथा विष्णु भगवान् का कोई भी प्रिय नहीं है ॥२८॥ तुलसी का एक पत्र शत हेम के फल को प्रदान करने वाला है। अन्य प्रकार के पुष्पों से—पत्रों से तथा अन्य गन्धानुलेपनों से दैत्यों के हनन करने वाले भगवान् विष्णु सन्तुष्ट नहीं होते हैं जब तक कि तुलसी के दल उनके साथ न हों। तुलसी दल के द्वारा पूजित हरि भगवान् नित्य ही पराशा के पूर्ण करने वाले होते हैं ॥२९॥३०॥

तेन दत्तं हुतं जातं कृतं यज्ञव्रतादिकम् ।
जन्मजन्मनि भासित्वं सुखंभाग्यं यशःश्रियम् ॥३१
कुलंशीलं कलत्रं च पुत्रंदुहितरं तथा ।
धनं राज्यमरोगत्वं ज्ञानंविज्ञानमेव च ॥३२
वेदवेदाङ्गशास्त्रं च पुराणागमसंहिताः ।
सर्वं करगतं मन्ये तुलस्याम्यर्चनेहरेः ॥३३
यथागङ्गा पवित्राङ्गी सुरलोके विमोक्षदा ।
यथा भागीरथीपुण्या तथेयंतुलसी शिवा ॥३४

किं च गङ्गाजलेनैव किं च पुष्करसेवया।
तुलसीदलमिश्रेण जलेनैव प्रमोद्यते ॥३५
माधव सम्मुखोथस्य जन्मजन्मसु धीमत ।
तस्य श्रद्धा भवेच्छ्रुत्वा तुलस्या हरिमर्चितुम् ॥३६

तुलसी के द्वारा दत्त (दिया हुआ दान)—हुत (किया हुआ हवन)—ज्ञात (प्राप्त किया हुआ ज्ञान)—कृत (किया हुआ कर्म)—यज्ञ और श्रम आदि सब जन्म-जन्मों में भासमान होते हैं तथा सुख, भाग्य, यश श्री, कुल, शील, कलत्र, पुत्र, पुत्री, धन, राज्य, नीरोगता, ज्ञान, विज्ञान, वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र, पुराण, आगम संहिता सभी कुछ तुलसी दल के द्वारा हरि का अर्चन करने से हस्तगत हो जाया करते हैं—ऐसा मैं मानता हूँ। त्रैलोक्य की कोई भी वस्तु तुलसी द्वारा हरि की पूजा करने पर अलभ्य नहीं रहती है ॥३१।३२।३३॥ जिस तरह भागीरथी गङ्गा परम पवित्र अङ्ग वाली है और सुर लोक में मोक्ष प्रदान करने वाली होती है तथा भागीरथी परम पुण्यमयी है उसी भाँति यह तुलसी परम शिवा होती है ॥ ३४ ॥ गंगा के जल से क्या और पुष्कर के जल सेवन से भी क्या विशेष फल होता है जोकि तुलसी दल के मिश्रित केवल साधारण जल से ही भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ॥३५॥ जो तुलसी दल से सुसम्पन्न जल से भगवान् समर्चन करता है उस धीमान् मनुष्य के जन्म-जन्मों में भगवान् माधव सम्मुख स्थित रहा करते हैं। तुलसी के द्वारा भगवान् हरि का अर्चना श्रवण करके उसकी श्रद्धा हो जाती है ॥३६॥

यो मञ्जरीदलैरेव तुलस्या विष्णुमर्चयेत्।
तस्य पुण्यफलास्कन्द कथितं नैवशक्यते ॥३७
तत्र केशवसान्निध्य यत्रास्ति तुलसीवनम्।
तत्र ब्रह्मा च कमला सर्वदेवगणैं सह ॥३८
तस्मात्ता सनिकृष्टे तु सदा देवी प्रपूजयेत्।
स्तोत्रमन्त्रादिकं यद्वा सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥३९
ये च प्रेताश्च कूष्माण्डाःपिशाचा ब्रह्मराक्षसा ।
भूतदैत्यादयस्तत्र पलायन्ते सदैव हि ॥४०

अलक्ष्मी नाशिनीधूर्णा या डाकिन्यादिमातरः ।
सर्वा सङ्कुचितायान्तिदृष्ट्वातुतुलसीदलम् ॥४१
ब्रह्महत्यादयः पापव्याधयः पापसम्भवा ।
कुमन्त्रिणा कृता ये च सर्वेनश्यन्ति तत्र वै ॥४२
भूतले वापि ते येन हर्यर्थं तुलसीवनम् ।
कृतं क्रतुशतं तेन विधिवत्प्रियदक्षिणम् ॥४३

जो तुलसी की मञ्जरी के दलों के द्वारा भगवान् विष्णु की अर्चना किया करता है हे स्कन्द ! उसके जो पुण्य का फल प्राप्त होता है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥ ३७ ॥ जहाँ पर तुलसी का वन होता है वहाँ पर केशव का सान्निध्य रहा करता है । वहाँ पर ब्रह्मा—लक्ष्मी और अन्य समस्त देवगण भी केशव भगवान् के साथ में रहते हैं ॥३८॥ इसीलिये उसको सन्निकृष्ट होने पर सदा देवी का पूजन करना चाहिए । इसके समीप में स्थित होकर किसी भी स्तोत्र का पाठ तथा मन्त्र का जाप किया जाता है वह सभी अनन्त फल के प्रदान करने वाला हो जाता है ॥३९॥ जो भी प्रेत—कूष्माण्ड—पिशाच राक्षस—ब्रह्मराक्षस—भूत—दैत्य आदि दुष्ट योनियों वाले हैं वे वहाँ से सदा ही पलायमान हो जाया करते हैं ॥ ४० ॥ अलक्ष्मी—नाशिनी—धूर्णा और डाकिनी आदि माताएँ ये सभी सङ्कुचित होकर तुलसी दल का दर्शन करते ही वहाँ से चली जाया करती हैं ॥ ४१ ॥ ब्रह्म हत्या प्रभृति, पापों से उत्पन्न होने वाली पाप व्याधियाँ तथा कुमन्त्र वाले के द्वारा जो भी की गई है ये सब तुलसी दान से विनष्ट हो जाती है ॥४२॥ इस भूतल में भी जिसने हरि की समर्चना के लिये तुलसी का वन लगा दिया है उस पुरुष ने पूर्ण विधि विधान के साथ प्रिय दक्षिणा से समन्वित सौ क्रतु कर लिये हैं तात्पर्य यह है कि सौ यज्ञ के समान उसका पुण्य फल होता है ॥४३॥

हरिलिङ्गेषु चान्येषु शालग्रामशिलासु च ।
तुलसीग्रहणं कृत्वा विष्णोः सायुज्यमाव्रजेत् ॥४४
नन्दन्तिपुरुषास्तस्य माधवार्थे क्षितौ तु यः ।
तुलसी रोपयेद्धीरःसयाति माधवालयम् ॥४५

पूजयित्वा हरिदेव निर्माल्य तुलसीदलम् ।
धारयेद्य. स्वशीर्षे तु पापात्पूतोदिव व्रजेत् ।।४६
पूजने कीर्त्तने ध्याने रोपणे धारणे कलौ ।
तुलसी दहते पाप स्वर्गं मोक्ष ददाति च ।।४७
उपदेश दिशेदस्याः स्वयमाचरते पुनः ।
स याति परम स्थान माधवस्य निकेतनम् ।।४८
हरेः प्रियकर यच्च तन्मे प्रियतर भवेत् ।
सर्वेपामपि देवाना देवीना च समन्ततः ।।४६
श्राद्धेपु यज्ञकार्येपु पर्णमेक पडानन ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तुलसीसेवन कुरु ।।५०
तुलसीसेविता येन तेन सर्व तु सेवितम् ।
शिखाया तुलसी कृत्वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ।
दुष्कृतौघाद्विनिर्मुक्त स्वर्गमेति निरामयम् ।।५२

भगवान् हरि के चरणो मे तथा हरि के विग्रहो पर एव अन्य शालग्राम शिलाओ पर जो कोई पुरुप तुलसी दल ग्रहण कराता है अर्थात् चढाता है वह भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त हो जाता है ।।४४।। जो कोई भी पुरुप इस पृथिवी में भगवान् माधव की पूजा के लिये तुलसी के पौधो का समारोपण किया करता है वह वीर पुरुप निश्चय ही माधव के निवास स्थान में चला जाता है और पुरुप महान् आनन्दित होते हैं ।। ४५ ।। भगवान् श्री हरि देव की पूजा करके उनके चरणो मे चढी हुई तुलसी के दल को जो कि निर्माल्य स्वरूप हो गया है उसे अपने मस्तक पर धारण करता है वह समस्त पापो से छुटकारा पाकर परम पवित्र एवम् शुद्ध हो जाता है और फिर अन्त मे उसको स्वर्ग का निवास प्राप्त होता है ।।४६।। इस घोर कलियुग मे तुलसी का पूजन—तुलसी की महिमा का कीर्त्तन—तुलसी का ध्यान—तुलसी के बिरवा का आरोपण और तुलसी का रूप धारण करता है वह तुलसी उस पुरुप के पापो को दग्ध कर देती है और अन्तकाल मे उसे स्वर्गलोक का निवास और मोक्ष प्रदान कर देती है ।। ४७ ।। इस तुलसी की महिमा का उपदेश अन्य लोगो को जो देता है और

स्वय भी उसी प्रकार के समाचरण को करता है वह पुरुष श्री भगवान् माधव के निवास स्थान को जो कि सबसे उत्तम परम स्थान है प्राप्त हो जाता है ॥४८। श्री हरि का जो प्रिय है वह मुझे अधिक प्रिय है। समस्त देवों को और देवियों को सभी ओर प्रिय है ॥४९॥ श्राद्धो में तथा यज्ञ कार्यों मे हे षडानन! तुलसी का एक दल प्रयुक्त करे। इससे सब प्रकार के प्रयत्नों से तुलसी दल का सेवन करो ॥ ५० ॥ जिस पुरुष ने इस लोक में तुलसी का सेवन कर लिया है उसने सभी की सेवा कर ली है। हे शरमुख! तुलसी के सेवन करने वाले ने अपने गुरु—विप्र और देव तथा तीर्थों के सेवन करने के फल प्राप्त कर लिये हैं। इसलिये तुम भी तुलसी का सेवन करो ॥५१॥ अपनी शिखायें जो तुलसी के दल में रखकर प्राणो का परित्याग करता है वह जीवन में किये हुए सम्पूर्ण दुष्कर्मों के समूह से छुटकारा पाकर निराभय होता हुआ सीधा स्वर्गलोक को चला जाता है ॥५२॥

॥ गंगा माहात्म्य कथन ॥

गतिं चिन्तयता विप्रास्तूर्णं सामान्यजन्मनाम् ।
स्त्रीपु सामीक्षणाद्यस्माद् गङ्गा पाप व्यपोहति ॥१
गङ्गेति स्मरणादेव क्षय याति च पातकम् ।
कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद्गुरुकल्मषम् ॥२
स्नानात्पानाच्च जाह्नव्या पितॄणा तर्पणात्तथा ।
महापातकवृन्दानि क्षय याति दिने दिने ॥३
अग्निना दह्यते तूल तृण शुष्क क्षणाद्यथा ।
तथा गङ्गाजलस्पर्शात्पु सा पाप दहेत्क्षणात् ॥४
सम्प्राप्नोत्यक्षय स्वर्गं गङ्गास्नानेन केशवम् ।
यशो राज्य लभेत्पुण्य स्वगभन्ते परा गतिम् ॥५
पितॄनुद्दिश्य गङ्गायां यस्तु पिण्ड प्रयच्छति ।
विधिना वाक्यपूर्वेण तस्य पुण्यफल शृणु ॥६
अन्नेनैकेन तु साहस्र वर्षं पूज्य सुरालये ।
तिलेन द्विगुण विद्धि तथा मेध्यफलेन च ॥७

गव्येन विधिना विप्राः स्वर्गस्यान्तो न विद्यते ।
एवं पिण्डप्रदानेन नित्यं क्रतुशतं भवेत् ॥८

महर्षि व्यास देव ने विप्रों से कहा—हे विप्रगण ! जो साधारण जन्म वाले पुरुष हैं और अपनी सद्गति होने का चिन्तन किया करते हैं उन पुरुष और स्त्रियों को चाहिए कि गङ्गा का दर्शन करें क्योंकि भागीरथी गङ्गा केवल उसके दर्शन करने से ही पाप का विनाश कर देती है ॥१॥ भगवती गङ्गा के स्मरण मात्र से ही समस्त पातकों का क्षय हो जाता है । गङ्गा की महिमा का कीर्तन करने से जो प्रति पाप होते हैं उनका नाश होता है और गङ्गा के दर्शन से इससे भी बड़े भारी कल्मषों का विनाश होता है ॥२॥ गङ्गा के जल में स्नान करने से, गङ्गाजल का पान करने से, गङ्गाजल में पितृगण का तर्पण करने से महान् जो पातकों के समुदाय होते हैं वे दिन-दिन में क्षय को प्राप्त हो जाते हैं ॥३॥ जिस प्रकार से अग्नि के द्वारा रुई और सूखा हुआ तृण क्षण भर में दग्ध हो जाता है उसी भाँति भागीरथी गङ्गा के जल से केवल स्पर्श करने से ही मनुष्यों के पाप क्षण भर में दग्ध हो जाया करते हैं । ४॥ गङ्गा के जल में स्नान करने की बहुत बड़ी महिमा है । इसके करने से कभी नाश को न प्राप्त होने वाला स्वर्गलोक का निवास मिल जाता है, भगवान् श्री केशव के चरणों की प्राप्ति होती है, संसार में उत्तम यश प्राप्त होता है, राज्य का लाभ होता है और महान् पुण्य मिलता है तथा अन्त समय में स्वर्गलोक और परा गति होती है ॥५॥ अपने पितृगण का उद्देश्य लेकर जो गङ्गा में पिण्ड देता है और विधि-विधान के साथ श्रद्धा पूर्वक पिण्डदान करता है उसका जो पुण्य फल होता है उसका श्रवण तुम करो ॥६॥ जो केवल एक ग्रास का ही पिण्ड बनाकर देता है वह एक सहस्र वर्ष पर्यन्त सुरालय में पूज्य होता है । जो कोई तिलों सहित पिण्डदान करता है उसके उक्त स्वर्ग निवास के समय से दुगुना समय होता है । मेध्य (पवित्र) फल एवं गव्य से युक्त पिण्डों का दान किया करता है हे विप्रो ! उसे जो स्वर्गलोक का निवास मिलता है उसका कभी अन्त नहीं होता है । इस प्रकार से पिण्डों का प्रदान करने से नित्य ही सौ ऋतुओं का पुण्य फल होता है ॥७।८॥

एको गच्छति गङ्गां यः पूयन्ते तस्य पूरुषाः ।
एतदेव महापुण्यं तरते तारयत्यपि ॥९
गङ्गाकृत्स्नगुणं वक्तुं न शक्तश्चतुराननः ।
अतः किञ्चिद्वदाम्यत्र भागीरथ्या द्विजा गुणम् ॥१०
मुनयः सिद्धगन्धर्वा ये चान्ये सुरसत्तमाः ।
गङ्गातीरे तपस्तप्त्वा स्वर्गलोकेऽच्युताभवन् ॥११
पारिजातसमाः पुष्पवृक्षाः कल्पद्रुमोपमाः ।
गङ्गातीरे तपस्तप्त्वा तत्रैश्वर्यं लभन्ति हि ॥१२
तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा ।
पुरुदानैर्गतिर्या च गङ्गा ससेवता च सा ॥१३

जो कोई केवल एक ही भागीरथी गङ्गा पर स्नानादि करने के लिये जाता है उसके समस्त पूर्व पुरुष पवित्र हो जाते हैं। यह ही एक महान् पुण्य है। वह गङ्गा पर स्नान करने वाला स्वयं ही तर जाता है और अपने पूर्व पुरुषों को भी तार देता है ॥९॥ हे द्विजगण ! गङ्गा के पूर्ण जो गुण हैं उनको अन्य कोई तो क्या साक्षात् भगवान् ब्रह्मा भी जिनके चार मुख हैं स्वयं उनका वर्णन नहीं कर सकते हैं। इसलिये मैं भी यहाँ कुछ थोड़े से भागीरथी के गुण तुमको बतलाता हूँ ॥१०॥ मुनिगण—सिद्ध लोग—गन्धर्व वृन्द और जो अन्य देवों मे परम श्रेष्ठ हैं वे गङ्गा के तट पर तपस्या करके स्वर्गलोक मे स्थायी रूप से निवास प्राप्त कर अच्युत होते हुए ही वहाँ रहते है ॥११॥ गङ्गा के तट पर तपश्चर्या करके वहाँ पर परम ऐश्वर्य का लाभ लिया करते हैं क्योंकि वहाँ पर जो पुष्पों वाले वृक्ष हैं वे पारिजात (देवतरु) के समान हैं और समस्त मनोकामना पूर्ण कर देने वाले कल्प वृक्षों के तुल्य होते हैं ॥१२॥ बहुत प्रकार के तपों से—यज्ञ और नाना प्रकार के व्रतों से तथा अधिक दानों से जो मनुष्य को गति प्राप्त होती है वही गति भागीरथी गङ्गा के जल में स्नानादि से प्राप्त होती है अतः इस गङ्गा का भली-भाँति सेवन करना चाहिए ॥१३॥

जारजं पतितं दुष्टमन्त्यजं गुरुघातिनम् ।
सर्वद्रोहेण संयुक्तं सर्वपातकसंयुतम् ॥१४

गव्येन विधिना विप्राः स्वर्गस्यान्तो न विद्यते ।
एवं पिण्डप्रदानेन नित्य क्रतुशत भवेत् ॥८

महर्षि व्यास देव ने विप्रों से कहा—हे विप्रगण ! जो साधारण जन्म वाले पुरुष हैं और अपनी सद्गति होने का चिन्तन किया करते हैं उन पुरुष और स्त्रियों को चाहिए कि गङ्गा का दर्शन करें क्योंकि भागीरथी गङ्गा केवल उसके दर्शन करने से ही पाप का विनाश कर देती है ॥१॥ भगवती गङ्गा के स्मरण मात्र से ही समस्त पातकों का क्षय हो जाता है । गङ्गा की महिमा का कीर्त्तन करने से जो अति पाप होते हैं उनका नाश होता है और गङ्गा के दर्शन से इससे भी बड़े भारी कल्मषों का विनाश होता है ॥२॥ गङ्गा के जल में स्नान करने से, गङ्गाजल का पान करने से, गङ्गाजल में पितृगण का तर्पण करने से महान् जो पातकों के समुदाय होते हैं वे दिन-दिन में क्षय को प्राप्त हो जाते हैं ॥३॥ जिस प्रकार से अग्नि के द्वारा रुई और सूखा हुआ तृण क्षण भर में दग्ध हो जाता है उसी भाँति भागीरथी गङ्गा के जल से केवल स्पर्श करने से ही मनुष्यों के पाप क्षण भर में दग्ध हो जाया करते हैं । ४॥ गङ्गा के जल में स्नान करने की बहुत बड़ी महिमा है । इसके करने से कभी नाश को न प्राप्त होने वाला स्वर्गलोक का निवास मिल जाता है, भगवान् श्री केशव के चरणों की प्राप्ति होती है, संसार में उत्तम यश प्राप्त होता है, राज्य का लाभ होता है और महान् पुण्य मिलता है तथा अन्त समय में स्वर्गलोक और परा गति होती है ॥५॥ अपने पितृगण का उद्देश्य लेकर जो गङ्गा में पिण्ड देता है और विधि-विधान के साथ वाक्य पूर्वक पिण्डदान करता है उसका जो पुण्य फल होता है उसका श्रवण तुम करो ॥६॥ जो केवल एक अन्न का ही पिण्ड बनाकर देता है वह एक सहस्र वर्ष पर्यन्त सुरालय में पूज्य होता है । जो कोई तिलों के सहित पिण्डदान करता है उसके उक्त स्वर्ग निवास के समय से दुगुना समय होता है । मेध्य (पवित्र) फल एवं गव्य से युक्त पिण्डों का दान किया करता है हे विप्रो ! उसे जो स्वर्गलोक का निवास मिलता है उसका कभी अन्त नहीं होता है । इस प्रकार से पिण्डों का प्रदान करने से नित्य ही सौ ऋतुओं का पुण्य फल होता है ॥७।८॥

एको गच्छति गङ्गां यः पूयन्ते तस्य पूरुषाः ।
एतदेव महापुण्यं तरते तारयत्यपि ॥९
गङ्गाकृत्स्नगुणं वक्तुं न शक्तश्चतुराननः ।
अतः किञ्चिद्वदाम्यत्र भागीरथ्या द्विजा गुणम् ॥१०
मुनयः सिद्धगन्धर्वा ये चान्ये सुरसत्तमाः ।
गङ्गातीरे तपस्तप्त्वा स्वर्गलोकेऽच्युताभवन् ॥११
पारिजातसमाः पुष्पवृक्षाः कल्पद्रुमोपमा ।
गङ्गातीरे तपस्तप्त्वा तत्रैश्वर्यं लभन्ति हि ॥१२
तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा ।
पुरुदानैर्गतिर्या च गङ्गा संसेवता च सा ॥१३

जो कोई केवल एक ही भागीरथी गङ्गा पर स्नानादि करने के लिये जाता है उसके समस्त पूर्व पुरुष पवित्र हो जाते हैं । यह ही एक महान् पुण्य है । वह गङ्गा पर स्नान करने वाला स्वयं ही तर जाता है और अपने पूर्व पुरुषों को भी तार देता है ॥९॥ हे द्विजगण ! गङ्गा के पूर्ण जो गुण हैं उनको अन्य कोई तो क्या साक्षात् भगवान् ब्रह्मा भी जिनके चार मुख हैं स्वयं उनका वर्णन नहीं कर सकते हैं । इसलिये मैं भी यहाँ कुछ थोड़े से भागीरथी के गुण तुमको बतलाता हूँ ॥१०॥ मुनिगण—सिद्ध लोग—गन्धर्व वृन्द और जो अन्य देवों में परम श्रेष्ठ हैं वे गङ्गा के तट पर तपस्या करके स्वर्गलोक में स्थायी रूप में निवास प्राप्त कर अच्युत होते हुए ही वहाँ रहते हैं ॥११॥ गङ्गा के तट पर तपश्चर्या करके वहाँ पर परम ऐश्वर्य का लाभ लिया करते हैं क्योंकि वहाँ पर जो पुष्पों वाले वृक्ष हैं वे पारिजात (देववृक्ष) के समान हैं और समस्त मनो-कामना पूर्ण कर देने वाले कल्प वृक्षों के तुल्य होते हैं ॥१२॥ बहुत प्रकार के तपों से—यज्ञ और नाना प्रकार के व्रतों से तथा अधिक दानों से जो मनुष्य को गति प्राप्त होती है वही गति भागीरथी गङ्गा के जल में स्नानादि से प्राप्त होती है अतः इस गङ्गा का भली-भाँति सेवन करना चाहिए ॥१३॥

जारजं पतितं दुष्टमन्त्यजं गुरुघातिनम् ।
सर्वद्रोहेण संयुक्तं सर्वपातकसंयुतम् ॥१४

त्यजन्ति पितरः पुत्राः प्रियः पत्न्यः सुहृद्गणाः ।
अन्ये च बान्धवाः सर्वे गङ्गा तु न परित्यजेत् ॥१५
यथा माता स्वयं जन्म मलशौचं च कारयेत् ।
क्रोडीकृत्य तथा तेषां गङ्गाप्रक्षालयेन्मलम् ॥१६
भवन्ति ते सुविख्याता भोग्यालङ्कारपूजिताः ।
दर्शने क्रियते गङ्गा सकृद्भक्त्या नरैस्तुयैः ॥१७
तेषां कुलीनां लक्षं तु भवात्तारयते शिवा ।
स्मृतार्तिहर्त्री यैर्ध्याता सस्नुना साधुमोदिता ॥१८
गंगा तारयते नृणामुभौ वंशौ भवार्णवात् ।
सङ्क्रान्तिषु व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥१९
पुष्ये स्नात्वा तु गाङ्गया कुलकोटिं समुद्धरेत् ।
शुक्लपक्षे दिवा मर्त्या गङ्गायामुत्तरायणे ॥२०
धन्या देहं विमुञ्चन्ति हृदिस्थे जनार्दने च ।
अनेन विधिना यस्तु भागीरथ्या जले शुभे ॥२१
प्राणांस्त्यक्त्वा व्रजेत्स्वर्गं पुनरावृत्तिवर्जितम् ।
यो गङ्गानुगतो नित्यं सर्वदेवानुगो हि सः ॥२२

जार (उपपति) से समुत्पन्न—पतित (दूषित कर्मों के करने से जो अपनी जाति—धर्म और वर्ण से गिर गया)—दुष्ट (दूषित कर्म करने वाला)—अन्त्यज (सबसे नीच जाति में समुत्पन्न)—गुरु का घात करने वाला—सभी लोगों के साथ द्रोह करने से युक्त और सब प्रकार के पातकों से समन्वित पिता को पुत्र भी त्याग दिया करते हैं तथा पत्नियाँ भी अपने परम प्रिय पति का त्याग कर दिया करती हैं ऐसे उपर्युक्त लोगों को उनके सुहृद्गण और बान्धव भी छोड़ दिया करते हैं किन्तु गंगा ही एक ऐसी है जो ऐसे व्यक्ति का भी कभी त्याग न कर अपना लेती है ॥१४।१५॥ जिस प्रकार से बच्चे की माता स्वयं उसको जन्म देती है और उसका मल मूत्र का परिष्कार भी किया करती है। माँ अपने बच्चे से किसी भी दशा में घृणा नहीं करती है और उसे गोद में लेती है उसी भाँति गङ्गा माता भी मनुष्य चाहे कैसा भी नीच से नीच और

पापी क्यों न हो, उसके मल का प्रक्षालन कर उसे परम पवित्र बना दिया करती है ॥१६॥ जो एकबार ही भक्ति-भाव से गंगा का दर्शन करते हैं वे नर भोगने के योग्य पदार्थों से तथा अनेक अलङ्कारों से पूजित और सुविख्यात हो जाते हैं ॥१७॥ उन पुरुषों के सात कुलों को यह गंगा संसार के कष्टों से तार दिया करती है। जो पुरुष इसका ध्यान करते हैं तथा भली-भाँति स्तवन किया करते हैं उनसे अच्छी तरह से प्रसन्न होती हुई यह गंगा स्मरण की हुई होकर दुःखों का हनन करने वाली होती है ॥१८॥ राशियों पर सूर्य के संक्रमण होने वाले दिनों में और चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहण के समय में एवम् व्यतीपात के दिन में गंगा के जल में स्नान करने से यह मनुष्यों के दोनों वंशों को संसार रूपी समुद्र से तार दिया करती है। १९॥ पुष्य नक्षत्र में गंगा के जल में स्नान करने से एक करोड़ कुलों का उद्धार हो जाता है। उत्तरायण सूर्य के हो जाने पर शुक्ल पक्ष में और दिन के समय में जो मनुष्य गंगा में अर्थात् गंगा के समीप स्थल अथवा तट पर हृदय में भगवान् जनार्दन का ध्यान करते हुए देह का त्याग करते हैं अर्थात् मृत होते हैं और इस विधि से जो भागीरथी के शुभ जल में प्राणों का त्याग किया करते हैं वे स्वर्गलोक को प्राप्त हो जाते हैं जहाँ से फिर इस संसार में आवृत्ति नहीं होती है। जो नित्य ही गंगा पर रहता है उसके पीछे सभी देवगण रहा करते हैं ॥२०॥२१॥२२॥

सर्वदेवमयो विष्णुर्गङ्गा विष्णुमयी यतः ।
गङ्गायां पिण्डदानेन पितृणां च तिलोदकैः ॥२३
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ।
परदाररतद्रव्यरागाद्रोहपरस्य च ॥२४
गतिर्मनुष्यमात्रस्य गङ्गैव परमा गतिः ।
वेदशास्त्रविहीनस्य गुरुनिन्दापरस्य च ॥२५
सदाचारविहीनस्य नास्ति गङ्गासमा गतिः ।
किं यज्ञैर्बहुवित्ताढ्यैः किं तपोभिः सुदुष्करैः ॥२६
स्वर्गमोक्षप्रदा गङ्गा सुखसौभाग्यपूजिता ।
नियमैः परमैर्नित्यं किं दीर्घैर्जपैरपि ॥२७

त्यजन्ति पितर पुत्राः प्रिय पत्न्यः सुहृद्गणा ।
अन्ये च बान्धवा सर्वे गङ्गा तु न परित्यजेत् ॥१५
यथा माता स्वय जन्म मलशौच च कारयेत् ।
क्रोडीकृत्य तथा तेषा गङ्गाप्रक्षालयेन्मलम् ॥१६
भवन्ति ते सुविख्याता भोग्यालङ्कारपूजिताः ।
दर्शने क्रियते गङ्गा सकृद्भक्त्या नरैस्तुयैः ॥१७
तेषा कुलाना लक्ष तु भवात्तारयते शिवा ।
स्मृतार्तिहर्त्री यैर्ध्याता सस्नुना साधुमोदिता ॥१८
गगा तारयते नृणामुभौ वंशौ भवार्णवात् ।
सङ्क्रान्तिषु व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो ॥१९
पुष्ये स्नात्वा तु गाङ्गेषु कुलकोटि समुद्धरेत् ।
शुक्लपक्षे दिवा मर्त्या गङ्गायामुत्तरायणे ॥२०
धन्या देह विमुञ्चन्ति हृदिस्थे जनार्दने च ।
अनेन विधिना यस्तु भागीरथ्या जले शुभे ॥२१
प्राणास्त्यक्त्वा व्रजेत्स्वर्ग पुनरावृत्तिवर्जितम् ।
यो गङ्गानुगनो नित्य सर्वदेवानुगो हि स ॥२२

जार (उपपति) से समुत्पन्न—पतित (दूषित कर्मों के करने से जो अपनी जाति—धर्म और वर्ण से गिर गया)—दुष्ट (दूषित कर्म करने वाला)—अशुच (सबसे शौच आदि से समुत्पन्न)—गुरु का घात करने वाला—सभी लोगों के साथ द्रोह करने से युक्त और सब प्रकार के पातकों से समन्वित पिता को पुत्र भी त्याग दिया करते हैं तथा पत्नियाँ भी अपने परम प्रिय पति का त्याग कर दिया करती हैं, ऐसे उपर्युक्त लोगों को उसके सुहृद्गण और बान्धव भी छोड़ दिया करते हैं किन्तु गंगा ही एक ऐसी है जो ऐसे व्यक्ति का भी कभी त्याग न कर अपना लेती है ॥१४।१५॥ जिस प्रकार से बच्चे की माता स्वयं उसको जन्म देती है और उसका मल मूत्र का परिहार भी किया करती है। माँ अपने बच्चे से किसी भी दशा में घृणा नहीं करती है और उसे गोद में बिठाती है उसी भाँति गङ्गा माता भी मनुष्य चाहे कैसा भी नीच से नीच और

पापी क्यों न हो, उसके मल का प्रक्षालन कर उसे परम पवित्र बना दिया करती है ॥१६॥ जो एकबार ही भक्ति-भाव से गंगा का दर्शन करते हैं वे नर भोगने के योग्य पदार्थों से तथा अनेक अलङ्कारों से पूजित और सुविख्यात हो जाते हैं ॥१७॥ उन पुरुषों के सात कुलों को यह गंगा संसार के कष्टों से तार दिया करती है। जो पुरुष इसका ध्यान करते हैं तथा भली-भाँति स्तवन किया करते हैं उनसे अच्छी तरह से प्रसन्न होती हुई यह गंगा स्मरण की हुई होकर दुःखों का हनन करने वाली होती है ॥१८॥ राशियों पर सूर्य के संक्रमण होने वाले दिनों में और चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहण के समय में एवम् व्यतीपात के दिन में गंगा के जल में स्नान करने से यह मनुष्यों के दोनों पक्षों को संसार रूपी समुद्र से तार दिया करती है। १९॥पुष्य नक्षत्र में गंगा के जल में स्नान करने से एक करोड़ कुलों का उद्धार हो जाता है। उत्तरायण सूर्य के हो जाने पर शुक्ल पक्ष में और दिन के समय में जो मनुष्य गंगा में अर्थात् गंगा के समीप स्थल अथवा तट पर हृदय में भगवान् जनार्दन का ध्यान करते हुए देह का त्याग करते हैं अर्थात् मृत्युगत होते हैं और इस विधि से जो भागीरथी के शुभ जल में प्राणों का त्याग किया करते हैं वे स्वर्गलोक को प्राप्त हो जाते हैं वहाँ से फिर इस संसार में आवृत्ति नहीं होती है। जो नित्य ही गंगा पर रहता है उसके पीछे सभी देवगण रहा करते हैं ॥२०।२१।२२॥

सर्वदेवमयो विष्णुर्गङ्गा विष्णुमयी यतः ।
गङ्गायां पिण्डदानेन पितृणां वै तिलोदकैः ॥२३
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ।
परद्रव्यग्रहणपराणाद्विमुखस्य च ॥२४
गतिर्मनुष्यमात्रस्य गङ्गैव परमा गतिः ।
वेदशास्त्रविहीनस्य गुरुनिन्दापरस्य च ॥२५
सदाचारविहीनस्य नास्ति गङ्गासमा गतिः ।
किं यज्ञैर्बहुवित्ताढ्यैः किं तपोभिः सुदुष्करैः ॥२६
स्वर्गमोक्षप्रदा गङ्गा सुखसौभाग्यपूजिता ।
नियमं गङ्गासेविनस्य किं योगैश्चिन्तयेपरैः ॥२७

भुक्तिमुक्तिप्रदा गङ्गा सुखमोक्षाग्रत स्थिता।
अनेकजन्मसङ्घातपाप पुंसाविनश्यति ॥२८

भगवान् विष्णु समस्त देवगण से परिपूर्ण होते हैं अर्थात् विष्णु में सभी देवताओं का निवास रहता है और भागीरथी गंगा में उन्हीं सब देवमय भगवान् विष्णु का नित्य निवास रहता है। ऐसी विष्णुमयी गंगा के जल में तिलोदक के सहित पितृगण के पिण्डदान से जो पितृगणों में कोई भी पितर अपने दुष्कर्मों के कारण नरक में यातनाएँ भोगा करते हैं वे तुरन्त ही नरकों से छुटकारा पाकर स्वर्गलोक में गंगा जल से पिण्ड देने के प्रभाव से जाकर निवास करने वाले हो जाते हैं और जो पहिले ही पितर स्वर्गलोक के निवासी होते हैं उनको फिर गंगा के प्रभाव से मोक्ष हो जाया करता है। पराई स्त्री—पराये धन में जो बाधा होती है और दूसरे के साथ द्रोह करने से जो मनुष्य मन को पाप होता है ऐसे मनुष्य को परम गति करने वाली एकमात्र गंगा ही होती है। जो पुरुष वेद और शास्त्रों के सद्ज्ञान से शून्य होता है और जो अपने गुरु की निन्दा करने में रति रखता है तथा जो समय पर किये जाने वाले आचार से विहीन होता है ऐसे पुरुष को सद्गति प्रदान करने वाली गङ्गा के समान अन्य कोई भी नहीं है। अत्यधिक धन का व्यय होने वाले बहुत से यज्ञों के करने से क्या लाभ है और अत्यन्त घोर कष्ट देने वाले तपश्चर्या करने में भी क्या प्रयोजन है जबकि सुख और सौभाग्य से पूजित हुई एक मात्र गङ्गा ही स्वर्गलोक का निवास और संसार के बारम्बार जन्म मरण के बन्धनों से छुटकारा दिलाने वाली भागीरथी गङ्गा उपस्थित है। फिर नित्य ही परम नियमों के पालन करने से और चित्त का निरोध करने वाले योग के अभ्यास से क्या लाभ है कि इनके करने का व्यर्थ ही कष्ट भोगा जावे ॥२३।२४।२५।२६।२७॥ मनुष्यों के समक्ष में भुक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाली सुख से ही मोक्ष कारिणी गङ्गा स्थित है। इस महा महिमामयी गङ्गा के प्रभाव से मनुष्यों के अनेक जन्मों के पापों का सङ्घात नष्ट हो जाता है ॥२८॥

स्नानमात्रेण गङ्गाया सद्य स्यात्पुण्यभाङ् नरः।
प्रभासे गोसहस्रस्य राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥२९

लभते यत्फलं दाने गङ्गास्नानाद्दिने दिने ।
दृष्ट्वा तु हरते पापं स्पृष्ट्वा तु लभते दिवम् ॥३०
प्रसङ्गादपि सा गङ्गा मोक्षदा त्ववगाहिता ।
सर्वेन्द्रियाणां चापल्यं वासनाशक्तिसम्भवम् ॥३१
निघृणत्वं ततो गङ्गा दर्शनात्प्रविनश्यति ।
परद्रव्याभिकाङ्क्षत्वं परदाराभिलाषिता ॥३२
परधर्मे रुचिश्चैव दर्शनादेव नश्यति ।
यदृच्छालाभसन्तोषस्स्वधर्मेषु प्रवर्तते ॥३३
सर्वभूतसमत्वं च गङ्गाया मज्जनाद्भवेत् ।
यस्तु गङ्गां समाश्रित्य सुखनिद्रति मानवः ॥३४
जीवन्मुक्तस्स एवेह सर्वेषामुत्तमोत्तमः ।
गङ्गां सश्रित्य यस्तिष्ठेत्तस्य कार्यं न विद्यते ॥३५

भागीरथी गङ्गा के जल में केवल स्नान कर लेने ही से मनुष्य तुरन्त ही पुण्यात्मा बन जाया करता है। राहु से ग्रस्त सूर्य के होने पर अर्थात् सूर्य का ग्रहण पड़ने पर प्रभास क्षेत्र मे एक सहस्र गौओं के दान का भी फल प्राप्त होता है वह पुण्य फल गङ्गा के जल मे स्नान करने मे प्रतिदिन हो जाया करता है। केवल गङ्गा के दर्शन करने से वह मनुष्य के पापों का हरण कर लेती है और गङ्गा जल का स्पर्श करने से वह स्वर्गलोक का निवास प्रदान करती है ॥२६ ३०॥ किसी अन्य कार्य से भी कोई प्रसङ्गवश गंगा तट पर पहुँच जावे और खास तौर से गंगा के स्नान का उद्देश्य लेकर न जावे तो भी वहाँ पर उसके जल मे स्नान करने से मोक्ष प्रदान कर देती है। समस्त इन्द्रियों में जो चंचलता होती है, अर्थात् इन्द्रियाँ अपने विषय की ओर जा दौड़ लगाया करती हैं उस चञ्चलता को जो कि जन्मान्तरीय वासना के कारण समुत्पन्न होती है उसे और निर्घृणत्व को गंगा दर्शन से ही विनष्ट कर दिया करती है। मनुष्य में जो दूसरे के धन को प्राप्त करने की अभिकाङ्क्षा रहा करती है तथा पराई स्त्रियों के साथ रमण करने की जो अभिलाषा मन मे रहती है एवं दूसरे धर्म मे जो रुचि होती है—ये सभी विकृतियाँ गंगा के दर्शन मात्र से ही स्वतः

नष्ट हो जाया करती हैं। गंगा का ऐसा प्रभाव होता है कि इसमें मनुष्य यदृच्छा लाभ से ही सन्तोष कर लिया करता है और फिर उस पुरुष की अपने ही परम्परागत धर्म में प्रवृत्ति रहती है ॥३१।३२॥३३॥ गंगा के जल में मज्जन करने से मनुष्य के हृदय में समस्त प्राणियों को समभाव से देखने का गुण समुत्पन्न हो जाता है। जो पुरुष भगवती गंगा का समाश्रय ग्रहण करके सुख पूर्वक वहाँ पर ही स्थित रहता है वह पुरुष जीवित रहते हुए मुक्त हुए के समान होता है और सभी पुरुषों में परम श्रेष्ठ होता है। गंगा का समाश्रय ग्रहण करके अर्थात् उसी को अपना परमाराध्य इष्टदेव समझकर उसी के बल-भरोसे पर पड़ा रहने वाला पुरुष जो उसके तट पर स्थित रहता है उसका फिर कोई भी कार्य नहीं रहता है ॥३४।३५॥

गङ्गायाच मृतो मर्त्यः स्वर्गं मोक्षंचविन्दति ।
या गतिर्योगयुक्तस्य सत्वस्थस्यमनीषिणः ॥३६
सा गतिस्त्यजतः प्राणान्गङ्गाया तु शरीरिणः ।
चान्द्रायणसहस्राणि यश्चरेत्कायशोधनम् ॥३७
पानं कुर्याद्यथेच्छं च गङ्गाम्भः स विशिष्यते ।
तावत्प्रभावस्तीर्थानां देवानां तु विशेषतः ॥३८
तावत्प्रभावो वेदानां यावन्नाप्नोति जाह्नवीम् ।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ॥३९
दिविभुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्तिजाह्नवि ।
विष्णुपादाब्जसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि ॥४०
धर्मद्रवेति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि ।
विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता ॥४१
त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ।
श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमतारजसा च ते ॥४२
अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम् ।
त्रिभिःश्लोकवरैरेभिर्यः स्नायाज्जाह्नवीजले ॥४३
जन्मकोटिकृतात्पापान्मुच्यते नात्रसंशयः ।
मूलमन्त्रं प्रवक्ष्यामि जाह्नव्या हरिभाषितम् ॥४४

यह मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और मुक्त हो जाता है। ऐसा मनुष्य जीवन्मुक्त हो कहा जाया करता है। यज्ञ—दान—तप—जाप—श्राद्ध और देवगण का पूजन जो भी कुछ गंगा के तट पर यदि किया जाता है तो वह सब निश्च ही करोड़ों से अधिक गुण वाला होता है। गंगा के समीप में मृत्यु को प्राप्त होने वाला मनुष्य स्वर्ग का निवास और मोक्ष दोनों का लाभ प्राप्त किया करता है। जो गति योगाभ्यास मे निरन्तर निरत एक योगी पुरुष की होती है और सत्व में सस्थित एक महा मनीषी पुरुष की गति हुआ करती है वही गति उस पुरुष की भी होती है जो गंगा के तट पर अपने प्राणों का त्याग किया करता है। एक सहस्र चान्द्रायण महा व्रत करके जो काया की शुद्धि की जाती है उससे भी अधिक यथेच्छ रूप से गंगा के जल का पान करने से होती है। समस्त देवों का—प्रभाव तथा सब तीर्थों का प्रभाव विशेष रूप से और वेदों का प्रभाव तभी तक रहता है जब तक मनुष्य गंगा को प्राप्त नहीं किया करता है। वायु ने बताया है कि स है तीन करोड़ तीर्थ हैं। दिवलोक, भूलोक और अन्तरिक्ष म य सब तीर्थ स्थित हैं। हे जाह्नवि ! हे गंगे ! आपका प्रादुर्भाव तो भगवान् विष्णु के चरणों से हुआ है और विश्व में गमन करने वाली हैं ॥३७।३८।३९ ४०॥ आपका नाम 'धर्म द्रव'—ऐसा लोकों में विख्यात है। हे जाह्नवि ! आप मेरे पापों को हरण कीजिए। आप विष्णु के चरणों से समुत्पन्न हुई हैं। आप परम वैष्णवी हैं और भगवान् विष्णु के द्वारा समर्चित हुई हैं। इसलिये आप पापों से मेरी रक्षा कीजिए जो कि जन्म से लेकर मरण पर्यन्त मैंने किये हैं। श्रद्धा से, धर्म से परिपूर्ण श्री सम्पन्न आपकी रज से जो कि अमृत के तुल्य है हे भागीरथि ! मुझे अब आप हे महार्णव ! पवित्र कर दीजिये। इन तीन पद्यों को पढ़ते हुए जो पुरुष गंगा के जल में स्नान करता है वह निश्चय ही करोड़ों जन्मों के किये हुए पापों से मुक्त हो जाता है—इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं है। ये तीनों श्लोक गंगा के स्तवन के लिये परम श्रेष्ठ हैं। अब मैं उस मूल मन्त्र को भी बतलाता हूँ जो गंगा का मन्त्र नृ श्रीहरि ने भाषित किया है ॥४१ से ४४॥

सकृज्जपादर पूतो विष्णुदेहे प्रतिष्ठति।
मन्त्रश्चायम्। ॐ नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमोनमः ॥

जाह्नवीनीरसम्भूतां मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो गङ्गास्नान विना नरः ॥४६
गङ्गाजलोर्मिनिर्धूतपवन स्पृश्यते यदि ।
स पूतः कल्मषाद्घोरात्स्वर्ग चाक्षयमश्नुते ॥४७
यावदस्थिमनुष्यस्य गङ्गातोये प्रतिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥४८

इस भगवान के द्वारा कहे हुए गंगा के मूल मन्त्र का एकबार भी जाप कर लेने से मनुष्य परम पवित्र हो जाया करता है और वह विष्णु के देह प्रतिष्ठित होता है वह मन्त्र यह है—"ओं नमो गङ्गायै विश्व रूपिण्यै नारायण्यै नमो नमः" इसका अर्थ है—विश्व रूप वाली साक्षात् नारायण स्वरूपा भगवती गंगा के लिये मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥ ४५ ॥ गंगा तट पर समुत्पन्न हुई गगोटी मृत्तिका को जो पुरुष अपने मस्तक पर धारण किया करता है वह मनुष्य गङ्गा के जल में स्नान के बिना ही सब प्रकार के घोराति घोर पापों से विमुक्त हो जाया करता है ॥४६॥ गङ्गा की लहरों से उत्पन्न हुई वायु का भी यदि कोई स्पर्श कर लेता है तो वह घोर कल्मषों से छुटकारा पाकर पवित्रात्मा हो जाया करता है और अन्त में कभी क्षीण न होने वाला स्वर्ग का निवास उसे मिलता है ।४७। मनुष्य की अस्थियाँ जितने समय तक गङ्गा के जल में रहा करती हैं उतने ही सहस्र वर्षों तक वह प्राणी स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित रहा करता है । इसीलिये मृत प्राणी की हड्डियों को गङ्गा जल में प्रवाहित किया जाता है क्योंकि उसका महान् पुण्य फल मृतात्मा को प्राप्त होता है ॥४८॥

॥ गणेश द्वारा त्रैपुरि वध ॥

चतुर्भिस्तुरगैर्जुष्ट रथ सूर्यसमप्रभम् ।
त्रैपुरिः समारोहाथाब्रवीद्वाक्य गणाधिपम् ॥१
पिता मे निहतः पित्रा तव यस्माद्गणाधिप ।
तस्मात्त्वामद्य विशिखैर्नयामि यमसादनम् ॥२
ततस्तमब्रवीद्देवो गणेशस्त्रिपुरात्मजम् ॥३

तव तातेन दुष्टेन सुराणामहितं पुरा ।
कृतं कर्म महत्पापं श्रुतं नो जनकेन हि ॥४
पापकर्मरतं दुष्टं ज्ञात्वा ज्ञानबलेन च ।
अवधीत्तं शरैकेन पितरं ते बलेन च ॥५
पङ्कात्प्रतारितो मोहात्प्रेषितो यममन्दिरम् ।
त्वां चाह तत्पथं दैत्य प्रेषयामि क्षणादिह ॥६
उक्तवन्तं महाप्राज्ञं सुराणां च गणाधिपम् ।
विव्याधदशभिस्तीक्ष्णैः कालानलसमप्रभैः ॥७
ततः शरसहस्रैस्तु दैत्यं विव्याध साहसात् ।
यमदण्डसमैर्वाणैःक्षुरप्रैश्च शिलीमुखैः ॥८

महर्षि व्यास देव ने कहा—चार अश्वों से युक्त सूर्य के समान प्रभा वाले रथ में त्रैपुरि समारूढ़ हो गया था और रथ पर चढ़कर उसने गणों के स्वामी से कहा था—त्रैपुरि बोला—हे गणाधिप ! क्योंकि आपके पिता शिव ने मेरे पिता का वध किया था इसलिये अपने पिता का बदला लेने के लिये आज मैं इस रण स्थल में अपने वाणों के द्वारा तुमको यमपुर भेजूँगा अर्थात् तुम्हारा वध करूँगा ॥१।२॥ व्यास जी ने कहा—इसका श्रवण कर फिर गणेश भगवान् ने उस त्रिपुर दैत्य के पुत्र से यह कहा था ॥३॥ गणेश देव बोले—मैंने अपने पूज्य पिता से सुना है कि तेरे पिता ने पहिले अपनी दुष्ट प्रकृति के कारण देवों का बहुत अधिक अहित किया था और महान् घोर पाप कर्म किये थे ॥४॥ इस तरह पाप पूर्ण कर्मों में रत उस तेरे पिता को महान् दुष्ट समझकर ही जो कि उन्होंने अपने ज्ञान के बल से जान लिया था, उन्होंने बलपूर्वक एक ही वाण से तेरे दुष्ट पिता का वध कर दिया था ॥ ५ ॥ मेरे पिताजी ने इस मोह के बीच से उसका उद्धार करके ही यमलोक में भेजा था। हे दैत्य ! मैं अब आज एक ही क्षण में उसी मार्ग में तुमको भेजता हूँ ॥ ६ ॥ महर्षि वर व्यास जी ने कहा—इस प्रकार से कहने वाले देवगण में महान् बुद्धि वाले भगवान् गणाधिप को कालाग्नि के समान प्रभा वाले अत्यन्त तीक्ष्ण दश वाणों से उस दैत्य ने भेदन किया था ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर साहस पूर्वक एक सहस्र

शरो से गणपति ने उस दैत्य को भेद दिया था। ये गणपति के द्वारा छोड़े हुए बाण बहुत ही तीक्ष्ण थे और यमराज के दण्ड के समान ही भीषण थे।८।

कङ्कपत्रैर्महातीक्ष्णैर्वज्रानलसमप्रभैः ।
विचकर्त शरांश्चास्य लम्बोदरः सुरार्चितः ॥९
पुनर्विव्याध विशिखैः सहसा भिदुरोपमैः ।
शरैरर्दितसर्वाङ्गो मूर्च्छितस्त्वपतद्भुवि ॥१०
ततो भद्रश्च सोभद्रो भीषणो निजरान्तकः ।
स्वां स्वां गदां समादाय दुद्रुवुस्तं विनायकम् ॥११
शरैः सम्पातयामास धरण्यां गणनायकान् ।
लाघवात्तु रथं चान्यं गत्वा त्रिपुरनन्दनः ॥१२
विशिखैर्वज्रसङ्काशैः सविभेद गणाधिपम् ।
रुधिरेणावसिक्ताङ्गो रुषा घोरयमप्रभः ॥१३
ललाटे च त्रिभिर्बाणैःसप्तभिश्च स्तनान्तरे ।
चतुर्भिर्नाभिदेशे च पञ्चभिर्मुष्टिमस्तके ॥१४
सविभेद महाक्रोधो बलिनं शम्भुनन्दनः ।
शरैरर्दितसर्वाङ्गः स दैत्यो रणमूर्धनि ॥१५
कश्मलं परमं गत्वा सम्पपात रथोपरि ।
ततः सूतेन धीरेण अपनीतो रणाजिरात् ॥१६

देवगण के द्वारा पूजित गणपति ने इस दैत्य के बाणों को जो कि उसने इन पर छोड़े थे अपने कङ्कपत्र और अत्यन्त तीक्ष्ण तथा वज्र और अनल के तुल्य प्रभा वाले बाणों से छेदन कर दिया था अर्थात् दैत्य के द्वारा प्रयुक्त बाण सभी काट डाले थे ॥ ९ ॥ और फिर वज्र के समान बाणों से सहसा गणेशजी ने उस दैत्य वेध दिया था। उन बाणों से अत्यन्त पीडित होकर समस्त अङ्ग जिसके छिन्न-भिन्न हो गये थे ऐसा वह दैत्य मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा था ॥ १० ॥ इसके उपरान्त भद्र—सौभद्र—भीषण दैत्य जो कि देवों के नाश कर देने वाले थे अपनी-अपनी गदा लेकर एक साथ सबके सब उन विनायक पर पड़े थे ॥११॥ शरों के द्वारा गणनायकों को भूमि पर गिरा दिया था पर बहुत

हीं फुर्ती से वह त्रिपुर दैत्य का पुत्र दूसरे रथ पर जाकर वज्र के तुल्य बाणों से उसने गणों के स्वामी का भेदन अच्छी तरह से किया था। रुधिर से अव-सिक्त अङ्गों वाला—क्रोध से महान् घोर यम के तुल्य, महान् क्रोध से युक्त होकर शम्भु के पुत्र ने उस बलवान् दैत्य को तीन बाणों से फिर ललाट में सात बाणों से स्तनों के मध्य छाती में—चार बाणों से नाभि के भाग में और पाँच बाणों से मुष्टि मस्तक में भेदन किया था। इस प्रकार से बाणों के द्वारा अर्दित अङ्गों वाला वह दैत्य रण भूमि में परम दुःखित होकर रथ के ऊपर गिर गया था और फिर रथवाहन ने धीरे से उस रणक्षेत्र से उसे हटा दिया था ॥१२-॥१३॥१४॥१५॥१६॥

विमुखं नाहनच्छूरो विनायकः सुरार्चितः ।
चिरात्सञ्ज्ञां समालभ्य यन्तारं चाब्रवीद्वचः ॥१७
गच्छ सूत रणे भीरु विनायक हरात्मजम् ।
ततो यन्ताऽब्रवीद्वाक्यं सत्यं पथ्यं च कोमलम् ॥१८
हरात्मजशरान्सोढु कस्समर्थो रणाजिरे ।
तस्मान्मोहगतस्त्वं च मयानीतः प्रभासुत ॥१९
एतज्ज्ञात्वा त्विदानीं भो यद्युक्तं तद्विधीयताम् ॥२०

सुरों के द्वारा वन्दित विनायक ने जब देखा कि वह रणभूमि में विमुख हो गया है तो फिर उसका हनन उसने नहीं किया था। बहुत समय के पश्चात् जब होश आयो तो अपने रथ के यन्ता से यह वचन बोला ॥ १७ ॥ त्रैपुरि ने कहा—हे सूत ! रण में चलो जहाँ पर वह डरपोक शिव का पुत्र विनायक विद्यमान है। महर्षि व्यासजी ने कहा—इसके पश्चात् उस रथ वाहक ने सत्य, हितकर और अति कोमल वचन कहा ॥१८॥ सारथि ने कहा—इस रणभूमि में भगवान् हर के पुत्र के शरों को सहन करने की किस की सामर्थ्य है—अर्थात् उनके बाणों के प्रहारों को कोई भी सहन नहीं कर सकता है। इसीलिये वहाँ पर बेहोश हो गये थे। वहाँ से मैं ही प्रभासुत आपको यहाँ ले आया था ॥१९॥ यह जानकर इस समय जो भी आप उचित समझें वही करें ॥२०॥

एतस्मिन्नन्तरे राज्ञा प्रेषित. कविसत्तम· ।
औषधादिप्रयोगेण गज संज्ञामबोधयत् ॥२१
अकारयच्छतगुणप्राण च जयमादिशत् ।
प्राग्जल मन्त्रित दत्वा रुरोध स्याङ्गस्वगान् ॥२२
स गजोदशनैरेव स्फोटयामास वै गिरिम् ।
एवशतसहस्राणि सैन्यानि सैन्यपालकान् ॥२३
पातयामास समितौ गज परमदुर्जय. ।
सदैत्यस्तस्य पृष्ठस्थ शरै कालानलप्रभै ॥२४
हत्वा स्वपातयच्चोर्व्यां मुख्यमुख्यान्सुराधिपान् ।
शरैस्तस्य तदा देवायमदण्डसमप्रभै ॥२५
निपतन्ति महावीर्या रुधिरौघपरिप्लुता ।
यस्मिन्यस्मिंश्च मार्गे तु सदैत्य सगजो गत· ॥२६
तत्र तत्र चकाराशु भीषण सञ्चित शरै ।
गजेन पातिता केचिद्गजारोहेण चापरे ॥२७
वेगेन भ्रमणेनैव सुरा केचित्प्रतापिता: ।
एव सुरगणाध्यक्षा. शस्त्रास्त्रैर्विविधैश्च तम् ॥२८

व्यास जी ने कहा—इसी बीच मे राजा के द्वारा श्रेष्ठ कविराज वहाँ भेजा गया था। औषध आदि के प्रयोग से गज ने संज्ञा को प्राप्त किया था। उसके प्राण को शतगुण वाला कर दिया था और जय का आदेश दिया था। पहिले उसे अभिमन्त्रित जल दिया गया था और उसके अगो के व्रणों को रोध किया था ॥ २१।२२ ॥ वह गज अपने दाँतो से ही गिरि को स्फुटित कर देता था। इस प्रकार से सैकड़ो—सहस्रो सेनाओ और सेना के पाल को उस परम दुर्जय गज ने समिति मे गिरा दिया था। वह दैत्य उसके पीठ पर स्थित था। उस दैत्य ने कालाग्नि के तुल्य वाणो के द्वारा जो मुख्य-मुख्य सुराधिप थे उनको मारकर भूमि पर गिरा दिया था। उस समय में उस दैत्य के शरो से जो कि यम के दण्ड के तुल्य भीषण थे देवगण महान् वीर्य वाले भी होते हुए रक्त के ओघ से लथपथ होकर गिर रहे थे जिस-जिस मार्ग मे वह दैत्य उस गज के

सहित गया था वहाँ पर देव निपतित हो जाते थे ॥ २३—२६ ॥ उन-उन स्थलों पर शीघ्रता से शरों के द्वारा अत्यन्त भीषण प्रहार किया था। कुछ लोग तो गज ने गिरा दिये थे और दूसरे लोग गजारोह के द्वारा गिराये गये थे। बड़े भारी वेग से जो वहाँ पर आगमन किया था उससे कुछ देवता प्रताड़ित हो गये थे। इस प्रकार उस युद्ध स्थल में लड़ाई होने पर फिर समस्त सुरगणों के अध्यक्षों ने अपने नाना भाँति के शस्त्र तथा अस्त्रों से उस पर प्रहार किया था ॥ २७।२८ ॥

स गजं युद्धनिर्भीना निजघ्नुर्बहुभिः शरैः ।
तथापि तद्गज योद्धुं न शक्तास्ते महाबलाः ॥२९
क्षिप्रं तास्तु गजो दन्तैस्त्रैपुरोऽपातयच्छरैः ।
न गता ये धरण्यां च देवा जर्जरविग्रहाः ॥३०
धरण्या गणप जग्मुर्भीतास्ते वेदनातुरा ।
देवाना मदन दृष्ट्वा गणाधीशः प्रतापवान् ॥३१
स गज ताडयामास वज्रानलसमैः शरैः ।
स गजोवेगसरुद्धः शरेण च समुत्थितः ॥३२
अथो तौ द्वौ शरैरेव बिभिदाते परस्परम् ।
उभौ तौ नर्दमानौ च अन्योन्य जयमैच्छताम् ॥३३
शोणितैर्लिप्तसर्वांगौ वीरमुख्यौसुरासुरौ ।
अथ खु ■ गजो मत्तो बिभेद दशनैः स्वकैः ॥३४
आखुनाऽभिद्रुतो नागो घोरयुद्धं तयो परम् ।
अधोर्ध्वं सविभागे च चतुर्भिर्युद्धमद्भुतम् ॥३५

उन्होंने युद्ध से निर्भीत होते हुए उस गज पर बहुत से बाणों से प्रहार किये थे तो भी वे महान् बल वाले उस गज के साथ युद्ध करने में समर्थ न हो सके थे ॥ २९ ॥ उस त्रैपुर गज ने बहुत ही शीघ्र उनको अपने दाँतों से और त्रिपुर के पुत्र ने बाणों से नीचे गिरा दिया था। जो देवता धरणी में नहीं गिरे थे वे जर्जरित शरीर वाले हो गये थे ॥ ३० ॥ धरणी पर वे सब बहुत ही डरे हुए होकर वेदना से अत्यन्त आतुर होते हुए गणों के स्वामी के समीप में पहुँचे

थे। देवताओं के इस कदन को प्रताप वाले गणपति ने देखा था ॥ ३१ ॥ तब गणपति ने अपने वज्राग्नि के तुल्य शरों से उस गज को ताड़ित किया था। वह गज शर के द्वारा वेग से सरुद्ध हो गया था और फिर वह बढ़ा था ॥३२॥ इसके अनन्तर वे दोनो परस्पर मे विशेष रूप से शरों के द्वारा भेदित हुए थे। वे दोनो एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने की इच्छा रखते हुए नर्दमान हुए थे ॥३३॥ वे सुर और असुर दोनो मुख्य वीर रक्त से लिप्त अंगो वाले हो गये थे। इसके उपरान्त उस मदमस्त गज ने अपने दाँतों से आखु (मूषक) को भेदित किया था ॥३४॥ फिर उस आखु ने भी उस गज को प्रभिद्र्त किया था। उन दोनो का परम घोर युद्ध हुआ था। नीचे ऊपर और सविभाग मे चारों के द्वारा उस समय मे अद्भुत प्रकार का युद्ध हुआ था ॥३५॥

स शब्द तुमुल युद्ध सर्वलोकभयङ्करम् ।
दशनैर्दशनैरेव शरैरेव शरोत्तमैः ॥३६
तद्घोरमभवद्युद्ध देवदानव सगरे ।
आखुको भेदयाञ्चक्रे महानाग महाबलम् ॥३७
पर्शु नापृष्ठवशाग्रं स्थित्वा तेनाहनत्पुनः ।
दैत्यस्य दशनद्वारे हृदिस्कन्धेऽथ लाघवात् ॥३८
स गज. सपपातोर्व्यां गतासुर्लोहित वमन् ।
शशसुर्मुनयो देवास्साधुसाध्विति चाब्रुवन् ॥३९
गणप पुष्पगन्धैश्च गन्धधूपैरपूजयन् ।
दुद्रुवुर्दैत्यसङ्घाश्च भीताश्च प्राणकातराः ॥४०
तथैव सह पार्वत्या सुरानाह महेश्वरः ॥४१
अत्रान्येऽस्त्रैरमोघैश्च दैत्यानाजघ्नुराहवे ।
यावत्तु सेनयोर्नैव जययुद्ध समापयेत् ॥४२

उस समय शब्द के सहित महान् तुमुल युद्ध हुआ था जो समस्त लोकों के लिये अत्यन्त ही भयानक था। उस युद्ध मे दाँतों से दाँतों के द्वारा और शरों से शरों के द्वारा युद्ध किया गया था अर्थात् दाँतों के प्रहार का जवाब दाँतों से दिया गया और जब बाणों से प्रहार किया गया था,उसका उत्तर शरों

मे दिया गया था ॥ ३६ ॥ उस देवगण और दानव वृन्द का जो युद्ध हुआ था वह महान् घोर संग्राम हुआ था। उस असुर ने महान् बलशाली नाग (गज) को भेदित कर दिया था ॥३७॥ फिर उसने पृष्ठ वशाग्र मे स्थित होकर पशु के द्वारा उसका हनन किया था और बहुत ही फुर्ती के साथ दैत्य के दशन द्वार मे—हृदय और स्कन्ध में भेदन किया था ॥ ३८ ॥ वह गज मुख से रुधिर का वमन करता हुआ गत प्राण वाला होकर भूमि पर गिर गया था। यह देखकर मुनिगण और समस्त देवता लोग "साधु साधु" अर्थात् 'बहुत अच्छा हुआ—बहुत अच्छा हुआ'—ऐसा मुख से बोलते हुए प्रशंसा करने लगे थे ॥३९॥ फिर सबने भगवान् गणपति का पुष्प—गन्ध—धूप आदि उपचारों के द्वारा पूजन किया था और दैत्यों के समुदाय प्राणों के नाश से भयभीत होकर वहाँ से भागने लगे थे ॥४०॥ भगवान् महेश्वर अपनी प्यारी पत्नी पार्वती देवी के साथ वहाँ आकर सुरों से बोले ॥४१॥ महेश्वर ने कहा—यहाँ पर आर्यों ने अपने अमोघ अस्त्रों के द्वारा इस युद्ध में दैत्यों का हनन किया है और जब तक दोनों सेनाओं का जय युद्ध समाप्त न हो तब तक हनन करते रहो ॥ ४२ ॥

॥ सूर्य माहात्म्य वर्णन ॥

प्रभवस्त्ययमाकाशे नित्य द्विजवर प्रभो ।
कोऽय का वा प्रभावोऽस्य कुत्रजातो घृणीश्वरः ॥१
कि करोति हि कार्य वै यतो रश्मिमयोभृशम् ।
देवैर्मुनिवरैस्सिद्धैश्चारणैर्दैत्यराक्षसैः ॥२
निखिलैर्मानुपैः पूज्य सदैव ब्राह्मणादिभिः ॥३
परम ब्रह्मणस्तेजो ब्रह्मदेहाद्विनिस्सृतम् ।
साक्षाद्ब्रह्ममय विद्धि धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥४
मयूखैर्निर्मलैः कूटमतिचण्ड सुदुःसहम् ।
दृष्ट्वा प्रदुद्रुवुर्लोका करैश्चण्डैः प्रपीडिताः ॥५
ततश्च सागराः सर्वे वरनद्यो नदादय ।
शुष्यन्ति जन्तवस्तत्र म्रियन्ते चातुराजना ॥६

अथ शक्रादयो देवा ब्रह्माणं समुपागताः ।
इममर्थं तदा प्रोचुर्देवांश्च विधिरब्रवीत् ॥७

श्री वैशम्पायन मुनि ने कहा—हे प्रभो ! हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! यह जो नित्य ही इस नभ मण्डल में उदित होता है यह घृणीश्वर कौन है, इसका क्या प्रभाव है और इस का जन्म कहाँ हुआ था ? ॥१॥ यह क्या कार्य किया करता है, क्योंकि यह बहुत तीक्ष्ण किरणों से परिपूर्ण रहता है। इसकी क्या ऐसी महान् महिमा है कि सभी देवगण—मुनिवृन्द—सिद्धों का समुदाय—चारणगण—दैत्यवर्ग—राक्षस और सम्पूर्ण मनुष्यों के द्वारा तथा ब्राह्मण आदि सब वर्णों के द्वारा सर्वदा ही इसकी बड़ी भारी पूजा की जाया करती है, महर्षि व्यास ने कहा—यह ब्रह्मा का परमोत्कृष्ट तेज है जो कि ब्रह्मा के देह से ही निकला था। इसको साक्षात् ब्रह्ममय ही समझना चाहिए। यह धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष चारों पदार्थों का प्रदान करने वाला है ॥ ४ ॥ इसकी अत्यन्त निर्मल किरणों से यह बहुत ही तेजयुक्त है और इसका ऐसा तीक्ष्ण तेज है जिसको सहन करना महान् कठिन होता है। जब यह निकला था तो इस इतने तीव्र तेजस्वी को देखकर लोग भागने लग गये थे और इसकी अत्यन्त तीक्ष्ण किरणों से सभी लोग प्रपीडित एवम् संतप्त हो गये थे ॥५। इसका उस समय में फिर ऐसा प्रभाव हुआ था कि समस्त सागर, सभी नदियाँ और नद आदि जितने भी जलाशय थे सूख गये थे और जो जल में रहने वाले जन्तु थे वहीं पर अत्यन्त दुःखित होकर मरने लग गये थे। इनके अतिरिक्त अन्य भी सब प्राणी सताप से पीडित होते हुए प्राण त्यागने लगे थे ॥६॥ उस समय में ऐसी संहारमयी दशा को देखकर देवराज इन्द्र आदि सभी देवता पितामह ब्रह्माजी के समीप में उपस्थित हुए थे और उस समय में लोकों की इस दुर्दशा का हाल उन्होंने ब्रह्माजी से कहा था। तब ब्रह्मा जी ने उन देवताओं को बतलाया था ॥ ७ ॥

आदिर्ब्रह्मतनोर्देवा सत्त्वगो जनकः प्रभुः ।
अथ रजोमयः साक्षात्सुधांशुस्तनुमध्यगः ॥८
एताभ्यां पालितालोकास्त्रैलोक्ये सचराचराः ।
दिव्योपपादका देवा येवान्नेव जरायुजाः ॥९

अण्डजास्स्वेदजाश्चैव ये वाऽत्रवोद्भिज्जादयः ।
सूर्यस्यास्यप्रभावं तु वक्तुमेव न शक्नुमः ॥१०
अनेनरक्षिता लोका जनिता पालिताध्रुवम् ।
अस्यैवसदृशो नास्ति सर्वेषा परिरक्षणात् ॥११
यं च दृष्ट्वाप्युषः काले पापराशिः प्रलीयते ।
तमाराध्य जना मोक्ष साधयन्ति द्विजातय ॥१२
सन्ध्योपासनकाले तु विप्रा ब्रह्मविदः किल ।
उद्वाहवो भवन्त्येव ते च देवप्रपूजिता ॥१३
अस्यैव मण्डलस्थां च देवी सन्ध्यास्वरूपिणीम् ।
समुपास्य द्विजास्सर्वे लभन्ते स्वर्गमोक्षकौ ॥१४

पितामह ब्रह्मा बोले—हे देवगण ! सत्त्व मे गमन करने वाला ब्रह्म-तनु वा आदि जनक प्रभु है । यह तनु के मध्य मे गमन करने वाला रजोमय साक्षात् सुधांशु है ॥८॥ इन दोनो के द्वारा ही ये समस्त लोक जो भी इस त्रिभुवन मे चर और अचर हैं पाले गये है । दिव्य उपपादक देवता और जो यहाँ पर ही जरायुज प्राणी हैं तथा अण्डज—स्वेदज एवम् उद्भिज आदि सभी प्रकार के प्राणी जो हैं वे कोई भी इस सूर्य के प्रभाव को बतलाने मे समर्थ नहीं होते हैं ॥६।१०॥ इसने ही समस्त लोकों की रक्षा की है, इसीसे सब की उत्पत्ति हुई है और इसके द्वारा ही निश्चित रूप से सम्पूर्ण त्रिभुवन का पालन एवं पोषण भी होता है । सबके परिरक्षण करने मे इसके समान यहाँ अन्य कोई भी नही है ॥११॥ प्रायु के काल मे इसका दर्शन करके पापो का समुदाय प्रलीन हो जाया करता है । इसको समाराधना करके द्विजाति लोग अपने यहाँ पर बार-म्बार जन्म लेना और मरने के आवागमन के कष्ट से छुटकारा प्राप्त करने की सिद्धि प्राप्त करते है ॥१२॥ सन्ध्या-वन्दन के समय में ब्रह्म के वेत्ता विप्र लोग अपनी बाहुओ को ऊपर की ओर उठाते हुए इसकी आराधना किया करते हैं जो कि देवों के भी द्वारा वन्द्यमान होते हैं ॥ १३ ॥ इसी सूर्य के मण्डल के मध्य मे सस्थित सन्ध्या स्वरूप वाली देवी है जिसको गायत्री—सावित्री तथा वेदजननी आदि शुभ नामो से पुकारा करते हैं । इसकी भली भाँति आराधना

एवम् उपासना करके समस्त द्विजगण स्वर्ग का निवास और परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति किया करते हैं ।।१४।।

धरायांपतितोच्छिष्टा पूतास्तेचास्यरश्मिभिः ।
सन्ध्योपासनमात्रेणकल्मषात्पूततांव्रजेत् ।।१५
दृष्ट्वा चाण्डालकं गोघ्नं पतितं कुष्ठसङ्कुतम् ।
महापातकसङ्कीर्णमुपपातकसवृतम् ।।१६
पश्यन्ति ये नरास्सूरं ते पूता गुरुकिल्विषात् ।
अस्योपासनमात्रेण सर्वरोगात्प्रमुच्यते ।।१७
नान्धत्वं न च दारिद्र्यं न दुःखं न च शोच्यताम् ।
लभते च इहामुत्र समुपास्य विरोचनम् ।।१८
प्रदृष्टा नैव लोकेश्च देवा हरिहरादय ।
ध्यानरूपप्रगम्यास्ते दृष्टो देवो ह्यय स्मृतः ।।१९
अस्तु प्रसादनाराध्यश्चास्तूपासनपूजनम् ।
अग्न्यैव दर्शनं ब्रह्मन्प्रलयानलसमितम् ।।२०
सर्वे नगादयस्सत्त्वा मृतावस्थागता भुवि ।
अस्य तेज प्रभावेण प्रलष्टास्सागरादयः ।।२१
न समर्था वय सोढुं कथमन्ये पृथग्जनाः ।
तस्मात्त्वत्प्रसादाद्य पूजयामो यथा रविम् ।
यजन्ति च नरा भक्त्या तदुपायो विधीयताम् ।।२२

धरा में पतित होकर उच्छिष्ट जो भी हैं वे इसकी किरणों से ही पवित्र होते हैं। सन्ध्या की उपासना मात्र से ही कल्मषों से पवित्रता हो जाती है। अर्थात् केवल एकमात्र सन्ध्या समय में नियम से विधिपूर्वक उपासना करने का ऐसा प्रभाव होता है कि इसीसे समस्त कल्मषों का क्षय हो जाया करता है ।।१५।। चाण्डाल को देखकर, गाय का वध करने वाले—पतित—कुष्ठ रोग से ग्रस्त—महा पातक से युक्त तथा उपपातकों से युक्त को देखकर जो पाप होता है उस महान् किल्विष से मनुष्य सूर्य का दर्शन करके मुक्त हो जाते हैं। सूर्य की केवल उपासना से ही मनुष्य सब प्रकार के रोगों से मुक्त हो जाया करते हैं ।।१६।१७।। इस संसार में भगवान् सूर्यदेव की उपासना का महान् प्रभाव होता

है। इसकी उपासना से नेत्रों की दृष्टि की हीनता—दरिद्रता—अन्य किसी भी प्रकार का दुःख और शोक एवम् चिन्ता आदि कुछ भी नहीं होता है ॥ १८ ॥ हरि और हर आदि अन्य महान् देवताओं के दर्शन लोकों ने कभी साक्षात् रूप में नहीं किये हैं। इन सभी देवगणों का तो केवल ध्यान ही किया जाता है और इस ध्यान के द्वारा ही उनका ध्यानमय दर्शन लोग किया करते हैं, किन्तु यह भगवान् सूर्य तो प्रत्यक्ष देव हैं जो साक्षात् सबको अपना दर्शन दिया करते हैं ॥१९॥ यह पितामह के कहे जाने पर देवगण ने कहा—हे पितामह ! आपने जो सूर्यदेव की आराधना की महिमा बतलाई है वह बहुत ठीक है कि इस देव को प्रसन्न किया जावे और यह सबकी आराधना के योग्य है, इसकी उपासना तथा पूजा भी करनी चाहिए। किंतु हे ब्रह्मन् ! इस देव के दर्शन तो साक्षात् प्रलय काल की महान् भीषण एवम् असह्य अग्नि के समान है। इसकी महान् तीक्ष्ण किरणों के कारण कैसे इसके कोई दर्शन करे ? ॥ २० ॥ इस समय में भू-मण्डल में समस्त मनुष्य प्रभृति प्राणी इसके प्रतप्त किरणों के तेज से मृतावस्था को प्राप्त हो रहे हैं। इसका इतना भीषण उग्र तेज है कि उसके ताप से सभी सागर आदि विशाल जलाशय भी प्रनष्ट हो गये है। अर्थात् सबका जल सूख गया है ॥ २१ ॥ जब हम सब देवगण भी इसके तेज को सहन करने में समर्थ नहीं हो रहे हैं तो विचारे अन्य क्षुद्र जन्तु कैसे इसे सहन कर सकते है ? इसलिये आप इस समय में ऐसी कृपा कीजिये कि इस सूर्य देव की हम सब समचना करने में समर्थ हो सकें। सभी मनुष्य भक्ति की भावना से सूर्य देव की पूजा-यजन किया करें वही कोई आप उपाय बताइये ॥२२॥

देवाना वचनं श्रुत्वा गतो ब्रह्मा खगेश्वरम् ।
गत्वा स्तोतुं समारेभे सर्वलोकहिताय वै ॥२३
देवत्वं सर्वलोकस्य चक्षुर्भूतो निरामयः ।
ब्रह्मारूपधरः साक्षाद्दुष्प्रेक्ष्यः प्रलयानलः ॥२४
सर्वं देवस्थितस्त्व हि सदा वायुसखस्तनौ ।
अन्नादिपाचनत्वत्तो जीवनं च भवेद्ध्रुवम् ॥२५
उत्पत्तिप्रलयौ देव त्वमेको भुवनेश्वरः ।
त्वदृते सर्वलोकानां दिनैकं नास्ति जीवनम् ॥२६

प्रभुस्त्वं सर्वलोकानां त्राता गोप्ता पिता प्रभुः ।
चराचराणां सर्वेषां त्वत्प्रसादाद्धृतं जगत् ॥२७
देवेषु त्वत्समो नास्ति भगवंस्त्वखिलेषु च ।
अन्तर्देहेषु बाह्येषु सर्वेषु भुवनेषु च ॥२८
सर्वत्र तेऽस्ति सद्भावस्त्वयैतद्धारितं जगत् ।
रूपगन्धादिकारी त्वं रसानां स्वादुता त्वया ॥२९

महर्षि व्यासजी ने कहा—देवों की इस प्रार्थना का श्रवण कर ब्रह्माजी खगेश्वर के समीप में गये थे और वहाँ आकर उन्होंने सब प्राणियों के हित-सम्पादन करने के लिये उनका स्तवन करना प्रारम्भ कर दिया था ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे देव ! आप तो समस्त लोकों के चक्षुस्वरूप एवं निरामय हैं। आप साक्षात् ब्रह्म के ही रूप को धारण करने वाले हैं, किन्तु आपका दर्शन प्राप्त करना महान् कठिन है। आपको कोई भी जीव देख ही नहीं सकता है क्योंकि आपकी किरणों में ऐसा प्रखर तेज विद्यमान है जो साक्षात् प्रलय काल की अग्नि के समान ही है। ॥ २४ ॥ समस्त देवगण में आपकी स्थिति रहती है और आप अपने शरीर में वायुदेव को एक सखा की भाँति सर्वदा रखते हैं। आपमें अन्न आदि का पाचन भी होता है और निश्चित रूप से आपमें ही सब का जीवन होता है ॥ २५ ॥ इस त्रैलोक्य की उत्पत्ति और अन्त में इसका संहार भी आपसे ही होता है। हे देव ! आप ही एक इस भुवन के ईश्वर हैं। आपके बिना तो सभी लोकों का जीवन एक भी दिन तक नहीं हो सकता है। ॥ २६ ॥ हे देव ! आप ही सब लोकों के प्रभु हैं, सबकी रक्षा करने वाले हैं, सबका पोषण-रक्षण करने वाले हैं और सबको प्रसव देने वाले पिता भी आप ही हैं। यह सम्पूर्ण चर और अचर जीवों का जगत् केवल आपके ही प्रसाद से धारण किया हुआ स्थित है ॥ २७ ॥ समस्त देवों में आप ही सबसे बड़े हैं और आपके समान अन्य कोई भी देव नहीं है। हे देव ! आप सबके अन्तर्देहों में, बाह्य भागों में और समस्त भुवनों में स्थित हैं ॥ २८ ॥ ऐसा कोई भी स्थल नहीं है जहाँ पर आप विद्यमान न हों, सर्वत्र आपकी सत्ता है। आपने ही इस जगत् को धारण कर रक्खा है। रूप गन्ध आदि के करने वाले भी आप ही हैं और रसों में जो स्वादुता है वह भी आप ही के कारण होती है ॥ २९॥

एवंविश्वेश्वर: सूरो निखिलस्थितिकारकः ।
तीर्थाना पुण्यक्षेत्राणा मखाना जगत: प्रभो: ॥३०
त्वमेक: प्रयतो हेतुस्सर्वसाक्षी गुणाकर: ।
सर्वज्ञ सर्वकर्ता च हर्ता पाता सदोत्सुक: ॥३१
ध्वान्तपङ्कामयघ्नश्च दारिद्र्य दु:खनाशन ।
प्रेत्येह च परो बन्धु सर्वज्ञ सर्वलोचन ॥३२
त्वदृते सर्वलोकानामुपकारी न विद्यते ॥३३
पितामह महाप्राज्ञ विश्वेन्द्र विश्वभावक ।
ब्रूहि शीघ्र परं यत्ते करिष्यामि मत विधे ॥३४
मयूखस्तेऽतिचण्डश्च लोकानामतिदु:सह ।
यथैव मृदुतामेति तथा कुरु सुरेश्वर ॥३५

इस प्रकार से यह विश्व का ईश्वर सूर्यदेव इस समस्त स्थिति के करने वाले हैं हे प्रभो ! आप ही सब तीर्थों के—मखो के और इस जगत् के स्वामी हैं ॥३०॥ आप ही एक प्रयत इन सबके हेतु हैं और सबके साक्षी तथा गुणों की खान हैं। आप सब कुछ के ज्ञाता हैं,आप ही सबके करने वाले हैं आप ही सपूर्ण विश्व के संहार करने वाले हैं और आप ही इसके रक्षक एवं पालक भी हैं। आप ही सदा उत्सुक रहा करते हैं ॥ ३१ ॥ आप घोर अन्धकार-पङ्क और आमय (रोग) के नाशक करने वाले हैं। आप मानवो की दरिद्रता के दुःख को मिटा देने वाले हैं। और यहाँ पर मरकर आने वाले के परम बन्धु हैं आप सर्वज्ञ हैं तथा सबके नेत्र हैं ॥ ३२ । हे भगवन् आपके बिना समस्त लोकों का उपकार करने वाला अन्य कोई भी नहीं है ॥ ३३ ॥ भगवान् आदित्य देव ने कहा—हे पितामह ! आप तो महान् विद्वान् एवं मनीषी हैं, आप इस विश्व के इन्द्र हैं और आप विश्व पर पूर्ण कृपा करने वाले हैं। हे विधे ! आप मुझे अति शीघ्र आदेश प्रदान कीजिए जिससे कि मैं आपके वचनों का पालन करूँ आप जो भी कुछ बोलेंगे उसको मैं पूर्ण करूँगा ॥ ३४ ॥ सूर्यदेव के इस प्रकार से कहने पर ब्रह्माजी ने कहा— हे सुरेश्वर ! आपकी किरणों का समुदाय बहुत ही अधिक तेज है जिसको कि लोग सहन करने में असमर्थ हैं। जिस रीति से भी यह मृदुलता को प्राप्त हो जावे वही उपाय या विधान आप करें ॥३५॥

किरणाः कोटिकोटिर्मे लोकनाशकराः पराः ।
न चाभीष्टकरा लोके प्रयोगा च्छिन्धि तान्प्रभो ॥३६
ततोविरिञ्चिना तूर्णं रविवाक्यवशाद्ध्रुवम् ।
आहूयविश्वकर्माणंकृत्वा वज्रमयीभ्रमिम् ॥३७
चिच्छेद च रवेर्भानून्प्रलयानलसन्निभान् ।
तैरेव रचितं तत्र विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ॥३८
अमोघं यमदण्डं च शूलं पशुपतेस्तथा ।
कालस्य च परः खड्गश्शक्तिर्गुहप्रमोदिनी ॥३६
चण्डिकायाः परं शस्त्रं विचित्रं शूलकं तथा ।
चक्रेब्रह्माऽऽज्ञयाशीघ्रं विश्वकर्मा तु तेन वै ॥४०
सहस्रकिरणं शिष्टमन्यच्चैव प्रशातितम् ।
भ्रजनोपाय भावेन पुनश्च कश्यपान्मुने ॥४१
अदितेर्गर्भसञ्जात आदित्य इति वै स्मृतः ।
अय च रतिविश्रान्ते मेरुशृङ्गं भ्रमत्यपि ॥४२
सदोर्ध्वं दिनरात्रं च धरण्या लक्षयोजने ।
ग्रहाश्चन्द्रादयस्तत्र चरन्ति विधिनोदिताः ॥४३

आदित्य देव ने कहा—मेरी करोड़ो-करोड़ो किरणें हैं और ये लोकों के नाश करने मे तत्पर हैं । लोक मे ये प्रयुक्त होने वाली एवम् अभीष्ट के करने वाली नही हैं । अतः हे प्रभो ! आप उनका छेदन कर दीजिए ॥ ३६ ॥ व्यास देव ने कहा—इस प्रकार से सूर्य के कहने पर ब्रह्माजी ने रविदेव के वचन के वश हो तुरन्त ही विश्वकर्मा को बुलाकर निश्चित रूप से एक वज्रमयी भ्रमि तैयार कर ली थी ॥ ३७ ॥ उस भ्रमि से सूर्य की जो वज्राग्नि के समान किरणें थी उनका छेदन कर दिया था और जो किरणें सूर्य की छिन्न करके पृथक् कर दी गयी थी उन्हीं किरणो के द्वारा एक सुदर्शन नाम वाला भगवान् विष्णु का आयुध निर्मित किया गया था ॥ ३८ ॥ यही एक चक्रमात्र नही उन किरणों से अन्य आयुध भी प्रस्तुत किये गये थे । यमराज का अमोघ जो दण्ड है जिससे वह पापियों को ताडना दिया करता है, वह बनाया गया—भगवान् पशुपति का

त्रिशूल जो कि महान् भीषण एवम् शत्रु संहार करने वाला है उसकी रचना की गयी थी। कालदेव का परम उग्र खड्ग का निर्माण भी इन्ही कटी हुई किरणों से हुआ था जिसका प्रहार वह समस्त चराचर प्राणियों पर अहर्निश किया करता है और गुरु प्रमोदिनी शक्ति बनाई गयी थी ॥ ३९ ॥ चण्डिका देवी का जो परम प्रधान अस्त्र है जिसका नाम भी शूल है और जिसमें महारिणी एक अद्भुत शक्ति विद्यमान है इन्ही किरणों से बनाया गया था। ब्रह्मा की आज्ञा से ये सब अति शीघ्र किया गया था। विश्वकर्मा ने इनके अतिरिक्त अन्य एक सहस्र किरणें भी काटी थीं। 'यजनोपाय भाव' से फिर कश्यप मुनि से वह अदिति के गर्भ से समुत्पन्न हुआ जो कि आदित्य इस नाम से कहा गया है। यह रात दिन भ्रमण में मेरु पर्वत के शिखर पर भ्रमण किया करता है ॥ ४० ॥ ॥ ४१।४२ ॥ सर्वदा ऊपर दिन-रात इस धरणी से एक लाख योजन ऊँचा है जो कि विधि के द्वारा प्रेरित हुए समस्त ग्रह चन्द्र प्रभृति से घिरा रहता है अर्थात् उसमे स्थित ये सभी रहते हैं। ४३॥

सूर सङ्क्रमते मासान्द्वादश द्वादशात्मक ।
सङ्क्रमादस्य सङ्क्रान्ति सर्वैरेव प्रतीयते ॥४४
तासु यद्वा फल ब्रूमो लोकाना निखिल मुने ।
धनुर्मिथुनमीनेषु कन्याया षडशीतय ॥४५
वृष वृश्चिक कुम्भेषु सिंहे विष्णुपदी स्मृता ।
तर्पण चाक्षय विद्धि दान देवार्चन तथा ॥४६
षडशीतिसहस्राणि षडशीतौ फल भवेत् ।
विष्णुपद्या तु लक्ष तु अयने कोटिकोटिकम् ॥४७
विष्णुपद्या तु यद्दानमक्षय परिकीर्तितम् ।
दातुर्वदामि सान्निध्य सदा जन्मनि जन्मनि ॥४८
शीते तूलपटीदानाद्य दु ख जायते तनौ ।
तुलादाने तल्पदाने द्वयोरेवाक्षय फलम् ॥४९
सर्वोपकरणा शय्या यो ददाति विमत्सर. ।
वर्णमुख्याय विप्राय स राजपदवी लभेत् ॥५०

भी वास्तविकता नहीं है । यह जो भी पिता-पुत्रादि का सम्बन्ध संसार में होता है वह माया और मोह से युक्त ही होता है ॥३॥ हे देवि ! यह प्राणी स्वयं ही अपने आपका पिता है, स्वयं माता तथा बान्धव हैं, यह स्वयं ही अपना स्वजन वर्ग है और स्वयं ही सनातन (सदा—सर्वदा चले आने वाला) धर्म है ॥४॥ हे देवि ! यहाँ पर लोक में आचार की बहुत बड़ी महिमा है । उस सदाचार के पूर्णतया पालन करने से नर को सुख उत्पन्न होता है । जो आचार का पालन न कर अनाचरण किया करते हैं उससे महान् पाप होता है और फिर इसका परिणाम यह होता है कि निश्चय ही उसका नाश हो जाया करता है ॥ ५ ॥ हे देवि ! दूषित दुराचरण के करने से मनुष्य महान् क्रूर योनि में जन्म ग्रहण किया करता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । सत्य से हीन कर्म से और महान् पाप से मोहित होकर ही मनुष्य दुराचारी हो जाया करता है ॥६॥

रिपुत्वे वर्त्तते मर्त्यः प्राणिना नित्यसंस्थितः ।
रिपवस्तस्य वर्तन्ते यत्र तत्र न संशयः ॥७
मैत्रेण वर्तते मर्त्यो यदा लोके प्रिये शुभे ।
तदातस्य भवन्त्येव मित्रा सर्वत्रः भामिनि ॥८
कृषिकारो यदा देवि च्छन्नं बीजं सुसंस्थितम् ।
यादृशं तु भवत्येवतादृशं फलमश्नुते ॥९
तथा तव च पुत्रैश्च साधुभिः स्पर्धितंसह ।
कर्मणस्तस्यतत्प्राप्तफलभुङ्क्षसुसंस्थितम् ॥१०
तव पुत्रा महा भागे तपःशान्तिविवर्जिताः ।
तेन पापेन ते सर्वे पातिता वै महत्पदात् ॥११
एवं ज्ञात्वा शमं गच्छ सुखदुःखं सुखं तथा ।
कस्यपुत्राश्चमित्राणि कस्यस्वजनवान्धवा ॥१२
आत्मकर्मानुसारेण सुखजीवन्ति जन्तवः ।
परार्थे चिन्तनं देवि तत्त्वज्ञानेन पण्डिताः ॥१३
न कुर्वन्ति महात्मानो व्यर्थमेव न संशयः ।
पञ्चभूतात्मकं कायं केवलं सन्धिजर्जरम् ॥१४

जो इस प्रकार से नित्य ही अनाचरण में संस्थित रहता है उसके सभी प्राणी प्रायः शत्रु हो जाया करते हैं। ऐसे मनुष्य के जहाँ-तहाँ रिपु विद्यमान रहते हैं इसमें कुछ भी संशय नहीं है। क्योंकि दुराचरणशील मनुष्य बिना शत्रुओं वाला होता ही नहीं है ॥७॥ हे शुभे ! हे प्रिये ! जब इस लोक में मित्रता की भावना से सबके साथ व्यवहार करता है तब तो हे भामिनि ! उस मनुष्य के सभी जगह सभी प्राणी मित्र हो जाया करते हैं ॥८॥ कृषि करने वाला जिस समय में हे देवि ! बीज को सद्सत करके भली-भाँति स्थित करता है तो जैसा ही वह होता है वैसा ही उसका फल भी होता है अर्थात् किसान जैसा भी बीज भूमि वपन किया करता है वैसी ही उसकी फसल उगकर उसे लाभ देती है ॥ ९ ॥ उसी प्रकार से तुम्हारे पुत्रों ने साधुओं के साथ स्पर्धा की थी, उस कर्म का वह फल प्राप्त हुआ है। उस फल को जो सुसंस्थित हो गया है भोगना चाहिए ॥१०॥ हे महाभागे ! आपके जो पुत्र हैं वे तप और शान्ति से रहित हैं। इसी पाप के प्रभाव से वे सब महान् पद से च्युत होकर पतित हो गये हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार से किये हुए कर्मों पर विचार करके शान्ति का समाश्रय ग्रहण करो और जो तुम्हारे हृदय में महान् दुःख हो रहा है उसका त्याग कर दो और अपने आप में सुख का अनुभव करो। इस संसार में किसके कोई पुत्र, मित्र तथा स्वजन, बान्धव होते हैं ? अर्थात् कोई भी किसी का कुछ नहीं होता है ॥१२॥ अपने ही किये हुए कर्मों के अनुसार जन्तुगण सुख पूर्वक जीवित रहा करते हैं। हे देवि ! पण्डित लोग परार्थ का तत्त्व ज्ञान से चिन्तन किया करते हैं ॥१३॥ जिनकी महान् आत्मा होती है वे व्यर्थ का कर्म कभी नहीं करते— इसमें संशय नहीं है। यह मानव का शरीर पाँच भूतों से निर्मित हुआ है और केवल सन्धियों में यह शरीर जर्जरीभूत होता है। इस शरीर के अस्तित्व में कुछ भी आस्था नहीं है ॥१४॥

आत्मा मित्रं कृतं तेन सर्वं देवि सुखानया ।
आत्मा नाम महापुण्यः सर्वगः सर्वदर्शकः ॥१५
सर्वसिद्धिस्तु सर्वात्मा सात्त्विकः सर्वसिद्धिदः ।
एवंसर्वमयो देवि अमरयेको निरञ्जनः ॥१६

भ्रमता निर्जने येन मूर्तिमन्तो द्विजोत्तमाः ।
चत्वारो दर्शिताः पुण्यामूर्तिमन्तोमहौजसः ॥१७
पञ्चमः श्वसनश्चैव पूर्वाणामित्रमेव च ।
अथो आत्मा समायातो ज्ञानसाहाय्यमेव वा ॥१८
स तान्दृष्ट्वा महात्मा वैज्ञानमात्मा समब्रवीत् ।
ज्ञान पश्य अमीपञ्चमन्त्रयन्तःपरस्परम् ॥१९
एतान्गत्वा ब्रवीहित्वं यूयं क इति पृच्छह ।
ज्ञानं वाक्य परं श्रु त्वा सार्थं तस्यमहात्मनः ॥२०
तदाऽऽहात्मानमाराध्यमेतैः किंते प्रयोजनम् ।
तत्वतो ब्रू हि मे देव सदाशुद्धोऽसिसर्वदा ॥२१

हे देवि ! जिसने अपने ही आत्मा को मित्र बनाया है अर्थात् अपना हित के सम्पादन करने वाला समझ लिया उसने सुख की आशा से सभी कुछ कर लिया है। यह आत्मा जिसका नाम है वह महान् पुण्य है। यह सर्वत्र गमन करने वाला और सभी कुछ को देखने वाला है ॥ १५ ॥ यह सम्पूर्ण सिद्धियों वाला है, यह सर्वात्मा, सात्विक और सब सिद्धियों के प्रदान करने वाला है अर्थात् इसी के उत्थान-चिन्तन और उत्कर्ष से सारी सिद्धियाँ हस्तगत हो जाया करती हैं। हे देवि ! इस प्रकार से यह आत्मा ऐसा है जिसमें सभी देवता निवास किया करते हैं। वह एक ही अकेला निरञ्जन स्वरूप वाला भ्रमण किया करता है ॥१६॥ जिसने निर्जन में भ्रमण करते हुए मूर्तिमान चार श्रेष्ठ द्विज जो कि परम पुण्य स्वरूप मूर्तिमान् महान् ओज वाले थे, देखे थे ॥१७। पाँचवाँ श्वसन है जो पूर्वो का ही मित्र है। इसके अनन्तर आत्मा आया जो ज्ञान साहाय्य वाला है ॥१८॥ वह वैज्ञानात्मा महान् आत्मा वाला जब आया तो उसने उनको देखा था और उनसे वह बोला हे ज्ञान ! इन पाँचों को परस्पर में मन्त्रणा करते हुए देखो ॥ १९ ॥ इनको पहिचान कर तुम इनसे बोलो और इनसे पूछो कि आप लोग कौन हैं। उस महात्मा के साथी ज्ञान ने परम वाक्य का श्रवण किया था ॥२०॥ उस समय में बोला कि आत्मा का ही समाराधन करो इनसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है। हे देव ! आप मुझे तत्त्व स्वरूप से बतलाइये। आप तो सर्वदा ही सदा शुद्ध हैं ॥२१॥

एतेपञ्च महाभागारूपवन्तो मनस्विनः ।
गत्वासन्दर्शयाम्येनानाभाष्ये ज्ञान श्रूयताम् ॥२२
भव्यानेतान्प्रवक्ष्यामि पञ्चमी गतिमागतान् ।
दूतत्वं गच्छ भो ज्ञान कुशलो दूतकर्मणि ॥२३
त्वमात्मश्च्छृणु मे वाक्य सत्य सत्यवदाम्यहम् ।
एतेषासङ्गतिस्तात कार्यानैव त्वयाक्वचा ॥२४
पञ्चानामपि शुद्धात्मन्न कार्यं शुभमिच्छता ।
भवत सङ्गतिमोह इच्छत्येष महामते ॥२५
एतेषा सङ्गतिज्ञान कस्माद्धारयते भवान् ।
तन्मेत्व कारण ब्रूहि याथातथ्येन पण्डित ॥२६
एतेषा सङ्गमात्रात्तु महद्दुःख भविष्यति ।
दुःखमूलाहि पञ्चैव शोकसन्तापकारकाः ॥२७
एवमस्तु महाप्राज्ञ करिष्ये वचन तव ।
ज्ञानमाभाष्य सह्यात्मा ध्यानेन सह सगत ॥२८

आत्मा ने यह श्रवण कर कहा—हे ज्ञान ! आप अब श्रवण करो, ये पाँच महान् भाग्य वाले रूप धारी मनस्वी हैं। मैं चलकर इनको भली-भाँति दिखलाता हूँ और बोलता हूँ ॥ २२ ॥ य पाँचो महान् भव्य हैं जो कि पाँचवी गति को समायान हुए हैं, मैं इनसे बातें करता हूँ। हे ज्ञान ! आप दूत के कर्म करने में बहुत ही अधिक निपुण हैं अतएव आप दूत बन जाइये ॥२३॥ ज्ञान ने कहा—हे आत्मन् ! आप मेरे वचनों को श्रवण करो। मैं इस समय मैं बिल्कुल सच-सच बोल रहा हूँ। हे तात ! मैं यह आपको अपना परामर्श देता हूँ कि आप इनकी कभी भी सङ्गति न करें ॥२४॥ हे शुद्धात्मन् ! यदि आप शुभ कार्य करने की इच्छा रखते हैं तो इन पाँचो की मोहवत आपको कदापि नहीं करनी चाहिए। हे महामति वाले यह मोह आपकी सङ्गति करने की बराबर इच्छा करता रहता है ॥२५॥ आत्मा ने कहा—हे ज्ञान ! आप मुझमें निषेध करते हैं किन्तु आप स्वयं इनकी सङ्गति क्यों किया करते हैं ? हे पण्डित ! इसका क्या कारण है वह आप मुझे यथार्थ रूप से सही सही बतला दीजिए ॥२६॥

कहा—इनके सङ्ग मात्र से ही महान् दुःख होगा। ये पाँचों ही दुःख के मूलभूत हैं और शोक तथा सन्ताप के करने वाले होते हैं। हे महाप्राज्ञ! आपने जो कहा है वह वैसा होगा। मैं आपके वचनों का पूर्ण पालन करूँगा। इस तरह से वह आत्मा ज्ञान से कहकर स्वयं ध्यान के साथ सङ्गत होगया था ॥२७।२८॥

ततः पञ्चैव ते तत्राद्राक्षुरात्मानमेव तम्।
बुद्धिमूचु समाहूय सगाच्छात्मानमेवहि ॥२६
दूतत्वं कुरुकल्याणि अस्माकमात्मना सह।
पञ्चतत्त्वामहात्मानो विश्वस्यधारका शुभा ॥३०
भवत्या मैत्रमिच्छन्ति इत्याभाष्य महामतिम्।
गत्वाबुद्धे त्वया कार्यं कर्तव्यं नइतोव्रज ॥३१
एवमस्तु महाभागा करिष्ये कार्यमुत्तमम्।
एवमाभाषित तेषा गत्वाऽऽहात्मानमेवतम् ॥३२
अहं बुद्धि महाभाग भवन्त समुपागता।
दूतत्वे महता पार्श्वात्तेषा त्वं वचनं शृणु ॥३३
भवन्मैत्री समिच्छन्ति अक्षया पञ्चआत्मका।
कुरुमैत्री महाप्राज्ञ जहि ध्यान सुदूरतः ॥३४

कश्यप मुनि ने कहा—इसके अनन्तर उन पाँचों ने वहाँ पर उस आत्मा को ही देखा था। फिर उन्होंने बुद्धि को बुलाकर उससे कहा कि आत्मा के ही साथ रहो ॥२६॥ उन्होंने बुद्धि से कहा था कि हे कल्याणि! आप आत्मा के साथ सम्वाद सम्प्रेषण के कार्य में हमारे दूत बन जाने का कार्य करो। ये महान् आत्मा वाले पाँचों तत्व इस विश्व के धारक एवम् परम शुभ हैं ॥३०॥ पाँचों ने बुद्धि से 'हम आपके साथ मैत्री चाहते हैं' कहा। वहाँ महान् मति वाले आत्मा के समीप में जाकर तुमको कार्य करना चाहिए और यहाँ से चली जाओ ॥३१॥ ऐसा ही होगा—यह कहकर बुद्धि ने उनसे कहा—हे महाभागो! मैं आपका यह उत्तम कार्य करूँगी इस प्रकार से उनका जो आभाषित [redacted] उसने उस आत्मा [redacted] जाकर कह दिया था ॥ ३२ ॥ बुद्धि ने आत्मा से कहा कि हे महाभाग! मेरा नाम बुद्धि है और मैं आपके समीप उपस्थित हुई हूँ। मैं महान्

लागों को दूत बनकर ही यहाँ पर आई हूँ आज आप उनके जो वचन (सन्देश) हैं उनका श्रवण कीजिए ॥ ३३ ॥ ये पाँचो आत्मक आपके साथ अक्षय मैत्री चाहते हैं। हे महान् पण्डित आप उन सबके साथ मित्रता करलो और इस ध्यान को दूर से ही त्याग दो ॥३४॥

न कर्त्तव्यस्त्वया चात्मन्नेतेषा वै समागम ।
एषा ससर्गमात्रेण महद्दु ख भविष्यति ॥३५
मयाज्ञानेन हीनस्त्वं कथ कर्म करिष्यसि ।
एवमेव न कर्त्तव्यस्तेषा चैव समागम ॥३६
गर्भवास नयिष्यन्ति भवन्त नान्यथा विभो ।
ज्ञानेनैव मयाहीनो अज्ञान यास्यसि ध्रुवम् ॥३७
एवमुक्त्वा तमात्मान विरराम महामतिम् ।
ततस्तामागता बुद्धिमात्मा प्रोवाचनिश्चित ॥३८
ज्ञानध्यानौ महात्मानौ मन्त्रिणौ मम शोभनौ ।
तत्र य न नमेयुक्त तद्बुद्धे किंकरोम्यहम् ॥३९
एवश्रुत्वा ततोबुद्धिस्तेषा पार्श्वे यशस्विनी ।
समाचष्ट समग्र तत्कथन ज्ञानध्यानयो ॥४०
ततस्ते पञ्चका सर्वे आत्मान प्रतिजग्मिरे ।
मैत्रीमेव प्रतीच्छामो, भवतो नित्यमेव हि ॥४१

ज्ञान ने कहा—हे आत्मन् ! आपको उन सबका समागम नहीं करना चाहिए। इनके केवल ससर्ग से ही आपको महान् दु ख होगा ॥३५। मुझ ज्ञान से हीन होकर आप फिर किस प्रकार से कर्म करेगे। किसी प्रकार से उनका समागम नही करना चाहिए ॥३६॥ हे विभो ! ये सब साथ मे रहकर आपको गर्भ के आवास को ले जायेंगे और इनके सम्पर्क मे रहकर आप मुझसे हीन हो जायेंगे तथा फिर अज्ञान को निश्चय ही प्राप्त हो जायेंगे ॥३७॥ इस प्रकार से महान् मति वाले आत्मा से इस तरह से कहकर वह विरत हो गई थी। इसके अनन्तर आई हुई उस बुद्धि से निश्चित होकर आत्मा ने कहा था ॥३८॥ हे बुद्धे ! महान् आत्मा वाले ज्ञान और ध्यान मेरे बहुत ही अच्छे दोनों

मन्त्री हैं। वहाँ पर मेरा यान युक्त नहीं है। अब मैं क्या करूँ? ॥३६॥ इस प्रकार से सुनकर फिर वह यशस्विनी बुद्धि वारिस उनके पास पहुँचकर ज्ञान और ध्यान का जो कथन था वह उनसे कह दिया था ॥४०॥ इसके पश्चात् वे सब पाँचों आत्मा के पास गये थे। उन्होंने कहा था कि हम सब आपके साथ नित्य ही मैत्री चाहते हैं ॥४१॥

एवमस्तु महाभागा भवतां प्रियमेव च।
करिष्ये नात्र सन्देहो मैत्रं हि प्रीतिकारणात् ॥४२
वार्यमाणो महाभागो ज्ञानेनापिमहात्मना।
ध्यानेन च महात्माऽसौ तेषा सङ्गतिमागतः ॥४३
सतै. प्रमोहितस्तत्र रागद्वेषादिभिस्तदा।
पश्चतत्वसमायुक्तः कायित्वङ्गतवान्प्रभुः ॥४४
यदागर्भसमायातो विष्ठामूत्रसमाकुले।
दुर्गन्धे पिच्छिलावर्ते पतितस्तैः स संयुतः ॥४५
अङ्गेन व्याकुलीभूत. पश्चात्मकानुवाच सः।
भोभो. पश्चात्मकाः सर्वे शृणुध्वं वचनं मम ॥४६
भवतासप्रसङ्गेन महादु.खेनमोहितः।
नरकस्मिन्पिच्छिले घोरे पतितो हि महाभये ॥४७
तावत्संस्थीयता राजन्यावद्गर्भः प्रपूरयेत्।
पश्चान्निर्गमनं ते वै भविष्यति न संशयः ॥४८
अस्माकं हि भवान्स्वामी कायदेशे व्यवस्थितः।
राज्यमेवं प्रकर्तव्यं सुखभोक्ता भविष्यति ॥४६
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा आत्मा दु.खेनपीडितः।
गन्तुमिच्छन्नसौतस्मात्पलायनपरोऽभवत् ॥५०

आत्मा ने कहा—हे महान् भागों वालो! ऐसा ही होगा मैं आपका जो भी प्रिय होगा वही करूँगा—इसमें किञ्चित् मात्र भी सन्देह नहीं है। मैत्री तो प्रिय होने के कारण से ही हुआ करती है ॥ ४२ ॥ महात्मा ज्ञान के द्वारा और ध्यान के भी द्वारा निवारण किया गया था, किन्तु वह महाभाग महात्

आत्मा (स्वरूप) वाला उनको सङ्गति में आ गया था ॥ ४३ ॥ उन्होंने वहाँ पर उस समय में राग-द्वेष आदि से उसे प्रमोहित कर दिया था और पञ्चतत्त्वों से समायुक्त होकर प्रभु कायित्व को प्राप्त हो गया था अर्थात् शरीर को धारण करने वाला बन गया था ॥ ४४ ॥ जिस समय में वह माता के गर्भ में आया तो मल-मूत्र से समाकुल दुर्गन्ध वाले पिच्छल आवर्त्त में उन पाँचों से समन्वित होकर गिर गया था ॥ ४५ ॥ आगे से वह अत्यन्त व्याकुल होकर वह उन पंचात्मकों से बोला—हे पञ्चात्मको आप सब मेरे इस वचन का श्रवण करो ॥ ४६ ॥ मैं तो इस समय में आप सबके सम्पर्क से महान् दुःख से मोहित हो गया हूँ देखो, मैं इस समय में महान् भय वाले घोर पिच्छल में पड़ा हुआ हूँ ॥ ४७ ॥ वे पचात्मक बोले—हे राजन् आप उस वक्त तक इसमें सस्थित रहिए जब तक यह गर्भ परिपूरित होता है। इसके पूर्ण हो जाने पर यहाँ से आपका निकास हो जायगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ४८ ॥ हमारे आप स्वामी हैं और शरीर के देश में आप विशेष रूप से अवस्थित रहा करते हैं। इसी भाँति यह राज्य का शासन भी करना चाहिए। ऐसा करने से आप सुखों के उपभोग करने वाले होंगे ॥ ४९ ॥ उनके इस वचन का श्रवण करके वह आत्मा अत्यन्त दुःख से उत्पीडित हुआ था और वह उस स्थान से जाने की इच्छा करता हुआ पलायन (दौड़) करने में तत्पर हो गया था ॥५०॥

॥ वैराग्य तथा आत्मा का संवाद ॥

स गर्भे व्याकुलो जात खिद्यमानो दिने दिने ।
दुःखाक्रान्तो हि धर्मात्मा सर्वपीडाभिपीडितः ॥१
अधोमुखस्तु गर्भस्थो मोहजालेन वञ्चितः ।
आधिव्याधिसमाक्रान्तो हाहाभूतोविचेतनः ॥
दुःखेन महताविष्टो ज्ञानमोहप्रपीडितः ॥२
तव वाक्यं महाप्राज्ञ न कृतं तु मया तदा ।
ध्यानेन वार्यमाणोऽपि पतितो गर्भसङ्कटे ॥३
तस्मादद्य महाप्राज्ञ गर्भवासात्सुदारुणात् ॥४

मन्त्री है। यहाँ पर मेरा यान युक्त नहीं है। अब मैं क्या करूँ ? ॥३९॥ इस प्रकार से सुनकर फिर वह यशस्विनी बुद्धि शान्ति उनके पास पहुँचकर ज्ञान और ध्यान का जो कथन था वह उनसे कह दिया था ॥४०॥ इसके पश्चात् वे सब पाँचों आत्मा के पास गये थे। उन्होंने कहा था कि हम सब आपके साथ नित्य ही मैत्री चाहते हैं ॥४१॥

एवमस्तु महाभागा भवतां प्रियमेव च ।
करिष्ये नात्र सन्देहो मैत्रं हि प्रीतिकारणात् ॥४२
वार्यमाणो महाभागो ज्ञानेनापिमहात्मना ।
ध्यानेन च महात्माऽसौ तेषां सङ्गतिमागतः ॥४३
ततः प्रमोहितस्तत्र रागद्वेषादिभिस्तदा ।
पञ्चतत्त्वसमायुक्तः कायित्वङ्गतवान्प्रभुः ॥४४
यदागर्भसमायातो विण्मूत्रसमाकुले ।
दुर्गन्धे पिच्छिलावर्ते पतितस्तैः स संयुतः ॥४५
सङ्गेन व्याकुलीभूतः पञ्चात्मकानुवाच सः ।
भोभोः पञ्चात्मकाः सर्वे शृणुध्वं वचनं मम ॥४६
भवतांसप्रसङ्गेन महादुःखेनमोहितः ।
नरकस्मिन्पिच्छिले घोरे पतितो हि महाभये ॥४७
तावत्संस्थीयतां राजन्यावद्गर्भः प्रपूरयेत् ।
पश्चान्निर्गमनं ते वै भविष्यति न संशयः ॥४८
अस्माकं हि भवान्स्वामी कायदेशे व्यवस्थितः ।
राज्यमेवं प्रकर्तव्यं सुखभोक्ता भविष्यति ॥४९
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा आत्मा दुःखेनपीडितः ।
गन्तुमिच्छन्नसौतस्मात्पलायनपरोऽभवत् ॥५०

आत्मा ने कहा—हे महान् भागों वालो ! ऐसा ही होगा मैं आपका जो भी प्रिय होगा वही करूँगा—इसमें किञ्चित् मात्र भी सन्देह नहीं है। मैत्री तो प्रिय होने के कारण से ही हुआ करती है ॥ ४२ ॥ महात्मा ज्ञान के द्वारा और ध्यान के भी द्वारा निवारण किया गया था, किन्तु वह महाभाग महान्

आत्मा (स्वरूप) वाला उनकी सङ्गति में आ गया था ॥ ४३ ॥ उन्होंने वहाँ पर उस समय में राग-द्वेष आदि से उसे प्रमोहित कर दिया था और पञ्चतत्वों से समायुक्त होकर प्रभु कायित्व को प्राप्त हो गया था अर्थात् शरीर को धारण करने वाला बन गया था ॥ ४४ ॥ जिस समय में वह माता के गर्भ में आया तो मल-मूत्र से समाकुल दुर्गन्ध वाले पिच्छल आवर्त में उन पाँचों से समन्वित होकर गिर गया था ॥ ४५ ॥ आगे से वह अत्यन्त व्याकुल होकर वह उन पंचात्मकों से बोला—हे पञ्चात्मको आप सब मेरे इस वचन का श्रवण करो ॥ ४६ ॥ मैं तो इस समय में आप सबके सम्प्रसङ्ग से महान् दुःख से मोहित हो गया हूँ देखो, मैं इस समय में महान् भय वाले घोर पिच्छल में पड़ा हुआ हूँ ॥ ४७ ॥ वे पञ्चात्मक बोले—हे राजन् आप उस वक्त तक इसमें संस्थित रहिए जब तक यह गर्भ प्रपूरित होता है । इसके पूर्ण हो जाने पर यहाँ से आपका निकास हो जायगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ४८ ॥ हमारे आप स्वामी हैं और शरीर के देश में आप विशेष रूप से अवस्थित रहा करते हैं । इसी भाँति यह राज्य का शासन भी करना चाहिए । ऐसा करने से आप सुखों के उपभोग करने वाले होंगे ॥ ४९ ॥ उनके इस वचन का श्रवण करके वह आत्मा अत्यन्त दुःख से उत्पीडित हुआ था और वह उस स्थान से जाने की इच्छा करता हुआ पलायन (दौड़) करने में तत्पर हो गया था ॥५०॥

॥ वैराग्य तथा आत्मा का संवाद ॥

स गर्भे व्याकुलो जातः खिद्यमानो दिने दिने ।
दुःखाक्रान्तो हि धर्मात्मा सर्वपीडाभिपीडितः ॥१
अधोमुखस्तु गर्भस्थो मोहजालेन वञ्चितः ।
आधिव्याधिसमाक्रान्तो हाहाभूतोविचेतनः ॥
दुःखेन महताविष्टो ज्ञानमोहप्रपीडितः ॥२
तव वाक्यं महाप्राज्ञ न कृतं तु मया तदा ।
ध्यानेन वार्यमाणोऽपि पतितो गर्भसङ्कटे ॥३
तस्माद्रक्ष महाप्राज्ञ गर्भत्रासात्सुदारुणात् ॥४

मया त्व वारितो ह्यात्मन्घृत वाक्य न चैव मे ।
पश्चात्मर्कैर्महाक्रूरै पातितो गर्भसङ्कटे ॥५
इदानी गच्छ त्व ध्यान तस्मात्मम्प्राप्स्यसे मुखम् ।
गर्भवासाद्विमुच्यस्ते मोक्ष एव न सशय ॥६

कश्यप महामुनि ने कहा—वह आत्मा जिस समय मे माता के गर्भ मे आगया था तो अत्यन्त खेद का अनुभव करता हुआ वह प्रतिदिन बहुत ही व्याकुल हो रहा था । दु खो के द्वारा अत्यन्त आक्रान्त होता हुआ वह धर्मात्मा सब प्रकार की प्रकृष्ट पीडाओं से सभी तरह उत्पीडित हो गया था ॥ १ ॥ गर्भ की स्थिति मे रहते हुए उसका मुख ना नीचे की ओर हो रहा था । और मोह के जाल मे अच्छी तरह बँधा हुआ था । मानसिक व्यथा और शारीरिक कष्टो से एक दम घिरा हुआ होकर हाहाकार कर रहा था तथा बेहोश, ज्ञान शून्य सा हो गया था, क्योकि वह महान् दु ख मे आविष्ट था और ज्ञान एव मोह से बहुत ही सताया हुआ था ॥ २ ॥ आत्मा ने कहा—हे महान् प्रज्ञा वाले परम विद्वन् मैंने आपके वचन को उस समय मे नहीं माना था । ध्यान के द्वारा मुझे वारित भी किया किया गया था किन्तु फिर भी मैं इस गर्भवास के सङ्कट मे आकर पतित हो गया और यहाँ पर फँस ही गया, जिसकी मेरी ही सूचना हुई है । इससे हे महाप्राज्ञ ! अब मेरी रक्षा करो यह गर्भ का निवास तो बहुत ही अधिक दारुण है इसमे मेरा परित्राण किसी भी प्रकार से करो ॥ ३।४ ॥ तब ज्ञान ने कहा—हे आत्मन् ! मैंने तो आपको उन दुष्टो के सम्पर्क एव सङ्गति मे जाने से बहुत रोका था ,किन्तु आपने मेरे वचनो को स्वीकार ही नहीं किया था । इन पश्चात्मको ने जो महान् क्रूर है आपको यहाँ लाकर गर्भवास के कष्टों मे आखिरकार डाल ही दिया है जिसके सङ्कट आप इस समय मे भोग रहे हैं ॥ ५ ॥ अब तो आपका यही कर्त्तव्य है कि आप ध्यान के समीप में चले जाइये अर्थात् ध्यान का समाश्रयण करें । इसी के करने से आपको सुख प्राप्त हो सकेगा । इस गर्भ के निवास से आपका यही करने से छुटकारा होगा—इसमे कुछ भी सशय नहीं है ॥६ ।

तस्य तद्वचन श्रुत्वा ज्ञात्वा ज्ञानस्य तत्त्वताम् ।
ध्यानमाहूय प्रोवाच श्रूयता वचन मम ॥७

त्वामहं शरणं प्राप्तो ध्यान मां रक्ष नित्यशः ।
एवमस्तु महाप्राज्ञ ध्यानमाहमहामतिम् ॥८
एतद्वाक्यं ततः श्रुत्वा आत्मा वै ध्यानमागतः ।
ध्यानेनहिमसं गर्भसंस्थितोमोह वर्जितः ॥९
यदा ध्यानं गतो ह्यात्मा विस्मृतं गर्भजभयम् ।
स द्वाभ्यां सहितस्तत्र आत्मामोह विनाकृतः ॥१०
चिन्तयन्नेवमेवं नित्यमात्मकं सुखमेव हि ।
इतो निष्क्रान्तमात्रस्तु त्यजे पञ्चात्मकं वपुः ॥११
एवं चिन्तयते नित्य गर्भवासगतः प्रभुः ।
सूतिकाले तु सम्प्राप्ते प्राजापत्ये वरानने ॥१२
वायुना चलितो गर्भ. प्राणेनापि बलीयसा ।
योनिर्विकासमायाति चतुर्विंशाङ्गुल तदा ॥१३
पञ्चविंशाङ्गुलोगर्भस्तेन पीडा विजायते ।
एवं सम्पीड्यमानस्तु मू र्छयामूर्च्छित प्रिये ॥१४

इस प्रकार के उस ज्ञान के इन वचनो का श्रवण करके और ज्ञान की तरवता को खूब अच्छी तरह से समझकर उसने फिर ध्यान को बुलाकर कहा था कि मेरे वचन को सुनो । ७॥ आत्मा ने जो कि गर्भ में पड़ा हुआ था ध्यान का स्मरण कर उसस कहा—हे ध्यान ! मैं इस समय मे आपकी शरणागति में आ गया हूँ, अब आप मुझे नित्य ही सुरक्षित रखिए । आत्मा की इस प्रार्थना को सुनकर ध्यान ने कहा—'ऐसा ही होगा' हे महाप्राज्ञ ! आप चिन्तित न हों—यह महामति वाले आत्मा से ध्यान बाला था । ८॥ इस ध्यान के वचन को सुनकर आत्मा फिर ध्यानगत हो गया था । उस ध्यान के साथ रहकर वह आत्मा गर्भ के वास मे भी मोह से वर्जित हो गया था ॥६॥ जिस समय में वह आत्मा ध्यान में संलग्न हो गया था उस समय मे उसने गर्भ से समुत्पन्न जो महान् भय था उसे एकदम भुला ही दिया था । वह आत्मा जब ज्ञान और ध्यान दोनों से सहित हो गया था तो उसे किसी भी प्रकार का मोह नहीं रहा था ॥ १० ॥ वहाँ तो वह फिर नित्य ही आत्मीय सुख का चिन्तन

लगा था और यही सोचता था कि यहाँ से निकलते ही इस पाँच भौतिक शरीर को मैं अवश्य ही त्याग दूंगा ॥११॥ वह प्रभु गर्भ के घोर वास में रहता हुआ नित्य ही चिन्तन किया करता है। जब हे वरानने ! प्राजापत्य प्रसव होने का समय सम्प्राप्त हुआ था ॥१२॥ उस समय में प्राणों से भी अधिक बलवान् वायु के द्वारा वह गर्भ सञ्चालित किया गया था। उस समय में स्त्री का जो योनि द्वार है वह विकसित (चौड़ा) हो जाया करता है और चौबीस अंगुल चौड़ा हो जाया करता है ॥१३॥ किन्तु वह गर्भस्थ बालक पच्चीस अंगुल के प्रमाण वाला होता है। निकलने के योनि द्वार से भी एक अंगुल अधिक होता है। इसलिये उस समय में उसके निष्क्रमण करने में अत्यधिक पीड़ा होती है। यन्त्री के द्वारा खिंचे हुए तार के समान उसके सभी अङ्गों पर खिंचाव की महान् पीड़ा होती है। हे प्रिये ! सम्पीड़ित होकर वह मूर्छा में बेहोश सा हो जाता है। १४॥

पतितो भूमिभागे तु ज्ञानध्यानसमन्वितः ।
प्राजापत्येन दिव्येन वायुना स पृथक्कृत ॥१५
भूमिसस्पर्शमात्रेण ज्ञानध्याने तु विस्मृते ।
ससारबन्धसन्दिग्ध आत्माप्रियतयास्थितः ॥१६
गुणदोषसमाक्रान्तो महामोह समन्वित. ।
स्तनपानादिकसर्वमिच्छत्येव दिनेदिने ॥१७
एवसम्पुष्यमाणस्तुआत्मापश्चात्मकैः सह ।
व्याप्यते हीन्द्रियै. सर्वै विषयै पापकारिभि. ॥१८
बान्धवाना समोहेन भार्या दीना तथैव च ।
आकुलव्याकुलोदेवि जायते च दिने दिने ॥१९
महामोहेन सन्दिग्धो मोहजालगतः प्रभु ।
कैवर्तेन यथा बद्ध शकुलो जालबन्धने ॥२०
चलितु नैव शक्तोऽस्ति तथात्मासीत्प्रबन्धितः ।
मोहजालैस्तुतै सर्वैर्द्दढबन्धैस्तुबन्धित. ॥२१

गर्भ के घोर निवास स्थल से वह ! सी प्रकार से महान् कष्टों का

अनुभव करते हुए ज्ञान तथा ध्यान से संयुत होकर यहाँ भूमि के ऊपर गिरता है और प्राजापत्य दिव्य वायु के द्वारा वह पृथक् किया जाता है। १५ ।। जैसे ही इस भूमि का स्पर्श उसके शरीर से होता है वैसे ही उसके वे ज्ञान और ध्यान दोनों पहिले गर्भवास के साथी भुला दिये जाते हैं। इस संसार के बंधन से वह सन्दिग्ध हो जाया करता है और वह आत्मा इसे ही प्रिय समझकर स्थित हो जाता है ।।१६।। जन्म ग्रहण करने के पश्चात् सो वह गुणों और दोषों में समाक्रान्त होकर महान मोह से घिर जाया करता है और स्नान तथा पान आदि की दिनों दिन इच्छा किया करता है ।।१७।। इस प्रकार से उन पञ्च तत्वों के सहित सम्बध्यमान होता हुआ फिर वह आत्मा सभी इन्द्रियों के द्वारा तथा उनके पापकारी विभिन्न विषयों के द्वारा व्याप्त कर लिया जाता है ।। १८ ।। धीरे धीरे उसे अपने बांधवों का मोह उत्पन्न हो जाया करता है और बड़ा हो जाने पर अपनी भार्या तथा सन्तति का मोह पूर्णतया उसे घेर लिया करता है। हे देवि ! फिर वह प्राय दिन परम आकुल और विशद रूप से बेचैन हो जाता है ।।१९।। महान् मोह में वह अच्छी तरह सन्निग्ध हो जाया करता है और वह आत्मा प्रभु मोह के जाल में पूर्णतया फँस जाता है। जिस तरह कोई पुरुष जाल में बन्धन में मत्स्य को बद्ध कर लिया करता है वही दशा इस आत्मा की होती है ।।२०।। वह आत्मा उस समय में ऐसा प्रवञ्चित हो जाया करता है कि वहाँ से थोड़ा भी चलने की शक्ति उसमें नहीं रह जाती है क्योंकि सांसारिक पदार्थों के मोह का जाल ऐसा सुदृढ होता है कि उससे वह खूब ही अच्छी तरह बद्ध हो जाया करता है ।।२१।।

एवमादिप्रपञ्चेन व्यामोऽसौव्यापवेनहि ।
ज्ञानविज्ञानविभ्रष्टो रागद्वेषादिभिर्हत ।।२२
कामेन पीड्यमानस्तु क्रोधेनैव तथैव च ।
प्रवृत्याधर्मसंगा वद्धा महामूढो व्यजायत ।।२३
एव मूढो यदात्माऽसौ कामक्रोधवशंगत ।
लाभरागादिभि सर्वव्यापृतस्तेर्दु रात्मभि ।।२४
इयं भार्या ह्ययं पुत्र इद मित्रमिद गृहम् ।
एव संसारजालेन महामाहेन वञ्चित ।।२५

पुत्रशोकादिभिर्दुःखैर्विविधैराकुलस्तदा ।
जरया व्याधिभिश्चैव मङ्प्रस्तश्चाधिभिस्तथा ॥२६

एवमात्मा सम्प्रतप्तो दुःखमार्गे सुदारुणे ।
अभिमानैर्मानभङ्गैर्नानादुःखैश्च खण्डित ॥२७

वृद्धत्वेन तथा देवि दावबलत्वेन पीडित ।
दुःखं चिन्तयते नित्य हाहाभूता विचेतन ॥२८

इस प्रकार के प्रपञ्च में यह आत्मा व्याप्त हो जाया करता है जो कि प्रत्यक्ष महान् व्यापक है । फिर वह ज्ञान और विज्ञान से भी भ्रष्ट होकर राग द्वेष आदि के द्वारा पूर्णतया हत बना दिया जाया करता है ॥२२॥ कामवासना उसे अच्छी तरह पीडित किया करती है । क्रोध वश भी आकर उसका पूर्ण हनन कर देता है । प्राकृतिक काय में बँधा हुआ वह महान् मूढ हो जाया करता है ॥२३॥ इस तरह से यह आत्मा जिस समय में काम और क्रोध आदि के वश में आ जाता है तो फिर लोभ और राग आदि भी जो अत्यन्त ही दुरात्मा होते हैं सभी उस आत्मा को आकर चारों ओर से घेर लिया करते हैं ॥२४॥ उसे फिर ऐसा इस संसार का महान् मोह हो जाता है कि वह, यह मेरी भार्या है—यह मेरा पुत्र है—यह मेरा मित्र है और यह मेरा घर है, इन सभी सांसारिक वस्तुओं में मिथ्या मोह के कारण अपनत्व की भावना किया करता है। ऐसा महान् भीषण मोह का जाल उसे घेर लेता है कि जिनसे अपना कुछ भी सम्बन्ध नहीं है उन्हें वह पूर्णतया अपना समझकर उनके घोर चक्र में फँसा रहता है ॥२५॥ पुत्र के शोक आदि के दुःखों से जो कि विविध प्रकार के यहाँ हुआ करते हैं उनमें रात दिन उस दशा में वह व्याकुल रहता है। उसे बुढ़ापे के दुःख भोगने पड़ते हैं । अनेक व्याधियाँ आकर इस शरीर को ग्रस्त कर दुःख पहुँचाती हैं और मोह वश मानसिक आँधियाँ पीडित किया करती हैं ॥२६॥ इस प्रकार से इस मोह के जाल से परिपूर्ण संसार में सुदारुण दुःखों से अत्यन्त सन्तप्त यह आत्मा अनेक अभिमान—मान भङ्ग और नाना भाँति के दुःखों से खण्डित होकर रहा करता है ॥२७॥ हे देवि ! जब यह शरीर वृद्धता को प्राप्त होता है तो बलहीनता और शिथिलता के कारण विचित्र दशा इसकी हो

जाती है, महान् पीड़ित वह होता है। उस अवस्था में अहर्निश दुःखों का चिन्तन किया करता है और हा-हाकार करता हुआ ज्ञान शून्य सा हो जाता है ॥ २८ ॥

रात्रौ स्वप्नान्प्रपश्येत दिवा चैतन्यवर्जितः ।
वैकल्येन तथाङ्गानां व्याप्तो देवि दिनेदिने ॥२९
संसारे भ्रममाणेन वैराग्यं तत्र दर्शितम् ।
निःशङ्कं बन्धुहीनं च प्रशान्तं तुष्टमेव च ॥३०
तमुवाच तदात्मा वै कालक्रोधविवर्जितम् ।
को भवान्नग्नरूपेण कथमित्थं न लज्जसे ॥३१
यत्र लोकाः स्त्रियो वृद्धा युवत्यो मातरस्तथा ।
एतासां हि गणो मध्ये न बिभेषि त्वनावृतः ॥३२
को ह्यत्र नग्नो दृश्येत न नग्नोऽस्मीति वै वद ।
सुगन्धवस्त्रमेवापि परिधानसमन्वितः ॥३३
न नग्नोऽस्मि कदा ह्यत्र भवान्नग्नः प्रदृश्यते ।
इन्द्रियार्थवशो यो वै मर्यादा परिवर्जितः ॥३४
पुरुषस्य या हि मर्यादा तामाचक्ष्व च सुव्रत ।
विस्तरेण महाप्राज्ञ यदि जानासि निश्चितम् ॥३५

है—इन सबके मध्य में आप नग्न रूप से बिना किसी वस्त्रावरण के भ्रमण करते रहते हैं और जरा भी भय नहीं किया करते हैं ? ॥ ३२ ॥ वीतराग ने कहा—यहाँ पर कौन नग्न नहीं दिखलाई देता है ? मैं कब नग्न हूं ? आप भी परिधान से अच्छी तरह सुसम्बद्ध होते हुए भी नग्न हैं ॥३३॥ मैं तो कभी भी नग्न नहीं हूं प्रत्युत मुझे तो आप ही नग्न दिखलाई दे रहे हैं जो कि इन्द्रियों के वश में बरताव किया करते हैं और समुचित जो मानव की मर्यादा है उससे आप रहित हैं जिसने मर्यादा को छोड दिया वही वास्तव में नग्न है, वस्त्रों से रहित नग्न नहीं होता है ॥३४॥ वीतराग के इस कथन का श्रवण कर आत्मा ने कहा—हे महानुभाव ! हे सुव्रत ! आप कृपा करके मुझे यह बतलाइये कि पुरुष की मर्यादा क्या होती है ? हे महाप्राज्ञ ! आप यदि उस मर्यादा को जानते हैं तो मुझे निश्चित रूप में विस्तार के साथ बतला दीजिए ॥३५॥

वीतरागो महाप्राज्ञस्तमुवाच महामतिः ॥३६
सुस्थैर्यं भजते चित्त सुखदुखेषु नित्यशः ।
क्लेशित सर्वभावश्च तेषु तेषु परित्यजेत् ॥३७
अथ लज्जां प्रवक्ष्यामि मनो याऽनिर्विशत्यलम् ।
मयाऽर्थं वं न कर्तव्य नग्न. स्थानविवर्जितः ॥३८
पश्चात्तापे सुसलीनः सा लज्जापरिकथ्यते ।
कस्यलज्जा प्रकर्तव्या द्वितीयोनास्तिसर्वदा ॥३९
एकश्चपुरुषो दिव्य.कस्यकिंचिन्ननाशयेत् ।
अथलोकान्प्रवक्ष्यामि ये त्वयापरिकीर्तिताः ॥४०
यथाकुलालकश्चक्रे मृत्पिण्डञ्च निधापयेत् ।
भ्रामयित्वा तु सूत्रेणनानाभेदान्प्रकाशयेत् ॥४१
भाण्डानां तु सहस्राणि स्वेच्छया मतिसस्थितः ।
तथायं सृजते धाता नानारूपाणि नान्यथा ॥४२

महामुनि कश्यप जी ने कहा—महती मति वाले और महान् मनीषी वीतराग ने उस आत्मा से कहा—वीतराग बोला—नित्य ही सुख और दुःख मे यह चित्त पुरुषों के द्वारा जिसका सेवन किया करता है और सर्व भावों से

क्लेशित होना है उन-उनमे परित्याग कर देना चाहिए ॥ ३६।३७ ॥ इसके अनन्तर मैं लज्जा के विषय में बतलाता हूँ जो कि मन मे अच्छी तरह से प्रवेश किया करती है। मुझे आज इस प्रकार से स्थान से विवर्जित और नग्न होते हुए नहीं करना चाहिए। इस तरह पश्चात्ताप में सुमलीन जो होता है—वही अवस्था लज्जा कही जाया करती है। यहाँ किसकी लज्जा करे क्योंकि यहाँ पर कोई दूसरा तो सर्वदा हैं ही नहीं ॥३८।३९॥ एक ही दिव्य पुरुष है। किसी का कुछ भी नाश नही करता है। इसके अनन्तर मैं लोकों के विषय में बतलाता हूँ जो कि आपने अभी कीर्तित किये थे ॥ ४० ॥ जिस तरह से कुम्हार अपने चक्र (चाक) मे एक मिट्टी का लोंद रख देता है और फिर उसको घुमाकर सूत से अनेक प्रकार के बरतन बना दिया करता है ॥४१॥ अपनी ही बुद्धि में स्थित होकर अपनी इच्छा से सहस्रों बरतनों का निर्माण किया करता है ठीक उसी भाँति धाता भी इन लोगो को सृजित किया करता है। इसीलिये इनके अनेक रूप दिखलाई देते हैं। अन्यथा कोई कारण नहीं है। मिट्टी एक ही प्रकार की है वैसे ही ये सब भी एक ही हैं ॥४२॥

पश्चाद्विनाशमायान्ति येन केनापि हेतुना।
सर्वदेवस्थिता ये च ये लोकाश्च सनातनाः ॥४३
तेषा लज्जा प्रकर्तव्या नावर्तन्ते हि ते भुवि।
आकाशावायुतेजासि पृथ्वी चापश्चपञ्चम ॥४४
अमी लोका प्रकाशन्ते ये च सर्वत्रसस्थिता।
सत्त्वानामङ्गदेशेपु पञ्च तेपुसुसस्थिताः ॥४५
सर्वत्रैवच वर्तन्ते कस्य लज्जा विधीयते।
स्त्रीणा रूप प्रवक्ष्यामि श्रूयता तातसाम्प्रतम् ॥४६
यथा घटसहस्रेपु सोदकेपु विराजते।
एकश्चन्द्रो हि सर्वत्र भवास्तद्वद्विराजते ॥४७
गते जन्तुसहस्रेपु मोहं चक्रे महात्मवान्।
स्थावरेपु च सर्वेपु जङ्गमेपु तथा भवान् ॥४८

पीछे जिस किसी हेतु से ये विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। जो सर्वदेव में स्थित है और जो सनातन लोक हैं। उनकी लज्जा करनी चाहिए क्योंकि

इस भू मण्डल मे फिर भावर्त्तित नही होते हैं। आकाश—वायु—तेज—पृथ्वी और पाँचवाँ जल है ॥ ४३।४४ ॥ ये लोक प्रकाशित होते है और ये सर्वत्र संस्थित होते हैं। जीवों के अङ्ग—देशों में ये पाँच सुसंस्थित रहते हैं ॥४५॥ ये तो सर्वत्र ही रहा करते हैं फिर किसकी लज्जा की जाती है ? अब मैं स्त्रियों के रूप के विषय मे बतलाता हूँ हे तात ! तुम इस समय में उसका श्रवण करो ॥४६॥ जिस प्रकार से जल से भरे हुए सहस्रों घटों में एक ही चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखलाई दिया करता है ठीक उसी की भाँति आप ही सर्वत्र विराजमान रहते हैं ॥४७॥ स्थावर और जङ्गम सब सहस्रों जन्तुओं में महात्मवान् आपने मोह किया है ॥४८॥

भवान्कोहिसमायातो मम सन्तापनाशकः ।
विस्तरेणसमाख्याहि स्वरूपमात्मनःस्वयम् ॥४६
यस्मात्कामा निवर्तन्ते निराशाः सर्व एव तै ।
य दुष्टत्वान्न पश्यन्ति कर्माण्येतानि नान्यथा ॥५०
यत्समीप हि नायाति आशा चैव कदाचन ।
क्रोधोलोभस्तथा मोहो मद्भयात्प्रलय गता ॥५१
वीतरागोऽस्मि भद्रं ते विवेको मम बान्धवः ॥५२
कीदृशोऽसौतव भ्राता विवेको नामनामतः ।
तस्य त्वं लक्षण ब्रूहि भ्रातुरात्मन एवच ॥५३
सुखेनस्थीयते देव भवता विश्वनायक ।
आगतेत्वयि संसारे किं किं भुक्तं सुखस्त्वयम् ॥५४
गर्भवासो महद्दुःखमसह्यं दारुण मया ।
भुक्तमेव महाप्राज्ञ ज्ञानहीनेन वै सदा ॥५५
देहेऽपि ज्ञानविभ्रष्टः सोऽहं जातो ह्यनेकधा ।
बाल्यावस्थां गतेनाथ कृत्याकृत्य कृतं मया ॥५६

आत्मा ने कहा—आप कौन हैं जो यहाँ पर आये हुए हैं ? आप तो मेरे इस वर्तमान सन्ताप के नाश करने वाले हैं। आप कृपा करके अपने स्वरूप को विस्तार पूर्वक स्वयं ही बताइये ॥ ४६ ॥ आत्मा के इस प्रश्न को सुनकर

वीतराग ने कहा—जिसके काम निवृत्त हो जाते हैं वे सब ही निराश होते हैं। जिसको दुष्टत्व होने से ये कर्म नहीं देखते है, अन्यथा नहीं है ॥ ५० ॥ जिसके समीप में आशा कभी भी नहीं आती है। क्रोध—लोभ और मोह जिसके भय से प्रलय को प्राप्त हो जाते हैं ॥५१॥ मैं तो वीतराग हूँ तुम्हारा कल्याण हो, मेरा बान्धव विवेक होता है ॥५२॥ आत्मा ने कहा—यह आपका भाई जिसका नाम विवेक है किस प्रकार का है ? आप उसका, अपने भाई का पूरा लक्षण बताइये और अपना भी लक्षण बताइये ॥ ५३ ॥ विवेक ने कहा—हे विश्वनायक ! हे देव ! आप सुख से स्थित होते हैं। आप अब यह बताइये आपके इस संसार में आजाने पर आपने स्वयं क्या क्या सुख भोगा है ? ॥५४॥ आत्मा ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! ज्ञान से हीन मैंने गर्भ का निवास किया था जिसमें असह्य और महान् दारुण दुःख मैंने सदा ही भोगा है ॥ ५५ ॥ ज्ञान से विशेष रूप से भ्रष्ट मैं देह में भी अनेक प्रकार से समुत्पन्न हुआ हूँ। बाल्यावस्था को प्राप्त होने वाले मैंने कृत्य और अकृत्य सभी कुछ किये थे अर्थात् जो करने और न करने के योग्य कर्म थे वे भी मैंने किये थे ॥५६॥

तारुण्येन कृता क्रीडा भुक्ता भार्याह्यनेकशः।
वार्धकप्राप्यसततः पुत्रशोकादिभिस्तथा ॥५७
भार्यादीनां वियोगैस्तु दग्धोऽस्म्यहमहर्निशम्।
दुःखैरनेकसवर्णैः संतप्तोऽस्मि दिनेदिने ॥५८
दिवारात्रौ महाप्राज्ञ न विन्दामि सुखंक्वचित्।
एवंदुःखैः सुसंतप्तः किं करोमिमहामते ॥५९
तमुपायं वदस्वैव सुखं विन्दामि येन वै।
अस्मात्संसारजालौघान्मोचयाद्य सुबन्धनात् ॥६०
भवान्शुद्धोऽसि निर्द्वन्द्वो ह्यपापोऽसिजगत्पते।
एनं गच्छ महात्मानंवीतरागसुखप्रदम् ॥६१
निःसंशय त्वयादृष्टं नग्नमाचारवर्जितम्।
सुखप्रदर्शकोह्येष सर्वसन्तापनाशकः ॥६२
एवमाकर्ण्य शुद्धात्मा वीतरागगतः पुनः।
तमुवाच प्रसन्नोनः श्रूयतां वचनं मम ॥६३

सुखंविन्दामि येनाहं तमार्गं मम दर्शय ।
एवमस्तु महाप्राज्ञ करिष्ये वचनं तव ॥६४

जिस समय में मैं तरुण अवस्था मे पहुँच गया तो मैंने अनेक प्रकार से भार्या के साथ क्रीडा की थी और खूब भोग किया था। जब मैं वृद्धता को प्राप्त हो गया तो मैं पुत्रादि के शोक से अत्यधिक संतप्त हो गया था बुढ़ापे में मुझे बहुत प्रकार का सन्ताप हुआ था ॥ ५७ ॥ भार्या आदि का कभी-कभी वियोग भी हो जाता था तो मैं इस दुःख से अहर्निश दग्ध होता रहता हूँ। मैं दिन-प्रतिदिन इस तरह के अनेक स्वरूप वाले दुःखों से अत्यन्त सन्ताप वाला रहता हूँ ॥५८॥ हे महाप्राज्ञ ! आप मेरे सुख भोगने के विषय में पूछते हैं, मुझे सुख तो है ही नहीं मैं तो दिन-रात मे सुख कहीं भी प्राप्त नहीं करता हूँ। हे महान् मति वाले ! इस प्रकार से दुःखों से भली भाँति सन्तप्त होने वाला मैं क्या करूँ ? ॥५९॥ आप मुझे वही उपाय बताइये जिसके द्वारा मैं सुख की प्राप्ति कर सकूँ। आज अब आप अत्यन्त बन्धन से संयुत इस संसार के जाल के समूह से मेरा मोचन करा दीजिये ॥६०॥ इस आत्मा के वचन को सुनकर विवेक ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! आप तो परम शुद्ध स्वरूप वाले हैं, आप निर्द्वन्द्व हैं और आप पाप रहित हैं। अब आप यही करिये कि इस महान् आत्मा वाले, सुख के प्रदान करने वाले वीतराग के समीप में जाइये ॥६१॥ इसमें कुछ भी संशय नहीं है आपने इसको बिल्कुल नग्न और आचार से रहित देखा है किन्तु यह सुखों को प्रदर्शित करने वाला है तथा समस्त प्रकार के सन्तापों के नाश करने वाला है ॥६२॥ इस तरह के विवेक के कहे हुए वचन को सुनकर वह शुद्धात्मा पुनः वीतराग के समीप मे गया था और वह अत्यन्त दीन होकर श्वासें छोडता हुआ उससे बोला था कि मेरे वचनों को आप श्रवण कीजिए। मैं जिस मार्ग के द्वारा सुख की प्राप्ति कर सकूँ वही मार्ग आप मुझे दिखला दीजिए। ऐसा ही होगा—हे महाप्राज्ञ ! मैं आपका वचन करूँगा—यह उसने उसको उत्तर दिया था ॥६३।६४॥

पुनर्गच्छ विवेकं हि सुखवार्ता कृतात्वया ।
सुखमार्गस्य वैवक्ता तवचैव भविष्यति ॥६५

वीतरागेण पुण्येन प्रेपितो गतवान्प्रभु. ।
तमुवाच महात्मानं विवेक शुद्धसत्तमम् ॥६६
सुख मेदर्शय त्व हि वीतरागेण प्रेपिता ।
भवच्छरणमापन्नोरक्ष ससारदारुणात् ॥६७
ज्ञान गच्छ महाप्राज्ञ स ते सर्व वदिष्यति ।
आत्मा तथोक्त सम्प्राप्तोयत्रज्ञानप्रतिष्ठितम् ॥६८
भाभाज्ञान महातेज सर्वभावप्रदर्शक ।
शरणं त्वामहं प्राप्त सुखमार्गं प्रदर्शय ॥६६

आप फिर विवेक के पास जाइए । आपने सुख की बातें की थीं। आपको सुख की विधि का मार्ग बतलाने वाला वह ही होगा ॥ ६५ ॥ परम पुण्यमय वीतराग के द्वारा प्रेषित वह प्रभु आत्मा विवेक के समीप में गया था और शुद्धों में परम श्रेष्ठ उस महात्मा विवेक से बोला ॥६६॥ मुझे आपके पास में वीतराग ने ही भेजा है अतएव आप ही मुझे सुख का मार्ग दिखलाइये । मैं आपकी शरणागति में उपस्थित हो गया हूँ । अब आप मेरी इस दारुण संसार से रक्षा कीजिए ॥६७॥ यह सुनकर विवेक ने कहा—हे महाभाग ! आप ज्ञान के समीप में जाइए । वह सभी कुछ आपको बतला देंगे । इस तरह से कहे जाने पर वह आत्मा वहाँ पर जाकर पहुँचा था जहाँ पर ज्ञान प्रतिष्ठित था ॥६८॥ आत्मा ने ज्ञान से निवेदन किया था—हे ज्ञान ! आप महान् तेज से सम्पन्न हैं और सब भावों का प्रदर्शन करने वाले हैं । मैं इस समय में आपकी शरणागति में आया हूँ मुझे आप सुख का मार्ग कृपाकर दिखला दीजिए ॥६६॥

भ्रगाऽहनवलोमेदा त्व मा वेत्सि न मुचन ।
मयाध्यानेन वं पूर्वं वारितस्त्व पुन पुन ॥७०
पश्चात्मवाना सङ्गेन प्रापद प्राप्तवान्भवान् ।
ध्यान गच्छ महाप्राज्ञ सततदातासुखस्यच ॥७१
ज्ञानेन प्रेपितो ह्यात्मा ध्यानमाश्रित्य सस्थित ।
मुनमत्यन्तमिद्ध च ध्यानमदर्शयस्वह ॥७२
भवच्छरणमायात मामेव परिरक्षय ।
एवं सम्भापितं तस्य ध्यानमाकर्ण्य तद्वच ॥७३

समुवाच पुनश्चापि तमात्मानं प्रहृष्टवान् ।
मैव त्याज्योऽस्म्यहं तात सर्वकर्मसुनिश्चितः ॥७४
त्वयैव वीतरागेण विवेकेन सदैव हि ।
ध्यानयुक्तो भवस्त्वमात्मानमवलोकय ॥७५
आत्मवांस्त्वं स्थिरोभूत्वानिरातङ्कोविकल्पतः ।
यथादीपोनिवातस्य.कज्जलवमतेस्थिरः ॥७६
तथादोषान्प्रज्वलित्वा निर्वाणं हि प्रयास्यति ।
एकान्तस्थोनिराहारोमिताशीभवसर्वदा ॥७७
निर्द्वन्द्वः शब्दसहोनोनिश्चलोह्यासनेस्थितः ।
आत्मानमात्मनाध्यायन्ममैवस्थिरबुद्धिना ।
प्राप्स्यसे परम स्थान तद्विष्णोः परम पदम् ॥७८

आत्मा के इस विनम्र आवेदन को श्रवण कर ज्ञान ने कहा—हे लोकों के ईश ! मैं तो आपका एक भृत्य हूँ। हे सुन्दर व्रतों वाले ! आप मुझको नहीं जानते हैं। मैंने और ध्यान ने आपको बारम्बार निवारित किया था ॥ ७० ॥ इन पञ्चात्मकों की सङ्गति से ही आप इस विपत्ति को प्राप्त हो गये हैं। हे महाप्राज्ञ ! आप ध्यान के समीप में जाइये। वही आपको सुख का देने वाला है ॥७१॥ ज्ञान के द्वारा प्रेषित किया हुआ वह आत्मा ध्यान का आश्रय ग्रहण करके संस्थित हो गया था और उसने ध्यान से कहा—हे ध्यान ! मुझे आप अत्यन्त सिद्ध सुख का दर्शन करा दीजिए ॥ ७२ ॥ मैं आपकी शरण में आया हूँ, अब आप ही मेरी रक्षा कीजिए। इस प्रकार के उस आत्मा के कथित वचन को ध्यान ने श्रवण किया था ॥७३॥ फिर अत्यन्त हर्ष से युक्त होकर पुनः उस आत्मा से कहा था कि हे तात ! अब आप मुझको कभी भी न त्याग देवें क्योंकि मैं सर्व कर्मों से सुनिश्चित हूँ ॥७४॥ आप ही वीतराग और विवेक के द्वारा सदा ही ध्यान से युक्त होवें और स्वयं अपने आपका अवलोकन करें ॥७५॥ आप आत्मवान् स्थिर होवें और विकल्प से निरातङ्क हो जावें जिस तरह निर्वात स्थान में रखा हुआ दीपक स्थिर होकर कज्जल का वमन किया करता है ॥७६॥ उसी प्रकार से आप भी अपने समस्त दोषों को भस्मीभूत करके निर्वाण

पद को प्राप्त करेंगे। सर्वदा आप एकान्त मे स्थित रहे—बिना कुछ आहार ग्रहण किये ही स्थिर रहे। यदि भोजन ही करें तो बहुत ही मित अशन ग्रहण करें, सर्वदा इसी रीति से ध्यान मग्न रहे ॥७७॥ द्वन्द्वों से रहित—बिना कुछ भी मुख से शब्दोच्चारण किये अर्थात् मौन व्रत धारण कर—निश्चल होकर आसन पर स्थित रहे। अपनी आत्मा से ही आत्मा का ध्यान करते हुए स्थिर बुद्धि से मेरा ही आश्रय लेवें। इसका यह परिणाम होगा कि अन्त में भगवान् विष्णु के परम पद सर्वोत्तम स्थान को आप प्राप्त करलेंगे ॥७८॥

॥ आत्मा के स्वरूप का वर्णन ॥

एव सबोधितस्तत्र आत्मा ध्यानादिकैस्तदा ।
त्यक्तुकाम स तत्कार्यं पञ्चात्मक स बुद्धिमान् ॥१
निमित्तान्येव पश्यन्वैप्राप्य तास्तान्प्रयातिस. ।
विहाय कायनिर्लक्ष्य पतितनैव पश्यति ॥२
सहवर्द्धितयोर्नास्ति सम्बन्धः प्राणदेहयो. ।
धनपुत्रकलत्रैश्च सम्बन्धः केन हेतुना ॥३
एव ज्ञात्वा शम गच्छ क्लैब्य मा भज सुप्रिये ।
अयमेव पर ब्रह्म अयमेव सनातनः ॥४
अयमात्मस्वरूपेण दैत्यदेवेषु सस्थितः ।
अय ब्रह्मा ह्ययं रुद्रोह्यय विष्णु सनातनः ॥५
अय सृजति विश्वानि अय पालयते प्रजा ।
सहरत्येप धर्मात्मा धर्मरूपी जनार्दन ॥६
अनेनोत्पादिता देवा दानवाश्च व सुप्रिये ।
देवाश्चाधर्मनिर्मु क्ता धर्महीनाः सुतास्तव ॥७

महर्षि कश्यप ने कहा—वहाँ पर इस प्रकार से ध्यान आदि के द्वारा भली भाँति ज्ञान प्राप्त कराये जाने वाले उस आत्मा ने उस समय में परम बुद्धिमत्ता से उन प्रञ्चात्मकों का त्याग करने की इच्छा की थी और वही करना योग्य समझा था ॥१॥ वह निमित्तों को ही देखता हुआ उन-उनको प्राप्त कर

प्रयाण करता है। कामा को लक्ष्य हीन छोड़कर पतित को नहीं देखता है ॥२॥ सहवर्द्धित प्राण और देह का सम्बन्ध नहीं है। जब प्राणों और देह का ही कोई सम्बन्ध नहीं है तो फिर धन—पुत्र और कलत्र आदि से किस हेतु से सम्बन्ध हो सकता है ॥३॥ हे सुप्रिये ! इस प्रकार से समझकर शम को प्राप्त होओ और क्लीवता का धारण मत करो। यह ही परम ब्रह्म है और यह ही सनातन है ॥४॥ यह ही आत्मा के स्वरूप से दैत्य और देवों में संस्थिति किया करता है। यह ही ब्रह्मा—रुद्र और सर्वदा से चले आने वाला सनातन विष्णु है ॥५॥ यह ही समस्त विश्वों तथा प्रजाओं का सृजन किया करता है और यह ही उन प्रजाजनों का पालन पोषण करता है। यह ही धर्म के रूप वाला परम धर्मात्मा भगवान् जनार्दन सबका संहार किया करता है ॥६॥ हे सुप्रिय ! इसने ही सब देवता और दानव उत्पादित किये हैं। देवताओं को और धर्म में नियुक्त धर्महीन तुम्हारे पुत्रों को भी इसी ने समुत्पन्न किया है ॥७॥

धर्मोऽयं माधवस्याङ्गं सर्वदेवैश्च पालितम्।
धर्मं च चिन्तयेद्देवि धर्मं चैव तु पालयेत् ॥८
तस्य विष्णुः स धर्मात्मा सर्वदैव प्रसादवान्।
धर्मेण वर्तिता देवाः स येनतपसाखिल। ६
यथा विष्णुः प्रसन्नो वै धर्मस्तैरिह पालितः।
विष्णोः कायमिदं धर्मं सत्यं हृदयमेव च ॥१०
यस्तो पालयते नित्यं तस्य विष्णुः प्रसीदति।
दूषयेद्यः सत्यधर्मौ पापमेव प्रपातयेत् ॥११
तस्य विष्णुः प्रकुप्येत नाशयेदति वीर्यवान्।
वैष्णवैः पालितं धर्मं तत्र सत्येन संस्थितैः ॥१२
तेषां प्रसन्नो धर्मात्मा रक्षामेव करोति च।
तव पुत्रा दनोः पुत्राः संहिकेयास्तथैव च ॥१३
अधर्मेणापि पापेन वर्तिताः पापचेतसः।
सूदिता वासुदेवेन समरे चक्रपाणिना ॥१४

यह धर्म है और समस्त देवगण के द्वारा पालित माधव का अङ्ग है। हे देवि ! सर्वदा धर्म का ही चिन्तन करना चाहिए और धर्म का ही पालन

करना चाहिए ।।८।। उसके लिए धर्मात्मा वह भगवान् विष्णु सर्वदा ही प्रसाद वाले होते हैं । धर्म से ही देवगण वर्त्तित होते हैं—सत्य से और तप से वे वर्त्तित हुआ करते हैं ।।९।। जिनके ऊपर भगवान् विष्णु परम प्रसन्न होते हैं उन्होंने पूर्ण रूप से धर्म का पालन कर लिया है । भगवान् विष्णु का यह धर्मकाया है और सत्य ही हृदय है ।।१०।। जो इन दोनों धर्म और सत्य का पालन किया करता है उसके ऊपर भगवान् विष्णु परम प्रसन्न हो जाते हैं । जो इन धर्म और सत्य को दूषित किया करते हैं वे केवल पाप ही को पालते हैं ।।११।। इनको दूषित करने वाले पर भगवान् विष्णु प्रकुपित होते हैं और अति वीर्य वाले विष्णु उनका नाश कर देते हैं । तप और सत्य से सुस्थित वैष्णवों के द्वारा धर्म पालित होता है ।।१२।। उन वैष्णवों पर भगवान् परम प्रसन्न होते हैं क्यों कि उनका स्वरूप ही धर्म का है फिर वे उनकी पूर्ण रक्षा भी किया करते हैं तुम्हारे पुत्र—दनु के पुत्र और सैंहिकेय, ये सब पाप के चित्त वाले अधर्म से और पाप से वर्त्तित होते हैं । और चक्रपाणि भगवान् वासुदेव ने समर में इनको सूदित किया था ।।१३।१४।।

योऽस्मावात्मा मया प्रोक्तः पूर्वमेव तवाग्रतः ।
सोऽयं विष्णुर्नसन्देहोधर्मात्मासर्वपालकः ।।१५
दैत्यकायेषु यः स्वस्थः पापमेव समास्थितः ।
अघ्निवान्दानवान्देवि स च क्रुद्धोमहामतिः ।।१६
सबाह्याभ्यन्तरे भूत्वा तव पुत्रा निपातिताः ।
येन चोत्पादिता दवितेनैवविनिपातिताः ।।१७
नैवा मोहस्तु कर्त्तव्यो भवत्या वचनं शृणु ।
पापेन वर्त्तते योऽसौ स एव निधनं व्रजेत् ।।१८
तस्मान्मोहं परित्यज्य सदा धर्मं समाश्रय ।।१९
एवमस्तु महाभाग करिष्ये वचनं तव ।
कश्यपं च मुनिश्रेष्ठमेवमाभाष्य दुःखिता ।।२०
बोधिता सा मुनिना दुःखं सन्त्यज्य सुस्थिता ।।२१

जो यह आत्मा मैंने पहिले ही आपके सामने कहा था वही यह भगवान् विष्णु है जो परम धर्मात्मा और सबके पालक हैं—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं

है ॥१५॥ दैत्यों के शरीरों में जो स्वस्थ रूप से समास्थित है वह पाप ही है। हे देवि ! उस महान् मति वाले ने क्रुद्ध होकर दानवों को मारा था ॥ १६ ॥ उसने ही बाहर और भीतर होकर तुम्हारे पुत्रों का निपातन किया है। हे देवि ! जिसने उनका उत्पादन किया था उसी ने उनका विशेष रूप से निपातन भी किया है। अर्थात् उत्पन्न करने तथा वध करने वाला वह एक ही है दूसरा कोई भी नहीं है ॥१७॥ अब आप को मेरा वचन श्रवण करना चाहिए और इनका अत्यधिक मोह नहीं करना ही उचित है। जो यहाँ पर पाप से वर्जित हुआ करता है वह ही निधन (मृत्यु) को प्राप्त होता है ॥१८। इस कारण से अब मोह का बिल्कुल त्याग करके केवल धर्म का ही समाश्रयण करना चाहिए ॥१९॥ दिति ने जो कि महर्षि की एक पत्नी थी कहा था अब ऐसा ही होगा—अर्थात् मैं ऐसा ही करूँगी। हे महान् भाग्य वाले स्वामिन् ! मैं आपके वचनों का पूर्णतया पालन करूँगी। इस प्रकार से मुनियों में परम श्रेष्ठ कश्यप से कह कर प्रसन्न मन में दुःखित हुई थी ॥२०॥ फिर मुनिवर ने उसे भली भाँति समझाया था तो वह उस दुःख का त्याग करके सुस्थित हुई थी ॥२१॥

॥ ब्रह्मचर्य लक्षण ॥

नित्य मत्येरतिर्यस्य पुण्यात्मा तुष्टता व्रजेत् ॥१
ऋतौ प्राप्ते व्रजेन्नारी स्त्रीया दोषविवर्जितः ॥२
स्वकुलस्य सदाचार कदानैव विमुञ्चति ।
एतदेव समाख्यात गृहस्थस्य द्विजोत्तम ॥३
ब्रह्मचर्य मयाप्रोक्त गृहिणामुत्तम किल ।
यतीना तु प्रवक्ष्यामि तन्मया गदित शृणु ॥४
दमसत्यसमायुक्त पापाद्भीतस्तु सर्वदा ।
भार्यासङ्ग वर्जयित्वा ध्यानज्ञानप्रतिष्ठित ॥५
यतीना ब्रह्मचर्यं च समास्यात तवाग्रत. ।
तप एव प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदत शृणु ॥६
आचारेण प्रवर्तेत कामक्रोधविवर्जितः ।
प्राणिनामुपकाराय सस्थित उद्यमान्वित ॥७

सोम शर्मा ने कहा—ब्रह्मचर्य का क्या लक्षण होता है इसे मेरे सामने आप विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए। हे स्वामिन ! ब्रह्मचर्य कैसा होता है—यह यदि आप जानते हैं तो बतलाइये ॥ १ ॥ सुमना ने कहा—जिसकी नित्य ही सत्य में रति होती है वह परम पुण्यात्मा पुरुष होता है और पूर्ण तुष्टता को प्राप्त हुआ करता है। जिस समय में नारी ऋतुमती हो उसी समय में उसका अभिगमन करे और स्त्री में दोष से विवर्जित होकर ही भोग करना चाहिए ॥ २ ॥ अपने कुल का जो सदा से परम्परागत सदाचार हो उसका किसी भी समय में त्याग नहीं करना चाहिए। हे द्विजोत्तम ! गार्हस्थ्य आश्रम में रहने वाले पुरुष का यही धर्म कहा गया है ॥ ३ ॥ मैंने ब्रह्मचर्य को गृही पुरुषों का उत्तम धर्म बतलाया है। अब यती लोगों का जो धर्म है उसे बतलाया जाता है—उसका श्रवण करो ॥४॥ दम और सत्य से समायुक्त होकर सर्वदा पापों से भयभीत रहे और भार्या के सङ्ग का त्याग करके ध्यान और ज्ञान में प्रतिष्ठित रहे ॥५। यतिगण का ब्रह्मचर्य तो मैंने तुम्हारे सामने बतला दिया है। अब मैं उनके सत्य का ही वर्णन करता हूँ उसे सुनो जिसको कि मैं कह रहा हूँ ॥६॥ सर्वदा आचार से ही प्रवृत्त रहना चाहिए और काम तथा क्रोध से सर्वथा दूर रहे। सदा समस्त प्राणियों के उपकार के लिये ही उद्यमशील होकर उसे सुस्थित रहना चाहिए ॥७॥

तपएव समारुह्यात सत्यमेव वदाम्यहम् ।
परद्रव्येष्वनोलुब्ध परस्त्रीषु तथैव च ॥८

दृष्ट्वा मतिर्नयस्य स्यात्ससत्य परिकीर्तितः ।
दानमेत्र प्रवक्ष्यामि येनजीवन्तिमानवाः ॥९

आत्मसौख्य प्रतीच्छेश्च स इहैव परत्र वा ।
अन्नस्यापि महादान सुमर्य्यत्र ध्रुवस्य वा ॥१०

ग्राममात्र नथादेय क्षुधार्ताय न संशयः ।
दत्तेमति महत्पुण्यममृत सोऽश्नुते सदा ॥११

दिनेदिने प्रदानञ्च यथाविभव सम्भवम् ।
तृण शय्या न वचन गृहच्छायां गुणोतनाम् ॥१२

भूमिमपस्तथा चान्नं प्रियवाक्यमनुत्तमम् ।
आसनं वचनालाप कौटिल्येन विवर्जितम् ॥१३
आत्मनो जीवनार्थाय नित्यमेव करोति यः ।
देवान्पितृन्समभ्यर्च्य एवदानं ददाति यः ॥१४

इस रीति से तप कहा गया है। मैं इस प्रकार से बिल्कुल सत्य ही बतला रहा हूँ। पराये धन में लोलुपता न करे—और पराई स्त्रियों में कभी अपना मन न लगावे ॥८॥ पराया धन और पराई स्त्री को देखकर भी जिसकी कभी बुद्धि उस ओर नहीं जाती है वह ही सत्य कहा गया है। मैं दान के विषय में बतलाता हूँ जिसके प्रभाव से मनुष्य जीवित रहा करते हैं ॥ ९ ॥ जो पुरुष आत्मा का सुख प्रदान करता है वह इस लोक में भी होता है और परलोक भी हुआ करता है। ध्रुव (अटल) सुख का साधन और महादान अन्न का भी होना है ॥१०॥ जो भूख से पीड़ित प्राणी है उसे चाहे केवल एक ही ग्रास के लिये अन्न का दान करे परन्तु करना अवश्य ही चाहिए। इसमें तनिक भी संशय नहीं है कि ऐसा अन्न का दान देने पर महान् पुण्य होता है और इस प्रकार के अन्न-दान के प्रभाव से सदा अमृत का उपभोग किया करता है ॥ ११ ॥ जैसा भी

उपकारेषु पुण्येषु नियमोऽयं प्रकीर्तितः ।
क्षमारूपं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व द्विजसत्तम ॥१८

पराक्रोशं हिसंश्रुत्य ताडितैसतिकेनचित् ।
क्रोधं न चैव गच्छेत्तु ताडितो न हि ताडयेत् ॥१९

सहिष्णुः स्यात्सधर्मात्मा न हि रागप्रयातिच ।
समश्नाति परंसौख्यमिह चामुत्रवापि च ॥२०

एवंक्षमा समाख्याता शौचमेव वदाम्यहम् ।
सबाह्याभ्यन्तरे यो वै शुद्धो रागविवर्जितः ॥२१

इस प्रकार के दानों के देने वाला दाता पुरुष यहाँ पर ही संसार में परम आनन्द की प्राप्ति किया करता है और फिर परलोक में भी वह अत्यन्त सुखानाद से सुसम्पन्न होता है। जो पुरुष प्रत्येक दिन को दान—अध्ययन और तपमें इनसे अवश्य रखता है अर्थात् इनके किये बिना किसी भी दिन को नहीं जाने देता है वह देखने में तो अवश्य मनुष्य स्वरूप वाला होता है किन्तु वह साक्षात् देवता ही होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। अब हम नियम के विषय में बतलाते हैं जो धर्म का अत्युत्तम साधन होता है ॥१५।१६॥ हे सुन्दर व्रतों के करने वाले ! जो पुरुष सर्वदा देवगण और ब्राह्मणों की यजनार्चा में अभिरति रखता है और नित्य-प्रति दान एवम् व्रतों में नियम पूर्वक संयुक्त रहा करता है वह महान् पुण्यात्मा है ॥१७॥ दूसरों की भलाई हर प्रकार से करने में और पुण्यों में यह ही नियम बतलाया गया है। हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! अब मैं क्षमा के स्वरूप को बतलाता हूँ उसे सुनो ॥१८॥ दूसरे के द्वारा बुराई को सुनकर भी अर्थात् जो कोई भी अन्य पुरुष बुरे-भले बुरे शब्द कह देवे या निन्दा करे तो उसे सुनकर भी एवम् कोई ताडना भी करदे तो दूसरे के द्वारा प्रताड़ित होने पर भी कभी क्रोध नहीं करना चाहिए और ताड़ित होकर अर्थात् पिटकर फिर स्वयं भी उसे पीटना नहीं चाहिए ॥ १९ ॥ वह पुरुष पूर्णरूप से सहिष्णु है, वह परम धार्मिक है और वह कभी भी राग की प्राप्ति नहीं किया करता है। ऐसा महापुरुष अति क्षमाशील होता है वह इस लोक में और परलोक में भी दोनों जगह परम सुखों के उपभोग करने वाला होता है ॥२०॥ क्षमा इसी

प्रकार की बतलाई गई है। अब हम शौच के विषय मे बतलाते हैं। जो राग से रहित होना है वही बाहर और भीतर दोनो प्रकार से परम शुद्ध होना है ॥ २१ ॥

स्नानाचमनकैरेव व्यवहारेण वर्त्तते ।
शौचमेव समाख्यातमहिंमा तु वदाम्यहम् ॥२२
तृणमपि विनाकाय छेत्तव्य न विजानता ।
अहिंसानिरतो भूयाद्यथात्मनि तथापरे ॥२३
शान्तिमेव प्रवक्ष्यामि शान्त्या सुखसमश्नुते ।
शान्तिरेव प्रकर्तव्या क्लेशान्नैव परित्यजेत् ॥२४
भूतवैर विसृज्यैव मनएव प्रकारयेत् ।
एवशान्ति समाख्याता अस्तेय तु वदाम्यहम् ॥२५
परस्वनैव हर्तव्य पराजाया तथैव च ।
मनोभिर्वचनै.कायैर्मन एव प्रकारयेत् ॥२६
दममेव प्रवक्ष्यामि तवाग्रे द्विजसत्तम ।
दमनादिन्द्रियाणा वै मनसोऽपि विकारिण. ॥२७
अोद्धत्य नाशयेत्तेषा सचैतन्योवशी तदा ।
शुश्रूषा तु प्रवक्ष्यामि धर्मशास्त्रेषु यादृशी ॥२८

आन्तरिक मन की शुद्धि का अधिक महत्व है वस्तुतः यही शुद्धि प्रमुख है। ऊपर की शरीर—वस्त्र और आवास की शुद्धि को ही आमतौर से लोग किया करते हैं और इसीको सब कुछ मान बैठते हैं असली आन्तरिक शुद्धि ऐसे लोगों में होती ही नहीं है जोकि परम प्रधान और अत्यावश्यक है। इस तरह शौच बतला दिया है। इसके उपरान्त हम अब अहिंसा के विषय मे वर्णन करते हैं ॥ २२ ॥ एक तृण का भी जो कि तुच्छातितुच्छ है, छेदन बिना किसी कार्य के कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि तृण मे भी सूक्ष्म वेदना अवश्य ही होती है और वही एक प्रकार की हिंसा ही है। मानव को सदा अहिंसा मे निरत रहना ही चाहिए। जिस प्रकार से अपने मन मे पीड़ा होती है वैसे ही दूसरे को भी पीड़ा का अनुभव होता है—ऐसा विचार रखना चाहिए ॥२३॥ अब शान्ति के

विषय में बतलाया जाता है। शान्ति भी एक परम अद्भुत सुख का साधन होता है। इससे सुख की प्राप्ति होती है। अतएव शान्ति अवश्य ही करनी चाहिए और क्लेश में इसका कभी भी त्याग न करे ॥२४॥ प्राणियों में किसी से भी वैर की भावना न रक्खे—इसी प्रकार का अपना मन बना लेना चाहिए कि सर्वत्र प्रियता उसमें स्थिर होकर बैठ जावे। इसी रीति से शान्ति का समाधान कर दिया है। अब अस्तेय (चोरी न करना) के विषय में बतलाया जाता है ॥२५॥ पराया धन कभी भी न हरण करना चाहिए। चाहे बलात् उसका हरण हो या छिपकर हो अथवा स्वतः भूल से पड़ा हुआ ही क्यों न हो, जो अपना नहीं है वह पराया है उसे कभी ग्रहण न करे। जिस तरह से पराया धन अस्वीकृत होने की वस्तु है वैसे ही पराई स्त्री भी एक प्रकार का धन है उसका भी ग्रहण किसी भाँति भी नहीं करना चाहिए। मन—वचन और शारीरिक कर्म से इस तरह पराये धन से सदा दूर ही रहना चाहिए। मन को भी ऐसा ही बना लेने की आवश्यकता है यही अस्तेय है जिसकी बहुत बड़ी महिमा है और धर्म का एक अङ्ग है ॥ २६ ॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! अब हम दम की व्याख्या करते हैं कि दम क्या होता है। दमन को ही दम कहा जाता है। इन्द्रियाँ जो अपने-अपने विषयों के भोगने की ओर अहर्निश भागती रहा करती हैं उन पर पूरा काबू कर उन्हें दबाना ही दम है। यह मन भी बहुत विकारों से भरा रहता है। दुर्बल मन वाला कभी दमन नहीं कर सकता है अतः मनको भी दाबकर अपने वश में करना चाहिए। इन्द्रियों और मन की जो उद्दण्डता है इसका चैतन्यात्मा को नाश कर देना चाहिए और सर्वदा इनसे सतर्क रहे और वश में रक्खे यही दमन होता है। अब हम शुश्रूषा को बताते हैं जिसको धर्मशास्त्रों में जिस तरह की बताया गया है ॥२७ २८॥

पूर्वाचार्यैर्यथाप्रोक्ता तामेव प्रवदाम्यहम् ।
वाचा देहेन मनसा गुरुकार्यं प्रसाधयेत् ॥२९
जायतेऽनुग्रहो यत्र शुश्रूषा मानिगद्यते ।
साङ्गोधर्मःसमाख्यातस्तवाग्रे द्विजसत्तम ॥३०
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि श्रोतुमिच्छसि यत्पते ।
ईदृशे चापि धर्मेतु वर्तते यो नरःसदा ॥३१

संसारे तस्य सम्भूतिः पुनरेव न जायते ।
स्वर्गं गच्छति धर्मेण सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥३२
एवज्ञात्वा महाप्राज्ञ धर्ममेव व्रजस्व हि ।
सर्वं हि प्राप्यते कान्त यदसाध्यं महीतले ॥३३

पूर्व में होने वाले आचार्यों ने इसको जिस रीति की बतलाई है वही हम बतलाते हैं। मन-वचन और शरीर से गुरुजन के कार्य का सम्पादन करना चाहिए। मन में भी सेवा की भावना अति सत्य एवम् सुदृढ होनी चाहिए ॥२६॥ जिस शुश्रूषा में अनुग्रह हो जावे वही वास्तविक शुश्रूषा कही जाती है अर्थात् ऐसी शुश्रूषा हो कि गुरुजन का हृदय उसे पाकर कृपा करने के लिये विवश हो जावे और अनुग्रह किये बिना रह ही न सकें। हे द्विज सत्तम ! मैंने समस्त अङ्गों से सुसम्पन्न धर्म आपको संक्षेप में बतला दिया है ॥३०॥ और अब कुछ और भी बतलाता हूँ जो भी कुछ आप मुझसे श्रवण करना चाहते हैं। इस प्रकार के धर्म में जो मनुष्य सर्वदा वर्त्तमान रहता है उस पुरुष की इस संसार में पुनः उत्पत्ति कभी नहीं होती है अर्थात् वह जन्म-मरण स्वरूप आवागमन से पूर्णतया छुटकारा पा जाता है। वह पुरुष तो सीधा स्वर्गलोक का निवास प्राप्त करता है—यह मैं पूरा सत्य सत्य तुम्हें बतला रहा हूँ। अतएव सबका निष्कर्ष सारभूत यही है कि यह समझकर हे महाप्राज्ञ ! केवल एकमात्र धर्म का ही समाश्रय ग्रहण करो। यह एक उत्तम साधन है कि इससे जो भी कुछ भू मण्डल में असाध्य है वह सभी इससे प्राप्त किया जाता है ॥३१—३३॥

॥ पापियों के मरण-लक्षण ॥

पापिनां मरणं भद्रे कीदृशैर्लक्षणैर्युतम् ।
तन्मेत्व विस्तराद् ब्रूहि यदि जानासि भामिनि ॥१
श्रूयतामभिधास्यामि तस्मात्सिद्धाच्छ्रुतं मया ।
पापिनां मरणे कान्त यादृशं लिङ्गमेव च ॥२
महापातकिनाञ्चैव स्थानं चेष्टां वदाम्यहम्
विण्मूत्रामेध्यसंयुक्ता भूमिस्तापसमन्विताम् ॥३

सतां प्राप्य सुदुष्टात्मा प्राणान्दुःखेन मुञ्चति ।
चाण्डालभूमिं संप्राप्य मरणं याति दुःस्थितः ॥४
गर्दभाचरितां भूमिं वेश्यागेहं समाश्रितः ।
चर्मकारगृहं गत्वा निधनायोपगच्छति ॥५
अस्थिचर्मनखैः पूर्णामाश्रितपापकिल्विषैः ।
तांप्राप्यचैव स दुष्टात्मामृत्युं यातिसुनिश्चितम् ॥६
अन्यांपापसमाचारांप्राप्य मृत्युं सगच्छति ।
अथचेष्टां प्रवक्ष्यामि दूतानांतुतमिच्छताम् ॥७

सोम शर्मा ने कहा—हे भद्रे ! पाप करने वाले मानवों का मरण किस प्रकार के लक्षणों से युक्त होता है । हे भामिनि ! यदि आप जानती हैं तो उन्हें हमको विस्तार पूर्वक बतलाइये ॥१॥ सुमना ने कहा—मार्ग लोग श्रवण करें मैंने सिद्ध से सुना है । हे कान्त ! पापियों की मृत्यु जिस तरह की होती है और जैसा भी उसमें लक्षण होना है ॥२॥ मैं महान् पातकों के करने वालों का जो स्थान और जैसी उनकी चेष्टा होती है उसे भी बतलाता हूँ । मल-मूत्र आदि अमेध्य (अपवित्र) पदार्थों से संयुत और पाप से युक्त भूमि ही उनका निवास स्थान होता है ॥३॥ वह दुष्ट आत्मा वाला ऐसी भूमि को प्राप्त कर बहुत ही अधिक दुःख से अपने प्राणों का त्याग किया करता है । बुरी स्थिति में संस्थित होने वाला वह चाण्डाल भूमि को प्राप्त कर मरण को प्राप्त होता है ॥४॥ जिस भूमि पर गधे विचरण किया करते हैं उस भूमि में—वेश्या के घर में समाश्रित होता हुआ अथवा चमड़े के काम करने वाले चमार के घर में जाकर ही पापी पुरुष निधन (मृत्यु) को प्राप्त होता है ॥५॥ हड्डी—चमड़ा—नाखूनों से परिपूर्ण पाप और किल्विषों से समाश्रित जो भूमि होती है उसी का आश्रय ग्रहण करके वह दुष्ट आत्मा वाला पापी मनुष्य निश्चित रूप से मृत्यु को प्राप्त हुआ करता है ॥ ६ ॥ इसी तरह की दूसरी भी जो पापों से और महान् दूषित पदार्थों से समाचरित भूमि होती है उसी में पहुँचकर पापी की मौत हुआ करती है । अब मैं उस महान् दुष्ट पापी पुरुष की चेष्टा के विषय में वर्णन करता हूँ जबकि यम के दूत उसे लेने के लिये इच्छा रखकर आया करते हैं ॥ ७ ॥

भैरवान्दारुणान्घोरानतिकृष्णान्महोदरान् ।
पिङ्गाक्षान्पीतनीलांश्च अतिश्वेतान्महोदरान् ॥८
अत्युच्चान्विकरालांश्चशुष्कमांसवसोपमान् ।
रौद्रदष्ट्रान्करालांश्चसिंहास्यान्सर्पहस्तकान् ॥९
स तान्दृष्ट्वा प्रकम्पेत खिद्यते च मुहुर्मुहुः ।
शिवासनादवद्घोरान्महारावान्महामते ॥१०
मुञ्चन्तिदूतकाः सर्वेकर्णमूले तु तस्य हि ।
गलेपाशैः प्रबद्ध्वा ते कटिं वद्ध्वातयोदरे ॥११
समाघृण्य निपात्येत हाहेति वदते मुहुः ।
म्रियमाणस्य या चेष्टा तामेवं प्रवदाम्यहम् ॥१२
परद्रव्यापहरणं परभार्याविडम्बनम् ।
ऋणं परस्य सर्वस्वं गृहीत यत्तु पापिभि. ॥१३
पुनर्नैव प्रदत्त हि लोभास्वादविमोहतः ।
अन्यदेव महापापं कुप्रतिग्रहमेव च ॥१४

यमराज के दूनो का स्वरूप महान् भीषण होता है। ये दूत बहुत ही भैरव रूप वाले हैं—महान् दारुण हैं—अत्यन्त घोर होते हैं—अधिक काले वर्ण से युक्त हैं और इनके उदर बहुत बडे होते हैं। पीली इनकी आँखें होती हैं, पीत और नीले रङ्ग होते हैं, अति श्वेत और बडी तोंद होती है ॥ ८ ॥ बहुत ही ऊंचे आकार वाले होते हैं तथा अत्यन्त विकराल इनका स्वरूप होता है। सूखे हुए मांस और वसा (चर्बी) के सदृश हुआ करते हैं। यम के दूतो की दाढें महान् रौद्र रूप वाली बडी होती हैं और अत्यन्त ही कराल होते हैं। इन दूतो का मुख सिंह जैसा होता है और इनके हाथ सर्पों के समान हुआ करते हैं। ऐसे यम के दूतों को देखकर पापी पुरुष कांप जाता है और बारम्बार कँपकँपी से अत्यन्त खिन्न हो जाता है जिस समय मे वह शिवा के संवाद के तुल्य घोर ध्वनि करने वाले उसे दिखलाई दिया करते हैं ॥ ९।१० ॥ वे यम के दूत सब उस पापी के कर्णमूल में घोर ध्वनि किया करते हैं। दूत उसको पाशो से गले में बाँध देते हैं—कमर को कस देते हैं और उदर को बद्ध कर देते हैं। फिर

उसको समाधर्षित कर नीचे गिरा देते हैं और हा-हा'-ऐसा बार-बार बोलते हैं। मरते हुए पापी की उस समय म जो चेष्टा होती है उसे मैं अब बतलाता हूँ। ॥ ११।१२ ॥ पराये धन का अपहरण करना, पराई स्त्री को बिडम्बित करना, दूसरे के ऋण को ले लेना तथा दूसरे का सर्वस्व ग्रहण कर लेना और फिर लौटाकर उनको वापिस न देना—ये सब कुत्सित कर्म लोभ के आस्वाद से मोहित होकर पापी मनुष्य जो किया करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी महान् पाप होते हैं और कुप्रतिग्रह भी होता है ॥ १३।१४ ॥

कण्ठमायान्ति ते सर्वे म्रियमाणस्य तस्य च ।
यानि कानि च पापानि पूर्वमेवकृतानिच ॥१५
आयान्ति कण्ठमूल ते महापापस्य नान्यथा ।
दु खमुत्पादयन्त्येते कफबन्धेन दारुणम् ॥१६
पीडाभिर्दारुणाभिस्तु कण्ठो घुर्घुरायते ।
रोदते कम्पतेऽत्यर्थं मातर पितर पुन ॥१७
स्मरते भ्रातर तत्र भार्यां पुत्रान्पुन पुन ।
पुनर्विस्मरण याति महापापेन मोहित ॥१८
तस्य प्राणा न गच्छन्ति बहुपीडासमाकुला ।
पतते कम्पते चैव मूर्च्छते च पुन पुन ॥१९
एवपीडासमायुक्तो दु ख भुङ्क्तेऽतिमोहित ।
तस्यप्राणा सुदु खेन महाकष्टे प्रचालिता ॥२०
अपानमार्गमाश्रित्य शृणु कान्त प्रयान्ति ते ।
एव प्राणी महामुग्धा लोभमोहसमन्वितः ॥२१
नीयते यमदूतैस्तु तस्य दु ख वदाम्यहम् ॥२२

जब ऐसा पापी मृत्यु के निकट होता है तो वे सब उसके कण्ठ म आ जाया करते हैं जो भी कुछ उसके पूर्व में किये हुए पाप कर्म होते हैं वे सब महान् पापी के कण्ठमूल मे आ जाया करते हैं, अन्यथा नहीं आते हैं। ये सब उसके कफ का बन्धन करके उसे महान् दारुण दुःख समुत्पन्न किया करते हैं। ॥ १५।१६ ॥ उस समय मे होने वाली दारुण पीडाओं से उस पापी पुरुष का

कण्ठ घुर-घुर किया करता है। उस समय में अत्यन्त उत्पीड़ित होकर वह रुदन किया करता है, काँपता रहता है और पुनः माता-पिता का स्मरण किया करता है। भाई को याद उस पीडित दशा में उसे होती है अपनी भार्या और पुत्रों को याद किया करता है फिर इन सबको महापाप से मोहित होता हुआ भूल जाया करता है ॥१७।१८॥ उस समय ऐसी भयानक पीड़ा उसे होती है कि उससे समाकुल होकर उसके प्राण भी नहीं निकला करते हैं और बारम्बार गिरता है—काँपता है और बेहोश हो जाया करता है इस प्रकार से अति पीड़ा से युक्त होकर वह पापी पुरुष अत्यधिक मोहित होता हुआ दुःखों को भोगा करता है। उसके प्राण उस दुःख से और महान् कष्टों से प्रचालित हो जाते हैं। फिर वे प्राण अपान वायु के मार्ग का आश्रय ले लिया करते हैं। हे कान्त! आप सुनिये, वहाँ होकर पापी के प्राण प्रयाण किया करते हैं। इस रीति में वह पापात्मा प्राणी महान् दुःख और लोभ, मोह तथा मद से समन्वित होता है। उसे फिर यमराज के दूत यमपुरी में ले जाया करते हैं। उस समय में दूतों द्वारा ले जाये जाने में भी उसे महान् मार्ग में दुःख होता है। उसे भी हम अब बतायेंगे ॥ १९ से २२ ॥

॥ ब्राह्मणत्व प्राप्ति के कारण ॥

पूर्वजन्मकृतं पापं त्वयाख्यातं च मे मुने ।
शूद्रत्वेन तु विप्रेन्द्र मयैव परिवर्जितम् ॥१

विप्रत्वं हि मयाप्राप्तं तत्कथं द्विजसत्तम ।
तत्सर्वं कारणं हि ज्ञानविज्ञानपण्डित ॥२

यत्त्वया चेष्टितं पूर्वं कर्मधर्माश्रितं द्विजे ।
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रूयतां यदिमन्यसे ॥३

ब्राह्मणः कश्चिदनघःसदाचारःसुपण्डितः ।
विष्णुभक्तस्तु धर्मात्मा नित्यंविष्णुपरायणः ॥४

यात्राव्याजेन तीर्थानां भ्रमत्येकः स मेदिनीम् ।
अटमानःसमायातस्तवगेहे महामतिः ॥५

याचितं स्थानमेकं वै वासार्थं द्विजसत्तम ।
तवैव भार्यया दत्तं त्वया च सहपुत्रकैः ॥६
एयतामेयतांब्रह्मन्सुखेन सुगृहे मम ।
वैष्णव ब्राह्मणं पुण्यमित्युवाच पुनःपुनः ॥७

सोम शर्मा ने कहा—हे मुनिवर ! आपने मुझे पूर्व जन्म में किये हुए पापों का वर्णन करके सुना दिया है। हे विप्रेन्द्र ! मेरे द्वारा ही शूद्रत्व से परिवर्जित किया है ॥ १ ॥ हे द्विज सत्तम ! मैंने विप्रत्व को प्राप्त किया था तो वह मुझे किस प्रकार से प्राप्त हुआ है। इस सबका कारण आप मुझे बतलाइये क्यों कि आप तो ज्ञान और विज्ञान के गुणों पण्डित हैं ॥ २ ॥ वसिष्ठ मुनि ने कहा—हे द्विज ! आपने जो पूर्व में चेष्टा की थी और धर्म तथा कर्म का आश्रय ग्रहण किया था। मैं उस सबको इस समय में भली-भाँति बतलाता हूँ। आप इसे श्रवण करना ठीक मानते हैं तो उसे सुनिये ॥ ३ ॥ कोई एक दोषों से रहित, सदाचार से समन्वित और बहुत ही अच्छा विद्वान् ब्राह्मण था। वह भगवान् विष्णु का परम भक्त था और अत्यन्त धर्मात्मा था। वह नित्य ही भगवान् विष्णु के यजनार्चन में तत्पर रहा करता था ॥ ४ ॥ यात्रा के प्रसङ्ग से वह एक ही अकेला तीर्थों का अटन करता हुआ भूमि पर भ्रमण किया करता था। वह महान् मति वाला इसी तरह से पर्यटन करता हुआ आपके घर पर आ गया था ॥ ५ ॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! उसने निवास करने के लिये एक स्थान की याचना की थी। आपकी ही भार्या ने तथा पुत्रों के साथ आपने वह स्थान दे दिया था ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! आइये, आइये, आप सुख पूर्वक मेरे ही घर में निवास कीजिये। उस परम वैष्णव ब्राह्मण से जो अत्यन्त पुण्यात्मा था बार-बार यह कहा था ॥ ७ ॥

सुखेन स्थीयतामत्र गृहोऽयं तव सुव्रत ।
अद्यधन्योऽस्म्यहं पुण्यमद्यतीर्थमहागमः ॥८
अद्यतीर्थफलंप्राप्तं तवाङ्घ्रिद्वयदर्शनात् ।
गत्वास्थान वरपुण्यं निवासाय निवेदितम् ॥९
अङ्गसंवाहनं कृत्वा पादौचैव प्रमर्दितौ ।
क्षालितौ च पुनस्तोयैः स्नातःपादोदकेन हि ॥१०

सद्यो घृतंदधिक्षीरमन्नंतक्रं प्रदत्तवान् ।
तस्मै च ब्राह्मणायैव भवानित्य महात्मने ॥११
एवं सन्तोषितो विप्रस्त्वया च सहभार्यया ।
पुत्रैःसार्धं महाभागो वैष्णवोज्ञानपण्डितः ॥१२
अथ प्रभाते सम्प्राप्ते दिनेपुण्ये सुभाग्यदे ।
आषाढस्य तु शुद्धस्यैकादशी पापनाशिनी ॥१३
तस्मिन्दिनेसुसम्प्राप्ता सर्वपातकनाशिनी ।
यस्यांदेवो हृषीकेशोयोगनिद्रां प्रगच्छति ॥१४
सा प्राप्य च ततो लोकास्तत्यजुर्द्विपपण्डिता ।
गृहस्य सर्वकर्माणि विष्णुध्यानरता द्विज ॥१५

हे सुन्दर व्रतों से समन्वित ! आप यहाँ पर ही सुख के साथ ठहरिये। यह तो आपका ही घर है। आज मैं परम धन्य हो गया हूँ। आज मैंने परम पुण्यमय तीर्थ को प्राप्त कर लिया है ॥ ८ ॥ आज मैंने समस्त महान् तीर्थों के फल को प्राप्त कर लिया है क्योंकि आज मुझे आपके दोनो चरणों का दर्शन प्राप्त हुआ है। यह गौओ के रहने का स्थान बहुत ही श्रेष्ठ और परम पवित्र है जिसे मैंने उन्हें निवेदित किया था ॥ ९ ॥ फिर उनके अङ्गों का संवाहन करके अर्थात् अङ्गों को दबाकर इसके उपरान्त चरणों का प्रमर्दन किया था। इसके अनन्तर जल से उन चरणों को धोया था। और उनके चरणों के धुले हुए चरणामृत जल से मैंने स्वयं स्नान किया था ॥ १० ॥ इसके पश्चात् तुरन्त ही ताजा घृत-दधि-क्षीर-अन्न और मट्ठा मैंने उनकी सेवा में समर्पित किये थे। उस महान् आत्मा वाले ब्राह्मण के लिये आपने इस प्रकार से भोज्य पदार्थ दिये थे ॥ ११ ॥ आपने अपनी भार्या के सहित उस विप्र को पूर्णतया सन्तुष्ट किया था। पुत्रों को भी साथ में लेकर उस महान् भाग्य वाले परम विष्णु के भक्त का जो कि ज्ञान में महान् पण्डित था आपने भली-भाँति सुस्कृत किया था ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर प्रातःकाल में पुण्य दिन के समाप्त हो जाने पर जो कि सुभाग्य का प्रदान करने वाला था, शुद्ध आषाढ मास की पापों के नाश करने वाली एकादशी तिथि आई थी ॥ १३ ॥ उस दिन में सम्पूर्ण पातकों का

नाश करने वाली वह पुण्य तिथि आई थी जिस तिथि में भगवान् हृषीकेश देव योग निद्रा को प्राप्त होते हैं। हे द्विज ! उस तिथि को पाकर बुद्धिमानों ने घर के सब कर्म त्यागकर विष्णु भगवान् के ध्यान में तत्पर हो गये थे ॥१४।१५॥

उत्सवं परमंचक्रुर्गीतमङ्गलवादनैः।
स्तुवन्ति ब्राह्मणाःसर्वे वेदे स्तोत्रैः सुमङ्गलैः ॥१६
एवं महोत्सवं प्राप्य स च ब्राह्मणसत्तमः।
तस्मिन्दिनेस्थितस्तत्र सम्प्राप्तं समुपोषणम् ॥१७
एकादश्यास्तु माहात्म्य पठित ब्राह्मणेन वै।
भार्यापुत्रैस्त्वयासार्द्धं श्रुत धर्ममनुत्तमम् ॥१८
श्रुते तस्मिन्महापुण्ये भार्यापुत्रैस्तु प्रेरितः।
ससर्गादस्य विप्रस्य व्रतमेतत्समाचर ॥१९
तदाकर्ण्य महद्वाक्य सर्वपुण्यप्रदायकम्।
व्रतमेतत्करिष्यामि इतिनिश्चितमानसः ॥२०
भार्यापुत्रैःसमं गत्वानद्यास्नानं कृत त्वया।
हृष्टेनमनसा विप्र पूजितो मधुसूदनः ॥२१

उस देव शयनी एकादशी के दिन में सभी ने गीत और मङ्गलमय-वादनों के द्वारा महान् उत्सव मनाया था। समस्त ब्राह्मण वेदोक्त स्तोत्रों के द्वारा और मङ्गल वचनों से भगवान् की स्तुति करने लगे थे ॥१६॥ इस प्रकार का महान् उत्सव प्राप्त करके उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने भी उस दिन में वहीं पर अपनी स्थिति करली थी और वहाँ उसने उपवास भी किया था ॥१७॥ ब्राह्मण ने एकादशी तिथि के माहात्म्य का पाठ किया था। भार्या और पुत्रों के सहित वह माहात्म्य तथा उत्तम धर्म आपने भी सुना था ॥१८॥ उस महा पुण्यमय माहात्म्य के श्रवण करने पर भार्या और पुत्रों ने प्रेरणा दी थी कि इस विप्र के ससर्ग से आप भी इस व्रत का समाचरण करो ॥ १९ ॥ उस समय में उस महत्त्वपूर्ण वचन का श्रवण कर जो कि सभी तरह के पुण्यों का प्रदान करने वाला था। मैंने भी ऐसा निश्चित मन से निर्णय किया था कि मैं भी इस व्रत को अवश्य ही करूँगा ॥ २० ॥ फिर तो मैंने अपनी भार्या और पुत्रों के साथ

नदी पर गमन किया था और नदी में जाकर स्नान किया था। हे विप्र ! आपने परम प्रसन्न मन से फिर भगवान् मधुसूदन का पूजन किया था ॥२१॥

सर्वोपहारैः पुण्यैश्च गन्धधूपादिभिस्तथा ।
रात्रौ जागरणंकृत्वा नृत्यगीतादिभिस्तथा ॥२२
ब्राह्मणस्य प्रसङ्गेन नद्यास्नान पुनःकृतम् ।
पूजितो देवदेवेशः पुष्पधूपादिमङ्गलैः ॥२३
भक्त्या प्रणम्य गोविन्द स्नापयित्वा पुनःपुनः ।
निर्वापं तादृशदत्तं ब्राह्मणाय महात्मने ॥२४
भक्त्या प्रणम्य तं विप्रं दत्तातस्मै सुदक्षिणा ।
कृतवान्पारणं विप्र पुत्रैर्भार्यादिभिःसमम् ॥२५
प्रेषितो भक्तिपूर्वेण सद्भावेन स्वयंव सः ।
एवं व्रतं समाचीर्णं त्वया वै द्विजसत्तम ॥२६
सङ्गत्या ब्राह्मणस्यैव विष्णोश्चैव प्रसादतः ।
भवान्ब्राह्मणतां प्राप्तःसत्यधर्मसमन्वितः ॥२७
तेन व्रतप्रभावेणत्वया प्राप्त महत्कुलम् ।
भूसुराणां महाप्राज्ञ सत्यधर्म समाविलम् ॥२८

परम पुण्यमय समस्त उपहारों के द्वारा तथा गन्ध अक्षत धूपादि के द्वारा विष्णु भगवान् की पूजा की थी और रात्रि में जागरण किया था। रात्रि में नृत्य गीतादि से भगवान् का कीर्तन किया गया था ॥ २२ ॥ उस ब्राह्मण के सम्पर्क से पुनः नदी में स्नान किया था और देवों के भी देवेश भगवान् का पुष्प धूपादि मङ्गलमय उपचारों से पूजन किया था ॥२३॥ भक्ति की भावना से भगवान् गोविन्द को प्रणाम करके और बारम्बार स्नान कराकर फिर उस प्रकार का निर्वाण महात्मा ब्राह्मण के लिये दिया था ॥२४॥ भक्ति पूर्वक उस विप्र की प्रदक्षिणा करके तथा प्रणाम करके फिर उसको अच्छी दक्षिणा समर्पित की थी। हे विप्र ! इसके उपरान्त पुत्रों और भार्या के साथ स्वयं पारण किया था अर्थात् कुछ खाकर व्रत खोला था ॥२५॥ आपके द्वारा वह बहुत ही सद्भावना से भक्ति-भाव पूर्वक प्रेषित किया गया

था । इस प्रकार से हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! आपने तप को समाचीर्ण किया था ॥२६॥ ब्राह्मण की सद्भक्ति से और भगवान् विष्णु के प्रसाद से सत्य एवं धर्म से संयुत रहते हुए आपको यह ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हुई है ॥२७॥ उस तप के महान् प्रभाव से ही यह ब्राह्मण का महान् गुण मिला है । हे महाप्राज्ञ ! ब्राह्मण भूमि के देवता होते हैं उनका गुण सत्य और धर्म से समाविष्ट होता है ॥ २८ ॥

का ही सञ्चय किया था और कभी भी आपने ब्राह्मणों को तथा अन्य परम-दीन-हीन दुःखितों को कुछ भी दान नहीं किया था। अपनी स्त्रियों में एवम् पुत्रों में ही अहर्निश अपने मन को संलग्न करके मृत्यु को प्राप्त हुए थे। उस समय में भी नाशवान् मिथ्या सांसारिक मोह के जाल में उलझे रहने के महान् पाप के प्रभाव से ही यह दरिद्रता आपको प्राप्त हुई है ॥३०।३१।३२॥ पुत्र के लालच का परित्याग करके और स्नेह को दूर से ही त्याग करके आप बिना पुत्र वाले समुत्पन्न हुए हैं—यह उसी पाप का फल है ॥३३॥ आपको यह ज्ञान होना चाहिए कि सुन्दर परमाज्ञापालक सदाचारी पुत्र, उत्तम कुल, धन-धान्य, भूमि, अति प्रिया स्त्री, सुन्दर जन्म, अति सुमनोरम विविध भोग, सुख, राज्य, मृत्यु, स्वर्ग निवास और संसार के जन्म-मरण के सदा आवागमन से छुटकारा तथा जो-जो भी अत्यन्त दुर्लभ वस्तु हैं वे सभी महात्मा भगवान् विष्णुदेव की कृपा से ही प्राप्त हुआ करते हैं। इसीलिये आमय से रहित भगवान् गोविन्द की समाराधना करो जो साक्षात् नारायण हैं। इस आराधना के ही प्रभाव से आपको परम प्रासभ्र स्थान जो विष्णुदेव का पद है वह अवश्य ही प्राप्त हो जायगा ॥३४।३५।३६॥

सुपुत्रत्वं धनधान्य सुभोगान्सुखमेव च।
पूर्वजन्मकृतं सर्व यत्त्वया परिचेष्टितम् ॥३७
तन्मया कथित विप्र तवाग्रे परिनिष्ठितम्।
एवं ज्ञात्वा महाभाग नारायणपरोभव ॥३८
ब्रह्मात्मजेनापि महानुभाव सविप्रवर्य-परिबोधितो हि।
हर्षेण युक्त स महानुभावो भक्त्या वसिष्ठं प्रणिपत्य तत्र ॥३९

सुन्दर सपूत पुत्र—धन धान्य, सुभोगों के उपभोग और परम सुख ये सभी पूर्व जन्म के कृत पुण्यों के प्रभाव से होते हैं जो हे विप्र ! आपने परिचेष्टित किये हैं ॥३७॥ हे विप्र यह सब मैंने आपके आगे बतला दिया है जोकि वास्तव में परिनिष्ठित है। इस प्रकार से समझकर हो हे महाभाग ! अब आप नारायण में तत्पर हो जाइये। इससे आपका पूर्ण कल्याण होगा। वह महान् अनुभावों वाला विप्र श्रेष्ठ ब्रह्माजी के आत्मज (पुत्रों) के द्वारा भी अच्छी रीति से परि-

बोधित किया गया था। फिर परम हर्ष से समन्वित होकर वह महानुभाव वसिष्ठ के समीप में पहुँचे और भक्ति की भावना से वसिष्ठ महर्षि के चरणों में उन्होंने प्रणाम किया था ॥३८।३९॥

॥ वेन का छद्मलिङ्गधारी से संवाद ॥

एववेनस्य चैवासीत्सृष्टिरेव महात्मनः ।
धर्माचारं परित्यज्य कथं पापमतिर्भवेत् ॥१
ज्ञानविज्ञानसंपन्ना मुनयस्तत्त्ववेदिनः ।
शुभाशुभं वदन्त्येव तन्नस्यादिह चान्यथा ॥२
तप्यमानेन तेनापि सुशङ्खेन महात्मना ।
दत्त शाप कथ विप्रा न यथावत्तज्जायते ॥३
वेनस्य पातकाचारं सर्वमेव वदाम्यहम् ।
तस्मिन्गच्छामति धर्मज्ञे प्रजापाले महात्मनि ॥४
पुरुषः कश्चिदायातश्छद्मलिङ्ग धरस्तदा ।
नग्नरूपो महाकायः शिरोमुण्डो महाप्रभः ॥५
मार्जनीं शिखिपत्राणां कक्षायां स हि धारयन् ।
गृहीत पानपात्रं तु नालिकेरमयं करे ॥६
पठमानोह्यपच्छास्त्रं वेदधर्मविदूषकम् ।
यत्र वेनो महाराजस्तत्रायातस्त्वरान्वितः ॥७
सभायां तस्य वेनस्य प्रविवेश स पापवान् ।
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं वेन तदाऽकरोत् ॥८

ऋषियों ने कहा—महात्मा वेन की सृष्टि ही इस प्रकार की थी। वह वेन धर्म के आचार का परित्याग करके पापों में मति रखने वाला क्यों हो गया था? सूतजी ने कहा—ज्ञान और विज्ञान से युक्त तत्त्व के ज्ञाता मुनि लोग शुभ तथा अशुभ के विषय में इस प्रकार से कह दिया करते हैं कि वह यहाँ पर फिर अन्यथा नहीं होता है ॥१।२॥ महान् आत्मा वाले सुशङ्ख ने अत्यन्त तप्यमान होकर शाप दे दिया था। हे विप्रगण! वह यथावत् कैसे नहीं होता ॥३॥ अब

में राजा वेन का सम्पूर्ण पातकाचार बतलाता हूँ। जिस समय धर्म का ज्ञान, प्रजा का पालक, महात्मा वह राज्य पर शासन कर रहा था उस समय में कोई एक पुरुष कपट का चिह्न धारण करके वहाँ आया था, जिसका नग्न स्वरूप था—अति विशाल शरीर था, शिर मुण्डित हो रहा था और वह महान् प्रभा से समन्वित था ।।४।५।। वह कृक्षा में शिखि पत्रों की मार्जनी धारण किये हुए थे। उसने हाथ में नारियल से परिपूर्ण एक पान पात्र ग्रहण कर रक्खा था ।।६।। वह असत् शास्त्र का पाठ कर रहा था जो कि वेदों में कहे हुए धर्म को दूषित करने वाला था जिस स्थान पर राजा वेन स्थित था वहीं पर वह तेजी के साथ आ गया था ।।७।। उस वेन राजा की सभा में वह पापी प्रविष्ट हुआ था। उसको वहाँ पर सम्प्राप्त हुआ देखकर वेन ने उससे प्रश्न किया था ।।८।।

भवान्को हि समायात ईदृग्रूपधरो मम ।
सभाया वर्तमानस्य पुरः कस्मात्समागत ।।९
को वेष किन्तु ते नाम को धर्मं कर्म ते वद ।
को वेदस्ते क आचार किंतप का प्रभावना ।।१०
किं ज्ञान क प्रभावस्ते किं सत्यधर्मलक्षणम् ।
तत्त्व सर्वं समाचक्ष्व ममाग्रे सत्यमेव च ।।११
श्रुत्वा वेनस्य तद्वाक्य पापो वाक्यमुदाहरत् ।
करोष्येव वृथा राज्यमहामूढो नसशय ।।१२
अहं धर्मस्यसर्वस्वमहपूज्यतमस्सुरैः ।
अहं ज्ञानमहमत्यमह धाता सनातन ।।१३
अहं धर्म अहं मोक्ष सवदेवमयो ह्यहम् ।
ब्रह्मादेहात्समुद्भूतः सत्यमन्योऽस्मिनान्यथा ।।१४
जिनरूप विजानीहि सत्यधर्मकलेवरम् ।
मामेव हि प्रध्यायन्ति योगिनो ज्ञानतत्परा ।।१५

आप कौन हैं जो इस प्रकार का भीषण स्वरूप धारण करके यहाँ मेरी सभा में आये हैं। जिस समय मैं यहाँ पर विद्यमान हूँ तो आप मेरे सामने क्यों आ गये हैं ? ।। ९ ।। आपका यह क्या अद्भुत वेष है ? आप यह बतलाइये कि

आपका नाम क्या है ? आप किस धर्म के मानने वाले हैं और आपका क्या कर्म है ? आपका कौन सा वेद है तथा क्या आचार है ? आप क्या तपश्चर्या किया करते है और आपकी भावना किस प्रकार की है ।।१०।। आपका ज्ञान क्या है ? प्रभाव क्या है और सत्य धर्म का लक्षण क्या है ? आप मेरे सामने बिल्कुल सच सच सब तत्त्व बतलाइये ।। ११ ।। राजा वेन के इस वचन का श्रवण कर उस पाप ने उत्तर दिया था । उसने कहा—इस प्रकार से तो महा मूढ राज्य को वृथा करते हैं—इसमें संशय नहीं है ।।११।१२।। मैं धर्म का सर्वस्व हूँ और मैं सुरगण के द्वारा पूजित होता हूँ मैं ही ज्ञान का स्वरूप हूँ और मैं ही सत्य हूँ तथा सनातन धाता भी मैं ही हूँ ।।१३।। मैं ही धर्म हूँ और मैं ही मोक्ष का स्वरूप हूँ । मैं समस्त देवों से परिपूर्ण हूँ । मेरी उत्पत्ति ब्रह्मा के देह से हुई है और इस जगत् में सत्य-प्रतिज्ञा करने वाला हूँ—इस में लेशमात्र भी संशय नहीं है ।।१४।। सत्य और धर्म का कलेवर धारण करने वाला मुझे जिन रूप समझिये । ज्ञान मे सदा परायण रहने वाले योगीजन मेरी ओर ही ध्यान करते हुए अपनी दौड़ लगाया करते हैं ।।१५।।

तवैव कीदृश कर्म किं ते दर्शनमेव च ।
किमाचारो वदस्वैहि इत्युक्त तेन भूभुजा ।।१६
अर्हन्तो देवता यत्र निर्ग्रन्थो दृश्यते गुरु ।
दयाचैव परोधर्मस्तत्र मोक्षः प्रदृश्यते ।।१७
दर्शनेऽस्मिन्नसन्देह आचारान्प्रवदाम्यहम् ।
यजन याजन नास्ति वेदाध्ययनमेव च ।।१८
नास्ति सन्ध्या तपो दान स्वधास्वाहाविवर्जितम् ।
हव्यकव्यादिकं नास्ति नैव यज्ञादिकाक्रिया ।।१६
पितृणा तर्पण नास्ति नातिथिर्वैश्वदेविकम् ।
क्षपणस्य वरापूजा अर्हता ध्यानमुत्तमम् ।।२०
अय धर्मसमाचारो जैनमार्गे प्रदृश्यते ।
एतत्ते सर्वमाख्यात निजधर्मस्य लक्षणम् ।।२१

जिन की इस उक्ति को सुनकर राजा वेन ने कहा—हे भगवन् ! आपका

किस प्रकार धर्म होता है और आपका दार्शनिक सिद्धान्त क्या है ? उस राजा ने कहा था कि आप यह बतलाइये कि आपका आचार क्या होना है ? ॥१९॥ पातक ने कहा—जिस धर्म मे अर्हन्त देवता होता है और निर्ग्रन्थ गुरु दिखलाई दिया करता है। इसमे दया का करना ही सबसे बड़ा प्रमुख धर्म है और इसी मे मोक्ष का दर्शन हुआ करता है ॥१७॥ इस दर्शन मे कुछ भी सन्देह का अवसर नहीं होता है। इस धर्म में क्या आचार होते हैं उन्हे मैं अब बतलाता हूँ। इस धर्म मे यजन करना तथा यजन कराने का काम बिल्कुल भी नही है। वेदों का अध्ययन भी नही किया जाता है। इस धर्म मे सन्ध्योपासना—तपश्चर्या—दान और स्वधा (तर्पण) और स्वाहा अर्थात् हवन ये कुछ भी नही होते हैं। इसमे इन सबका निषेध होता है। इसमे हव्य कव्य प्रभृति कुछ भी नही है और यज्ञ आदि के कर्म भी कुछ नहीं किये जाते हैं॥ १८।१९। इसमे पितरों के लिये श्राद्ध एवम् तर्पण कुछ नहीं किये जाते हैं। अतिथियो का स्वागत सत्कार भी इसमे कुछ नही है और न बलि वैश्वदेव ही किया जाता है। इस धर्म में तो केवल लक्षण का पूजन करना ही परम-प्रधान अर्चना मानी जाती है और अर्हन्त का ध्यान करना ही सर्वोत्तम ध्यान माना गया है। यह धर्म का समाचार जैन मार्ग मे दिखलाई देता है। यह सभी कुछ अपने धर्म का लक्षण मैंने आपके सामने भली-भांति बतला दिया है ॥२०।२१॥

वेदप्रोक्तो यथा धर्मो यत्र यज्ञादिका. क्रिया. ।
पितॄणा तर्पण श्राद्ध वैश्वदेव नदृश्यते ॥२२
न दान तप एवास्ति क्वास्ते धर्मस्यलक्षणम् ।
वद सत्य ममाग्रे तु दयाधर्मश्च कीदृश. ॥२३
पञ्चतत्त्वप्रवृद्धोऽय प्राणिना काय एव च ।
आत्मावायुस्वरूपोऽयतेषानास्तिप्रसङ्गता ॥२४
यथा जलेषु भूतानामपि सङ्गमवेहि तत् ।
जायते बुद्बुदाकार तद्वद्भूतसमागम. ॥२५
पृथ्वीभावो रज स्थम्तु चापस्तत्रैव सस्थिता ।
ज्योतिस्तत्र प्रदृश्येतमुवायुर्वर्ततेत्रिपु ॥२६

आकाशमावृणोत्पश्चाद्बुद्बुदत्वं प्रजायते ।
अप्सु मध्ये प्रभात्येव सुतेजो वर्तुलवरम् ॥२७
क्षणमात्र प्रदृश्येत क्षणान्नैव च दृश्यते ।
तद्वद्भूतसमायोगः सर्वत्र परिदृश्यते ॥२८
अन्तकाले प्रयात्यात्मा पञ्चपञ्चसुयान्तिते ।
मोहमुग्धास्ततो मर्त्या वर्तन्ते चपरस्परम् ॥२९

राजा ने वेन से कहा—वेद ने जिस प्रकार का धर्म बतलाया है उसमें तो यज्ञ आदि की सम्पूर्ण क्रियाओं के करने का विधान होता है और उसमें तो पितरों का तर्पण श्राद्ध और बलि वैश्वदेव के करने का भी विधान दिखलाई देता है ॥ २२ ॥ आपके धर्म में न तो दान है और न तपस्या ही है ऐसा धर्म कहाँ है ? और यह क्या धर्म का लक्षण है ? आप मेरे सामने सर्वथा सरर वर्णन कीजिए कि आपका यह दया करने वाला धर्म किस तरह का होता है ? ॥ २३ ॥ इस कथन को सुनकर पातक ने कहा—प्राणियों का यह शरीर पाँच तत्वों से प्रवृद्ध होता है अर्थात् शरीर की रचना और वृद्धि पृथ्वी—जल—तेज—आकाश और वायु, इन पाँच तत्वों से होती है यह पाँच भौतिक हैं। यह आत्मा वायु स्वरूप वाला है अत. उन पाँच तत्वों से इसका कोई भी प्रसङ्ग ही नहीं होता है ॥२४॥ जिस प्रकार से जल में भूतों का सङ्ग होना है वैसे ही समझ लेना चाहिए। वह बुद्बुदे का आकार वाला होता है ठीक उसी भाँति भूतों का समागम भी हुआ करता है ॥ २५ ॥ रज में स्थित पृथ्वी भाव है, जल भी वहीं पर ही स्थित होते है, ज्योति वहाँ दिखलाई देती है और वायु तीनों में वर्तमान है ॥२६। पीछे आकाश को आवृत करता है और बुद्बुद के स्वरूप में हो जाया करता है। जल के मध्य में सुतेज उत्तम वर्तुलाकार वाला भासित होता है ॥ २७ ॥ क्षणमात्र के लिए दिखलाई दिया करता है और क्षणभर में ही अदृश्य हो जाता है। इस तरह का इन भूतों का समायोग होता है जो कि सर्वत्र दिखलाई दिया करता है ॥२८॥ जब इस प्राणी का अन्तकाल उपस्थित होता है उस समय में यह आत्मा चला जाया करता है और ये पाँच तत्व भी अपने-अपने में जाकर मिल जाते हैं। फिर मनुष्य मोह से मुग्ध होकर ही आपस में बरताव किया करते हैं ॥२९॥

श्राद्धं कुर्वन्ति मोहेन क्षयाहे पितृतर्पणम् ।
क्वास्तेमृत.समश्नातिकीदृशोऽसौनृपोत्तम ॥३०
विज्ञान कीदृशं कार्यं केनदृष्टं वदस्व नः ।
मिष्टान्नं भोजयित्वा च तृप्तायान्ति च ब्राह्मणाः ॥३१
कस्य श्राद्धं प्रदीयेत सा तु श्रद्धा निरर्थिका ।
अन्यदेव प्रवक्ष्यामि वेदानाकर्मदारुणम् ॥३२
यदाऽतिथिर्गृहे याति महोक्ष पचते द्विजः ।
अजं वा राजराजेन्द्र ह्यतिथिपरिभोजयेत् ॥३३
अश्वमेधमखे अश्वं गोमेधे वृषमेव च ।
नरमेधेनरं राजन्वाजपेये तथाह्यजान् ॥३४
राजसूये महाराज प्राणिना घातनं बहु ।
पुण्डरीके गजहन्याद्गजमेधेऽथ कुञ्जरम् ॥३५
सौत्रामण्यां पशुं मेध्य मेषमेव प्रदृश्यते ।
नानारूपेषु सर्वेषु श्रूयतांनृपनन्दनः ॥३६

मनुष्य मोह के वश में आकर मृत पुरुषों का श्राद्ध किया करते हैं और जिस तिथि में उनका क्षय होता है उस दिन उनका तर्पण भी करते हैं। हे नृपोत्तम ! वह मरा हुआ मनुष्य फिर कहाँ पर रहता है ? अर्थात् कहीं पर भी वह नहीं रहता जो कि उस श्राद्ध में दिये हुए अन्न को खा सके। वह अगर है तो बताइये वह कैसा है ? ॥३०॥ क्या ज्ञान है—कैसा उसका कार्य है किसने फिर उसे (मृत को) देखा है ? आप ही बतलाइये। यह वास्तव में कुछ भी नहीं है केवल इस बहाने से ब्राह्मणों को मिष्टान्न खिलाकर उन्हें तृप्त किया जाता है ॥३१॥ जब किसी का मृत्यु के पश्चात् अस्तित्व नहीं होता तो फिर किसको श्राद्ध दिया जाता है। यह श्रद्धा तो व्यर्थ की ही होती है। इसके अतिरिक्त मैं आपको वेदों में बताये हुए दारुण कर्म के विषय में बतलाता हूँ ॥ ३२ ॥ जिस समय में कोई अतिथि घर में जाता है तो द्विज महोक्ष का पाचन किया करता है। हे राजराजेन्द्र ! अथवा अज का पाचन करता है और अतिथि का भोजन कराया जाता है ॥ ३३ ॥ अश्वमेध यज्ञ में अश्व—गोमेध में वृष—नरमेध में

मनुष्य और हे राजन् ! वाजपेय यज्ञ में बकरों का घात किया जाता है । हे महाराज ! आपके वैदिक धर्मानुसार जो राजसूय नामक यज्ञ होता है उसमे बहुत प्राणियों का हनन होता है । पुण्डरीक मे गज का और गजमेध में कुञ्जर का हनन किया जाता है ॥३४।३५॥ सौत्रामणि मे सेव्य पशु मेध ही प्रदर्शित किया जाता है । हे नृपनन्दन ! इस प्रकार से अनेक स्वरूपो वाले यज्ञ यागादि मे विविध भाँति प्राणियों की हिंसा का विधान है तो फिर दानादि करने का क्या फल है ? ॥३६॥

दयाहीनं चापलं स्यान्नास्ति धर्मस्तु तत्र हि ।
एते वेदा न वेदास्युः दया यत्र न विद्यते ॥३७
दयादानपरो नित्य जीवमेव प्ररक्षयेत् ।
चाण्डालोऽप्यथशूद्रो वा स वै ब्राह्मणउच्यते ॥३८
यथा श्राद्धस्य वै चिह्नं तथा दानस्य लक्षणम् ।
जिनस्यापि च तद्धर्मं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥३९
एते विप्राश्च आचार्या गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
वदन्ति पुण्यतीर्थानि बहुपुण्यप्रदानि च ।
तत्कि वदस्व सत्यं मे यदि धर्ममिहेच्छसि ॥४०
आकाशाद्वै महाराज मेघा वर्षन्ति वै जलम् ।
भूमौ हि पर्वतेष्वेवं सर्वत्र पतते जलम् ॥४१
सम्प्राप्लाव्य ततस्तिष्ठेद्धयां सर्वत्र भावयेत् ।
नद्यः पापप्रवाहास्तुतासुतीर्थं श्रुतं कथम् ॥४२

दया की जहाँ कमी है वहाँ तो चपलता ही होगी है और वहाँ धर्म नहीं है । ये वेद जो कहे जाते हैं वे वेद ही नहीं हैं जिनमें दया का विधान ही नही है ॥ ३७ ॥ जो दया और दान मे परायण होता हुआ जीवो की ही रक्षा किया करता है चाहे वह शूद्र हो अथवा चाण्डाल भी क्यों न हो वही ब्राह्मण कहा जाता है ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार से श्राद्ध का जो चिह्न होता है, वैसा ही दान का भी लक्षण होता है । जिनका जो धर्म होता है वह भुक्ति और मुक्ति का प्रदान करने वाला होता है ॥३९॥ राजा वेन ने कहा—ये विप्र, आचार्य—

जो गङ्गा आदि सरिता आदि को पुण्य तीर्थ और अत्यधिक पुण्य प्रदान करने वाली बताया करते हैं सो आप बतलाइये और सत्य-सत्य कहिये कि यह धर्म है क्या आप चाहते हैं ? ॥ ४० ॥ पातक ने कहा—हे महाराज ! आकाश से मेघ जल की वर्षा किया करते हैं। वह वृष्टि का जल सर्वत्र ही भूमि और पर्वतों पर गिरा करता है ॥४१॥ वह आप्लावित कर फिर ठहर जाया करता है वैसे ही दया का भी सर्वत्र प्रभाव होता है और होना भी चाहिए। ये नदियाँ तो पापों का ही प्रवाह होता है। इन में तीर्थ कैसे हो सकता है ॥४२॥

जलाशया महाराज तडागाः सागरास्तथा ।
पृथिव्या धारकाश्चैव गिरयो अश्मराशयः ॥४३
नास्त्येतेषु च वै तीर्थं जलैर्जलदमुत्तमम् ।
स्नाने यदा महत्पुण्य कस्मान्मत्स्येषु वैनहि ॥४४
दृष्टास्नानेन वै सिद्धिर्मीना. शुद्ध्यन्तिनान्यथा ।
.यत्रजिनस्तत्र तीर्थं तत्र धर्म सनातनः ॥४५
तपोदानादिकं सर्वं पुण्य तत्र प्रतिष्ठितम् ॥४६
एको जिनः सर्वमयो नृपेन्द्र नास्त्येव धर्म परम हि तीर्थम् ।
अय तु लाभ परमस्तु तस्माद्ध्यायस्व नित्य सुसुखो भविष्यसि ॥
विनिन्द्य धर्मं सकल सवेद दान सपुण्यं परयज्ञरूपम् ।
पापस्वभावंर्बहुबोधितो नृपस्त्वङ्गस्य पुनो भुवि तेन पापिना॥४८

हे महाराज ! ये जितने भी जलाशय हैं चाहे तडाग हों या सागर हों ये सभी और पाषाणों के ढेर स्वरूप पर्वत पृथ्वी के ही धारक होते हैं ॥४३॥ इनमें तीर्थत्व मानना गलत है। ये तीर्थ होते ही नहीं हैं। जलदों के द्वारा जो जल वर्षाया जाता है वही जल वास्तव में उत्तम जल होता है। यदि जलाशयों में स्नान करने में ही महान् पुण्य होता है तो फिर मत्स्यों में सबसे अधिक उनका पुण्य क्यों नहीं माना जाता है ? ॥४४॥ स्नान से ही सिद्धि होती हो तो फिर मीन ही शुद्ध होती हैं जो अहर्निश जल में ही स्नान किया करती हैं अन्यथा नहीं है। जहाँ पर जिन हैं वहीं पर ही तीर्थ है और वही सनातन धर्म है ॥ ४५ ॥ वहाँ पर तो तप तथा दान आदि का सम्पूर्ण पुण्य प्रतिष्ठित होता

है ।। ४६ ।। हे नृपेन्द्र ! एकमात्र जिन ही ऐसा है जिसमे सभी कुछ होता है। उसके अतिरिक्त कोई भी धर्म नही है और न कोई तीर्थ ही है। यह ही परम लाभ है इसलिये आप उसी का ध्यान कीजिए फिर नित्य ही आपको बहुत ही अच्छा सुख प्राप्त हो जायगा ।।४७।। यह जो वेदो का बताया हुआ धर्म है और वेद हैं—दान—पुण्य और यज्ञ यागादिक सब हैं इनको छोड़िये केवल जिन का ही समाश्रय ग्रहण कीजिए। इस प्रकार से अङ्ग के पुत्र वेन को पापी के स्वभावो द्वारा उस पापी ने इस भू-मण्डल मे खूब समझा दिया था और उसे सुदृढ बना दिया था ।।४८।।

।। वेन का वैदिक-धर्म परित्याग ।।

एव सम्बोधितो वेन. पापभाव गत किल ।
पुरुषेण तेन जैनेन महापापेन मोहित ।।१
नमस्कृत्य तत पादौ तस्यैव च दुरात्मन ।
वेदधर्म परित्यज्य सत्यधर्मादिकाक्रियाम् ।।२
सुयज्ञाना निवृत्ति स्याद्दानाना हि तथैव च ।
पुण्यशास्त्रमयो धर्मस्तदा नैव प्रवर्तित ।।३
सर्वपापमयो लोक सञ्जातस्तस्यशासनात् ।
नैवयागाश्च वेदाश्च धर्मशास्त्रार्थमुत्तमम् ।।४
न दानाध्ययन विप्रास्तस्मिञ्छासति पार्थिवे ।
एव धर्मप्रलोपोऽभून्महत्पाप प्रवर्तितम् ।।५
अङ्गेन वार्यमाणस्तु अन्यथा कुरुते भृशम् ।
न ननाम पितु पादौ मातुश्चैव दुरात्मवान् ।।६

सूतजी ने कहा—इस रीति से उस पापी के द्वारा अच्छी तरह से समझाया राजा वेन पाप भाव को प्राप्त हो गया था। उस महान् पापी जैन पुरुष ने उसे मोहित कर दिया था ।। १ ।। उस राजा वेन ने फिर तो मोहित होकर उसके चरणो की वन्दना की थी जो कि महान् दुरात्मा उसके पास आया था और फिर वैदिक धर्म का त्याग कर दिया था तथा सत्य धर्मादि के जो समस्त

मड्डुधारी तदा देवो वीणाधारी च तालनः ।
बलजः कांस्यधारी च बलखानिर्महाबलः ॥३२॥
मातुरग्रे स्थिता स्ते वै ननृतुः प्रेमविह्वलाः ।
मोहिता देवकी चासीन्न ज्ञातं तत्र कारणम् ॥३३॥
मोहितां मातरं दृष्ट्वा परं हर्षमुपाययुः ।
तदा तां कथयामासुर्वयं ते तनया हि भोः ॥३४॥
नत्वा तां प्रययुः सर्वे पुरीं माहिष्मतीं शुभाम् ।
नगरं मोहयामासुर्वाद्यगानविशारदाः ॥३५॥

उन्होंने ममता को प्रणाम करके और राजा ने अनेक प्रकार के दान देकर वे सब सेना से समन्वित दक्षिण दिशा में आ गये थे ॥२६॥ उन युद्ध करने की इच्छा रखने वालों का मार्ग में एक वन ही व्यतीत हुआ था। वहाँ पर उस घोर वन को काटकर जो कि अनेक प्रकार की कांटेदार झाड़ियों से युक्त था उसमें उन्होंने अपनी सेना को निवास दिलाया था और वे महान् बल वाले निर्भय थे ॥३०॥ देवसिंह के मन में ही वे उस समय सब योगी होगये थे। कृष्णांश तो नर्तक होगया था और आल्हाद ने डमरू से प्यार किया था ॥३१॥ देव मड्डुधारी, तालन वीणा लेने वाला, बलज कांस्यधारी और बलखानि भी वाद्य धारण करने वाला होगया था जो कि महान् बलवान् था ॥३२॥ वे सब माता के आगे स्थित होगये थे और प्रेम से विह्वल होकर नाचने लगे थे। देवकी मोहित होगई किन्तु इसका कारण नहीं जाना था ॥३३॥ माता को मोहित देखकर सब को परम हर्ष हुआ था। उस समय में उन्होंने कहा कि हम मा के पुत्र हैं ॥३४॥ उसको सब नमस्कार करके शुभ माहिष्मती पुरी को प्रस्थान कर गये थे। वाद्य और गान के पण्डितों ने उस सम्पूर्ण नगर को मोहित कर दिया था ॥३५॥

दृष्ट्वा गाढं स्थितोऽसि नाट्यके तालविद्याम्बरः ।
कृष्णांशनृत्यभावं च राजानं मोहने गताः ॥३६॥
निगमा भर्तृणी कृष्णा कृष्णांशः सर्वमोहन ।
आनन्दस्य ... [illegible] ॥३७॥

दृष्ट्वा सा सुंदरं रूपं श्यामांगं पुरुषोत्तमम् ।
मुमोह वशमापन्ना मैथुनार्थं समुद्यता ॥३८॥
दृष्ट्वा तथा गता नारी कृष्णांशःश्लक्ष्णया गिरा ।
शत्रोर्भेदं च पप्रच्छ कामिनीं मदविह्वलाम् ॥३९॥
साह भो देवकीपुत्र यदि पाणिं ग्रहीष्यसि ।
तर्हि ते कथयिष्यामि पितृर्भेदं हि दारुणम् ॥४०॥
तथेत्युक्त्वा स बलवांस्तस्याःपाणिं गृहीतवान् ।
ज्ञात्वा भेदं रिपोः सर्वं तामाश्वास्य ययौ मुदा ॥४१॥
एतस्मिन्नन्तरे राज्ञी बाधिता प्राह योगिनम् ।
देशराजप्रियाहारं नवलक्षस्य मूल्यकम् ।
तुभ्यं दास्यामि संतुष्टा नृत्यगानविमोहिता ॥४२॥

कार्य में तत्पर वे सब दूती के साथ रिपु के घर में गये थे और नृत्य, गान तथा सुन्दर वाद्यों के द्वारा वे राजा के मोहन करने में सलग्न हो गये थे ॥३६॥ सब को मोहन करने वाले कृष्णांश ने महिषी (रानी) को संज्ञाहीन करके वहाँ पहुंच गया जहाँ पर उसकी पुत्री विजयैषिणी थी ॥३७॥ उसने श्याम अङ्गों वाले उस सुन्दर रूप को देखा जो कि पुरुषों में सर्वोत्तम था और वह मोहित होगई थी तथा वश में प्राप्त हुई मैथुन के लिये प्रस्तुत होगई थी ॥३८॥ उस प्रकार की दशा में प्राप्त हुई नारी को देखकर कृष्णांश ने बड़ी श्लक्ष्ण वाणी से उस मद से विह्वल कामिनी से शत्रु का भेद पूछा था ॥३९॥ वह बोली—हे देवकी के पुत्र ! यदि आप मेरा पाणि का ग्रहण करोगे तो मैं पिता का दारुण भेद सब कह दूँगी ॥४०॥ ऐसा ही होगा—यह कह कर उस बलवान् ने उसका हाथ ग्रहण कर लिया था । रिपु का समस्त भेद जान कर और उसको आश्वासन देकर बड़े प्रेम से वह चला गया था ॥४१॥ इस बीच में रानी बाधिता योगी से बोली—देशराज की प्रिया का हार नौ लाख मूल्य का है । हार मैं तुमको दे दूँगी क्योंकि मैं तेरे नृत्य-गान से विशेष रूपसे मोहित होगई हूं ॥४२॥

इति श्रुत्वा वत्ससुतस्तां प्रशस्य गृहीतवान् ।
प्रययौ बंधुभिः सार्द्धं जम्बुको यत्र तिष्ठति ॥४३॥
ननर्त तत्र कृष्णांशो बलखानिरगायत ।
आह्लादस्तालनो देवो दध्मुर्वाद्यगतोमुदा ॥४४॥
मोहितोऽभून्नृपस्तत्र कालियः स्वजनैः सह ।
कामं वरय कृष्णांग यत्र ते हृदये स्थितम् ॥४५॥
इति श्रुत्वा वचः शत्रोर्बलखानिर्महाबलः ।
तमाह भो महीपाल लक्षावर्तिवरांगना ।
स्वविद्यां दर्शयेन्मह्यं तदा तृप्तिं व्रजाम्यहम् ॥४६॥
इति श्रुत्वा तथा मत्वा लक्षावर्ति नृपोत्तमः ।
सभायां नर्तयामास देशराजप्रियां तथा ॥४७॥
सा वेश्या सुतमाह्लादं ज्ञात्वा योगित्वमागतम् ।
रुरोद तत्र दुःखार्ता नेत्रादश्रूणि मुंचती ॥४८॥
रुदितां तां समालोक्य रुदन्नाह्लाद एव सः ।
स्वभुजौ ताडयामास तत्प्रियार्थे महाबलः ॥४९॥
कृष्णांशस्तत्र तं हारं तस्याः कंठे प्रदत्तवान् ।
उवाच क्रोधताम्राक्षस्तामाश्वास्य पुनः पुनः ॥५०॥

यह सुनकर वत्स सुत ने उसकी बड़ी प्रशंसा करके उसको ग्रहण कर लिया था और बन्धुओं के साथ वहाँ गया जहाँ पर जम्बुक रहता था ॥४३॥ कृष्णांश वहाँ पर नाचा और बलखानि ने गान किया था। आह्लाद-तालन देव ने बड़े आनन्द से वाद्यों की गति से बजाया था ॥४४॥ वहाँ पर कालिय नृप मोहित होगया था जोकि अपने जनों के साथ था। हे कृष्णांग ! जो भी इच्छा हो वरदान माँग ले और अपने दिल के अनुसार माँगले ॥४५॥ महान् बलवान् बलखानि शत्रु से यह वचन सुनकर उससे बोला—हे महीपाल ! लाक्षावर्ति वराङ्गना मुझको अपनी विद्या को दिखावे तब ही मैं पूर्ण तृप्ति को प्राप्त होऊंगा ॥४६॥ यह सुनकर और इस बात को मानकर नृप लाक्षावर्ति ... भा में नचाया था जो कि देशराज की प्रिया थी। उस वेश्या ने योगि...

प्राप्त हुए भ्राह्लाद सुत को जान लिया था और वह नेत्रों से आँसुओं को टपकाती हुई दुःख से भ्रार्त्त होकर रोने लगी थी ॥४७॥४८॥ रोती हुई उसको देखकर वह भ्राह्लाद भी रोने लगा था। महाबल ने उस प्रिया के लिये अपनी भुजाओं का ताड़न किया था। कृष्णांश ने वहाँ पर उस हार को उसके कण्ठ में डाल दिया था। क्रोध से लाल आँखें करके उसका बार-बार भ्राह्वाहन करके बोला ॥४६॥५०॥

अहं चोदयसिंहोऽयं पितुर्वैरार्यमागतः ।
हनिष्यामि रिपुं भूपं सात्मजं सबलं तथा ॥५१॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य कालियो बलवत्तरः ।
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य शतव्यूहसमन्वितः ॥५२॥
तेषां च बंधनायैव कपाटं समरुद्ध सः ।
तान्छत्रून्समनुज्ञाय पाशहस्तान्सशस्त्रगान् ॥५३॥
स्वंस्वं खड्गं समाकृष्य क्षत्रियास्ते समाघ्नत ।
शतशूरे हते तत्र कालियो भयकातरः ॥५४॥
त्यक्त्वा तातं प्रदुद्राव ते तु गेहाद्बहिर्ययुः ।
स्वसैन्यं शीघ्रमासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ।
शिविराणि कृतान्येव नर्मदाकूलमास्थितैः ॥५५॥
कृत्वा तु नर्मदासेतुं नल्वमात्रं सुपुष्टिदम् ।
स्वसैन्यं तारयामास चतुरङ्गसमन्वितम् ॥५६॥

यह मैं उदयसिंह हूं पिता के वैर के लिये ही यहाँ आया हूं। अब मैं शत्रु राजा को पुत्रों के सहित तथा सेना के सहित मार दूंगा ॥५१॥ उसके यह वचन सुनकर अधिक बलवान् कालिय पिता की आज्ञा को आगे करके शत व्यूह से समन्वित होकर उनके बन्धन के लिये उसने कपाट बन्द कर दिये थे। उन-उन शत्रुओं को जिनके हाथों में पाश तथा शस्त्र थे समनुज्ञात करके अपना-अपना खड्ग खींचकर उन क्षत्रियों ने मार दिया था। शत शूरों को उनके द्वारा हत हो जाने पर कालिय भय से कातर होगया था ॥५२॥५३॥५४॥ वह अपने पिता को त्यागकर भाग गया था और वे भी गृह से बाहिर चले गये

थे । शीघ्र ही अपनी सेना को प्राप्त कर युद्ध के लिये समुपस्थित होगये। नर्मदाकूल में आस्थितों के द्वारा शिविर बनाये हुए थे ॥५५॥ नलमात्र सुपुष्टि देने वाला नर्मदा का सेतु बनाकर अपनी सेना को जो कि चतुरङ्ग समन्वित थी उतार दिया था ॥५६॥

रुरोध नगरीं सर्वां बलखानिर्बलैर्युतः ।
शतघ्नीरग्रतः कृत्वा महाशब्दकरीस्तदा ।
माहिष्मत्याश्च हर्म्याणि पातयामास भूतले ॥५७॥
नराश्च स्वकुलैः सार्द्धं मुख्यद्रव्यसमन्विताः ।
विन्ध्याद्रेश्च गुहां प्राप्य तस्थुर्भयकातराः ॥५८॥
कालियस्तु गजानीके पञ्चशब्दगजे स्थितः ।
हस्तिपा दशसाहस्रा युद्धाय समुपाययुः ॥५९॥
तस्यानुजः सूर्यवर्मा निखर्वैस्तुरगैर्युतः ।
तुंदिलश्च रथं सार्द्धं रथस्यश्च सहस्रकैः ॥६०॥
रङ्गणो गङ्गणश्चोभौ चतुर्लक्षपदातिभिः ।
जगन्नुरगो महासन्त्री म्लेच्छभूपसहस्रकैः ।
दाक्षिणात्यग्रामवान्ते तौ पुरस्कृत्य संययुः ॥६१॥
उभे सेने समागम्य युद्धाय समुपस्थिते ।
तयोश्च तुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥६२॥
निशामे रुधिरैस्तेषां नदी प्रावर्तत द्रुतम् ।
दृष्ट्वास्रजां नदीं घोरां मांसकर्दमवाहिनीम् ।
बलखानिरमेयात्मा सङ्गणाग्निर्नरोत्तमो ॥६३॥

सेना से युक्त बलखानि ने सम्पूर्ण नगरी को घेर लिया था उस समय महान् शब्द के करने वाली शतघ्नी [तोपें] आगे करके माहिष्मती के महलों को भूमि पर गिरा दिया ॥५७॥ और मनुष्य अपने कुलों के साथ मुख्य द्रव्य से युक्त होकर विन्ध्याचल की गुहा में जाकर भयभीत होकर निवास करने लगे थे ॥५८॥ कालिय गजों की सेना में पञ्च शब्द गज पर स्थित होकर

और दश सहस्र हस्तिप युद्ध के लिये आये थे ॥५९॥ उसका छोटा भाई सूर्य वर्मा तीन लाख अश्वों से युक्त होकर आया था जो एक सहस्र रथस्थों के साथ तुन्दिल से युद्ध किया था। रकण और वंकण ये दोनो महाम्लेच्छ चार लाख पदातियों के साथ थे एक सहस्र म्लेच्छ राजाओं के साथ गये थे। दाक्षिणात्य ग्रामप जो थे वे उन दोनो को आगे करके गये थे ॥६०॥६१॥ दोनों सेनाएँ वहाँ प्राप्त होकर युद्ध करने के लिये पूर्णतया तयार होगई थी। उन दोनों सेनाओं का एक बड़ा ही भीषण एवं रोमाञ्चकारी तुमुल शब्द हुआ था ॥६२॥ तीन प्रहर में उनके रुधिर से शीघ्र ही एक नदी बनकर बहने लगी थी। उस खून से समुत्पन्न बहुत ही घोर मांस के कीच के वाहिनी नदी को देखकर अमेयात्मा बलखानि हाथ में खड्ग लेकर वहाँ गया था ॥६३॥

भल्लहस्तस्तदा देवो मनोरथहये स्थितः ।
बिंदुलस्थश्च कृष्णांशः खड्गेनैव रिपून्हनम् ॥६४॥
आह्लादश्च गदाहस्तः पोथयामास वाहिनीम् ।
रूपणो नाम शूद्रश्च शक्तिहस्तोऽन्यहन्रिपून् ।
सालनो हस्तिनिखिशो माहिष्मत्या ह्यनन्ययो ॥६५॥
एवं महाभये जाते रणे तस्मिन्महाबले ।
दुद्रुवुः सर्वतो वीराः पाहिपाहीत्यथाब्रुवन् ॥६६॥
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा कालियो बलखानिकम् ।
गजस्थस्ताडयामास स्वबाणैस्तं महाबलः ॥६७॥
हरिणी वडवा तस्य ज्ञात्वा स्वामिनमातुरम् ।
गजोपरि समास्थाय स्वपादैस्तमपातयत् ॥६८॥
पतिते कालिये वीरे पञ्चशब्दो महागजः ।
शृङ्खलैस्ताडयामास शूरांस्तान्मदमत्तकान् ॥६९॥
मूर्च्छिते पञ्चशूरे तु रूपणो भयकातरः ।
देवकीं वर्णयामास यथाजातं गजेन वै ॥७०॥

हाथ मे माला लेकर उस समय में देव मनोरथ अश्व पर चढकर स्थित था, कृष्णांश बिन्दुल नामक अश्व पर सवार था जिसने खड्ग से ही रिपुओं का हनन किया था ।।६४।। आह्लाद ने हाथ में गदा लेकर सेना को पोषित किया था । रूपण नाम वाला शूद्र जो था उसने अपने हाथ मे शक्ति को ग्रहण करके शत्रुओं का हनन किया था । तालन हस्ति निस्त्रिंश होकर माहिष्मती नगरी में हनन करता हुआ गया था ।।६५।। इस प्रकार से वह महान् बल वाला बड़ा ही भयानक युद्ध होने पर सभी ओर से वीर लोग बचाओ-बचाओ की ध्वनि करते हुए भागने लगे थे ।।६६।। उस समय मे कालिय ने अपनी सेना को भंग होते हुए देखकर बलखानि पर हाथी पर स्थित होकर महान् बलवान् ने अपने बाणों के द्वारा ताडन किया था ।।६७। उसकी हरिणी नाम वाली बडवाने अपने स्वामी को भय से आतुर देखकर गज के ऊपर समास्थित होकर अपने पादों से उसको गिरा दिया था ।।६८।। कालिय वीर के गिर जाने ,पर पचशब्द नामक महा गज ने शृङ्खलाओं से उन मध्यस्न शूरों की ताडना की थी ।।६९।। पञ्चशूर के मूर्च्छित होने पर रूपण भय से कातर हो गया था और गज से यथा जात को उसने देवकी को वर्णन किया था ।।७०।।

तदा तु दुःखिता देवी दोलामारुह्य सत्वरा ।
तं गजं न समासाद्य वर्णयामास वारणम् ।।७१।।
गजराज नमस्तुभ्यं शक्रदत्त महाबल ।
एते पुत्रास्तु ते वीर पालनीया यथा पितुः ।।७२।।
इति श्रुत्वा दिव्यगजो देवमायाविशारदः ।
देवकी शरणं प्राप्य क्षमस्वागम्कृत गम. ।।७३।।
इत्युक्ते गजराजे तु कृष्णांशो बलवत्तरः ।
त्यक्त्वा मूर्च्छां ययौ यत्राह्लादश्च मूर्च्छितः ।।७४।।
तमुत्थाप्य करस्पर्शैर्वनस्पानिममन्वितः ।
पितुर्गजं महामत्तमाह्लादाय प्रदत्तवान् ।
मरालमश्व दिव्यांग रूपणाय तदा ददौ ।।७५।।

मूर्च्छितं कालियं शत्रुं बद्ध्वा स निगडैर्दृढ़ैः ।
सेनान्तं प्रेषयामास बलखानिर्महाबलः ॥७६॥
सूर्यवर्मा तदा ज्ञात्वा बद्धं बंधुं च कालियम् ।
प्रययौ शत्रुसेनान्तं क्रोधेन स्फुरिताधरः ॥७७॥

उस समय देवकी बहुत दुःखित होकर शीघ्र ही स्वयं डोला पर आरूढ़ होकर उस कारण गज के समीप पहुंच कर उसका स्तवन करने लगी थी॥७१॥ हे गजराज ! हे दानदस महाबल ! तुम्हारे लिये मेरा नमस्कार है । हे वीर ! ये तेरे पुत्र हैं इनका पालन तुमको पिता के समान ही अवश्य करना चाहिए। ॥७२॥ यह सुनकर वह देवमाया का पण्डित दिव्य गज देवकी को अपने शरण में प्राप्त करके कहने लगा मेरे अपराध को क्षमा कर दो ॥७३॥ उस गजराज के ऐसा कहने पर अधिक बलवान् कृष्णांश मूर्छा का त्याग कर वहाँ पहुँचा था जहाँ पर आह्लाद मूर्च्छित हो गया था ॥७४॥ बलखानि से समन्वित होकर करके स्पर्श से उसे उठाकर महामत्त पिता के गज को आह्लाद के लिये उसने दे दिया था । और करान अश्व को रूपण के लिए आरोहण करने को दिया था ॥७५॥ तब उस मूर्च्छित कालिय को निगडों से खूब मजबूती के साथ बाँध कर उसने महा बलवान् बलखानि ने उसे सेना के समीप में भेज दिया था। ॥७६॥ तब सूर्यवर्मा ने अपने बन्धु कालिय को बँधा हुआ देखकर क्रोध से होटों को फड़काते हुए वह शत्रु सेनान्त के पास चला गया था ॥७७॥

तमायान्तं समालोक्य ते वीरा युद्धदुर्मदाः ।
रथस्थं मंडलीकृत्य स्वंस्वमस्त्रं समाक्षिपन् ॥७८॥
कुंठितेऽस्त्रे तदा तेषां विस्मितास्तेऽभवन्मुखे ।
चिन्तां च महती प्राप्ताः कथं वध्यो भवेदयम् ॥७९॥
तस्यास्त्रैस्ते महावीरा व्रणार्तिभयपीडिताः ।
त्यक्त्वा युद्धं पुनर्गत्वा रणं चक्रुः पुनः पुनः ॥८०॥
एवं कति दिनान्येव बभूव रण उत्तमः ।
आह्लादो वत्सजो देवस्तालनो भयसंयुतः ।
कृष्णांशं शरणं जग्मुस्तेन वीरेण मोहिताः ॥८१॥

कृष्णस्तु तं तथा दृष्ट्वा देवीं विश्वविमोहिनीम् ।
तुष्टाव मनसा वीरो रात्रिसूक्तं पठन्हृदि ॥८२॥
तदा तुष्टा जगद्धात्री दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ।
मोहयित्वा तु त वीरं तत्रैवांतरधीयत: ॥८३॥
निद्रया मोहित दृष्ट्वा कृष्णांशस्तु महाबलः ।
बबंध निगडैस्तं च देवक्यन्ते समागमात् ॥८४॥

उन युद्ध दुर्मद वीरो ने उसे आते हुये देखकर रथ मे स्थित को मण्डल से घेरकर उस पर अपने २ अस्त्रो की बौछार करने लगे थे ॥७८॥ उस समय उनके अस्त्रो के कुण्ठित हो जाने पर वे सब बहुत ही विस्मित हो गये थे और उन्हे बहुत बड़ी चिन्ता हो गई थी कि यह कैसे वध के योग्य होगा ॥७६॥ उसके अस्त्रो से वे महावीर प्रणो की आर्त्ति से भय पीड़ित हो गये थे । युद्ध को छोड़कर फिर बारबार युद्ध करने लगे थे ॥८०॥ इस तरह से कितने ही दिनो तक यह उत्तम रण होने लगा था आह्लाद, बलमज, देव और तालन सभी भय से युक्त हो गये थे । तब वे सब कृष्णांश की शरण मे गये क्योंकि उस समय मे उस वीर के द्वारा मोहित हो गये थे ॥८१॥ कृष्णांश ने उसको उस प्रकार का देखकर मन से विश्व मोहिनी देवी का स्तवन किया था और वीर ने हृदय मे रात्रिसूक्त का पाठ किया था ॥८२॥ तब जगत् की धात्री दु खो के नाश करने वाली दुर्गा प्रसन्न हो गई और उस वीर को मोहित करके वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गई थी ॥८३॥ जब वह निद्रा से मोहित हो गया तो महान् बलवान् कृष्णांश ने उसे देखकर निगडो से उसे दृढता से बांधकर देवकी के समीप मे ले गया था ॥८४॥

तुंदिलश्च तथा ज्ञात्वाभातृशोकपरिप्लुतः ।
आजगाम हयारूढः खड्गहस्तो महाबलः ।
रिपुसैन्यस्य मध्ये तु बहूशूरानताडयत् ॥८५॥
माहिष्मत्याश्च ते शूरा रंकणेन समन्विताः ।
तत्सैन्यं भञ्जयामासुस्तालनेन प्रपालितम् ॥८६॥

प्रद्रुतं स्वं बल दृष्ट्वा तालनः परिघायुधः ।
शिरांसिपोथयामास म्लेच्छाना च पृथक्पृथक् ॥८७॥
वंकणं च तथा हत्वा खड्गेनैव च रंकणम् ।
तु दिल च तथा वद्ध्वा दिनान्ते शिविरं ययौ ॥८८॥
कालिये च रिपौ वद्धे सुवद्धे सूर्यवर्मणि ।
तु दिले च तथा वद्धे रंकणे वंकणे हते ॥८६॥
सहस्र म्लेच्छराजानो हतशेषा बलान्विताः ।
पक्षमात्रमहोरात्र युद्ध चक्रुः समततः ॥६०॥
प्रत्यहं तालनो वीरः सेनापतिरमर्पणः ।
षष्टि भूपाञ्जघानाशु शत्रुसैन्यभयंकरः ॥६१॥

तुन्दिल ने उस प्रकार का ज्ञान करके भाई के शोक से परिप्लुत होकर हाथ मे खड्ग धारण करते हुए घोडे पर सवार होकर वह महा बलवान् वहाँ आ गया था । शत्रु की सेना के मध्य मे उसने बहुत से रिपुशूर वीरों का हनन किया था ॥८५॥ माहिष्मती नगरी उन शूरो ने रङ्कण से युक्त होकर तालन के द्वारा रक्षित उस सेना का भञ्जन कर दिया था ॥८६॥ जब तालन देखा कि उसकी सेना के लोग भागने लगे तो उसने परिघ नाम का आयुध लेकर म्लेच्छों के मस्तकों को अलग-अलग करके काट दिया था ॥८७॥ वङ्कण और रङ्कण को भी उसने अपने खड्ग से मार गिराया । और तुन्दिल को बाँधकर दिन के अन्त मे शिविर मे चला गया था ॥८८॥ कालिय और सूर्यवर्मा शत्रुओं के बद्ध हो जाने पर तथा तुन्दिल के भी बँध जाने पर और रङ्कण एव वङ्कण के मारे जाने पर एक सहस्र म्लेच्छ राजा लोगो ने जोकि मरने से बचे हुए थे और सेना से समन्वित थे एक पक्ष भर पर्यन्त चारो ओर से युद्ध डटकर किया था । ॥८६॥६०॥ प्रतिदिन वीर तालन और अमर्पण सेनापति साठ भूपों को शीघ्र ही मार देता था क्योंकि यह शत्रु की सेना के लिए महान् भयङ्कर था ॥६१॥

भयभीता रिपोः शूरा हता भूपा हतौजसः ।
हतशेषा ययुर्गेहमर्द्धसैन्या भयातुराः ॥६२॥

जम्बुकस्तु तथा श्रुत्वा दुःखितो गेहमाययौ ।
व्रतं ह्यनशनं कृत्वा रात्रौ शोचन्नशेत सः ॥९३॥
निशीथे समनुप्राप्ते तत्सुता विजयैषिणी ।
पूर्णा तु सा कला ज्ञेया राधाया व्रजवासिनी ॥९४॥
आश्वास्य पितरं तं च ययौ मायाविशारदा ।
रक्षकान्शिबिराणां च मोहयित्वा समाययौ ॥९५॥
भ्रातरो तत्र गत्वासौ यत्र सर्वानबोधयत् ।
कृत्वा सा राक्षसीं मायां पंचवीरानमोहयत् ॥९६॥
निरस्त्रकवचान्धनूंष्यप्रतिदोलां समारुहत् ।
पितुः रतिकमासाद्य तस्मै भ्रातृन्ददौ मुदा ॥९७॥
प्रभाते बोधिताः सर्वे स्नानध्यानादिकाः क्रियाः ।
कृत्वा ययू रिपोः मालां दृष्टवन्तो न तास्तदा ॥९८॥

भय से डरे हुये शत्रु के शूर मारे गये थे क्योंकि वे सब भूख हत ओज वाले हो गये थे । जो भी युद्ध करने से शेष रह गये थे वे भयातुर सर्व सैन्य अपने घर में चले गये थे ॥९२॥ जम्बुक ने इस प्रकार का वृत्तान्त सुना तो वह परम दुःखित होकर घर में आ गया था । उसने अनशन व्रत किया और वह इसी चिन्ता को करता हुआ रात में भी नहीं सोता था ॥९३॥ अर्धरात्रि के प्राप्त होने पर उसकी पुत्री विजयैषिणी राधा की व्रज में निवास करने वाली पूर्ण कला ही जाननी चाहिए ॥९४॥ माया में परम पण्डिता वह अपने पिता को आश्वासन देकर चली गई थी । वह शिविरों के रक्षकों को मोहित करके आ गई थी ॥९५॥ वहाँ आकर इसने जहाँ भाई थे उन सबको बोधित किया था । उसने राक्षसी माया को फैलाकर पंचवीरों को मोहित कर दिया था । ॥९६॥ निरस्त्र कवच वाले धनुषों को प्रत्येक डोला में चढ़ा दिया था । पिता के समीप में आकर उसने निजे प्रसन्नता भाइयों को दे दिया था ॥९७॥ प्रातः काल में अर्थात् जब जगे तो स्नान ध्यान आदि समस्त क्रियाओं से निवृत्त होकर माला को उन्होंने देखा तो उस समय में उनको वहाँ नहीं देखा था ॥९८॥

बभूवुर्दुःखिताः सर्वे किमिदं कारणं कथम् ।
तानुवाच तदा देवः प्राप्ताः ह्यत्र रिपोः सुता ॥९९॥
कृत्वा सा राक्षसी मायां हृत्वा तान्गेहमाययौ ।
तस्माद्यूयं मया सार्द्धं गत्वा यत्रैव तद्गुरुः ॥१००॥
विंध्योपरि महारण्ये नानासत्त्वनिषेविते ।
कुटीरं तस्य तत्रैव नाम्नैवैलविली हि सः ।
योगसिद्धियुतः कामी राक्षसेभ्यो हि निर्भयः ॥१०१॥
जम्बुकस्य सुता तत्र प्रत्यहं स्वजनैर्युता ।
एकाकिनी च सा रात्रौ स्वं गुरुं तमरीरमत् ॥१०२॥
कृतेयं चैलविलिना माया मनुजमोहिनी ।
कार्यसिद्धिं गमिष्यामो गत्वा तं पुरुषाधमम् ।
इति श्रुत्वा तु चत्वारो विनाह्लदं ययुर्वनम् ॥१०३॥
गीतनृत्यप्रवाद्यैश्च मोहयित्वा च तं दिने ।
वासं चक्रुश्च तत्रैव धूर्तं मायाविशारदम् ॥१०४॥
स तु पूर्वभवे दैत्यश्चित्रो नाम महासुरः ।
बाणकन्यामुषां नित्यमवाञ्छच्छिव पूजकः ।
जात ऐलविली नाम पक्षपूजी स वेगवान् ॥१०५॥

सब लोग बहुत ही दुःखित हुये थे और विचार कर रहे थे कि इनका क्या कारण है और कैसे ऐसा हो गया है। उस समय में उनसे देव ने कहा कि यहा रिपु की सुता आई थी। उसने राक्षसी माया करके उनका हरण करके घर में लेकर चली गई थी। इससे आप लोग मेरे साथ चलो जहा कि इसका गुरु रहता है ॥९९॥१००॥ विन्ध्याचल के ऊपर बडे विशाल वन में जहाँ कि अनेक प्रकार के सत्त्व रहा करते हैं उसकी वहाँ पर ही कुटिया है। उसका नाम ऐल-विली है। वह योग की सिद्धियों से परिपूर्ण है और कामी है तथा राक्षसों से सदा निर्भय रहा करता है ॥१०१॥ जम्बुक की सुता वहाँ पर अपने जनो से युक्त प्रतिदिन तथा अकेली ही रात्रि मे जाकर उस अपने गुरु को रमण

कराया करती थी ॥१०२॥ उस ऐलीविली मे यह मनुष्यो को मोहित करने वाली माया की है। उस अधम पुरुष के पास जाकर हम कार्य की सिद्धि को प्राप्त कर लेगे। यह सुनकर चारो आह्लाद के बिना उस वन मे गए थे ॥१०३॥ गीत, नृत्य और वाद्यो से दिन मे उसे मोहित करके रात्रि मे उन्होंने उस धूर्त माया विशार के वहाँ पास मे ही निवास किया था ॥१०४॥ वह पहिले जन्म मे चित्र नामधारी महान् असुर दैत्य था। उसने शिव की पूजा करते हुए वाण की कन्या उषा के प्राप्त करने की इच्छा की थी। पश्चपूर्वी वह वेगवान् अब ऐलविली के नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥१०५॥

तयोर्मध्ये प्रमाणोऽयं विवाहो मे यदा भवेत् ।
तदाहं त्वा भजिष्यामि संत्यक्त्वोद्वाहितं पतिम् ॥१०६॥
हते तस्मिन्महाधूर्ते गत्वा संग्राममूर्द्धनि ।
जम्बुकस्य ययुर्दुर्गं दृष्ट्वा ते त समारुहन् ।
हत्वा तत्र स्थितान्वीरान्छतघ्न्य. परिखाकृताः ॥१०७॥
तदा तु जम्बुको राजा शिवदत्तवरो बली ।
जित्वा पञ्च महावीरान्वद्ध्वा तान्निगडैर्दृढं ।
शैव यज्ञं च कृतवास्तेषा नाम्नोपबृंहितम् ॥१०८॥
रूपेणस्तु तथा ज्ञात्वा देवकी प्रत्यवर्णयत् ।
तदा तु दु.खिता देवी भवानी भयहारिणीम् ।
मनसा च जगामाशु शरण्या शरणं सती ॥१०९॥
तदा तुष्टा जगद्धात्री स्वप्नाते तामवर्णयत् ।
अहो देवकि कल्याणि पुत्रशोक त्याजघुना ॥११०॥
यदा तु जम्बुको राजा शिवदत्तवरो बली ।
होमं कर्ता स मदात्मा तेषा च बलिहेतवे ॥१११॥
मोहयित्वा तदाहं त मोचयित्वा च ते सुतान् ।
विजय ते प्रदास्यामि मा च शोके मनः कृथाः ॥११२॥

उन दोनो के मध्य मे यह प्रमाण है कि जब मेरा विवाह हो जावेगा तो उस उद्वाहित पति का त्याग करके मैं तेरा ही सेवन करूँगी ॥१०६॥ उस

महाधूर्त के मारे जाने पर संग्राम के मूर्धा में जाकर जम्बुक के दुर्ग मे चले थे। वे वहां उसको देखकर उन्होने उस पर चढाई कर दी थी। वहाँ पर वीरो को मारकर छिन्नभिन्नो को परिखाकृत बना दिया था ॥१०७। उस मे राजा जम्बुक जोकि शिव का दत्तवर और बली था पाचो महावीरो को उन्हे निगडो से दृढता के साथ बाँध दिया था और उसने उनके नाम से उग्र शैव यज्ञ किया था ॥१०८॥ रूपण को जब इसका ज्ञान प्राप्त हुआ तो देवकी का स्तवन किया था। तब दु:खित देवी ने भय के हरण करने भवानी को मन से ध्यान किया था जोकि बडी शरण्य है और सती शरण्य शीघ्र ही रक्षिका होती हैं ॥१०९॥ तब तो वह जगदम्बा प्रसन्न हुई और स्वप्नान्त मे उससे कहा—हे देवकि ! हे कल्याणि ! अब तुम पुत्र के शोक त्याग दो। जबकि राजा जम्बुक शिव के वरदान पाने वाला बलवान् हो करने वाला है और वह मन्दात्मा उनकी बलि के लिये ही यह यज्ञ कर रह ॥११०॥१११॥ उस समय मे मैं उसको मोहित करके तुम्हारे पुत्रो को वाकर विजय तुझे दूंगी, मन मे शोक मत करो ॥११२॥

इति श्रुत्वा सती देवी नमस्कृत्य महेश्वरीम् ।
पूजयामास विधिवद्धूपदीपोपहारकैः ॥११३॥
एतस्मिन्नंतरे राजा देवमायाविमोहितः ।
सुष्वाप तत्र होमान्ते ते च जाता ह्यबंधनाः ॥११४॥
तैर्बद्धो जम्बुको राजा निगडैरायसैर्दृढैः ।
ते तं बद्ध्वा ययुः शीघ्रं देवकी प्रति निर्भयाः ॥११५॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र कालियाद्यास्त्रयः सुताः ।
त्रिलक्षं सैन्यमादाय युद्धाय समुपाययुः ॥११६॥
पुनर्युद्धमभूद्घोरं सेनयोरुभयोस्तदा ।
तालनाद्याश्च चत्वारो हत्वा ता रिपुवाहिनीम् ॥११७॥
शीघ्रं च शत्रून्कोष्ठकीकृत्य स्वशस्त्रैर्जघ्नुरूर्जिताः ।
एव दिनानि कतिचित्तत्र जातो महारणः ॥११८॥

'पद्म-पुराण' की कुछ उल्लेखनीय बातें



सात बड़े-बड़े विभागों में बँटा हुआ 'पद्म पुराण' निस्सन्देह एक महा-
थ है। इसमें प्रसिद्ध पौराणिक घटनाओं के सम्बन्ध में अपने विशिष्ट दृष्टिकोण
लिखी बड़ी-बड़ी कथाएँ और उपाख्यान तो दिये ही गये हैं, साथ ही कितने
। सिद्धान्त सम्बन्धी और जीवनोपयोगी विषयों पर भी उसमें विशेष बल दिया
या है। 'वैष्णवों के लक्षण', 'तुलसी और धात्री (आमला) माहात्म्य',
ह्लादजी की महिमा' आदि कई विषयों की इसमें बार-बार विवेचना की गई है,
तुलसी और धात्री माहात्म्य' ही इसमें तीन स्थानों पर ('सृष्टि-खण्ड', 'ब्रह्म-खण्ड'
और 'उत्तर-खण्ड' में) दिया गया है। (इनमें से हमने एक ही दिया है, क्योंकि
व एक से ही हैं।) इस प्रकार एक ही विषय की अनेक बार पुनरावृत्ति क्यों
ी गई इसके कई कारण हो सकते हैं पर अधिक सम्भावना यह जान पड़ती
कि पुराणकार को ये विषय अधिक महत्त्वपूर्ण विदित होते हों अथवा विशेष
रुच लगते हों।

"वैष्णवों के लक्षण" पर हम भूमिका में पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं।
ह विषय 'उत्तर खण्ड' में पुनः दिया गया है और उसमें एक मुख्य बात यह
कि शूद्रों के 'महान वैष्णव-भक्त' होने का विशेष रूप से वर्णन किया है,
ब पार्वतीजी ने शिवजी से प्रश्न किया कि 'संसार में विष्णु भगवान् के सच्चे
त और भक्त कौन हैं ?" तो उन्होंने कहा—

शूद्रा भवन्ति वै दासा वैष्णवा नारदादयः।
प्रह्लादश्चाम्बरीषाद्या भक्तास्ते नगनन्दिनी ॥
यज्ञक्रियारतो नित्यं वेद वेदाङ्ग पाठकः।
शूद्र यज्ञाङ्गिनो यस्तु स वै वैष्णव उच्यते ॥

द्विज सेवारतो नित्यं नित्यं विष्णु प्रपूजकः ।
शृणोति बहुधा चैव पुराण वेद सम्मतम् ॥
स शूद्रो हरिदासस्तु इत्युक्तो नगनंदिनि ।
स वै भक्त इति प्रोक्तः सर्व साधुषु सम्मतः ।
ध्रुवा दयस्ते विज्ञेया अम्बरीषा दयश्च ये ॥
भक्ताश्च मुनिभिः प्रोक्ताः सर्व कालेषु भामिनि ।
कलौ धन्यतमा शूद्रा विष्णु ध्यान परायणाः ॥

अर्थात्—"नारद, प्रह्लाद, अम्बरीष आदि प्रसिद्ध विष्णु भक्तों ने शू‍ के विष्णुदास होने का प्रतिपादन किया है। अध्यात्म-मार्ग पर चलने वा वेद और और वेदाङ्ग का मर्म जानने वाले और शङ्ख तथा चक्र से अङ्कि व्यक्ति ही सच्चे वैष्णव हैं। जो ऐसे श्रेष्ठ द्विजों (सद्गुणी और संस्कारयुक्त की सदैव सेवा और विष्णु की पूजा करता है वह शूद्र निश्चय ही वैष्णव औ विष्णुदास कहा जायगा। इस बात का समर्थन समस्त सज्जनों और ध्रुव त अम्बरीष जैसे प्राचीन महा-भक्तों ने किया है। समस्त भक्तों और ऋषियों सदैव यह कहा है कि कलियुग में विष्णु ध्यान परायण शूद्र सर्वाधिक धन्य हैं।

वास्तव में वैष्णव सम्प्रदाय का सदा से एक मुख्य लक्ष्य समाज में ऊँच-नीच की भावना को यथासम्भव कम करना रहा है। इस बात को ह यों भी कह सकते हैं कि जब वैदिक कर्मकाण्ड को 'ब्राह्मणों' ने अत्यन्त विस्तृ और जटिल बनाकर उसमें अन्य लोगों का प्रवेश हो सकना प्राय असम्भव क दिया तो उनके विरोध में जैन और वैष्णव जैसे ज्ञानमार्गी और भक्तिमा सम्प्रदायों का उद्भव हुआ। वैष्णव सिद्धान्त में विष्णु को सर्वव्यापक प्र पादित करके यह घोषित किया गया कि प्राणीमात्र एक उसी दैवी शक्ति अंश हैं, इसलिए किसी को छोटा या नीच समझना भूल है। प्रत्येक व्यक्ति भीतर उसी परम-पुरुष की चैतन्य ज्योति जगमगा रही है, इसलिये वह च तो संसार में कितनी भी उन्नति कर सकता है और किसी भी पदवी पर पहुँ सकता है। श्रीमद्भगवत् गीता में भी इस सिद्धान्त का बहुत स्पष्ट रूप से समर्थ किया गया है—

है, पर जो कोई ऐसे श्लोकों के भरोसे बिना सत्कर्म और सदाचार के 'वि
लोक' जाने की आशा करता रहेगा उसे गङ्गा के बजाय वैतरणी मे ही
लगाने पड़ेंगे। 'गङ्गा गङ्गा' शब्द केवल मुख से कहने मे काम नही चलता
अन्तर मे भी कहना चाहिये, और अन्तर से वह तभी कहा जा सकेगा
जीवन शुद्ध और पवित्र हो। केवल ऊपरी ढोंग से अथवा तोते की तरह भ
का नाम रटते रहने से कोई लाभ नही हो सकता। इसलिए जहाँ यह कह
है कि अमुक मनुष्य बहुत थोड़े समय तक भगवान अथवा गङ्गा की शरण
तर गया वहाँ उसका आशय यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि प्राचीन स
अथवा अज्ञात शुभ कर्मो के फलस्वरूप उस व्यक्ति की मति शीघ्र ही प
हो गई और वह शुद्ध हृदय से भगवान् की शरण मे चला गया। भगव
हृदय के प्रेम और सच्चे भाव को ही देखते हैं। उनको मालूम है कि वा
पापी मनुष्य—अन्तर मे पाप की कालिमा रखने वाला व्यक्ति, मेरे सामने
नही सकता।

इसी प्रकार 'पद्म पुराण' मे एक नही अनेक छोटी छोटी उपयोगी
पर आचरण करके लाभ उठाने के लिए उसका माहात्म्य खूब बढ़ा-
वर्णन किया गया है। वे जानते थे कि ऐसे धार्मिक नियमों का पालन उप
और उत्तमता की निगाह से करने वालो की सख्या नगण्य है। अधिकाश
बहुत अल्प विचार शक्ति वाले होते हैं और वे ऐसे माहात्म्यो से ही प्रेरि
या उत्साहित धर्माचरण कर पाते है। उन्होंने दिवाली को दिये जलाने
स्नान करने, माघ मास मे महीने भर स्नान और अन्य सयम-नियमों क
पालन के लिए लोगों को इसी प्रकार स्वर्ग का लाभ' बतलाकर प्रेरणा
ये सब कार्य शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शुद्धता की दृष्टि से उप
ही, और यदि कोई माहात्म्यो से प्रभावित होकर इनको करता रहे
भाई दोष नही।

'पद्म पुराण' ऐसी धार्मिक शिक्षाओ का भण्डार है और उसमें
छोटी बड़ी कथाओ द्वारा इनका प्रभाव लोगों के मन और हृदय पर ड
चेष्टा की है। यदि धर्म प्रेमी इसका प्रचार बढ़ाने का प्रयत्न करें तो इस
सामान्य लोगों का कल्याण हो सकेगा, इसमे सन्देह नही।